॥ श्रीः ॥

सादरं समर्पणम्

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरु साक्षात्परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवेनम. ॥

श्रीमतां पदवाक्यप्रमाणपारावारीणधुरीणानां विविधविद्याग्रन्थप्रणयनचणाना प्राच्यप्रतीच्यबहुशास्त्रविचक्षणानां शास्त्रजीवनाना निखिलानवद्यगुणगणालंकृताना समस्तभूमण्डलनिग्रहस्थानीकृतप्रतिपक्षजन्मनाम् धर्मधुरन्धराणा जगदम्बाप्रसादाल्लब्धविश्वविश्रुतवैदुष्यजुषाम् विद्वद्वरीयाणा सर्वतन्त्रस्वतन्त्राणा श्रीदेगुरुचरणानां सरस्वत्यपरावताराणा दुस्तरविद्यार्णवसमुत्तरणप्रकटीकृतमहावीरपराक्रमाणा शिष्यानुग्रहकाङ्क्षया प्रत्यक्षशिवावतारााणाम् करुणावरुणालयाना बङ्गप्रान्तीयविद्वन्मण्डलमण्डनानाम् विक्रमपुरान्तर्गतटोल्वासाइल ग्रामवास्तव्यानां प्रात.स्मरणीयपुण्यश्लोकविद्यालङ्कारोपाधिकयामाचरणात्मजाना तत्रभवता आचार्यप्रवराणां श्री करुणामयसरस्वतीमहाभागाना करकमलयोर्मिलिन्दायताम् गुरुमण्डल ब्रादशपुष्पं

ब्राह्मपुराणमिदम् सादरम्

गुरुदेव !

न किञ्चिन्नूतनं वस्तु दातुं निष्ठाऽस्ति मामिका ।
ग्राह्ममेतद्धि भगवन्नर्पितं प्रीतयेमुदा ॥

इति

कलिकाता शिवरात्रिव्रतम् २०१० वि०	}	श्री श्रीगुरुचरणैक शरणस्य मनसुखरायमोरस्य



राजगुरु पं० हरिदत्त शास्त्री
विद्यारत्न, विद्यालङ्कार,
धर्मधुरीण

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

पुराण विद्या

मानवीय जिज्ञासा की उत्कट पिपासा को गवेषणा द्वारा शान्त किया जाता है। गवेषणा का आधार है प्राचीन साहित्य, प्राचीन निर्माण तथा पुरातत्त्व सफल जिज्ञासा से देश एवं जाति की प्रायः सब समस्याओं का सुलभ और उपयोगी समाधान हो जाता है। *गवेषणा से ही वेदादि सच्छास्त्र तथा कालोपयोगी* वैज्ञानिक सिद्धियाँ प्रकाशित और व्यवहृत हुई हैं। प्रखर क्रान्तिकारी जीवन का उद्गम गवेषणा है, तत्त्वानुसन्धान, तत्त्वविनिमय एवं तत्त्व विश्लेषण से कितनी गूढ़ और बलवती कार्योपयोगी शक्तियों का आदान-प्रदान व्यवहार में आ रहा है यह सब गवेषणा का ही फल है।

भारतीय गवेषणा के स्रोत पुराण ग्रन्थ हैं। वेदोंमें आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक, दैव, मानुषी, आसुरी तथा चैतन्य एवं जड सब प्रकार की गवेषणा का सूक्ष्मरूप से विधान है। ब्राह्मण भाग और आरण्य भाग में विशेषतः आधिदैविक एवं अधियज्ञ की गवेषणा प्रधानतया दिखाई देती है। पुराणों में सब प्रकार की बौद्धिक, व्यावहारिक, नैतिक, एवं सांस्कृतिक गवेषणाओं को इतिहास और कथानक के स्वरूप में

आकर्षक और बुद्धिगम्य साहित्य में श्री वेदव्यासजी ने विस्तृत किया है। इसमें न केवल स्मृति शास्त्राभिप्रेत, आचार, व्यवहार प्रायश्चित्तादि दैनिक क्रियाओं की गवेषणा मात्र है, अपितु मनुष्य जीवनोपयोगी महता भावनाओं का विस्तृत विधान है। भारतीय ज्ञान गाथा में वेद वेदार्थ का ज्ञान प्राप्त करने में मनुष्यता रूपी रासायनिक निधिकी प्राप्ति बताई गई है। "इतिहासपुराणाभ्यां वेद समुपबृंहयेत्" महाभारतादि इतिहास तथा अष्टादश पुराणों को समझने से वेद की निधि प्राप्त हो सकती है।

बिना पुराण ग्रन्थों के अध्ययन से तथा निरुक्तादि शास्त्रों के न जानने से वेदार्थ का यथार्थ ज्ञान एवं मानव जिज्ञासा की पूर्त्ति असम्भव है। तपस्वी कृष्णद्वैपायन वेदव्यासजी ने उत्तर मीमासा ब्रह्मसूत्र में वेद प्रतिपाद्य अध्यात्मनिष्ठा से त्रिविध सन्ताप से मुक्त होने का सरल उपाय ज्ञाननिष्ठा का प्रतिपादन किया है तथापि ज्ञाननिष्ठा का परिपाक और स्थितप्रज्ञ भूमि का साधन पुराण पाठों का अध्ययन बताया है। प्रत्येक साधन को बुद्धि में सरलता पूर्वक इतिहास कथानक ही ला सकते हैं। यजुर्वेद में "ईशावास्यमिदंॅसर्वं यत्किञ्चजगत्या जगत् तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृध कस्य स्विद्धनम्"। मनुष्यता के विकास का पूरा २ साधन इस मन्त्रमें आया है परन्तु केवल मन्त्र पाठ और उसके अर्थ ज्ञानमात्र से ही जीवन में उस भावना का अक्षुण्ण सञ्चार होना कठिन है अत पुराणों में जो सत्यनिष्ठा, त्याग निष्ठा, अद्रोह निष्ठा के इतिहास हरिश्चन्द्र शंखलिखित एवं

च्यवन आदि के उन इतिहासों से मनन करते हुए रोमाञ्चकारी क्रान्ति एवं अश्रुधारा पात से जीवन में सत्य एवं करुणा का रासायनिक सञ्चार तत्काल होने लगता है। अतः वेदों में "सत्यंवद धर्मंचर" आदि वेद वाक्य बोधित अर्थों का इतिहास कथानक के रूप में चारु और ग्राह्य प्रयास वेदव्यासजी ने पुराण ग्रन्थों में किया है।

मानवीय ऐहिक, एवं पारमार्थिक जिज्ञासाओं की सफलता रूपी कल्प पादप अष्टादश पुराण व्यासजी के द्वारा प्रकट हुए हैं।

यद्यपि पौराणिक शैली प्रधानतया त्रैगुण्य रचना और प्रकृति की विकाशक है और प्रत्येक पुराण में गुणत्रय और गुणातीत संसार और अव्यक्त ब्रह्म का प्रतिपादन और उस प्रतिपाद्य की प्राप्ति के विधान हैं। तथापि कोई पुराण प्रधानतया सात्विक और कोई राजसिक एवं कोई तामसिक होनेसे ६ होते हैं। नवशक्त्यात्मक और नवशिवात्मक होने से अठारह संख्या होती है वस्तुतः संख्या नौ ही है। परन्तु तन्त्र शास्त्र में शिवशक्त्यात्मक योग से ६ संख्या अष्टादश हो जाती है।

इसी सिद्धान्त पर अष्टादश पुराण, अष्टादश प्रधान स्मृतिकार, अठारह पर्व, अष्टादश गीता के अध्याय आदि होते हैं। अठारह पुराणों की गणना इस प्रकार है।

ब्रह्म, पद्म, विष्णु, वायु, भागवत, भविष्य, नारद, मार्कण्डेय, ब्रह्मवैवर्त, अग्नि, लिङ्ग, वराह, वामन, मत्स्य, कूर्म, स्कन्द, गरुड और ब्रह्माण्ड।

निरुक्त में पुराण शब्द का निर्वचन इस प्रकार आया है :— "पुरा नवं भवति" जिसकी नवद्युति सबसे प्रथम प्रगट हुई वह पुराण है। इसलिये भगवान् को भी पुराणपुरुष कहते हैं। पुराण का अर्थ जीर्ण नहीं है अपितु आदि विकास का है। गीता में भगवान् की प्रार्थना में आया है "कविं पुराणमनुशासितारं" भगवान् क्रान्तदर्शी तथा पुराण होने से सबके अनुशासक हैं अतः पुराण शब्द से आदि साहित्य का तात्पर्य है। आदि साहित्य वह है जिसमें आदिदेव आत्मज्ञान का प्रबोध हो इस आदि विद्या को मानव जागृति के हेतु एवं जगत्कल्याणार्थ वेदव्यासजी ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

"सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितञ्चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥"

प्रधानतया पञ्चलक्षणों को लेकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चतुर्वर्गों का पुराणों में बड़ी प्रभावपूर्ण शैली में इतिहास कथाओं को लेकर मानव संसार के ज्ञान प्रसारार्थ विश्व में विस्तार किया है। जितना सरलतासे पुराणोंके द्वारा चतुर्वर्ग सिद्धि का साधन मिलेगा उतना अन्यत्र नहीं। व्यासजी ने अष्टादश पुराणों में इतना महान् साहित्य और विज्ञान, कला, योग तथा तपस्या सबका सार परोपकार अर्थात् सब जीवमात्र पर दया और मैत्री करुणा करना पुण्य कहा है। दूसरों को पीड़ा देना पाप है। यह पाप पुण्य की परिभाषा मानव प्रगति को कितने सुचारु रुप से जीवनचर्या का आधार बनाने के लिये आदेश करती है

और मनुष्यता का कितना सुन्दर मौलिक आचरण बता रहा है।

अष्टादश पुराणानां व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीड़नम्॥

पुराणोंमें सत्य की गवेषणा पर महाराज सत्यवादी हरिश्चन्द्र के कथानक से ज्ञात हो जायगा कि हरिश्चन्द्र जैसे सत्यव्रत आदर्श राजा ने सत्य की खोज में कितना मूल्य लगाया है। सुकन्या ने देवियों की दृढ़ निष्ठा से अपनी निष्ठा और सत्य से किस अलौकिक चमत्कार की सिद्धि प्राप्त की है यह आप लोगों से छिपा नहीं है। भगवान् रामचन्द्र की जीवन चर्चा में उनके चरित्र की विशेषता और मर्यादा की गवेषणा की कैसी हृदय-ग्राही शिक्षा बताई है। देखिये—जनमत के सामने झुक कर उन्होंने अपनी धर्मपत्नी सती सीता को छोड़ दिया। पैतृक अनुशासन और आज्ञा का आदर्श स्थिर करने के लिये राज्य तक का त्याग किया एवं दुराचार शमन के लिये एक अधितन्त्रवादी अधिनायकका विध्वंस किया। जो आदर्श श्रीरामके चरित्र में है जिस उच्च भूमिका पर समाज के जीवन का नैतिक, सामाजिक, चारित्रिक, धार्मिक, व्यावहारिक, आध्यात्मिक और आधिभौतिक रूप में स्तर प्रतिष्ठित करने का अद्वितीय लक्ष्य है वह संसार की किसी भी सभ्यता में दिखलाई नहीं पड़ता। रामराज्य के शासनिक विवरण को वेदव्यासजी ने इस प्रकार दिया है :-

"न पुत्र मरणंकेचिद्रामे राज्य प्रशासति।"

इसे ही रामायण में महर्षि वाल्मीकि ने इस प्रकार कहा है:—

न पुत्रमरणं केचिद्द्रक्ष्यन्ति पुरुषाःक्वचित् ।
नार्यश्चाविधवा नित्यं भविष्यन्ति पतिव्रताः ॥

राम के राज्य में किसी प्रकार का उपद्रव नहीं होता था। पुण्य शासन का यही आदर्श है संसार के शासन का राम के शासन के अतिरिक्त क्या और दूसरा उदाहरण कहीं मिल सकेगा ?

मार्कण्डेय के चरित्र से दीर्घायु की गवेषणा एवं दिलीप और कौत्स के विनयाधिकार की खोज से विद्या का चमत्कार और आदि मानवीय उच्च नीच भावनाओं की अनुकरणीय गाथाओं से अनेक गुरु शिष्य का सम्बन्ध तथा अनुशासनमय जीवनकी घटनाओंकी गवेषणा पुराण साहित्य से प्राप्त होती है। इसी प्रकार मानव जीवन को उदात्त बनाने वाली चारित्र्य और पुरुषार्थ की गवेषणा पुराण ग्रन्थों से प्राप्य है। इतना ही नहीं, आध्यात्मिक और आधिदैविक गवेषणा के अतिरिक्त आधिभौतिकवाद और आधिभौतिक सिद्धान्त अणुशक्ति की गवेषणा की भी प्रचुर सामग्री पुराण ग्रन्थों में है।

पुराण ग्रन्थों से अणुशक्ति का ज्ञान प्राप्त कर वैशेषिक दर्शन-कार कणाद ने आकाश में निश्चेष्ट परमाणु के परस्पर सम्मिश्रण से सप्त पदार्थों की रचना को मीमांसा का प्रशिक्षण बताया है। इस समय अणुगवेषणा पर भौतिक अनुसन्धान के विशेषज्ञों ने संहारक अणु शक्ति का पता लगाया है परन्तु प्रजनन और पालन अणुशक्ति का अभी उनको ज्ञान नहीं है। यह विज्ञान संस्कृत

साहित्य में मिलता है। इस पर ध्यान देकर यन्त्रों द्वारा अनु-सन्धानकर प्रत्यक्षीकरण किया जाय तो ससार का महान् उपकार होगा। जैसे, "तनीयास पासु तव चरणपङ्केरुह भवम् विरञ्चि सचिन्वन् विरचयति लोकानविकल्पम्। वहत्येन शौरि कथमपि सहस्रेण शिरसा, हर सक्षुभ्यैन भजति भसितोद्धूलनविधिम् ॥ (सौन्दर्यलहरी)

अर्थात् शक्ति जिसे भगवती या महाशक्ति के नाम से सस्कृत साहित्यमें कहा गया है उस आकाश रूपिणी अव्यक्त शक्ति से अणुवृष्टि हुई। उन अणुओं में से सर्जनात्मक अणुओं को सचित कर ससार का रचना की गई। इसे ब्राह्मी अणुशक्ति कहा है। दूसरे प्रकार के अणुओंको गवेषणा द्वारा संचित कर वैष्णव अणुसे ससार की पालनात्मक सामग्री बनी है। संहारात्मक अणु (विस्फोटक पदार्थ) एकत्र कर रौद्र अणुओं के पिण्डीकरण से ससार के विनाश की शक्ति बनी है। इस क्रम से ब्राह्मी, वैष्णवी, और रौद्र अणुशक्ति—ये तीन प्रकार के अणु बताये गये हैं। इस गवेषणाको यदि वर्तमान अणु परीक्षण समिति आधुनिक साधनों से गम्भीर परीक्षण का प्रयत्न करे तो वर्तमान काल भी पुराण काल के सदृश वैज्ञानिक महत्त्व को प्राप्त कर सकता है।

पुराणों में सिद्धपीठ स्थली, भूमण्डलके विभाग, पुण्यसरिता महानद, सरोवर, भूगर्भवाहिनी नाडिया, मरुस्थली और शस्यश्यामल भूभाग आदिका वर्णन दिया है जिनसे प्रचुर मात्रा में ब्राह्मी,

वैष्णवी और रौद्री आणवी शक्ति के विषय में अनुसन्धान सफल हो सकते हैं। स्कन्द पुराण में एक राजकन्या वर्करी नामकी आई है जिसने शारीरिक निर्माण के कारणों का ज्ञान प्राप्त कर अपने मुखमण्डल को वैज्ञानिक प्रक्रियाओं द्वारा बकरी मुख से इसी देह में सुन्दर मुखमण्डल के रूप में बदल दिया और स्वयं विधुवदना बन गई। इसके आठ भाई और एक बहिन थी। उस राजा ने समस्त देश नव विभागों मे विभाजित कर प्रत्येक को एक एक खण्ड दिया था तब से नवखण्ड नामसे भारतवर्ष की ख्याति हुई। उन पृथक् पृथक् खण्डों में अनेक प्रकार के भूगर्भ गत धातुओं का वर्णन है। पुराणों में केवल भूमि की ही गवेषणा नही है अपितु आकाशचारी ग्रह नक्षत्रों की दूरी और उनकी गति, शिशुमार चक्र, ध्रुवस्थान आदि तथा उत्तरायण, दक्षिणायन ऋतु और मास विज्ञान भी पर्याप्त मात्रा में है। इसलिए पुराण ग्रन्थ भारतवर्ष की बडी निधि है।

गुरुमण्डल के संरक्षक मनसुखराय मोरजी ने स्मृति एवं निरुक्त का तथा पुराण ग्रथों का स्वयं अध्ययन कर मानव जीवन की निधि जानकर गुरुमण्डल के प्रकाशन ग्रन्थों में पुराण प्रकाशन का कार्य तन, मन, धनसे प्रारम्भ कर दिया है। मोरजी के आजकल समाचार पत्रों में हिन्दी और संस्कृत के लेख पढने से ज्ञात होता है कि उनकी उत्तरोत्तर विद्या प्रकाशन की प्रगति अहर्निश तीव्र भावना में है।

श्री मोरजी ने मत्स्य पुराण, अग्नि पुराण और लिङ्ग पुराणको

मनन कर कितनी ही अज्ञात समस्याओं का सुचारु रूप से समाधान कर दिया है। मत्स्य पुराण से श्राद्ध कर्म(अ० १६)का यथार्थ ज्ञान अर्थात् मृतात्मा जिस योनि में हो पुत्रों से शास्त्र विहित श्राद्धान्न उसे उस योनि की तृप्ति के पदार्थ मे परिणत होकर मिलता है। अग्नि पुराण और लिङ्ग पुराण से तो उन्होंने मनुष्य हित का बहुत साहित्य एकत्रित किया है। पुराण प्रकाशन में उन्होंने सबसे प्रथम उत्पत्ति स्थिति सहार इस क्रम के अनुसार उत्पत्ति प्राधान्य ब्रह्मपुराण का प्रकाशन अग्रिम रक्खा है। सस्कृत साहित्य में आप देखेंगे प्रथम उत्पत्ति प्रकरण तब स्थिति अनन्तर लय। आदि कवि वाल्मीकि के योगवासिष्ठ में यही क्रम आया है'।

ब्रह्मपुराण में सृष्टि क्रम से लेकर वश वर्णन, कर्तव्य वर्णन और तीर्थवर्णन अध्यात्मनिष्ठा आई है। मोरजी ने अपनी भूमिका में अति सुन्दरता से पुराण मीमासा का वर्णन किया है। गुरमण्डल दीन दुर्बल दुःखी जनता के सुख समृद्धि के लिए यथासाध्य कृत प्रयत्न है। इस मण्डल का प्रथम पुष्प श्रमजीवन होने से विचारवती जनता समझ सकती है कि सबसे प्रथम श्रमजीवी कृषक कुलियों की स्थिति पर विचार करता भारत का आदर्श कार्यक्रम सृष्टि के प्रारम्भ से चलता रहा है। श्रमजीवियों की तथा स्त्रीनदु स्त्रियों की स्थिति को ठीक कर देना भारतीय धर्म परम्परा से चला आया है। यहाँ से ही भूमण्डल के अन्यान्य देशों ने श्रमजीवियों से अन्याय करने का मार्ग त्याग देना सीखा

है। यथा "कामये दुःखतप्तानाम्प्राणिनामार्त्ति नाशनम्" (महाभारत) यह भारत का धर्म एवं पुराणों की शिक्षा है। हम प्राणी मात्र को आशीर्वाद देते है कि इन पुराणों के अध्ययन से आप में दूसरी जनता के हित के भाव दैनन्दिन समृद्ध होकर संसार मात्र के मित्र बन्धु विश्वस्त होने के पात्र बनें।

पं० ब्रह्मदत्त शास्त्री एम० ए० जो गुरुमण्डल के शास्त्र प्रकाशन में श्री मोरजी के आमन्त्रण पर कार्य कर रहे हैं। पण्डित जी गुरुमण्डल के बड़े धन्यवाद पात्र है हम इन्हें आशीर्वाद देते हैं इनके अक्षुण्ण परिश्रम से जो प्रकाशन कार्य तीव्र गति से हो रहा है यह कार्य संसार की शान्ति, सुख एवं परस्पर सद्भावना का दृढ़ स्तम्भ बना रहे।

गीता जयन्ती २०१० } हरिदत्त शास्त्री

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

पुराण परिचय

संसार के प्राणी मात्र इष्ट प्राप्ति और अनिष्ट के परिहार के लिए दिन रात प्रयत्नशील हैं। "इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपाय यो वेदयति स वेद" इष्ट प्राप्ति और अनिष्ट परिहार का जो अलौकिक उपाय बताता है वह ही वेद है। जो व्यक्ति ज्ञान उपार्जन से संसार की सम्पूर्ण कठिनाइयों को अपनी विमल बुद्धि द्वारा निर्विघ्नता पूर्वक सरल करते जाते हैं वे पुरुषार्थी और सफलजन्मा हैं। गंगाजल की सदा बहने वाली धारा के समान उनके पवित्र ज्ञान की वाणी संसार के प्राणी मात्र का उद्धार करती है।

ज्ञानका क्षेत्र विमल, व्यापक और अखण्ड है। ज्ञान, इच्छा एवं प्रयत्न की त्रिपुटीसे सत्संस्कार एवं सत्फल मिलते हैं जो वास्तवमें गौरव की वस्तु है। ज्ञानी वास्तव में धन्य है "विप्राणां ज्ञानतोज्यैष्ठ्यम्" (मनु० २।१५५) वे लोक संग्रह की भावना से कर्तव्य कर श्रेय, साधन के ज्वलन्त उदाहरण बनते हैं। उन्हें सुख दुःख से पूर्ण इस ससार में ज्ञान रूपी खड्ग से अज्ञान एव दु:ख का नाश कर सदैव सुख प्राप्ति और आत्म लाभ का संतोष मिलता है।

प्राचीन भारतीय परम्परा में निष्कारण वेद एव वेदाङ्ग का अध्ययन अवश्य कर्तव्यत्वेन बताया गया है 'ब्राह्मणेननिष्कारणो धर्म षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च' (महाभाष्य नवान्हिक)।

भगवान् वेद इस आज्ञा के द्वारा निष्कारण षडङ्ग वेदाध्ययन को कर्तव्य कहते हैं हमारे जीवन के श्वास प्रश्वास के साथ मिला हुई इस निधि का सम्यग्दर्शन पुराण साहित्य मे सुन्दरता से प्रतिपादित है।

भारतीय जीवन से प्रेरणा लेनी हो तो भारतीयो के प्राण स्वरूप श्रुतिस्मृति के शीर्ष स्थानीय पुराणों से लेनी चाहिए। क्योंकिपुराण साहित्य सम्पूर्ण ज्ञान का भण्डार है। चौदह विद्यास्थानों में महर्षि याज्ञवल्क्य ने इन्हें प्रथम स्थान दिया है —देखिये याज्ञवल्क्य स्मृ० प्रथ० अ०। पुराणन्यायमीमांसा धर्मशास्त्रागमिश्रिता। वेदा स्थानानि विद्याना धर्मस्यच चतुर्दश॥ ३ श्लो०।

मानव जीवन का लक्ष्य परमात्मप्राप्ति है अपने जीवन में निष्काम धर्म द्वारा त्याग वृत्ति को ग्रहण कर स्वमार्गप्रशस्ति का सुगम साधन पुराण है। ये सर्ववेदमय सम्पूर्ण साधन, योग क्रिया सिद्धियाँ तन्त्र, मन्त्र एव कल्याण सिद्धान्तों से परिपूर्ण हैं।

सम्पूर्ण शास्त्रों में पुराण साहित्य की गरिमा और प्राचीनता प्रसिद्ध है।

"पुराण सर्वशास्त्राणा प्रथम ब्रह्मणास्मृतम्।
उत्तम सर्वशास्त्राना सर्वज्ञानोपपादकम्।

त्रिवर्ग साधनं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम् ॥

(पद्मपुराण प्रथमाध्याय)

भावार्थ :—सम्पूर्ण शास्त्रों में सर्वप्रथम पुराणको ब्रह्माजी ने स्मरण किया यह सब लोकों में उत्तम, सम्पूर्ण ज्ञान का बतानेवाला धर्म, अर्थ, काम का साधन, परम पुण्यमय और शतकोटि विस्तारवाला है (पुराणों से प्रेरणा लेकर अनेकानेक महर्षियों ने नाना शास्त्र, स्मृति, तन्त्र, उपपुराण, ज्योतिष, मीमांसा, न्यायदर्शन, आयुर्वेद और इतिहास आदि एवं साहित्य स्रष्टाओं ने अगणित विषयों के ग्रन्थों की रचना की। अतः नाना शाखा प्रशाखाभेद से शतकोटि विस्तारवाले पुराण हैं)।

इतिहासपुराणञ्च गाथाश्चोपनिषत्तथा।
आथर्वणानि कर्माणि अग्निहोत्रकृतेऽभवन् ॥ (पद्म पु०)

इतिहास, पुराण, नाराशंसी आदि गाथा उपनिषद् और आथर्वणिक कर्म अग्निहोत्र करनेवालों के लिये हुए।

पुराणों के सम्बन्ध में और भी वचन उपलब्ध होते हैं :—

ऋच: सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवादिविश्रिता: ॥

(अथर्ववेद ११।७।२४)

भाष्यम् :—ऋचः पादबद्धा मन्त्राः सामानि गीत विशिष्टा मन्त्रा:। छन्दांसि गायत्र्युष्णिगादीनि चतुरक्षराधिकानि सप्तसङ्ख्याकानि पुराणं पुरातनवृत्तान्तकथनरूपमाख्यानम् यजुषा यजुर्मन्त्रेण सह। उच्छिष्टात्—उच्छिष्यमाणात् ब्रह्मणः सकाशात् जज्ञिरे आविर्भूता: !

यज्ञ से यजुर्वेद के साथ ऋक्, साम, छन्द और पुराण हुए।
सुगापनीयम्वेदेषु पुराणेषु च दुर्लभम्—(ब्रह्म वै० ३ अध्याय)
वेदों में सुगोपनीय और पुराणों में दुर्लभतत्त्व हैं।

वेदेषु च पुराणेषु हरि सर्वत्र गीयते। (मत्स्य०)

वेदों और पुराणों में भगवान् हरि की प्रशस्ति सर्वत्र गाई गई है इस से स्पष्ट है कि वेद और पुराणो का तादात्म्य है।

शतपथ ब्राह्मण का प्रमाण है —

स यथार्द्रैधाग्नेरभ्याहितात्पृथग् धूमा विनिश्चरन्त्येव वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतदृग्वेदो यजुर्वेद सामवेदो ऽथर्वाङ्गिरस इतिहास पुराण विद्या उपनिषद् श्लोका सूत्राण्यनु व्याख्यानानि व्याख्यानान्यस्यैवैतानि सर्वाणि निःश्वसितानि।
(बृहदारण्यक उपनिषद् २।४।१०)

यथाऽप्रयत्नेनैव पुरुष निःश्वासो भवत्येवमेव। भगवनि श्वास के रूप में भगव स्वरूप प्रतिपादन विराट् विश्वरूपदर्शन पुराणों की विशेषता है यही पुराण और वेदों की एकवाक्यता है।

शतपथ ब्राह्मण १३ अ० ४ ३।१३ में पुराण वेद सोऽयमिति "किञ्चित्पुराणमाचक्षाणैवमेवाध्वर्यु" कह कर वेद हा पुराण है यह प्रतिपादित है। आश्वलायन गृह्यसूत्र में पुराणों का स्वाध्याय अवश्य कर्तव्य येन निरूपण किया है।

आश तरात्रादायुष्मता कथा कीर्तयन्तो माङ्गल्यानीतिहास पुराणानीत्याख्यापयमानस्त ग्रहणम्।" ४।६।

मनुजी ने विशेषरूप से उसे स्पष्ट किया है :—

स्वाध्यायं श्रावयेत् पित्र्ये धर्मशास्त्राणि चैवहि।
आख्यानानीतिहासांश्च पुराणानिखिलानिच॥

३ अध्याय—२३२

पितृउद्देश्यक स्वाध्याय कर धर्मशास्त्र, पुराण, इतिहास और सम्पूर्ण आख्यानों को इस अवसर पर सुनाओ। पुराणों का कथन वेद के समान ही अपनस्य है :—

पुराणो मानवोधर्मः साङ्गोवेदश्चिकित्सकः।
आज्ञा सिद्धानि चत्वारि न कर्तव्यानि हेतुभिः॥

ब्रह्मोक्तयाज्ञवल्क्य संहिता १—४१।

पुराण, मानव धर्म, साङ्ग वेद, चिकित्सा शास्त्र ये आदि काल से सिद्ध हैं इन्हें कुतर्कों से दूषित नहीं करना चाहिए।

पुराण वेदों के समानही प्रधान है।

पुराणं सर्व शास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
अनन्तरञ्च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः॥

मत्स्यपुराण ५३—१

भारतीय संस्कृति के रक्षक के रूप में इनका स्वाध्याय मनन और उपदेशानुसार आचरण सदा ही इष्ट फल को देनेवाला है।

वेदाश्च सेतिहासाश्च पुराणाः देवतागणाः।
भूधराः सागराः सर्वे पूजनीयाः समन्ततः॥ पद्मपुराण।

वेद, पुराण, इतिहास, देवतागण, पर्वत और सागर इनको सदा ही पूजा करनी चाहिये।

याज्ञवल्क्य स्मृति १ अध्याय ४५ श्लोक में आया है :—

चाकोवाक्यं पुराणञ्च नाराशंसीश्च गाथिकाः।
इतिहासांस्तथा विद्यां योऽधीते शक्तितोऽन्वहम् ॥

प्रति दिन वाक्योवाक्य आपस में वार्तालाप पुराण, नाराशंसी गाथा, इतिहास और अन्य सभी विद्याओंका यथाशक्ति स्वाध्याय करना चाहिये। (इस से यह स्पष्ट प्रगट होता है कि प्रथम ज्ञानार्जन में ऊहापोहमूलक वार्तालापसे स्थिर सिद्धान्त पुराणका प्रतिपादन होता है नाराशंसी गाथा, यज्ञविधान, इतिहास और विद्याओं का तदनन्तर निरूपण है जो भारतीय साहित्य परम्परा में अद्वितीय है) संक्षेप में पुराण का महत्त्व अतुलनीय है :—

इदं पुराणं परमं पुण्यं वेदैश्च सम्मितम्।
नानाश्रुतिसमायुक्तं नास्तिकाय न कीर्तयेत् ॥

मत्स्य पुराण १४७ ८५

यह पुराण परमपुण्यमय, वेदार्थयुक्त, नानाश्रुतिसमवेत है, इसे नास्तिक लोगों को न सुनावे।

शृणुयादि पुराणेषु वेदेभ्यश्च यथाश्रुतम्। मत्स्य २६३—१४
आदि पुराणों में और वेदों में अलौकिकतत्त्व प्रतिपादित है।

इस प्रकार यह सिद्ध हो गया कि पुराण चतुर्विध प्राण हैं प्रथम परमपिता परमात्मा के निःश्वास भूत प्राण हैं, वेदों के ये प्राण हैं। सम्पूर्ण प्राणियों के उद्धारार्थ इनका आविर्भाव हुआ इसलिये सारे प्राणियों के प्राण हैं और सम्पूर्ण ज्ञान का मन्थन रूप सार होने से उसके भी प्राण ये पुराण हैं।

ज्ञान, कर्म, अभ्यास एवं ध्यान सभीका संक्षेपमें बहुत महत्त्वपूर्ण वर्णन इनमें है। जीवन के जितने सैद्धान्तिक एवं यथार्थवादी दृष्टिकोण हैं उनका पुराण विशदीकरण कर संसार का महान् उपकार साधन किया है।

जीवन की दुविधा कष्ट एवं दुःखों को रोकने का सरल उपाय बताने वाले पुराण हैं इनसे आबालवृद्ध शूद्रादि नर नारी समान रूप से लाभ उठा सकते हैं। भवरोग का यह अमोघ रसायन है। सम्पूर्ण समस्याओं को सरल उपाय से सुलझानेवाली यह अद्वितीय समाधानकारक ज्ञानराशि भगवान् कृष्ण द्वैपायन व्यासदेव की सहज कृपा का फल है। संसार ताप से प्रताड़ित लोगों को सान्त्वना, अन्धकार में पड़े हुए को प्रकाश, भूले भटकों को सन्मार्ग, निराश लोगों को आशा की ज्योति देने वाले, शोक उद्वेग से पीड़ित जनों को उल्लासमय प्रसाद, कर्तव्य विमुख को कर्तव्यज्ञान, पापियों के पाप नाश का सहज साधन, राजनीति विशारदों को नीति शिक्षा, निष्काम कर्मियों को साधन उपदेश, भक्तों को भक्ति का मार्ग और ज्ञानियों को दिव्य मार्ग का प्रकाश ये पुराण देते हैं।

संक्षेप में, जो जिज्ञासु जिस उच्च लक्ष्य से इनमें श्रद्धा विश्वास पूर्वक मनोयोग देकर स्वाध्याय करता है वह एक चतुर गोताखोर के समान अनन्त राशि की ज्ञान समुद्र में से अमूल्य रत्न निकाल कर अपना उद्देश्य पूर्ण कर लेता है वैसे ही यथेच्छज्ञान की तृप्ति और लोक कल्याण की भावना इन महापुराणों की आवृत्ति और

अमूल्य शिक्षाओं के आचरण से उद्बुद्ध हो जाती है। यदि अतीत के गौरव को पुराण बतलाते है तो वर्तमान के निर्माण और भविष्य की कृति के लिये उनका महत्त्व कम नहीं है। सम्पूर्ण प्राणियों को शाश्वत सुख और शान्ति का वरदान देकर विपत्तिग्रस्त, कलह क्लेश से दुःखित, सन्देह एवं अविश्वास की सशक्त पाश में जकड़े प्राणियों को मुक्ति सन्देश देते हैं। भवरोग से ग्रस्त जनता के उद्धारार्थ पुराण ही एक मात्र शरण है।

साधना के मार्गों में ज्ञान, कर्म, भक्ति और उनके विविध भेदों के साथ कठिनता से प्राप्य और सुलभता से गम्य कई लक्ष्य भेदोपभेदोंके साथ बने हैं उन सबका निबन्धन पुराणों में है। इसके साथ ही सभी श्रेणी एवं वर्ग के व्यक्तियों के लिये उनके अधिकारानुसार अलग २ जीवन में उतारने योग्य सन्मार्ग साधन, उनमें आने वाले विघ्नों और उनसे छुटकारा पाने का बड़ा ही सुन्दर और रोचक उपाय प्रतिपादित किया गया है। जीवन और जगत् के परिपूर्ण स्वरूप की प्राप्ति अभ्युदय और निःश्रेयस् की सिद्धि को प्राप्ति में जीव मात्र का कल्याण साधन कर मानव आगे बढ़ कर परमात्मतत्त्व का योग्य अधिकारी कैसे बन सकता है इन सब का सुन्दर साधनों और शाश्वत चिरन्तन सत्य उपदेशों से परिपूर्ण इतिहास से युक्त विषयों का पुराणों में विशद निरूपण है।

पुराण में प्रतिपादित सर्ग, प्रति सर्ग, वंश, मन्वन्तर एवं वंशानुचरित इस पञ्चाङ्ग से सृष्टि में अनादि काल से चले आते

ये पुराण सात्त्विक, राजस और तामस भेद से तीन प्रकार के है। सात्विक में विशेष भगवान् हरि का, राजस में ब्रह्माजी का और तामस पुराणोंमें शिव और अग्नि का माहात्म्य वर्णन है। पितरों और सरस्वती का सर्वत्र ही वर्णन मिलता है। अठारह पुराणों के रचयिता भगवान् व्यासजी है।

पुराण मानव के ऐहिक आमुष्मिक लोककल्याण साधन के सच्चे मार्गदर्शक है। एक ओर जहां सृष्टि की नियमावली का यथार्थ परिदर्शन करने के लिये श्रुति का अनुगमन करती हुई स्मृतियां हमारे लिये विधान निर्माण करती है तो अनादिकाल से जीवन में होती आई अपूर्णता के फलस्वरूप भूलों से मानव को बचाने के लिये पुराण सफल ज्ञानचक्षु है। इनमें आख्यान, उपाख्यानों द्वारा मानव जाति का मार्ग प्रशस्त करने के लिये व्यासजी की त्रिकाल अबाधित सत्य की अनुभूति पूर्णज्ञान के फलित सत्य इन पुराणों से संसार का कितना महान् उपकार हुआ है यह बताने की आवश्यकता नहीं है।

सुतराम्, भारतीय जीवन में पुराणों का महत्त्व निर्विवाद है यह भगवन्निःश्वास रूप वेदों के समान ही प्राचीन तथापि चिरनवीन और चिरन्तन सत्य की अनुभूतियों का चरम उत्कर्ष बताने वाले सिद्धान्त ग्रन्थ है—पुरे अग्रे अनति गच्छति इति पुराणम्। मानव को मार्ग दर्शन करने के लिये आगे चलाने वाले साहित्य का नाम पुराण अन्वर्थ है।

ब्रह्माण्ड पुराण में लिखा है :—

यो विद्याच्चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विज ।
न चेत्पुराणं सम् विद्यान्नैव स स्याद्विचक्षण ॥
यस्मात्पुराह्यनक्तीद् पुराणं तेन तत्स्मृतम्।
निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापै प्रमुच्यते ॥

अध्याय—१

भावार्थ :—

जो द्विज चारों वेदों को जानता है और साङ्गोपाङ्ग विद्याओं में पारङ्गत है यदि पुराण का उसे ज्ञान नहीं तो वह विद्वान् नही हो सकता। सर्वप्रथम ज्ञान का प्रकाश करने से इनकी पुराण संज्ञा हुई। इसका जो निर्वचन जानते हैं वे सब पापों से छूट जाते हैं।

अनादि नित्य और शाश्वत होने से अनादि चिरन्तन शाश्वत तत्त्व का ही प्रतिपादन इनकी विशेषता है। सर्व साधारण की चतुर्दिक् विकसित उन्नति और आभ्युदयिक निश्रेयस् साधन सम्पत्ति के ये अक्षय भण्डार है। आप की जैसी रुचि, श्रद्धा एवं निष्ठा होगी वैसी ही रत्न निधि आपको प्राप्त होगी। ज्ञान, वैराग्य, भक्ति, प्रेम, श्रद्धा, विश्वास, यज्ञ, दान, तप, संयम, यम, नियम, सेवा, भूतदया, वर्णधर्म, आश्रम धर्म, राज धर्म, मानवधर्म, व्यक्ति धर्म, स्त्री धर्म, सदाचार और नाना श्रेणियों के पुरुषों के विभिन्न कल्याणकारी उपदेश सुन्दर सरल और उपादेय भाषा में

इनमें लिखे गये है। इससे ऊपर पुरुष, प्रकृति, महत्तत्व, प्रकृति, विकृति, भूगोल, खगोल, ऋषि, मुनि वंशों का वर्णन, राजवंश तथा स्थावर जङ्गम सृष्टि का बहुत सुन्दर रीति से सूक्ष्म विवेचन किया गया है।

इस आदिपुराण ब्रह्मपुराण को आप महानुभावों के कर-कमलों में उपहार प्रस्तुत करते हुए अपार आनन्द होता है ऊपर प्रतिपादित ये सभी विषय आख्यान रूपमें इस महापुराण में आये है।

मत्स्य महापुराण की ५३ वीं अध्याय में पुराणों का परिगणन करते हुए जो विवरण दिया गया है वह विशेष रूपसे प्रयोजनीय है अत: उसका आवश्यक अंश यहां प्रस्तुत किया जाता है:—

पुराणानि दशाष्टौ च साम्प्रतं तदिहोच्यते।
नामतस्तानि वक्ष्यामि श‍ृणुध्वं मुनिसत्तमाः।
ब्रह्मणाभिहितं पूर्वं यावन्मात्रं मरीचये।
ब्राह्मन्त्रिदश साहस्रं पुराणं परिकीर्त्यते।
एतदेव यदापद्ममभूद्धैरण्मयं जगत्।
तद्वृत्तान्ताश्रयं तद्वत् पाद्ममित्युच्यते बुधैः।
पाद्मं तत्पञ्चपञ्चाशत्सहस्राणीह कथ्यते।
वाराह कल्प वृत्तान्तमधिकृत्य पराशरः।
यत्राह धर्मानखिलान् तद्युक्तं वैष्णवम्विदुः।
त्रयोविंशति साहस्रं तत्प्रमाणं विदुर्बुधाः।
श्वेतकल्प प्रसङ्गेन धर्मान् वायुरिहाब्रवीत्।

यत्र तद्वायवीयंस्यात् रुद्रमाहात्म्यसंयुतम् ।
चतुर्विंशत्सहस्राणि पुराणं तदिहोच्यते ।
यत्राधि कृत्य गायत्रीं वर्ण्यते धर्मविस्तरः ।
वृत्रासुरवधोपेतं तद्भागवतमुच्यते ।
सारस्वतस्य कल्पस्य मध्ये ये स्युर्नरोत्तमाः ।
तद् वृत्तान्तोद्भवंलोके तद्भागवतमुच्यते ।
अष्टादश सहस्राणि पुराण तत्प्रचक्षते ।
यत्राह नारदोधर्मान् वृहत्कल्पाश्रयाणि च ।
पंचविंशत्सहस्राणि नारदीयं तदुच्यते ।
यत्राधिकृत्य शकुनीन् धर्माधर्मविचारणा ।
व्याख्याता वै मुनिप्रश्ने मुनिभिर्धर्मचारिभिः ।
मार्कण्डेयेन कथितं तत्सर्वं विस्तरेण तु ।
पुराणं नवसाहस्रं मार्कण्डेयमिहोच्यते ।
यत्तदीशानकं कल्पं वृत्तान्तमधिकृत्य च ।
वशिष्ठायाग्निना प्रोक्तमाग्नेयं तत्प्रचक्षते ।
तच्च षोडशसाहस्रं सर्वक्रतुफलप्रदम् ।
यत्राधिकृत्य माहात्म्यमादित्यस्य चतुर्मुखः ।
अघोरकल्पवृत्तान्तप्रसङ्गेन जगत्स्थितम् ।
मनवे कथयामास भूत ग्रामस्य लक्षणम् ।
चतुर्दश सहस्राणि तथा पञ्चशतानि च ।
भविष्य चरितप्रायं भविष्यन्तदिहोच्यते ॥
रथन्तरस्य कल्पस्य वृत्तान्तमधिकृत्य च ।

सावर्णिर्नारदाय कृष्णमाहात्म्यमुत्तमम् ॥
यत्र ब्रह्म वराहस्य चोदन्तं वर्णितं मुहुः ।
तदष्टादश साहस्रं ब्रह्मवैवर्त्तमुच्यते ॥
यत्राग्नि लिङ्ग मध्यस्थः प्राहदेवो महेश्वरः ।
धर्मार्थकाममोक्षार्थमाग्नेयमधिकृत्य च ॥
कल्पान्तेलैङ्गमित्युक्तं पुराणब्रह्मणास्वयम् ।
तदेकादश साहस्रम् ।
महावराहस्यपुनर्माहात्म्यमधिकृत्य च ।
विष्णुनाभिहितंक्षौण्ये तद्वाराहमिहोच्यते ॥
मानवस्य प्रसङ्गेन कल्पस्य मुनिसत्तमा ।
चतुर्विंशत्सहस्राणि तत्पुराणमिहोच्यते ।
यत्र माहेश्वरान्धर्मानधिकृत्यच षण्मुख ।
कल्पेतत्पुरुषंवृत्तं चरितैरूपबृंहितम् ।
स्कंदंनाम पुराणञ्च ह्येकाशीतिनिगद्यते ।
सहस्राणिशतञ्चैकमितिमर्त्येषुगद्यते ।
त्रिविक्रमस्यमाहात्म्यमधिकृत्य चतुर्मुख ।
त्रिवर्गमभ्यधात्तच्च वामनं परिकीर्तितम् ।
पुराणं दशसाहस्रं कूर्मं कल्पानुगं शिवम् ।
यत्र धर्मार्थकामानां मोक्षस्य च रसातले ।
माहात्म्यं कथयामास कूर्मरूपी जनार्दन ।
इन्द्रद्युम्न प्रसङ्गेन ऋषिभ्यः शक्रसन्निधौ ।
अष्टादश सहस्राणि लक्ष्मी कल्पानुषङ्गिकम् ।

श्रुतीनां यत्र कल्पादौ प्रवृत्त्यर्थं जनार्दनः।
मत्स्यरूपेण मनवे नरसिंहोपवर्णनम्।
अधिकृत्याब्रवीत्सप्त कल्पवृत्तं मुनीश्वराः।
तन्मात्स्यमिति जानीध्वं सहस्राणि चतुर्दश।
यदा च गारुडेकल्पे विश्वाण्डाद्गरुडोद्भवम्।
अधिकृत्याब्रवीत्कृष्णो गारुडं तदिहोच्यते।
तदष्टादशकञ्चैव सहस्राणीहपठ्यते।
ब्रह्मा ब्रह्माण्डमाहात्म्यमधिकृत्याब्रवीत्पुनः।
तच्च द्वादश साहस्रं ब्रह्माण्डं द्विशताधिकम्।
भविष्याणाञ्च कल्पानां श्रूयते यत्र विस्तरः।
तद्ब्रह्माण्डपुराणञ्च ब्रह्मणा समुदाहृतम्।
चतुर्लक्षमिदंप्रोक्तं व्यासेनाद्भुत कर्मणा।
उपभेदान्प्रवक्ष्यामि लोके ये सम्प्रतिष्ठिताः।
पाद्मे पुराणे तत्रोक्तं नरसिंहोपवर्णनम्।
तच्चाष्टादश साहस्रं नारसिंहमिहोच्यते।
नन्दाया यत्र माहात्म्यं कार्तिकेयेन वर्ण्यते।
नन्दी पुराणं तल्लोके राख्यातमितिकीर्त्यते।
यत्र शाम्बं पुरस्कृत्य भविष्येऽपिकथानकम्।
प्रोच्यते तत्पुनर्लोके शाम्बमेतन्मुनिव्रताः।
पुरातनस्य कल्पस्य पुराणानि विदुर्बुधाः।

उपरि वर्णित विवरण में ब्रह्म, पद्म, विष्णु, शिव, (वायु) देवीभागवत, (भागवत) भविष्य, नारद, मार्कण्डेय,

ब्रह्मवैवर्त, अग्नि, लिङ्ग, वराह, वामन, मत्स्य, कूर्म, स्कन्द, गरुड़ और ब्रह्माण्ड इन अठारह पुराणों में आये हुए उनके प्रतिपाद्य विषयों का संक्षेप में प्रतिपादन है।

महा पुराणों के सम्बन्ध में विभिन्न मत हैं पाठकों की सेवा में वामन पुराण का एक प्रचलित श्लोक प्रस्तुत है जिसमें आद्याक्षर से अठारहों पुराणों का पूर्ण ज्ञान हो सकता है।

मद्वयं भद्वयंचैव ब्रत्रयं व चतुष्टयम्
अनापलिङ्ग कूस्कानि पुराणानि पृथक् पृथक्।

म द्वयम् = मार्कण्डेय एवं मत्स्य।

भ द्वयम् = भागवत एवं भविष्य।

ब्र त्रयम् = ब्रह्म, ब्रह्माण्ड एवं ब्रह्म वैवर्त।

व चतुष्टयम् = विष्णु, वराह, वामन तथा वायु।

अ = अग्नि। ना = नारद, प = पद्म।

लि = लिङ्ग। ग = गरुड़। कू = कूर्म और स्क = स्कन्द।

कुछ विद्वद्वृन्द महा पुराण, उप पुराण, अतिपुराण और पुराण भेद से अठारह अठारह संख्या मानते हैं। उनके अनुसार महा पुराण ये हैं :—

ब्रह्म, पद्म, शिव, विष्णु, भागवत, नारद, मार्कण्डेय, अग्नि, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, लिङ्ग, वराह, स्कन्द, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड़ और ब्रह्माण्ड।

उप पुराण :— भागवत, माहेश्वर, ब्रह्माण्ड, आदित्य, पराशर, सौर, नन्दिकेश्वर, साम्ब, कालिका, वारुण, औशनस,

मानव, कापिल, दुर्वासस्, शिव धर्म, वृहन्नारदीय, नारसिंह, सनत्कुमार ।

अति पुराण :— कार्तव, ऋजु, आदि, मुद्गल, पशुपति, गणेश, सौर, परानन्द, वृहद्धर्म, महाभागवत, देवी, कल्कि, भार्गव, वशिष्ठ, कौर्म, गर्ग, चण्डी और लक्ष्मी ।

पुराण :— वृहद्विष्णु, शिव उत्तर खण्ड, लघु वृहन्नारदीय, मार्कण्डेय, वह्नि, भविष्योत्तर, वराह, स्कन्द, वामन, वृहद्वामन, वृहन्मत्स्य, स्वल्पमत्स्य, लघु वैवर्त और ५ प्रकार के भविष्य ।

मेरी तुच्छ बुद्धि में पुराणों के सम्बन्ध में इस प्रकार के क्रम का जो भी रूप रहे फिर भी इतना स्पष्ट है कि न्यूनाधिक रूपमें एक या दूसरी सूचीमें सभी पुराणों का इसमें समावेश होगया है ।

समुद्र मन्थन के समय चतुर्दश रत्नों की प्राप्ति उन महामहिम देवासुरों को हुई यह प्रसिद्ध है परन्तु इन पुराणों के अवगाहन से बहुमूल्य असख्य रत्नों की प्राप्ति होती है यह ध्रुव सत्य है । पुराणों में माहात्म्य कथाओं के प्रसङ्ग में नाना इतिहास और आख्यान उपलब्ध हैं जो महत्त्व पूर्ण हैं । प्रसङ्गानुसार इतना अधिक व्यापक विषयों का समावेश हुआ है कि ध्यान पूर्वक स्वाध्याय करने से एवं उन्हें आचरण का रूप देने से आदर्श जीवन बनाने की प्रत्यक्ष प्रेरणा मिलती है इस महान् ज्ञान निधि को विश्वम्भर का शब्दकोश (Encyclopedia) कहदें तो कोई अत्युक्ति नहीं । पुराणों की विषय सूची इतनी व्यापक है कि उन्हें यहा देना इस छोटे से लेख के कलेवर में सम्यक

नहीं है। हां, हम नाना पुराणों की मुख्य २ विषयानुक्रमणिका को तत्तत्स्थानों से उद्धृत कर अलग से पाठक महानुभावों के अवलोकनार्थ दे रहे हैं। आशा है, इसको अविकल पढ़ कर विद्वद्वृन्द विषय व्यापकता से उत्साहित होकर सम्पूर्ण पुराण साहित्य के अध्ययन से संसार का हित सम्पादन करेंगे।

अधिकन्तु, तन्त्र ग्रन्थ इन्हीं के अन्तर्गत हैं। वैद्यक शास्त्र के सभी विषय गरुड़ पुराण अग्नि पुराणादि सभी मुख्य पुराणों में पाये जाते है। दर्शन, विज्ञान, राजनीति तो सभी का क्रमबद्ध प्रतिपादित विषय है। आध्यात्मिक साधना के लिये स्तोत्र, कवच, एवं सहस्रनाम आदि पुराणों में उपलब्ध है। वेदों एवं पुराणों में प्रकृति (पृथ्वी) की गाथा है। वेदों में सूक्ष्मरूप से (नाराशंसी गाथा-यज्ञगाथा) का निरूपण किया है तथा पुराणों में अधिष्ठात्री देवी प्रकृतीश्वरी का विशदीकरण किया है, एवं महर्षियों ने स्मृतियों में इसी आधार पर व्यवहार मार्ग की प्रशस्ति गाई है। वेद, वेदाङ्ग, पुराण एवं स्मृतियों को धर्मशास्त्र कहा है। ये शाश्वत सत्य हैं। इनके निरन्तर श्रवण मनन एवं निदिध्यासन करने से अपना कल्याण है।

इसके साथ साथ जो विवरण भू वृत्तान्त के सम्बन्ध में आया है उसमें तीर्थ प्रधान वर्णन होने से गवेषणा और अनुसन्धान कर्ता महानुभावों को पूर्ण सहायता मिल सकती है।

सम्पूर्ण पुराणों में प्रथम यह ब्रह्म पुराण आदिकल्प का है इसीलिये सुमेरु स्थानीय है। आज की विघटित दुरवस्थाओं

का सकेत गुणधर्मों के प्रकरणों के पढने से दर्पण में प्रतिबिम्बित दर्शक बिम्ब के समान स्पष्ट ज्ञान होता है।

इसके साथ की लगी विषयसूचि का निर्माण इसी उद्देश्य से परिश्रम पूर्वक किया गया है कि विद्वज्जनों की तुलना में संस्कृत के प्रति प्रेम रखते हुए भी सस्कृत भाषा का लाभ न उठाने वाले पुराण प्रेमी महानुभाव इसके विषय ज्ञान से वञ्चित न रहें बल्कि इस सूचि से प्रभावित होकर अधिक संस्कृत की ओर आकर्षित हो अपने सस्कृत के अध्ययन को बढा कर कृतकार्य हों।

अपने गत वर्षों के दिन प्रति दिन के श्रुति स्मृति एवं पुराणों के स्वाध्याय से मुझे जीवन की गरिमा बढानेवाले तत्त्वों और उसे उच्चस्तर पर ले जाने वाले क्रिया कलापों को हृदयङ्गम करने का सुअवसर मिला है। मैं इनका स्वाध्याय करता हुआ अघाता नहीं हूँ जब जब अपने स्वाध्याय कालमें मैं इन ग्रन्थरत्नों को देखता हूँ तो चिरन्तन तथ्य सार्वजनीन लोककल्याण के लिये प्रतिपादित इनके विषय मुझे अधिकाधिक आकर्षित करलेते हैं। मैं इन्हें हृदय से लगा लेता हूँ। फिर दु ख भी होता है कि भारत की इतनी अमूल्य निधि भारतीयों के पास रहते दैन्य, अभाव, और दुर्दशा, कलह आदि जहा समूल नष्ट होने चाहिए वहा वे अपनी जड हमारे समाज में इतनी गहरा जमा चुके हैं कि इनसे छुटकारा कठिन सा हो रहा है। मेरा दृढ विश्वास है कि सृष्टि के इन प्राणों का व्यापक रूप में प्रचार होने से ही समूल बुराइया नष्ट हो सकती हैं।

मेरी सभी महानुभावों से यह विनम्र प्रार्थना है कि इनमें प्रतिपादित वस्तु तत्त्व को हृदय की विशालता व्यापक दृष्टिकोण और सत्य शिव तथा सुन्दर की रचना के उद्देश्य से अनुशीलन करने का प्रयत्न करें इसी में हम लाभान्वित होकर अपना और अपने आत्मीय जन एवं सृष्टि का कल्याण कर सकते हैं।

अपने जीवन की अनुभूतियों को साकार रूप देनेवाली महती ज्ञान देवता की पूजा अहर्निश स्वाध्यायके रूप में हो (स्वाध्यायान्मा प्रमद") इसी लक्ष्य से गुरुमण्डल ग्रन्थमाला के नवम पुष्प के रूप में सम्पूर्ण स्मृतियों का संग्रह प्रकाशित करने का प्रयास किया गया है आशा है शताधिक संख्या मे प्राप्त इन स्मृतियों को हस्तलिखित ग्रन्थों की प्रतिलिपियां उपलब्ध हो जाने से जीवन को प्रेरणा और स्फूर्ति देनेवाला महर्षि कल्प उन प्रातः स्मरणीय प्राप्त पुरुषों का मान्य निर्णय संसार को मार्ग दर्शन के लिये मिलेगा। आप महानुभावों की शुभाशीः तथा भूतभावन भगवान् विश्वनाथ के कृपार्द्र कटाक्ष से सफलतापूर्वक प्रकाशित कर प्रस्तुत की जायगी ऐसी आशा है।

वेदों और पुराणोंका स्वाध्याय हम भारतीयों के अध्ययन एवं पाठ्यक्रम से कितना दूर हो गया है यह सभी महानुभावों को विदित है। इसीका यह दुष्परिणाम है कि विश्व के उपदेष्टा वेदमार्ग प्रवर्तक भारत के गौरव ऋषिमहर्षियों की सन्तान होकर भी हम भारतीय नैतिक स्तर से नीचे गिरते जा रहे हैं और हमारी पतनावस्था चरम सीमा को पार कर गई है।

इनके पठनपाठन क्रम का श्री गणेश निरुक्त जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ रत्न से कर शनै २ इसके विशद अध्ययन से सारे विश्व को ज्ञान सूर्य का प्रकाश मिले और अज्ञानान्धकार से जर्जर विश्व को महती प्रेरणा मिले इसी उद्देश्य से गुरुमण्डल के दशम पुष्प के रूप में आप महानुभावों को निरुक्त का उपहार प्रस्तुत किया है। हमारी यही एक अमर अभिलाषा है कि सम्पूर्ण वेदनिधि का अविकल प्रकाशन कार्य कोई उदारमना शास्त्रव्यसनी महानुभाव लें तो विश्व का एक बड़ा भारी अभावपूर्ण होगा। इस महान् ग्रन्थ को पुराण प्रेमी शास्त्रैकाध्यायी विद्वानों की सेवामें उपस्थित कर यह प्रार्थना करते हैं कि आप लोग वेदवेदाङ्गादि के अध्ययन अध्यापन क्रम को पुनरुज्जीवित कर स्वतन्त्र भारत के उत्थान काल में प्रात स्मरणीय आर्ष ज्ञान की उत्कृष्ट विभूतिया उन ऋषियों को अपनी सच्ची श्रद्धाञ्जलि समर्पित कर हमलोगों के इस प्रयास को सफल करेंगे।

मनुष्य ने अनादि काल से यावन्मात्र प्राणियों के उद्धार का प्रण लिया हुआ है इस दिशा में उसके लिये श्रुति स्मृति जो सृष्टि की नियमावली है और पुराण जो उसके उपबृंहक हैं वे सदा से ही दृढ आधार शिला पर निर्मित प्रकाशस्तम्भ का काम करते हैं। आज की महती अनर्थ परम्परा में विपरीत अवस्थाओं का कटु अनुभव करता हुआ मनुष्य जो निराशा, अशान्ति और संघर्ष के थपेडों से दु खी हो रहा है उसका समाधान ये पुराण हैं। मेरी मान्यता है कि इस निराशापूर्ण वातावरण में {आशा

भूमिकालेखन व शोधन कार्य में तथा श्री पं० फजोड़ीलालजी मिश्र एवं पं० श्री रामनाथजी दाधीच साहित्य शास्त्री का प्रूफ कार्य संशोधन में पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ है· उन्हें अपने अभिन्न अङ्ग के नाते किसी प्रकार का धन्यवाद प्रदान करना शिष्टता के विरुद्ध है। श्रीपरमपूज्य राजगुरुजी हरिदत्तजी शास्त्री विद्यालङ्कार विद्यारत्न के सञ्चालकत्व में यह सब होने से उनकी विभूति एवं आशीर्वाद का ही फल है। आपने पुराण महिमा लिख हमें उत्साह एवं कर्त्तव्य पथ की प्रेरणा दी है। अन्त में मैं आप सभी महानुभावों का हृदय से आभार प्रदर्शन करता हुआ इस ज्ञान राशि के प्रचार का स्वाध्याय द्वारा पुण्य लाभ करने की करबद्ध प्रार्थना करता हूँ।

आशा है आप सभी उदाराशय आपेक्षिक अपूर्णता की उपेक्षा बुद्धि से क्षमा कर इस परिश्रम को सच्चे अर्थों से सफल बना हमें कृतकृत्य करेंगे।

कलकत्ता—
गीता जयन्ती
मार्गशीर्ष शुक्ला
११।२०१०

कृपाभिलाषी
मनसुखराय मोर

का अज्ञानान्धकार में ज्ञानालोक का जीवन में अपनी कर्मण्यता की समाप्ति समझने वाले पुरुष को पुरुषार्थ का यहाँ तक कि संसारमें जो कुछ असत्, अविवेक, अविद्या, अज्ञानादि रूपी अन्धकार है उनसे छुटकारा दिलानेवाला यह महातन्त्र है बल्कि तारकमन्त्र है। अस्त्रों से विश्व को अहिंसा, सत्य, और प्रेम और शान्ति का सन्देश दीजिये।

गत चैत्र मास मे नवरात्रों के पूर्व जयसे पुराण पारायण में श्री मोर ग्रन्थानुसन्धान समिति की पण्डित मण्डली ने समय देना आरम्भ किया तो मुझे ऐसा लगा कि इनका अविकल दोहन कर अपने जीवन को कृतकृत्य करना हम भारतीयों का प्रधान कर्तव्य है। उसी समय इसके प्रकाशन का संकल्प अङ्कुरित हुआ और ब्रह्मपुराण के प्रकाशन का बीज उसी मे निहित है जो पुष्पित एवं पल्लवित रूप में सेवा में उपस्थित है।

मेरी यह प्रबल इच्छा थी कि उसे शीघ्रातिशीघ्र गुरुमण्डल ग्रन्थमाला के एकादश पुष्प के रूप में आप महानुभावों की सेवा में प्रस्तुत करूं इतने अल्प समय में शीघ्रतावश जो कुछ त्रुटियां प्रेस के कर्मचारियों तथा कार्यकर्तृवृन्द की असवधानता से रह गई है उन्हें कृपालु विद्वद्वृन्द सुधारने की उदारता दिखला कर कृपा करें।

इस महत्कार्य में आरम्भ से ही श्री ब्रह्मदत्त त्रिवेदी भूतपूर्व अध्यक्ष श्री ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम संस्कृत कालेज लक्ष्मणगढ़ एवं भूत० सहायक सञ्चालक राजस्थान पुरातत्व मन्दिर जयपुर का

भूमिकालेखन व शोधन कार्य में तथा श्री पं० कजोडीलालजी मिश्र एव पं० श्री रामनाथजी दाधीच साहित्य शास्त्री का प्रूफ कार्य संशोधन में पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ है उन्हें अपने अभिन्न अङ्ग के नाते किसी प्रकार का धन्यवाद प्रदान करना शिष्टता के विरुद्ध है। श्रीपरमपूज्य राजगुरुजी हरिदत्तजी शास्त्री विद्यालङ्कार विद्यारत्न के सञ्चालकत्व में यह सब होने से उनकी विभूति एवं आशीर्वाद का ही फल है। आपने पुराण महिमा लिख हमें उत्साह एवं कर्त्तव्य पथ की प्रेरणा दी है। अन्त में मैं आप सभी महानुभावों का हृदय से आभार प्रदर्शन करता हुआ इस ज्ञान राशि के प्रचार का स्वाध्याय द्वारा पुण्य लाभ करने की करबद्ध प्रार्थना करता हूँ।

आशा है आप सभी उदाराशय आपेक्षिक अपूर्णता की उपेक्षा बुद्धि से क्षमा कर इस परिश्रम को सच्चे अर्थों से सफल बना हमें कृतकृत्य करेंगे।

कलकत्ता—
गीता जयन्ती
मार्गशीर्ष शुक्ला
११।२०१०

कृपाभिलाषी
मनसुखराय मोर

द्वीपानाञ्चैव सिन्धूनां वर्षाणाञ्चाप्यशेषतः ।
वर्णनं यत्र पातालस्वर्गाणाञ्च प्रदृश्यते ।
नरकाणां समाख्यानं सूर्यस्तुतिकथानकम् ।
पार्वत्याश्च तथा जन्म विवाहश्च निगद्यते ।
दक्षाख्यानं ततः प्रोक्तमेकाम्रक्षेत्रवर्णनम् ।
पूर्वभागोऽयमुदितः पुराणस्यास्य मानद ! ॥"

तदुत्तरभागे—

अस्योत्तरे विभागे तु पुरुषोत्तमवर्णनम् ।
विस्तरेण समाख्यातं तीर्थयात्राविधानतः ॥
अत्रैव कृष्णचरितं विस्तरात् समुदीरितम् ।
वर्णनं यमलोकस्य पितृश्राद्धविधिस्तथा ॥
वर्णाश्रमाणां धर्माश्च कीर्त्तिता यत्र विस्तरात् ।
विष्णुधर्मयुगाख्यानं प्रलयस्य च वर्णनम् ॥
योगानां च समाख्यानं सांख्यानाञ्चाऽपि वर्णनम् ।
ब्रह्मवादसमुद्देशः पुराणस्य च संदानम् ।
एतद् ब्रह्मपुराणन्तु भागद्वयसमाचितम् ॥
वर्णितं सर्वं पापघ्नं सर्वसौख्यप्रदायकम् ॥

तत्फलश्रुति :—

सूतशौनकसंवादं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।
लिखित्वैतत्पुराणं यो वैशाख्यां हेमसंयुतम् ॥
जलधेनुयुतञ्चापि भक्त्या दद्याद् द्विजातये ।

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

अष्टादशपुराणानां विषयानुक्रमणिका प्रारम्यते ।

॥ श्रीः ॥

ब्रह्मपुराण



वेदव्यास प्रणीते महापुराणादि तत्प्रतिपाद्य विषयाश्च
बृहन्नारदीये ४ पा० ६२ अ० उक्ता यथा—
ब्राह्मं पुराणं तत्रादौ सर्व्वलोकहिताय वै ।
व्यासेन वेदविदुषा समाख्यातं महात्मना ॥
तद्वै सर्वपुराणाग्र्यंधर्मकामार्थमोक्षदम् ।
नानाख्यानेतिहासाढ्यं दशसाहस्रमुच्यते ॥

तत्पूर्वभागे—

"देवानामसुराणाञ्च यत्रोत्पत्तिः प्रकीर्तिता ।
प्रजापतीनाञ्च तथा दक्षादीनां मुनीश्वर ! ॥
ततो लोकेश्वरस्यात्र सूर्य्यस्य परमात्मनः ।
वंशानुकीर्त्तनं पुण्यं महापातकनाशनम् ॥
तत्रावतारः कथितः परमानन्दरूपिणः ।
श्रीमतो रामचन्द्रस्य चतुर्व्यूहावतारिणः ।
ततश्च सोमवंशस्य कीर्त्तनं यत्र वर्णितम् ।
कृष्णस्य जगदीशस्य चरितं कल्मषापहम् ।

द्वीपानाञ्चैव सिन्धूनां वर्षाणाञ्चाप्यशेषतः ।
वर्णनं यत्र पातालस्वर्गाणाञ्च प्रदृश्यते ।
नरकाणां समाख्यानं सूर्य्यस्तुतिकथानकम् ।
पार्वत्याश्च तथा जन्म विवाहश्च निगद्यते ।
दक्षाख्यानं ततः प्रोक्तमेकाम्रक्षेत्रवर्णनम् ।
पूर्वभागोऽयमुदित पुराणस्यास्य मानद ! ॥"

तदुत्तरभागे—

अस्योत्तरे विभागे तु पुरुषोत्तमवर्णनम् ।
विस्तरेण समाख्यात तीर्थयात्राविधानत ॥
अत्रैव कृष्णचरित विस्तरात् समुदीरितम् ।
वर्णनं यम लोकस्य पितृश्राद्धविधिस्तथा ॥
वर्णाश्रमाणा धर्माश्च कीर्त्तिता यत्र विस्तरात् ।
विष्णुधर्मयुगाख्यानं प्रलयस्य च वर्णनम् ॥
योगाना च समाख्यानं साख्यानाञ्चाऽपि वर्णनम् ।
ब्रह्मवादसमुद्देश पुराणस्य च संशनम् ।
एतद् ब्रह्मपुराणन्तु भागद्वयसमाचितम् ॥
वर्णितं सर्व्व पापघ्नं सर्व्वसौख्यप्रदायकम् ॥

तत्फलश्रुति :—

सूतशौनकसम्वाद् भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।
लिखित्वैतत्पुराणं यो वैशाख्या हेमसंयुतम् ॥
जलधेनुयुतञ्चापि भक्त्या दद्याद् द्विजातये ।

पौराणिकाय सम्पूज्य धन्नभोज्यविभूषणै ॥
स वसेद् ब्रह्मणोलोके यावच्चन्द्रार्कतारकम्।
य पठेच्छृणुयाद्वाऽपि ब्रह्मानुक्रमणीं द्विज ।
सोऽपि सर्वपुराणस्य श्रोतुर्वक्तु फल लभेत्।
शृणोति य पुराणन्तु ब्राह्म सर्वं जितेन्द्रिय ।
हविष्याशी ■ नियमात् स लभेद् ब्रह्मण पदम्।
किमत्र बहुनोक्तेन यद् यदिच्छति मानव ।
तत्सर्वं लभते वत्स पुराणस्यास्य कार्त्तनात्।

पद्मपुराण

तत्स्थ निषयाणाम्प्रतिपादनम् नारदीयपुराणेउक्त यथा :—

प्रथमे सृष्टिखण्डे :—

"पुलस्त्येन तु भीष्माय सृष्ट्यादि क्रमतो द्विज।
नानाख्यानेतिहासाद्यैयत्रोक्तो धर्मविस्तर ।
पुष्करस्य च माहात्म्य विस्तरेण प्रकीर्तितम्।
ब्रह्मयज्ञविधानञ्च वेदपाठादिलक्षणम्।
दानाना कीर्त्तन यत्र वृत्तानाञ्च पृथक् पृथक ।
विवाह शैलजायाश्च तारकाख्यानक महत्।
माहात्म्यञ्च गवादीना कीर्त्तित सर्वपुण्यदम्।

कालकेयादि दैत्यानां वधो यत्र पृथक् पृथक् ।
ग्रहाणामर्च्चनं दानं यत्र प्रोक्तं द्विजोत्तम ॥
सत्सृष्टिखण्डमुद्दिष्टं व्यासेन सुमहात्मना ।

द्वितीये भूमि खण्डे :—

पितृमात्रादिपूज्यत्वे शिवशर्मकथा पुरः ।
सुव्रतस्य कथा पश्चात् वृत्रस्य च वधस्तथा ।
पृथोर्वैणस्य चाख्यानं धर्माख्यानं ततःपरम् ।
पितृशुश्रूषणाख्यानं नहुषस्य कथा ततः ।
ययाति चरितञ्चैव गुर्वतीर्थनिरूपणम् ।
राज्ञा जैमिनि सम्वादो बह्वाश्चर्यकथायुत ।
कथाह्यशोकसुन्दर्या हुण्डदैत्यवधान्विता ।
कामोदकाख्यानकं तत्र विहुण्डवधसंयुतम् ।
कुञ्जलस्य च सम्वादश्च्यवनेन महात्मना ।
सिद्धाख्यानं ततः प्रोक्तं खण्डस्यास्यफलोहृतम् ।
सूतशौनकसम्वादं भूमिखण्डमिदम्स्मृतम् ।

तृतीये स्वर्ग खण्डे :—

"ब्रह्माण्डोत्पत्तिरुदिता यत्रर्षिभ्यश्चसौतिना
सभूमिलोकसंस्थान तीर्थाख्यानं तत परम् ।
नर्मदोत्पत्ति कथनं तत्तीर्थानां कथा पृथक् ।
कुरुक्षेत्रादितीर्थाना कथा पुण्याः प्रकीर्तिताः ।
कालिन्दी पुण्यकथनं काशीमाहात्म्यवर्णनम् ।

गयायाश्चैव माहात्म्यं प्रयागस्य च पुण्यकम् ।
वर्णाश्रमानुरोधेन कर्मयोगनिरूपणम् ।
व्यासजैमिनि सम्वादः पुण्यकर्मकथान्वितः ।
समुद्रमथनाख्यानं व्रताख्यानं ततःपरम् ।
ऊर्ज्जपञ्चाहमाहात्म्यं स्तोत्रं सर्वापराधनुत् ।
एतत्स्वर्गाभिधं विप्र ! सर्वपातकनाशनम् ।"

चतुर्थे पातालखण्डे :—

"रामाश्वमेधे प्रथमं रामराज्याभिषेचनम् ।
अगस्त्याद्यागमश्चैव पौलस्त्यान्वयकीर्त्तनम् ।
अश्वमेधोपदेशाश्च हयचर्य्याततःपरम् ।
नानाराजकथाः पुण्या जगन्नाथानुवर्णनम् ।
वृन्दावनस्य माहात्म्यं सर्वपापप्रणाशनम् ।
नित्यलीलानुकथनं यत्र कृष्णावतारिणः ।
माधवस्नान माहात्म्ये स्नानदानार्च्चनेफलम् ।
धरावराहसम्वादो यम ब्राह्मणयोः कथा ।
सम्वादो राजदूतानां कृष्णस्तोत्रनिरूपणम् ।
शिवशम्भुसमायोगो दधीच्याख्यानकन्ततः ।
भस्ममाहात्म्यमतुलं शिवमाहात्म्यमुत्तमम् ।
देवरातसुताख्यानं पुराणज्ञ प्रशंसनम् ।
गौतमाख्यानकञ्चैव शिवगीता ततःस्मृता ।
कल्पान्तरी रामकथा भारद्वाजाश्रमस्थितौ ।
पातालखण्डमेतद्धि शृण्वतां ज्ञानिनां सदा ।

सर्वपापप्रशमनं सर्वाभीष्टफलप्रदम् ॥

पञ्चमे उत्तर खण्डे :—

पर्वताख्यानकं पूर्वं गौर्यै प्रोक्तं शिवेन वै ।
जालन्धरकथा पश्चात् श्रीशैलाद्यनुकीर्त्तनम् ।
सागरस्य कथा पुण्या ततः परमुदीरिता ।
गंगाप्रयागकाशीनां गयायाश्चाधिपुण्यकम् ।
आम्लादिदानमाहात्म्यं तन्महाद्वादशीव्रतम् ।
चतुर्विंशैकादशीनां माहात्म्यं पृथगीरितम् ।
विष्णुधर्मसमाख्यानं विष्णुनामसहस्रकम् ।
कार्तिकव्रतमाहात्म्यं माघस्नान फलन्ततः ।
जम्बुद्वीपस्य तीर्थानां माहात्म्यं पापनाशनम् ।
साभ्रमत्याश्च माहात्म्यं नृसिंहोत्पत्तिवर्णनम् ।
देवशर्मादिकाख्यानं गीता माहात्म्यवर्णने ।
भक्ताख्यानञ्च माहात्म्यं श्रीमद्भागवतस्य ह ।
इन्द्रप्रस्थस्य माहात्म्यं बहुतीर्थकथान्वितम् ।
मन्त्ररत्नाभिधानञ्च त्रिपाद्भूत्यनुवर्णनम् ।
अवतारकथा पुण्या मत्स्यादीनामतः परम् ।
रामनाम शतं दिव्यं तन्माहात्म्यञ्च वाडव ! ।
परीक्षणञ्च भृगुणा श्रीविष्णोर्वैभवस्य च ।
इत्येतदुत्तरंखण्डं पञ्चमं सर्वपुण्यदम् ।

तत्फलश्रुतिः —

"पञ्चखण्डयुतं पाद्मं यः श्रृणोतिनरोत्तमः ।

स लभेद्वैष्णवं धाम भुक्त्वा भोगानिहेप्सितान्।
एतद्वैपञ्चपञ्चाशत् सहस्रं पद्मसञ्ज्ञकम्।
पुराणं लेखयित्वा वै ज्यैष्ठ्यां स्वर्णाज्यसंयुतम्।
यः प्रदद्यात्सुमतये पुराणज्ञाय मानद।
स याति वैष्णवं धाम सर्वदेवनमस्कृतः।
पद्मानुक्रमणीमेतां यः पठेच्छृणुयात्तथा।
सोऽपि पद्मपुराणस्य लभेत्श्रवणजं फलम्।"

विष्णुपुराण

तत्प्रतिपाद्य विषयाश्च वृहन्नारदीये—९४ अध्याये उक्ता यथा—
शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि पुराणं वैष्णवं महत्। त्रयोविंशति साहस्रं सर्वपातक नाशनम्। यत्रादिभागे निर्दिष्टाः षडंशाः शक्तृजेन ह।
मैत्रेयायादिमे तत्र पुराणस्यवतारिका।

तत्र प्रथमभागस्य प्रथमांशे :—

"आदिकारणसर्गश्च देवादीनाञ्चसम्भवः।
समुद्रमथनाख्यानं दक्षादीनां कथान्वयः।
ध्रुवस्य चरितं चैव पृथोश्चरितमेव च।
प्राचेतसं तथाऽऽख्यानं प्रह्लादस्य कथानकम्।
पृथुराज्याधिकाराख्यः प्रथमोंऽशहृतीरितः।

प्रथम भागस्य द्वितीयांशे :—

पातालनरकाख्यानं सप्तसर्गनिरूपणम्।
सर्य्यादिचारकथनं पृथग्लक्षणसंगतम्।
चरितं भरतस्याथ मुक्तिमार्गनिदर्शनम्।
निदाघऋतुसम्वादो द्वितीयोंऽशउदाहृत ।

प्रथमभागस्य तृतीयांशे :—

"मन्वन्तरसमाख्यानं वेदव्यासावतारकम्।
नरकोद्धारकं कर्म गदितञ्च तत परम्।
सगरस्यौर्वसम्वादे सर्वधर्मनिरूपणम्।
श्राद्धकल्प तथोद्दिष्ट वर्णाश्रमनिबन्धने।
सदाचारश्च कथितो मायामोहकथा तत ।
तृतीयोंऽशोऽयमुदित सर्वपापप्रणाशन ।"

प्रथमभागस्य चतुर्थांशे :—

"सूर्यवंशकथा पुण्या सोमवंशानुकीर्तनम्
चतुर्थेंऽशे मुनिश्रेष्ठ नानाराजकथाचितम्"

प्रथमभागस्य पञ्चमांशे :—

"कृष्णावतारसम्प्रश्नो गोकुलीया कथा तत ।
पूतनादिवधोबाल्ये कौमारेऽघादिहिंसनम्।
कैशोरे कंसहनन माथुर चरितन्तथा।
ततस्तु यौवने प्रोक्ता लीला द्वारवतीभवा
सर्वदैत्यवधो यत्र विवाहाश्च पृथग्विधा ।

यत्र स्थित्वा जगन्नाथ कृष्णोयोगेश्वरेश्वर
भूभारहरण चक्रे परस्यहननादिभि ।
अष्टावक्रीयमाख्यान पञ्चमोंऽशइतीरित ।"

प्रथमभागस्य षष्ठांशे :—

कलिज चरितम्प्रोक चातुर्विध्य लयस्य च ।
ब्रह्मज्ञानसमुद्देश खाण्डिक्यस्य निरूपित ।
केशिध्वजेन चेत्येष षष्ठोंऽश परिकीर्तित ।

तस्य द्वितीय भागे :—

अत परन्तु सूतेन शौनकादिभिरादरात् ।
पृष्टेन चोदिता शश्वत्विष्णुधर्मोत्तराह्वया ।
नाना धर्मकथा पुण्या व्रतानि नियमा यमा ।
धर्मशास्त्रञ्चार्थशास्त्र वेदान्त ज्योतिषन्तथा ।
वंशाख्यानप्रकरणात् स्तोत्राणि मनवस्तथा ।
नाना विद्याश्रया प्रोक्ता सर्वलोकोपकारका ।
एतद्विष्णुपुराणं वै सर्व शास्त्रार्थसग्रह ।"

तत्फलश्रुतिः —

"वाराह कल्पवृत्तान्त व्यासेनकथितन्त्विह ।
यो नर पठते भक्त्या य श्रृणोति च सादरम् ।
तावुभौ विष्णुलोक हि व्रजेताम्भुक्तभोगकौ ।
तल्लिखित्वा च योदद्यादाषाढ्या घृतधेनुना ।
सहित विष्णुभक्ताय पुराणार्थविदे द्विज ।

स याति वैष्णवं धाम विमानेनार्कवर्चसा।
यश्च विष्णुपुराणस्य समनुक्रमणीं द्विज।
कथयेच्छृणुयाद्वाऽपि स पुराणफलं लभेत्।

शिवपुराण

तत्स्थ विषयाणां प्रतिपादनम्

ज्ञानसंहितायाम्:—

ऋषिगणस्य प्रश्नः। ब्रह्मनारदसंवाद,ज्योतिर्लिङ्ग प्रादुर्भावश्च। ओंकार प्रादुर्भावः, शिवस्यानुग्रहः, विष्णुकृत शिवस्तुतिः। उभयोःकृते शिवस्य वरदानम्। ब्रह्मणो हंसरूपधारणस्य विष्णोः वराहरूपधारणस्य च कारणरूप निर्देशः, ब्रह्मादीनामुत्पत्तिकथनम्। अग्न्यादीनां सृष्टिः। भगवत्याः देहत्यागस्य संक्षेपेण वृत्तान्त-कथनम् शिवपूजा विधिश्च। पावमान मन्त्रैः शिवपूजा विधिः। तारकोपाख्यानं, ब्रह्मण समीपे देवादीनांगमनञ्च। ब्रह्मदेव संवादः शिवस्य तपो वर्णनञ्च मदनदहनम्, पार्वत्याश्च प्रत्यावर्त्तनम्। पार्वत्यास्तपः। पार्वतीतपः समुद्दिश्य देवगणानामृषीणाञ्च शिवसन्निधाने गमनम्, जटिल ब्राह्मणवेशे पार्वत्याःसकाशं-शिवस्यागमनम्। हरपार्वती संवादः। शिवविवाहोद्योगः। शिवविवाह यात्रा। शिवरूप दर्शने मेनकायाःखेदस्तां प्रति

शिवलिंगमाहात्म्य कथनञ्च। अन्धकेश्वर वर्णनप्रसंगेऽन्धकमर्दन कथनम्। शिवरात्रिव्रत सशाय हेतुदधीचितनयानां दोषकथनम्। सोमेश्वरकथा ज्योतिर्लिंगोत्पत्तिकथनञ्च। महाकालोंकारेश्वरयोरुत्पत्ति। केदारेश्वरप्रसङ्गः। भीमशङ्कर प्रादुर्भावः। विश्वेश्वरस्य माहात्म्यम् गौरीप्रति शिवस्य काशीमाहात्म्यकथनम्। गोपेश्वरमाहात्म्य कथनम्। काशीमरणान्मोक्षप्राप्ते. शङ्कानिवारणम्। गौतमस्य तपस्यातन्त्रेनकथनञ्च। गणेशापूजनं गौतमचरित्रञ्च। गौतमप्रशंसा, गंगास्थिति· कुशावर्तमाहात्म्यं त्र्यम्बकमाहात्म्यञ्च। रावणस्यतपस्या माहात्म्यम्, वैद्यनाथस्योत्पत्ति। रामेश्वर माहात्म्ये नागेशमाहात्म्यञ्च। घुश्मेश्वर माहात्म्यञ्च, वराहरूपेण हिरण्याक्षवध· प्रह्लादचरित्रञ्च। प्रह्लादहिरण्यकशिपू प्रस्ताव.। हिरण्यकशिपुवधः नृसिंहचरित्रञ्च। नल जन्मान्तर कथा। पाण्डवगण कर्तृक दुर्वाससः प्रीन्युत्पादनम्। व्यासादेशेन इन्द्रकील पर्वते अर्जुनस्यतप इन्द्रसमागमश्च। भिल्लरूपस्य शिवस्यागमनञ्च। भिल्लवेषधारि शिवस्यअर्जुनेन सह युद्ध। अर्जुनस्य वरदानम्। पार्थिवशिवपूजाविधि। त्रियेश्वरमाहात्म्यम्। विष्णुकर्तृक सहस्रकमलशिवपूजा। शिव· कृपया सुदर्शनचक्र लाभ·। शिवसहस्रनाम वर्णनम्। विष्णुप्रभृतीन् शिवस्य शिवरात्रिव्रत कथनम्। शिवरात्रिव्रतस्योद्यापनविधि.। व्याधस्येतिहास कथनम्। अज्ञानेन कृतस्य शिवरात्रिव्रतस्य प्रशंसा। शिवरात्रिव्रतकरणेन पापिनो वेदनिधे मुक्तिः। चतुर्विध मुक्तिवर्णनम्। शिवकर्तृक विष्णुप्रभृतीनामुत्पत्ति कथनम्। एकमात्रभक्तिसाधनेन शिवभक्तेर्लाभकथनम्।

भगवत्याः ज्ञानोपदेशः । हरपार्वत्योर्विवाहः । कार्त्तिकेयस्य जन्मः देवसेनापतित्वं तारकवधश्च एवं ब्रह्मणो वरेण तारकपुत्राणां त्रिपुरेऽधिष्ठानम् । विष्णुसृष्टो मुण्डिकर्तृक दैत्यगणानाम्मोहोत्पादनम् । मुण्डिन उपदेशेन दैत्यानां धर्मनाशः दरिद्रताञ्च दृष्ट्वा विष्णुप्रभृतिदेवगणानां शिवस्तवः । विष्णूपदेशेन देवगणानां कोटिशिवमन्त्रजापः शिवस्तवश्च । देवमयरथारोहणे शिवकर्तृक त्रिपुरनाशः । देवगणानां वरलाभश्च । हरिकर्तृक लिङ्गार्चन फलकथनम् । अधिकारानुसारेण देवेभ्यस्तैजसादि लिङ्गदानम् । शिवपूजाविधि कथनम् । आह्निककर्तव्य शिवपूजाविधिः । षोडशोपचारेण साम्बशिवपूजा । धान्यादिभिः शिवपूजायाः फलविशेषकथनम् । जानकी शापेन केतकी पुष्पेण शिवपूजायानिषेधः रामचरित्र कीर्तनञ्च । चम्पक पुष्पस्य शिवपूजार्थं राज्ञोमोहस्तदुत्पादनपूर्वक कृतदुष्कर्माब्राह्मण चम्पकपुष्पयोश्च नारदस्यशापः । गणेशचरित्रम् । गणेशकर्तृक शिवगणानांपराजयः शिवकर्तृक गणेशशिरश्छेदनञ्च । शिरश्छेदनेनदेव्या क्रोध महादेवस्य च गणपते प्राणदानं गाणपत्यप्रदानञ्च । कार्त्तिक गणेशयोर्विवाद गणेशस्य जयलाभश्च । गणेशस्य विवाहस्तच्छ्रुत्वा कार्त्तिकस्यक्रोधः क्रौञ्चपर्वतगमनञ्च । रुद्राक्षधारणमहात्म्यकथनम् । प्रधानज्योर्लिङ्गोपलिङ्गानां नामस्थान कथनम् । नन्दिकेशतीर्थमाहात्म्ये गोवत्ससंवादादिः । नन्दिकेश तीर्थमाहात्म्यकथनम् । अत्रीश्वरलिङ्गमाहात्म्यकथनम् । ज्योतिर्लिंगादीनां समस्त वस्तूनां माहात्म्यकथनम्

शिवलिंगमाहात्म्य कथनञ्च। अन्धकेश्वर वर्णनप्रसंगेऽन्धकमर्दन कथनम्। शिवरात्रिव्रत संशय हेतुदधीचितनयानां दोषकथनम्। सोमेश्वरकथा ज्योतिर्लिंगोत्पत्तिकथनञ्च। महाकालोंकारेश्वरयोरुत्पत्तिः। केदारेश्वरप्रसङ्गः। भीमशङ्कर प्रादुर्भावः। विश्वेश्वरस्य माहात्म्यम् गौरींप्रति शिवस्य काशीमाहात्म्य-कथनम्। गोपेश्वरमाहात्म्य कथनम्। काशीमरणान्मोक्षप्राप्तेः शङ्कानिवारणम्। गौतमस्य तपस्यातत्क्षेत्रकथनञ्च। गणेशपूजनं गौतमचरित्रञ्च। गौतमप्रशंसा, गंगास्थितिः कुशावर्तमाहात्म्यं त्र्यम्बकमाहात्म्यञ्च। रावणस्यतपस्या माहात्म्यम्, वैद्यनाथस्योत्पत्तिः। रामेश्वर माहात्म्ये नागेशमाहात्म्यञ्च। घुश्मेश्वर माहात्म्यञ्च, वराहरूपेण हिरण्याक्षवधः प्रह्लादचरित्रञ्च। प्रह्लादहिरण्यकशिपू प्रस्तावः। हिरण्यकशिपुवधः नृसिंहचरित्रञ्च। नल जन्मान्तर कथा। पाण्डवगण कर्तृक दुर्वाससः प्रीत्युत्पादनम्। व्यासादेशेन इन्द्रकील पर्वते अर्जुनस्यतपः इन्द्रसमागमश्च। भिल्लरूपस्य शिवस्यागमनञ्च। भिल्लवेषधारि शिवस्यअर्जुनेन सह युद्ध। अर्जुनस्य वरदानम्। पार्थिवशिवपूजाविधिः। विश्वेश्वरमाहात्म्यम्। विष्णुकर्तृक सहस्रकमलशिवपूजा। शिवकृपया सुदर्शनचक्र लाभः। शिवसहस्रनाम वर्णनम्। विष्णुप्रभृतीन् शिवस्य शिवरात्रिव्रत कथनम्। शिवरात्रिव्रतस्योद्यापनविधिः। व्याधस्येतिहास कथनम्। अज्ञानेन कृतस्य शिवरात्रिव्रतस्य प्रशंसा। शिवरात्रिव्रतकरणेन पापिनो वेदनिधे मुक्तिः। चतुर्विध मुक्तिवर्णनम्। शिवकर्तृक विष्णुप्रभृतीनामुत्पत्ति कथनम्। एकमात्रभक्तिसाधनेन शिवभक्तेर्लाभकथनम्।

विद्येश्वर संहितायाम्—

साध्यसाधन निरूपणम्। मननादि स्वरूपवर्णनम्। श्रवणाद्यशक्तव्यक्तीनांलिङ्गपूजनसाधनकथनम्। ब्रह्मविष्ण्वोः युद्धं दृष्ट्वा शिवसमीपे देवतानां गमनम्। ज्योतिर्मयलिङ्गप्रादुर्भावस्तद् दृष्ट्वा ब्रह्म विष्ण्वो विवाद शान्तिः। भैरवकर्तृक ब्रह्मणः शिरश्छेदनं। ब्रह्माणंप्रति शिवस्यानुग्रहः। ब्रह्मविष्णु कृताशिव पूजा लिंगनिर्माणं लिंगप्रतिष्ठा। लिंगपूजायाः नियम कथनम्। शिवतीर्थ सेवामाहात्म्यम्। विप्रादि सदाचारस्य नित्यकृत्यता। पञ्चमहायज्ञकथनम्। दिनविशेषे देवपूजायाः कर्तव्यताकथनम्। देशकालादि विशेषे पूजाफल कथनम्। पार्थिव प्रतिमा पूजाविधिः। प्रणवमाहात्म्य। शिवभक्तपूजाकथनम्। षड्लिंग माहात्म्यम्। बन्धनमुक्त्योः स्वरूपकथनम्। लिंगक्रमकथनम्।

कैलाश संहितायाम् :—

वाराणसीधाम्नि सूतकर्तृक मुनीनां निकटे प्रणवार्थ कथनारम्भः। कैलाशधाम्नि देवीकृता शिवं प्रति प्रणवार्थ जिज्ञासा। प्रणवोक्त मन्त्रदीक्षादि कथनम्। प्रणवोद्धारः, विविध पूजा एवं न्यासान्तरादि विधिः।

कार्तिकेयं प्रति वामदेव ऋषेः प्रणवस्य कृते प्रश्नः। कुमार कर्तृकं वामदेवं प्रति प्रणवोपासना कथनम्। षड्विधार्थ परिज्ञानं। विस्तृत प्रणवार्थ कला तन्त्रादि विवर्ण कथनम्।

सनत्कुमार संहितायाम् :—

नैमिषारण्ये सनत्कुमारस्यागमनम्। व्यासादिभिर्मिलनम्। शिवपूजा विषये ऋषीणां प्रश्नः। सनत्कुमारस्य पृथ्व्यादेः संस्थानक्रमप्रभृतीनां कथनम्। प्रकृतितः महदादिक्रमे जगतः सृष्टिः सलष्टोपवर्णनञ्च। नरकादि वर्णनम्। ऊर्द्ध्वलोक योग-माहात्म्यकथनम्। सविस्तरं रुद्रमाहात्म्यं, पञ्चमूर्ति कथनम्। रुद्रकीर्तन फलम्। रुद्रस्तवः। सनत्कुमारस्य चरित्रम्।परमसि-द्धिश्च। शिवसर्वत्रादि कथनम्। रुद्रलोक ब्रह्मलोक विष्णुलोकानां कथनम्। रुद्रस्थानस्य सर्व श्रेष्ठत्व कथनम्। विभीषण महेश्वर संवादः। लिङ्ग पूजा शिवनाम कीर्तनफलञ्च। स्थान माहा-त्म्य कथनम्। ब्रह्म विष्णु महेश्वराणां मध्ये कस्य ज्येष्ठत्वम् इति व्यास प्रश्ने सनत्कुमार समुत्तरदानं शिव लिङ्ग माहात्म्यादि कथनञ्च। लिङ्गस्थापनं शिवशक्त्योः पूजनविधिः शिव पूजायां पुष्पनिरूपणम्। अनशन विधिः। शिवप्रीतिकरः धर्मस्य संक्षिप्त उपदेशः। लक्ष्मणाष्टमीव्रतकथनञ्च। अन्न-दान माहात्म्यं भिन्न २ दानानां प्रशंसा च। विविध धर्मकार्याणा-मुपदेशः। सविस्तरं नियमफलकथनम्। पार्वत्याः शिवस्य शिरसि चन्द्रधारणे विषभक्षण विषये च प्रश्नः। भस्म प्रशंसा भस्म धारणस्य फल कथनम्। शिवस्य श्मशानवासहेतुः। शिवपूजायाः फलकथनम्। शिवविभूतिकथनम्। शिवस्थान-निर्देशः। प्रणवस्योपासना। प्रणवदेवता कथनम्। ध्यान योग कथनम्। दुर्वाससः महादेवं प्रति पुनर्ध्यान वर्णनम्

तदर्थं काशीवासनिर्देशश्च। वायुनाडिकादि निरूपणम्। ध्यान-निधेः प्रशंसा। प्रणवोपासना निरूपणम्। शरीरस्य सर्वदेव-मयत्व कथनम्। नाड़ी विस्तार कथनम्। हरपार्वतीसंवादः काशीमाहात्म्य कथनञ्च। मधूकस्योपाख्यानम्। सपुत्रस्वप्रताप-मुकुन्दराज्ञ ओंकारेश्वर दर्शनम्। ओंकारस्तवः। नन्दीश्वरस्य तपस्या। नन्दिनं प्रति शिवस्य वरदानम्। महादेवस्य स्मरणम्। देवानामागमनम्। शिवस्यादेशेन देवानां नन्दिनः गाणत्या-भिषेककरणम्। नन्दिन स्तवः नन्दिविवाहश्च। नीलकण्ठमाहात्म्यं, स्तोत्रञ्च त्रिपुरवृत्तान्तम्। देवानांदुःखं दृष्ट्वा महादेवस्य सन्तोषः। त्रिपुरनाशस्योद्योगः। त्रिपुरदाहः। पार्वत्याः प्रश्नः। शिवस्य पूजनश्च माहात्म्य कीर्तनम्। पाशुपतयोगः। देहस्थनाडीनां विवर्णम्। विमलज्ञानेन ईश्वरपदप्राप्तिः। शिवस्थितिलोक-कथनम्।

वायवीय संहितायाम्—

महादेवकृपया श्रीकृष्णस्य पुत्रलाभ कथनम्। वेदादि-व्यवस्था। पुराण संख्या कथनम्। ब्रह्मणोनिकटे ऋषीणां शिवतत्त्व कथनम्। ब्रह्मण आदेशेन नैमिषारण्ये यज्ञार्थं गमनम्। नैमिषारण्ये ऋषीन्प्रतिवायोः कुशलप्रश्नोक्तिः। शिवतत्त्वम् मायास्वरूपकथनञ्च। शिवस्य कालरूपत्वप्रकटनम्। सविस्तरं-कालमान कथनम्। प्रकृतिसृष्टि कथनम्। ब्रह्मकर्तृक वराहरूपे ब्रह्मण जगद्व्यवस्थापनम्। शिवप्रसादाद्ब्रह्मणः सृष्टिकरणम्।

ब्रह्म विष्णु महेश्वराणां परस्परं वशवर्त्तित्वम्। ब्रह्मणश्च महादेवादुत्पत्ति कथनम्। ब्रह्मार्णं प्रतिसृष्टिकरणार्थं रुद्रस्यादेशः। प्रजावृद्ध्यर्थं ब्रह्मण अर्धनारीश्वरप्रसादनम्। रुद्रकर्तृकस्त्रियाः सृष्टिः मैथुनसृष्टिश्च। दक्षयज्ञ कथनम् देव्याश्च देहत्यागः। वीरभद्रनिरूपणम्। काल्याःस्तुतिः। दक्षयज्ञनाशः। वीरभद्रस्य शिवनिकटे देवानयनम्। दक्षस्य छागमुखता च। व्याघ्रं प्रतिपार्वत्या अनुग्रहः। शिवसमीपे देव्यागमनम् व्याघ्रस्य सोमनंदी नाम करणञ्च। देव्याः समीपे शिवकर्तृक अग्निषोमात्मक विश्वप्रपञ्च कथनम्। त्रिविध शब्दार्थ कथनम्। जगतः शब्दरूपित्वकीर्तनम्। महर्षीणां शिव शक्त्योः कीर्तनम्। नास्तिकताविनाशाय तयोर्जन्म। वायुना सविस्तरं शिवतत्वकथनम् मुक्त्यर्थं ज्ञानस्यचोपदेशः। पाशुपत योगे मुक्तिलाभकथनम्। पाशुपतव्रतकथनं भस्ममाहात्म्य कथनञ्च। दुग्धप्राप्त्यर्थमुपमन्योः महादेवस्य प्रसादेन दुग्धसमुद्रप्राप्तिः।

उत्तर भागे :—

श्वेतकल्पे प्रयागे मुनिगणैर्जिज्ञासितं प्रश्नं प्रति सूतस्य वायुकथित शिवमाहात्म्यकथनरूपमुत्तरम्। श्रीकृष्णम्प्रति उपमन्योः पाशुपत ज्ञानकथनम्। सुरेन्द्रादि परीक्षा। ब्रह्मविष्णु प्रभृतिभिः शिवस्वरूप कथनम्। स्त्रीपुरुषात्मक उमामहेश्वरयोर्जगत्प्रपञ्चत्वकथनम्। परब्रह्मापरब्रह्मणोरेकत्व कथनम्। महादेवस्य अप्राकृतरूपस्य प्रणवात्मकत्वकथनं प्रणवस्वरूप कथनञ्च। भक्त्यादि द्वारा मानवानां शिवप्राप्तियोग्यता। ब्रह्मादिदेवान् देवीम्प्रति च शिवस्य वेदसार ज्ञानोपदेशः। शिवावतारस्य कल्प-

योगेश्वरस्य च कथनम् शिवपञ्चाक्षर मन्त्रस्वरूपम् माहात्म्यञ्च। शैवमन्त्रग्रहणस्य कथा। दीक्षामर्यादाः। षडध्वशुद्धिप्रभृतिकथनम्। शिवनाम्नः शिवमन्त्रस्य च साधनविधिः। आचार्यत्वसिद्धेरभिषेकादीनां संस्काराणाञ्च कथनम्। शैवानामाह्निक कर्म कथनम्। अन्तर्याग बहिर्याग कथनक्रमश्च। नानाविधानेषु हरपार्वत्याः पूजा विधिः। होमकुण्डानां परिमाणादीनां निर्णयः। मासादि विशेषेषु नैमित्तिक शिवपूजा कथनम्। काम्यशिवपूजा कथनम्। शिवस्तोत्रम् प्रकारान्तरेण लिङ्ग पूजा च। शिवपूजाफले ब्रह्मादीनां स्वीयस्वीय पदप्राप्तिः। ब्रह्मविष्णोः लिङ्गदर्शनम्। शिवप्रतिष्ठा शिवप्रोक्षणविधिश्च। योगोपदेशः। मुनीनां समीपे शिवचरित पूर्वक वायोरन्तर्धानम्। यज्ञ समाप्तौ ब्रह्मणो निकटे मुनीनामागमनम्। ब्रह्मण आदेशेन सुमेरु पर्वते सनत्कुमार समीपे मुनीनामागमनम्। नन्दिसमागमः। नन्दिकर्तृक शिवकथा वर्णनम्।

धर्मसंहितायाम् :—

शिवमाहात्म्यनिरूपणम्। उपमन्योः समीपे श्रीकृष्णस्य शिवमन्त्रे दीक्षाग्रहणम्। शङ्खदैत्य वधः। गोपीप्रभृति रूप महादेवेन सह अप्सरसां विहारः। उषाऽनिरुद्धयोःसमागमः। बाणराज्ञोयुद्धादि कथनम्। काल्यास्तपस्या, आडीदैत्यवृत्तान्तः। वीरकस्य नन्दिरूपेण जन्म कारणम्। शिवस्य कामाचारो लिङ्गोद्भवकथा च। शक्रादीनां कामकिंकरत्वकथनम्। महात्मनां कामक्षोभः। विश्वामित्र प्रभृतीनां कामवश्यता कथनम्। श्रीरामस्य कामाधीनत्व कथनम्।

नित्यनैमित्तिक शिव पूजाविधिः। शङ्करक्रियायोगस्तत्फलञ्च। शिवभक्त पूजा तत्फलञ्च। विविधपाप कथनम् पाप फलानि च। धर्म्मप्रसङ्गः। अन्नदानविधिः। जलदान माहात्म्यम्। पुराण पाठस्य माहात्म्यम् धर्मश्रवण माहात्म्यञ्च। महादानकथनम्। सुवर्णे पृथिवी दानम्। कान्तारहस्ति दानम्। एकदिनस्याराधने-नैव शङ्करस्य कृपा। शिव सहस्रनाम वर्णनम् धर्म्मोपदेशस्तु-लापुरुषदानञ्च। परशुरामस्य तुलापुरुषदानम्। ब्रह्मणः प्रसङ्गः। नरकादिकीर्त्तनम्। द्वीपादिकथनम्। भारतवर्षादिकथनम्। ग्रहादीनांकथा मृत्युञ्जयोद्धारश्च। मन्त्रराजप्रभाव कीर्त्तनम्। पञ्च-ब्रह्मकथनं पञ्चब्रह्मविधानञ्च। तत्पुरुष विधानम्। अघोरकल्प वामदेवकल्प सद्योजातकल्पादिकथनम्। संसार कथा स्त्री-स्वभावादिकथनञ्च। अरुन्धतीदेवानांसम्वाद.। विवाहकथा। मृत्युचिन्हस्य आयुष प्रमाणम्। कालजय। छाया पुरुषलक्षणम्। धार्मिकाणां गतिर्लिङ्गपूजायाः कारणञ्च। विष्णुकृत शिवस्तवः लिङ्ग पूजाया. फलञ्च। सृष्टि कथनम्। प्रजापतिकृत सृष्टि-कथनम्। पृथु राज्ञः पूजायाः कथा। देवदानवादीनां सृष्टि विस्तार। आधिपत्यनिर्णयः। पृथु चरित वर्णनम्। मन्वन्तरा-दिवर्णनम्। सञ्ज्ञाछायादीनाकथनम्। सूर्यवंशवर्णनम्। सत्यव्रत सगर राज्ञोश्च विवरणकथनम् पितृकल्पस्यश्राद्धस्य च कथा, पितृ-सतकवर्णनम्। मुनीनांजात्यन्तरप्राप्ति। साधुसङ्गेन मुनिसतकस्य सद्गति लाभः। व्यासपूजा।

विधान सहितं सम्यक् पुराणंफलदंश्रुतम्।
तस्माद्विधानयुक्तन्तु पुराणं फलमुत्तमम्॥

भागवतम्

तत्प्रतिपादित विषयाश्च

प्रथमस्कन्धे :—

देवीभागवतस्य महापुराणत्वादि सिद्धान्त निर्णयः। ग्रन्थारम्भमंगलम्, ऋषीणां पुराणविषयप्रश्नः ग्रन्थ सङ्ख्या विषयश्च। ससंख्याक पुराणाख्या तत्तद्युगीय व्यासानुकथनञ्च। देवीसर्वोत्तमेति कथनं प्रसङ्गत शुकजन्म च। देव्या महोत्कर्षः। मधुकैटभयोर्युद्धोद्योगः। ब्रह्मणा मधुकैटभभीतेन पराम्बिकायाःस्तुतिः। आराध्यनिर्णयः। देवीप्रसादान्मधुकैटभयोर्हरिणावधः। शिवस्य वरदानम्। बुधोत्पत्तिः। पुरूरवस उत्पत्तिः। पुरुरवसउर्वश्याश्चचरितम्। शुकस्योत्पत्ति। शुकवैराग्यम्। शुकायैतत्पुराणोपदेशः। जनकस्य पराक्षार्थं शुकस्य मिथिलागमनम्। शुकायजनकोपदेशः। शुकस्य विवाहादिकम्। शुकनिर्गमनोत्तरंव्यासशल्योपवर्णनम्।

द्वितीयस्कन्धे :—

व्यासजन्मवृत्तान्तवर्णनम्। पराशराद्दासकन्योदरे व्यासस्य जन्म। शन्तनो सत्यवत्या गङ्गया च सह विवाहःवसूनामुत्पत्तिश्च। शन्तनुना सत्यवत्या वरणम्। व्यासात् पुत्रत्रयोत्पत्तिः पाण्डवोत्पत्तिश्च। पाण्डवानां कथानर्थं मृतानां दर्शनञ्च। यदुकुलस्य-

नाशः उत्तरासूनोर्वृत्तञ्च। रूरुराज्ञा कथनपूर्वको गुप्तगृहे राज्ञोवासः। तक्षक द्विजयोः सम्भाषणं तक्षकेण राज्ञोदर्शनञ्च सर्पसत्राय यद्धपरिकरस्य जनमेजयस्यास्तीकेन निवारणम्। आस्तीकस्योद्गमचो भागवतमाहात्म्यञ्च।

तृतीय स्कन्धः :—

भुवनेश्वरीनिर्णयः। विमानेन ब्रह्मादीनां गतिः। विमानस्थैर्हरादिभिर्देवी दर्शनम्। विष्णुनाकृतं देवीस्तोत्रं तदूर्ध्वं हरस्तुतिर्ब्रह्मस्तुतिश्च। ब्रह्मणे श्रीदेव्या उपदेशः। तत्वनिरूपणम्। गुणानां रूपसंस्थानादि। पुनरपिगुणानां लक्षणमधिकृत्य नारद प्रश्नः। सत्यव्रतकथा। वाग्बीजोच्चारणात् सत्यव्रतस्य सिद्धिलाभः। अंबायज्ञविधिः। अम्बिकामखस्य विष्णुनानुष्ठानम्। राजप्रश्नोत्तरं वैभवपवर्णनञ्च। युधाजिद्वीरसेनयोर्दौहित्रार्थयुद्धम्। युधाजितः सुदर्शनजिघांसया भरद्वाजाश्रमं प्रति गमनम्। विश्वामित्रकथोत्तरं राजपुत्रस्य कामबीजप्राप्तिः काशीराजस्य स्वसुता विवाहोद्योगः। सुदर्शनेन सह राज्ञां स्वयम्बरागमनम्। राजसंवाद निवृत्तिपूर्वकं कन्याबोधः। राज्ञांकोलाहले कन्यासम्मतस्य राज्ञ.स्थानम्। सुदर्शनविवाहः सुबाहोः कन्याया विवाहश्च। महारणेशत्रूणां देव्या व्यापादनम्। देवी महिमा काश्यां दुर्गावासश्च। अंबिका तोषणं तत्पुरे देवीस्थापनञ्च। नवरात्रविधे नृपाय व्यासेन कथनम्। कुमारिकाकथनम्। रामायणकथा प्रश्नः। रामशोकः। नारदेनव्रतकथनम्।

चतुर्थ स्कन्धे :—

कृष्णावतार प्रश्नः। कर्मणोजन्मादिकारणत्वनिरूपणम्। अदितेः शापकथनम्। अधमजगतः स्थितिः। नारायणकथा। नराग्रजेनोर्वशीसृष्टिः। अहंकारावर्तनम्। प्रह्लादनारायणोः समागमः प्रह्लाद नारायणोर्युद्धम्। हरये भृगुणाशापदानम्। शुक्रस्य मन्त्रलाभार्थं गमनं शुक्रमातुर्वधश्च। भृगुणा शुक्रमातुरुज्जीवनम्। जयन्त्या शुक्रसेवार्थं प्रेषणम्। शुक्ररूपेण देवानां गुरुणा दैत्यवञ्चना। दैत्यानां शुक्र सम्प्राप्तिः। देवदानवयोर्युद्ध शान्तिः। हरेर्नानावताराः। सुरांगनानां नारायणाश्रमे गमनम्। दुष्टराजभाराक्रान्ताया मेदिन्या ब्रह्माणं प्रति गमनम्। देवैःशक्तिस्तवनम्। वासुदेवांशावतारकथा। देवक्याः सप्तानां पुत्राणांवधः। देवानामंशावतारणम्। कृष्णजन्मकथनम्। कृष्णकथा। पराशक्तेः सर्वज्ञत्वकथनम्।

पञ्चम स्कन्धे :—

विष्णोरपेक्षया रुद्रस्य श्रेष्ठत्वम्। देवीमाहात्म्यवर्णनम् महिषोत्पत्तिः। देवेन्द्रेण सह समरोद्योगः। देवानां ससदि विमर्शः। देवसेनापराजयः। देवदानवयुद्धम्। पराभूतानां देवानां कैलासगमनम्। जगदम्बायाः पलाशसमिधांज्वालनयोत्पत्ति कथनम्। देवैर्महायुधैर्देव्यर्चनम्। रक्तदूतसंवादकीर्तनम्। महिषासुरसंसदि विमृश्यानाम्रोदूतस्यप्रेषणम्। ताम्रस्यागमनोत्तरं वाष्कल दुर्मुखयोः प्रेषणम्। वाष्कलदुर्मुखयोर्वधः। ताम्रचिक्षुरयोर्देव्यावधः। महारणेऽसिलोमादीनां निधनम्। महिषासुरस्य

देव्या संवादः। मंदोदर्याः कथानकम्। महिषस्यवधः। देवैःकृता-महादेवीस्तुतिः अन्तर्धानोत्तरं वृत्तकथनम्। शुम्भासुरकथा। परादेव्याः सुरकार्यार्थं प्रादुर्भावः। कौशिकीति प्रसिद्धाया देव्या-गिरौप्रादुर्भावः। दूतसंवादकीर्तनम्। धूम्रलोचनवधः। चण्ड-मुण्डयोः श्रीदेव्यासहयुद्धम्। रक्तबीजयुद्धम्। रक्तबीजवधः शुम्भस्य युद्धस्यविस्तारः। शुंभस्ययुद्धोद्योगः। निशुंभवधः। शुंभासुरवधाश्रितकथा। राजवैश्योश्चरित्रिद्वय सेवकयोर्वार्ता। भुवनसुन्दर्या राज्ञेकथनम्। राज्ञे तापसोपदेशः। राजवैश्ययोर्देव्याः प्रत्यक्षदर्शनम्।

षष्ठ स्कन्धे :—

वृत्रदैत्यवधकथारम्भः। त्रिशिरोवधवर्णनम्। त्रिभाज्ञया-वृत्रस्य तपोर्थंवनगमनम्। वृत्रेण वरगर्वेण पराभूतानां देवानां शंकरसमीपेगमनम्। देवीस्तुत्या देवैर्वरप्रापणम्। वृत्रदैत्यवधा-श्रिता कथा। वासवस्य गुप्तवासो नहुषस्य चेन्द्रपदेऽभिषेकः। नहुषेण प्रार्थितायाःशच्याश्चिन्ता, देवीप्रसादतस्तस्या इन्द्रदर्शनम्। नहुषस्याधःपातः त्रिविधस्य कर्मणो रूपकथनम्। युगोद्भवानां धर्माणां कथनं सदसद्धर्मविनिर्णयश्च। आडींबकमहायुद्धस्य-सौर्ययात्रा प्रसङ्गत उपवर्णनम् शुनःशेपकथान्ते युद्धस्यस्मरणम्। वसिष्ठस्य मित्रावरुणापत्यत्वविस्तरः। निमेर्देहान्तरेगतिः हैहया-नां कथा। हैहयेन भार्गवाणांवधः। देवीकृपया भृगुवंशस्तुतिः। हैहयस्यकथा। हरेरश्विन्यां जन्म। हयीजातस्य हरेः कथानकम्। एकवीराभिषेचनोद्‌वेवृत्तकथनम्। एकावल्याः कथानकम्।

हैहयभूभृत कालकेतुना महायुद्धम्। विक्षेपशक्ति कथनम्। व्यासेन स्वमोहोपपादनम्। नारदेनापि तथाकरणम्। नारदस्य विवाह। पुनरपि तस्यैव विस्तार। स्त्रीभाव गतस्यनारदस्य पुन पुरुषत्वप्राप्ति। हरिणा महामाया प्रभावकथनम्। भगवती-ध्यानादिकम्।

सप्तम स्कन्धे :—

सूर्ये सोमोद्भवाना कथारम्भ। तदन्वयस्यविस्तार। सुकन्यकाया च्यवनाय प्रदानम्। सुकन्या देवभिषजो सम्वाद। रविपुत्रप्रसादजा च्यवनस्य युवावस्था। शर्यातेर्यज्ञकरणम्। सत्राश्विनो सोमप नम्। तद्वंशकथनम्। ककुत्स्थादीनामुत्पत्ति। सत्यव्रतकथा। त्रिशङ्को कथानकम्। त्रिशङ्को स्वर्गवास। हरिश्चन्द्रेनृपे सतित्रिशङ्कोर्विश्वामित्रेण समागम। हरिश्चन्द्र कथा। राज्ञ पुत्रोत्सव। शन शेपवधाश्रयाकथा। विश्वामित्रेण शन शेपस्य मोचनम्। हरिश्चन्द्रेण विश्वामित्रवैरम्। हरिश्चन्द्रस्य राज्यविध्वस। नृपस्य दक्षिणा दानयत्न। तत्कृत शोक। हरिश्चन्द्रेणात्मविक्रय। चाण्डालेन हरिश्चन्द्रक्रय। हरिश्चन्द्रस्य चाण्डालगृहेऽवस्थानम्। भूभृत पुत्रभार्याकथा। पत्नामभिलाय हरिश्चन्द्रस्य शोक। हरिश्चन्द्रस्य स्वर्गवास। शताक्षा महिमा। राजवार्ताया प्रश्न। गौरीजन्म नानापीडो द्भवश्च। पार्वत्या हिमाल्याज्जन्म। आत्मतत्त्वनिरूपणम्। विश्वरूपदर्शनम्। ज्ञानस्य मोक्षार्थत्वम्। मन्त्रसिद्धे साधनम्।

ब्रह्मतत्त्वम्। भक्तिमहिमा। देव्या महोत्सवव्रतानि स्थानानि च। भगवती पूजनम्। ब्रह्मपूजा विधानम्।

अष्टमस्कन्धे :—

मनवे देव्या वरदानम्। वराहेण धरोद्धरणम्। मनुवंशवर्णनम्। प्रियव्रतकथानकम्। भूमण्डलस्य विस्तारः। देवीवर्णनं देव्युपास्तिश्च। मूलादूर्ध्वमहार्यवर्णनम्। इलावृत्तवर्णनम्। वर्षान्तर्गत सेव्यसेवकत्वकथनम्। तत्र सेव्यसेवकरूपाणां वर्णनम्। वर्षान्तरे क्रमप्राप्ता सेव्यसेवकता। द्वीपान्तरसमाचारः। शिष्टद्वीप समाचारः। लोकालोकगिरिव्यवस्था। रवेर्गमनमांद्यादिप्रकारः। सोमादीनां गत्यनुसारेण विविधं फलम्। ध्रुवमण्डलसंस्थानम्। राहुमण्डल सूर्यचन्द्रोपरागश्च। तलादेर्वर्णनम्। तलातलस्थिति। नरकस्वरूपम्। पातकोपपादनम्। शिष्टानां नरकाणां वर्णनम्। देव्याराधनम्।

नवमस्कन्धे :—

संक्षेपेण शक्तिवर्णनम्। पंचप्रकृतिसंभवः। देवतादिसृष्टिः। सरस्वतीस्तोत्र पूजादि। धर्मात्मजेन नारदाय सरस्वती महास्तोत्र कथनम्। लक्ष्मीगंगा भारतीनां जन्म पृथ्वीलोके। तासां शापोद्धारप्रकारः। गङ्गादीना समुत्पत्ति कलौ वर्तनञ्च। शक्त्युत्पत्तिप्रसङ्गतोभूमिशके समुत्पत्ति। धरादेव्या अपराधेष्वतेसति-नरकादि फलप्राप्तिकथनम्। गङ्गोत्पत्तिः। ५। - -
संभवाया गङ्गाया गोलोके समुत्पत्तिः। जाह्नवी नाराय

जातेति कथनम्। गङ्गाविष्णवोः परस्पर सम्बन्धकरणम्। तुलस्युपाख्यानप्रश्नः। महालक्ष्म्या राजगृहे जन्म। धर्मध्वज-सुतायास्तुलस्याःकथा। शङ्खचूडेनतुलस्याः सङ्गतिः संवादश्च। तयोर्विवाहानन्तरं देवानां वैकुण्ठगमनम्। शङ्खचूडस्य देवैः सह संग्राम। शङ्खचूडमहेशयोर्युद्धम्। युद्धारम्भः। जनार्दनेन शङ्खचूडस्यकवचहरणम्। तुलसीसंगमवर्णनंतन्माहात्म्यञ्च। महामन्त्र सहितं तुलसीपूजनम्। सावित्र्याख्यानम्। तस्या राजोदरेजन्म। अध्यात्मप्रश्नः। दानधर्मे फलम्। नानादान फलम्। सावित्र्यै-मूलशक्ति महामन्त्रदानम्। पातकानां फलानि। कुण्डेषु ये पतन्ति तेषां लक्षणम्। अवशिष्टानां कुण्डानां कथनम्। पुनरपि शिष्टानां कुण्डानां कथनम्। देवीभक्त्या यमपुरीत्रयनाश कथनम्। कुण्डानां लक्षणम्। देवीमहोत्कर्षः। महालक्ष्म्याख्यानम्। लक्ष्मी-जन्मादेर्नारदाय कथनम्। शक्रस्य ब्रह्मलोकं प्रति गमनम्। महालक्ष्म्यर्चनक्रमादि। स्वाहाशक्तेरुपाख्यानम्। स्वधायाः-समुपाख्यानम्। दक्षिणाया उपाख्यानम्। षष्ठी देव्याउपाख्यानम्। मंगलचण्ड्याः कथा। मनसायाः कथास्तोत्रादि। सुरभ्याख्यानम्। राधाया दुर्गायाश्च चरित्रम्।

दशमस्कन्धे :—

मनो.स्वायम्भुवस्याख्यानम्। भगवत्या विन्ध्याद्रिगमनम्। विन्ध्येन भानुमार्गनिरोधः। वृषध्वजस्तुतिस्तस्मै वृत्तान्तकथनञ्च। महाविष्णुस्तोत्रम्। अगस्त्येन देवी प्रार्थनातोविन्ध्याद्रेर्वृद्धि कुण्ठनम्। मुनिना विन्ध्यवृद्धिकुण्ठनम्। स्वारोचिषस्य मनोः कथा।

चाक्षुषस्य मनोः कथा। सावर्णेर्मनोः कथा। महाकालीचरितम्। महालक्ष्मीमहासरस्वत्योश्चरितम्। नवमादि मनूनां चरित्र वर्णनम्।

एकादशस्कन्धे :—

प्रातःकृत्यम्। शौचादि विधिः। स्नानादि विधिः रुद्राक्ष धारण महिमा च। रुद्राक्षाणां बहुविधत्व कथनम्। जपमाला विधानम्। रुद्राक्ष महिमा। एकवक्त्रादि रुद्राक्षाणां वर्णनम्। भूत शुद्धिः। शिरोव्रतविधानम्। गौण भस्मादि वर्णनम्। तस्य त्रिविधत्वं माहात्म्यञ्च। भस्म धारण विस्तरः। भस्मनो-महिमा। विभूति धारण माहात्म्यम्। त्रिपुंड्रोर्ध्व पुण्ड्रयोर्महिमा। सन्ध्योपासनम्। सन्ध्यादि कृत्यम्। पूर्णोपचारादि कथनम्। मध्याह्न संध्या करणम्। ब्रह्मयज्ञादिकम्। गायत्री पुरश्चरणम्। वैश्वदेवादिकम्। भोजनान्ते करणीयं तप्तकृच्छ्रादि लक्षणञ्च। काम्यकर्म संग्रहणं प्रायश्चित्तविधानञ्च।

द्वादशस्कन्धे :—

गायत्र्या ऋष्यादि कथनम्। वर्णानां शक्त्यादि। जगन्मातुः कवचम्। गायत्री हृदयम्। गायत्री स्तोत्रम्। गायत्री नाम सहस्रम्। दीक्षा विधिः। केनोपनिषत्कथा। गौतम शापेन ब्राह्मणानामन्यदेवतोपासनश्रद्धा। द्वीप वर्णनम्। पद्मरागादि निर्मित प्राकार वर्णनम्। चिन्तामणि गृह वर्णनम्। जनमेजयेन देव्या मखकरणम्। उपसंहारः पुराण फलदर्शनञ्च।

संस्काराणाञ्च सर्वेषां लक्षणञ्चात्रकीर्तितम् ।
पक्षत्यादितिथीनाञ्च कल्पाः सप्त च कीर्तिताः ।
अष्टमाद्याः शेषकल्या वैष्णवेपर्वणि स्मृताः ।
शैवे च कामतोभिन्ना सौरेचान्त्यकथाचयः ।
प्रतिसर्गाह्वयं पश्चान्नानाख्यानसमान्वितम् ।
पुराणस्योपसंहारः सहितं पर्व पञ्चमम् ।
एषु पञ्चसु पूर्वस्मिन् ब्रह्मणो महिमाधिकः ।

द्वितीय तृतीय चतुर्थ पञ्चम पर्वसुः—

"धर्मे कामे च मोक्षे तु विष्णोश्चापिशिवस्य च ।
द्वितीये च तृतीये च सौरे वर्गं चतुष्टये ।
प्रतिसर्गाह्वयन्त्वान्त्यं प्रोक्तं सर्वे कथाचितम् ।
एतद्भविष्यं निर्दिष्टं पर्वव्यासेन धीमता ।
चतुर्दशसहस्रं तु पुराणं परिकीर्तितम् ।
भविष्यं सर्वदेवानां साम्यं यत्र प्रकीर्तितम् ।
गुणानां तारतम्येन समं ब्रह्मेति हि श्रुतिः" ।

तत्फलश्रुतिः :—

तल्लिखित्वा तु यो दद्यात्पौष्यां विद्वान्विमत्सरः ।
गुड़धेनुयुतं हेम वस्त्रमाल्यविभूषणैः ।
वाचकम्पुस्तकञ्चापि पूजयित्वा विधानतः ।
गन्धाद्यैर्भोज्यभक्ष्यैश्च कृत्वानीराजनादिकम् ।
यो वै जितेन्द्रियो भूत्वा सोपवासः समाहितः ।
अथवा यो नरो भक्त्या कीर्तयेच्छृणुयादपि ।

भविष्यपुराणम्

तत्प्रतिपाद्य विषयाश्च नारदीय पुराणे ४ पा० १०० अ

उक्ता यथा ,—

अथ ते सम्प्रवक्ष्यामि पुराणसर्वसिद्धिदम् ।
भविष्य भवत सर्वलोकाभीष्टप्रदायकम् ॥
तत्राह सर्वदेवानामादिकर्त्ता समुद्यत ।
सृष्ट्यर्थं तत्र सञ्जातोमनु स्वायम्भुव पुरा ॥
स मा प्रणम्यपप्रच्छ धर्मं सर्वार्थसाधकम् ।
अह तस्मै तदाप्रीत प्रावोच धर्मसहिताम् ॥
पुराणाना यदाव्यासो व्यासश्चक्रेमहामति ।
तदा ता सहिता सर्वा पञ्चधा व्यभजन्मुनि ॥
अघोरकल्पवृत्तान्तनानाश्चर्यकथाचिताम् ।'

तत्र प्रथम पर्वणि :—

"तत्रादिम स्मृत पर्व ब्राह्म यत्रास्त्युपक्रम ।
सूतशौनकसम्वादे पुराणप्रश्न सक्रम ।
आदित्य चरित प्राय सर्वाख्यान समाचित ।
सृष्ट्यादि लक्षणोपेत शास्त्रसर्वस्वरूपक ।
पुस्तलेखकलेखाना लक्षणञ्च तत परम् ।

प्रयोगाः कवचंचैव सहस्रं स्तोत्रमेव च।
गणेशसूर्यविष्णूनां शिवशक्त्योरनुक्रमात्।
सनत्कुमार मुनिना नारदाय तृतीयके।"

पूर्वभागे चतुर्थपादे :—

पुराण लक्षणञ्चैव प्रमाणं दानमेव च।
पृथक् पृथक् समुद्दिष्टं दानकाल पुरःसरम्।
चैत्रादि सर्वमासेषु तिथीनां च पृथक् पृथक्।
प्रोक्तप्रतिपदादीनां व्रतं सर्वाघनाशनम्।
सनातनेन मुनिना नारदाय चतुर्थके।
पूर्वभागोऽयमुदितो बृहदाख्यान सञ्ज्ञितः।"

तदुत्तरभागे :—

अस्योत्तरेविभागेतु प्रश्न एकादशी व्रते।
वशिष्ठेनाथ सम्वादो मान्धातुः परिकीर्तितः।
रुक्माङ्गद कथापुण्या मोहिन्युत्पत्तिकर्म च।
वसुशापश्च मोहिन्यै पश्चादुद्धरणक्रिया।
गंगा कथा पुण्यतमा गयायात्रानुकीर्तनम्।
काश्यामाहात्म्यमतुलम्पुरुषोत्तम वर्णनम्।
यात्रा विधानं क्षेत्रस्य बह्वाख्यानसमन्वितम्।
प्रयागस्याथ माहात्म्यं कुरुक्षेत्रस्यतत्परम्।
हरिद्वारस्य चाख्यानं कामोदाख्यानकन्तथा।
बदरीतीर्थमाहात्म्यं कामाख्यायास्तथैव च।

स मुक्त पातकैर्घोरैः प्रयाति ब्रह्मण पदम् ।
योऽप्यनुक्रमणीमेतां भविष्यस्य निरूपिताम् ।
पठेद्वा शृणुयाच्चैतो भुक्तिं मुक्तिञ्च विन्दत ।

नारदीय पुराणम्

तद्विषयाश्च :—

"शृणु विप्र ! प्रवक्ष्यामि पुराणं नारदीयकम् ।
पञ्चविंशतिसाहस्रं बृहद्विगत्कथाश्रयम् ॥ १ ॥

तत्रपूर्वभागे प्रथमपादे :—

"सूत शौनक सम्वाद सृष्टि सक्षेप वर्णनम् ।
नानाधर्मकथा पुण्या प्रवृत्ते समुदाहृता ।
प्राग्भागे प्रथमे पादे सनकेन महात्मना ।"

पूर्वभागे द्वितीयपादे :—

"द्वितीये मोक्षधर्माख्ये मोक्षोपायनिरूपणम् ।
वेदाङ्गानाञ्च कथन शुकोत्पत्तिश्च विस्तरात् ।
सनन्दनेन गदिता नारदाय महात्मने ।"

पूर्वभागे तृतीयपादे :—

महातन्त्रे समुद्दिष्टं पशुपाशविमोक्षणम् ।
मन्त्राणां शोधन दीक्षा मन्त्रोद्धारश्च पूजनम् ।

प्रयोगाः कवचंचैव सहस्रं स्तोत्रमेव च।
गणेशसूर्यविष्णूनां शिवशक्त्योरनुक्रमात्।
सनत्कुमार मुनिना नारदाय तृतीयके।"

पूर्वभागे चतुर्थपादे :—

पुराण लक्षणञ्चैव प्रमाणं दानमेव च।
पृथक् पृथक् समुद्दिष्टं दानकाल पुरःसरम्।
चैत्रादि सर्वमासेषु तिथीनां च पृथक् पृथक्।
प्रोक्तप्रतिपदादीनां व्रतं सर्वाघनाशनम्।
सनातनेन मुनिना नारदाय चतुर्थके।
पूर्वभागोऽयमुदितो वृहदाख्यान सञ्ज्ञित.।"

तदुत्तरभागे :—

अस्योत्तरेविभागेतु प्रश्न एकादशी व्रते।
वशिष्ठेनाथ सम्वादो मान्धातुः परिकीर्तितः।
रुक्माङ्गद कथापुण्या मोहिन्युत्पत्तिकर्म च।
वसुशापश्च मोहिन्यै पश्चादुद्धरणक्रिया।
गंगा कथा पुण्यतमा गयायात्रानुकीर्त्तनम्।
काश्यामाहात्म्यमतुलम्पुरुषोत्तम वर्णनम्।
यात्रा विधानं क्षेत्रस्य बह्वाख्यानसमन्वितम्।
प्रयागस्याथ माहात्म्यं कुरुक्षेत्रस्यतत्परम्।
हरिद्वारस्य चाख्यानं कामोदाख्यानकन्तथा।
बदरीतीर्थमाहात्म्यं कामाख्यायास्तथैव च।

प्रभासस्य च माहात्म्यं पुराणाख्यानकन्तथा ।
गौतमाख्यानकम् पश्चाद् वेदपादस्तवस्ततः ।
गोकर्णक्षेत्र माहात्म्यं लक्ष्मणाख्यानकं तथा ।
सेतु माहात्म्य कथनं नर्मदातीर्थवर्णनम् ।
अवन्त्याश्चैव माहात्म्यं मथुरायास्तत परम् ।
वृन्दावनस्य महिमा वसो र्ब्रह्मान्तिकेगतिः ।
मोहिनीचरितम् पश्चादेवं वै नारदीयकम् ।

तत्फलश्रुतिः :—

यः शृणोति नरोभक्त्या श्रावयेद्वासमाहितः ।
स याति ब्रह्मणो धाम नात्र कार्याविचारणा ।
यस्त्वेतदिषपूर्णायां धेनूना सप्तकान्वितम् ।
प्रदद्याद्द्विजवर्याय स लभेन्मोक्षमेव च ।
यश्चानुक्रमणीमेतां नारदीयस्य वर्णयेत् ।
शृणुयाद्वैक चित्तेन सोऽपिस्वर्गगतिंलभेत् ।

मार्कण्डेय पुराणम्

तत्प्रतिपाद्यविषयाश्च नारदपुराणे पूर्वभागे
८७ अ० उक्ता यथा :—

"यत्राधिकृत्य शकुनीन् सर्वधर्म निरूपणम् ।
मार्कण्डेयेन मुनिना जैमिनेः प्राक् समीरितम् ॥

पक्षिणां धर्मसंज्ञानां ततो जन्म निरूपणम् ।
पूर्वजन्मकथा चैषां विक्रिया च दिवस्पतेः ॥
तीर्थयात्रा बलस्यातो द्रौपदेयकथानकम् ।
हरिश्चन्द्रकथा पुण्या युद्धमाडीबकाभिधम् ॥
पितापुत्रसमाख्यानं दत्तात्रेयकथा ततः ।
हैहयस्याथ चरितं महाख्यानसमाचितम् ॥
मदालसाकथा प्रोक्ता ह्यलर्काचरिताचिता ।
सृष्टिसंकीर्तनं पुण्यं नवधा परिकीर्तितम् ॥
कल्पान्तकालनिर्देशो यक्ष्मसृष्टिनिरूपणम् ।
रुद्रादिसृष्टिरप्युक्ता द्वीपचर्यानुकीर्त्तनम् ॥
मनूनां च कथा नाना कीर्तिताः पापहारिकाः ।
तासु दुर्गाकथात्यन्तं पुण्यदा चाष्टमेऽन्तरे ॥
तत्पश्चात्प्रणवोत्पत्तिस्त्रयीतेजः समुद्भवः ।
मार्त्तण्डस्य च जन्माख्या तन्माहात्म्यसमाचिता ॥
वैवस्वतान्वयश्चापि वत्सव्याश्चरितं ततः ।
खनित्रस्य ततः प्रोक्ता कथा पुण्या महात्मनः ॥
अविक्षिच्चरितं चैव किमिच्छव्रतकीर्तनम् ।
नरिष्यन्तस्य चरितं इक्ष्वाकुचरितं ततः ॥
तुलस्याश्चरितं पश्चाद्रामचन्द्रस्य सत्कथा ।
कुशवंशसमाख्यानं सोमवंशानुकीर्तनम् ॥
पुरूरवः कथा पुण्या नहुषस्य कथाद्भुता ।
ययाति चरितं पुण्यं यदुवंशानुकीर्तनम् ॥

श्रीकृष्ण बालचरितं माथुरं चरितं ततः ।
द्वारकाचरितञ्चाथ कथा सर्वावतारजा ॥
ततः सांख्यसमुद्देश प्रपञ्चासत्वकीर्त्तनम् ।
मार्कण्डेयस्य चरितं पुराणश्रवणे फलम् ।
यः शृणोति नरोभक्त्या पुराणमिदमादरात् ।
मार्कण्डेयाभिधं वत्स स लभेत्परमां गतिम् ॥
यस्तु व्याकुरुते चैतच्छैवं स लभते पदम् ।
तत्प्रयच्छेल्लि खित्वा यः सौवर्णकरिसंयुतम् ॥
कार्तिक्यां द्विजवर्याय स लभेद्‍ ब्रह्मणः पदम् ।
शृणोति श्रावयेद्वापि यश्चानुक्रमणीमिमाम् ॥
मार्कण्डेय पुराणस्य सलभेद्वाञ्छितफलम् ।

अग्निपुराणम्

तत्प्रतिपाद्यविषयाश्च—

भगवतोऽवतारः, सृष्टिप्रकारः, विष्णुपूजा, अग्निपूजा, मुद्रादिलक्षणम्, दीक्षा, अभिषेकः, मण्डपलक्षणम्, कुशमार्जनविधिः, पवित्रारोपः, देवतायतनादिनिर्माणप्रकारः, शालग्रामलक्षणपूजे, देवप्रतिष्ठानियामकदीक्षा, देवप्रतिष्ठाविधि, ब्रह्माण्डस्वरूपं, गङ्गादितीर्थमाहात्म्यं, दीपवर्णनम्, ऊर्द्ध्वाधोलोकवर्णनम्, ज्योतिश्चक्रस्वरूपम्। युद्धजयोपायतत्कर्मविधानम्, यन्त्रमन्त्रौषधप्रकारः,

कुब्जिकार्चनविधिः, कोटिहोमविधानम्, ब्रह्मचर्य्यधर्मः, श्राद्धकल्पः, ग्रहयज्ञ, वैदिकस्मार्त्तकर्म्मणी, प्रायश्चित्तम्, तिथिभेदैव्रतभेदः, वारव्रत नक्षत्रव्रते, मासव्रतम्, दीपदानविधि, नूतनव्यूहारम्भादि, नरक निरूपणम्, दानव्रतम्, नाडी चक्रम्। सन्ध्याविधिः, गायत्र्यर्थ, शिवस्तोत्रं, राज्याभिषेकः, राजधर्म्मः, राजाध्येय शास्त्रम्, शुभाशुभशकुनादि, मण्डलादि, रमणदीक्षाविधिः, श्रीरामनति, रत्नलक्षणम्, धनुर्विद्या, व्यवहारविधि, देवासुरयोर्युद्धम्, आयुर्वेदः, गजादिचिकित्सा, पूजाप्रकारः। शान्तिविधि, छन्द शास्त्रम्, साहित्यम्, शिष्टानुशासनम्, सृष्टयादि प्रलयवर्णने, शारीरिकरूपम्, नरकवर्णनम्, योग, ब्रह्मज्ञानम्, पुराणमाहात्म्यञ्च।

ब्रह्मवैवर्त्तं पुराणम्

तत्प्रतिपाद्यविषयाश्च बृहन्नारदीये ४ पा० १०१ अ०

उक्ता यथा—

ब्रह्मोवाच—शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि पुराणं दशमं तव। ब्रह्मवैवर्त्तकं नाम वेदमार्गानुदर्शकम्। सावर्णिर्यत्र भगवान् साक्षाद्देवर्षयेऽतिथि। नारदाय पुराणार्थं प्राह सर्व्वमलौकिकम्। धर्मार्थकाममोक्षाणां सारं प्रीतिर्हरौ हरे। तयोरभेदसिद्ध्यर्थं ब्रह्मवैवर्त्तमुत्तमम्।

रथन्तरस्य कल्पस्य वृत्तान्तं यन्मयोदितम् ।
शतकोटि पुराणं तत् संक्षिप्य प्राह वेदवित् ॥
व्यासश्चतुर्धा संव्यस्य ब्रह्मवैवर्त संज्ञितम् ।
अष्टादश सहस्रन्तत्पुराणं परिकीर्त्तितम् ॥
ब्रह्म १ प्रकृति २ विघ्नेश ३ कृष्ण खण्ड ४ समाचितम् ।
तत्र सूतर्षिसम्वादः पुराणोपक्रमो मतः ॥

तत्रप्रथमे ब्रह्मखण्डे :—

सृष्टिप्रकरणं त्वाद्यं ततो नारदवेधसोः ।
विवादः सुमहान् यत्र द्वयोरासीत्पराभवः ॥
शिवलोकगतिः पश्चाज्ज्ञानलाभः शिवान्मुनेः ।
शिववाक्येन तत्पश्चात् मरीचेर्नारदस्य तु ॥
गमनञ्चैव सावर्णिर्ज्ञानार्थं सिद्धसेविते ।
आश्रमे सुमहापुण्ये त्रैलोक्याश्चर्यकारिणि ॥
एतद्धि ब्रह्मखण्डं हि श्रुतं पापविनाशनम् ।

द्वितीये प्रकृति खण्डे :—

"ततः सावर्णिसम्वादो नारदस्य समीरितः ।
कृष्णमाहात्म्यसंयुक्तो नानाख्यानकथोत्तरः ॥
प्रकृतेरंशभूतानां कलानाञ्चापि वर्णितम् ।
माहात्म्यं पूजनाद्यञ्च विस्तरेण यथास्थितम् ॥
एतत्प्रकृतिखण्डं हि श्रुतं भूतिविधायकम् ।

तृतीये गणेश खण्डे :—

गणेशजन्मसम्प्रश्नः सपुण्यकमहाव्रतम् ।

पार्वत्या कार्त्तिकेयेन सह विघ्नेशसम्भव ॥
चरितं कार्त्तवीर्यस्य जामदग्न्यस्य चाद्भुतम् ।
विवाद सुमहान्पश्चाज्जामदग्न्यगणेशयो ॥
एतद्विघ्नेशखण्ड हि सर्वं विघ्नविनाशनम् ।"

चतुर्थे श्रीकृष्णजन्मखण्डे :—

"श्रीकृष्णजन्म सम्प्रश्नो जन्माख्यान ततोऽद्भुतम् ।
गोकुले गमन पश्चात्पूतनादिवधोऽद्भुत ॥
बाल्यकौमारजा लीलाविविधास्तत्र वर्णिता ।
रासक्रीडा च गोपीभि शारदी समुदाहृता ॥
रहस्ये राधया क्रीडा वर्णिता बहुविस्तरा ।
सहाक्रूरेण तत्पश्चान्मथुरा गमन हरे ॥
कसादीना वधे वृत्ते सन्स्यद्विजसंस्कृति ।
काश्य सान्दीपने पश्चाद् विद्योपादानमद्भुतम् ॥
यवनस्य वध पश्चाद् द्वारकागमन हरे ।
नरकादि वधस्तत्र कृष्णेन विहितोऽद्भुत ॥
कृष्णखण्डमिद विप्र ! नृणा ससार खण्डनम् ।

तत्फलश्रुति :—

"पठितञ्च श्रुत ध्यातं पूजित चाभिवर्णितम् ।
इत्येतद् ब्रह्मवैवर्त्तं पुराण चात्यलौकिकम् ॥
व्यासोक्त चादिसम्भूत पठन् शृण्वन् विमुच्यते ।
विघ्नान्घ्नानशमनाद् घोरात्ससारसागरात् ॥

लिखित्वेदं च यो दद्यान्माघ्यां धेनुसमाचितम् ।
ब्रह्मलोकमवाप्नोति स मुक्तोऽज्ञानबन्धनात् ॥
यश्चानुक्रमणी चाऽपि पठेद्वा श्रृणुयादपि ।
सोऽपि कृष्णप्रसादेन लभते वाञ्छितम्फलम् ॥

लिङ्गपुराणम्

व्यास प्रणीते महापुराणे प्रतिपाद्य विषयाः
नारदपुराणे १०२ अ० उक्ता यथा :—

ब्रह्मोवाच ।

श्रृणु पुत्र ! प्रवक्ष्यामि पुराणं लिंगसंज्ञितम् ।
पठतां श्रृण्वतां चैव भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥
यच्चलिङ्गाभिधे तिष्ठन् वह्निलिंगे हरोऽभ्यधात् ।
मह्यं धर्मादिसिद्ध्यर्थमग्निकल्पकथाश्रयम् ॥
तदेव व्यासदेवेन भागद्वयसमाचितम् ।
पुराणं लिंगमुदितं बह्वाख्यानविचित्रितम् ।
तदेकादशसाहस्रं हरमाहात्म्यसूचकम् ।
परं सर्वपुराणानां सारभूतं जगत्त्रये ।
पुराणोपक्रमेप्रश्नः सृष्टि संक्षेपतः पुरा ॥

तत्र पूर्वभागे—

योगाख्यानं ततः प्रोक्तं कल्पाख्यानं ततः परम् ।
लिंगोद्भवस्तदर्चा च कीर्तिता हि ततः परम् ॥

सनत्कुमारशैलादि संवादश्चाथ पावनः ।
ततो दधीचिचरितं युगधर्मनिरूपणम् ॥
ततो भुवनकोपाख्या सूर्यसोमान्वयस्ततः ।
ततश्च विस्तरात्सर्गस्त्रिपुराख्यानकस्तथा ॥
लिंगप्रतिष्ठा च ततः पशुपाशविमोक्षणम् ।
शिवव्रतानि च तथा सदाचारनिरूपणम् ॥
प्रायश्चित्तान्यरिष्टानि काशीश्रीशैलवर्णनम् ।
अन्धकाख्यानकंपश्चात् वाराहचरितं पुनः ॥
नृसिंहचरितं पश्चाज्जलन्धरवधस्ततः ।
शैवं सहस्रनामाथ दक्षयज्ञविनाशनम् ॥
कामस्य दहनं पश्चात् गिरिजायाः करग्रह ।
ततो विनायकाख्यानं नृत्याख्यानं शिवस्य च ॥
उपमन्युकथा चापि पूर्वभाग इतीरितः ।"

उत्तर भागे—

विष्णुमाहात्म्यकथनमम्बरीषकथा ततः ।
सनत्कुमारनन्दीशसम्वादश्चपुनर्मुने ॥
शिवमाहात्म्यसंयुक्तस्नानयागादिकं ततः ।
सूर्यपूजाविधिश्चैव शिवपूजा च मुक्तिदा ॥
दानानि बहुधोक्तानि श्राद्धप्रकरणन्ततः ।
प्रतिष्ठा तत्र गदिता ततोऽघोरस्य कीर्त्तनम् ॥
व्रजेश्वरी महाविद्या गायत्री महिमा ततः ।
त्र्यम्बकस्य च माहात्म्यं पुराणश्रवणस्य च ॥

एतस्योपरिभागस्ते लैंगस्य कथितो मया।
व्यासेन हि निबद्धस्य रुद्रमाहात्म्यसूचिनः॥
लिखित्वैतत्पुराणन्तु तिलधेनुसमन्वितम्।
फाल्गुन्यां पूर्णिमायां यो दद्याद्भक्त्या द्विजातये॥
यःपठेच्छृणुयाद्वापि लैङ्गं पापापहं नरः।
सभुक्तभोगोलोकेऽस्मिन्नन्ते शिवपुरंव्रजेत्॥
लिंगानुक्रमणीमेतां पठेद्यः शृणुयात्तथा।
तावुभौ शिवभक्तौ तु लोकद्वितयभोगिनौ॥
जायेतां गिरिजाभर्त्तुः प्रसादान्नात्र संशयः।

वराहपुराणम्

तद्विषयाश्च नारदीय पुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थभागे १०३ अध्याये उक्ता यथा :–

श्री ब्रह्मोवाच

'शृणु वत्स! प्रवक्ष्यामि वाराहं वै पुराणकम्।
भागद्वययुतं शश्वद्विष्णुमाहात्म्यसूचकम्।
मानवस्य तु कल्पस्य प्रसङ्गं मत्कृतं पुरा।
निबबन्ध पुराणेऽस्मिंश्चतुर्विंशसहस्रके॥
व्यासो हि विदुषां श्रेष्ठः साक्षान्नारायणो भुवि।
तत्रादौशुभसंवादःस्मृतोभूमिवराहयोः।"

तत्र पूर्व भागे :—

"अथादिकृतवृत्तान्ते रम्यस्यचरितं ततः ।
दुर्जयाय च तत्पश्चाच्छ्राद्धकल्पउदीरितः ॥
महातपस आख्यानं गोर्य्युत्पत्तिस्तत परम् ।
विनायकस्य नागाना सेनान्यादित्ययोरपि ।
गणानाञ्च तथा देव्या धनदस्य वृषस्य च ।
आख्यानं सत्यतपसो व्रताख्यानसमन्वितम् ॥
अगस्त्यगीता तत्पश्चाद्रुद्रगीता प्रकीर्तिता ।
महिषासुरविध्वंसे माहात्म्यञ्च त्रिशक्तिजम् ।
पर्व्वाध्यायस्तत श्वेतोपाख्यानं गोप्रदानिकम् ।
इत्यादिकृतवृत्तान्तं प्रथमोद्देशनामकम् ॥
भगवद्धर्मके पश्चाद्व्रततीर्थकथानकम् ।
द्वात्रिंशदपराधानां प्रायश्चित्तं शरीरकम् ॥
तीर्थानाञ्चापि सर्व्वेषां माहात्म्य पृथगीरितम् ।
मथुराया विशेषेण श्राद्धादीनां विधिस्ततः ॥
वर्णनं यमलोकस्य ऋषिपुत्रप्रसङ्गतः ।
विपाकः कर्म्मणाञ्चैव विष्णुव्रत निरूपणम् ॥
गोकर्णस्य च माहात्म्यं कीर्त्तितं पापनाशनम् ।
इत्येष पूर्वभागोऽस्य पुराणस्य निरूपितः ।

उत्तरभागे :—

उत्तरे प्रविभागे तु पुलस्त्यकुरुराजयो. ।
संवादे सर्वतीर्थाना माहात्म्यं विस्तरात्पृथक् ॥

अशेषधर्मांश्चाख्याता पौष्करपुण्यपर्व च ।
इत्येव तव वाराह प्रोक्तं पापविनाशनम् ।

तत्फलश्रुतिः :—

पठतां शृण्वताञ्चैव भगवद्भक्तिवर्द्धनम् ।
काञ्चनं गरुडं कृत्वा तिलधेनुसमाचितम् ॥
लिखित्वैतद्य यो दद्याच्चैत्र्यां विप्राय भक्तितः ।
स लभेद्वैष्णवं धाम देवर्षिगणवन्दितं ॥
यो वानुक्रमणीमेतां शृणोत्यपि पठत्यपि ।
सोऽपि भक्तिं लभेद्विष्णौ संसारोच्छेदकारिणीम् ॥

वामन पुराणम्

तत्प्रतिपाद्य विषयाश्च नारद पुराणे उक्ता यथा :—

ब्रह्मोवाच ।

"शृणुवत्स ! प्रवक्ष्यामि पुराणं वामनाभिधम् ।
त्रिविक्रम चरित्राढ्यं दशसाहस्रसंख्यकम् ॥
कूर्मकल्पं समाख्यानं वर्गत्रयकथानकम् ।
भागद्वय समायुक्तं वक्तृ श्रोतृ शुभावहम् ॥"

तत्र पूर्वं भागे :—

"पुराणप्रश्नः प्रथमं ब्रह्मशीर्षच्छिदा ततः ।
कपालमोचनाख्यानं दक्षयज्ञविहिंसनम् ॥
हरस्य कालरूपाख्या कामस्य दहनन्ततः ।

प्रह्लाद नारायणयो र्युद्धं देवासुराह्वयम् ॥
सुकेश्यर्कसमाख्यानं ततो भुवनकोपकम् ।
ततः काम्यव्रताख्यानं श्रीदुर्गाचरितं ततः ॥
तपती चरितं पश्चात्कुरुक्षेत्रस्य वर्णनम् ।
सरोमाहात्म्यमतुलं पार्वती जन्म कीर्त्तनम् ॥
तपस्तस्या विवाहश्च गौर्य्युपाख्यानकन्ततः ।
ततः कौशिक्युपाख्यानं कुमारचरितं ततः
ततोऽन्धकवधाख्यानं साध्योपाख्यानकन्ततः ।
जाबालिचरितं पश्चादरजायाः कथाद्भुता ॥
अन्धकेश्वरयोर्युद्धं गणत्वंचान्धकस्य च ।
मरुतां जन्म कथनं बलेश्च चरितं ततः ॥
ततस्तु लक्ष्म्याश्चरितं त्रैविक्रममत परम् ।
प्रह्लाद तीर्थ यात्रायां प्रोच्यन्ते तत्कथाः शुभाः ॥
ततश्च धुन्धु चरितं प्रेतोपाख्यानकन्ततः ।
नक्षत्र पुरुषाख्यानं श्रीदामचरितं ततः ॥
त्रिविक्रम चरित्रान्ते ब्रह्मप्रोक्तः स्तवोत्तमः ।
प्रह्लादबलिसंवादे सुतले हरिशंसनम् ॥
इत्येप पूर्व भागोऽस्य पुराणस्य तवोदितः ॥"

तदुत्तरे भागे बृहद्वामनाख्ये :—

शृणुतस्योत्तरं भागं बृहद्वामन सञ्ज्ञकम् ।
माहेश्वरी भगवती सौरी गाणेश्वरी तथा ॥
चतस्रः संहिताश्चात्र पृथक् साहस्रसंख्यया ।

माहेश्वर्यान्तु कृष्णस्य तद्भक्तानाञ्च कीर्त्तनम् ॥
भागवत्याजगन्मातुरवतारकथाद्भुता ।
सौर्य्यां सूर्य्यस्य महिमा गदित पापनाशन ॥
गाणेश्वर्य्यां गणेशस्य चरितञ्च महेशितु ।
इत्येतद्वामन नाम पुराण सुविचित्रकम् ॥
पुलस्त्येन समाख्यातं नारदाय महात्मने ।
ततो नारदत प्राप्तं व्यासेन सुमहात्मना ॥
व्यासात्तु लब्धवान् वत्स तच्छिष्यो रोमहर्षण ।
स चाख्यास्यति विप्रेभ्योनैमिषीयेभ्य एव च ॥
एव परम्पराप्राप्तं पुराण वामनं शुभम् ॥"

तत्फलश्रुति :—

"ये पठन्ति च शृण्वन्ति तेऽपियान्ति परागतिम् ।
लिखित्वैतत्पुराणन्तु य शरद्विषुवेऽर्पयेत् ॥
विप्राय वेदविदुष घृत धेनुसमान्वितम् ।
स समुद्धृत्य नरकान्नयेत्स्वर्गं पितॄन् स्वकान् ॥
देहान्ते भुक्तभोगोऽसौ याति विष्णो परम्पदम् ।

मत्स्यपुराणम्

तत्प्रतिपाद्य विषयाश्च तत्रैव २९० अध्याय उक्ता यथा—

सूतउवाच ।
एतद्व कथित सर्वं यदुक्तं विश्वरूपिणा ।

मात्स्यं पुराणमखिलं धर्मकामार्थसाधनम् ॥
यत्रादौ मनुसम्वादो ब्रह्माण्ड कथनन्तथा ।
सांख्यं शरीरकम्प्रोक्तं चतुर्मुखमुखोद्भवम् ॥
देवासुराणामुत्पत्तिर्मारुतोत्पत्तिरेव च ।
मदनद्वादशीतद्वल्लोकपालाभिपूजनम् ॥
मन्वन्तराणामुद्देशो वैन्यराजाभिवर्णनम् ।
सूर्य्यवैवस्वतोत्पत्तिर्बुधस्यागमनन्तथा ।
पितृवंशानुकथनं श्राद्धकालस्तथैव च ॥
पितृतीर्थप्रवासश्च सोमोत्पत्तिस्तथैव च ।
कीर्त्तनं सोमवंशस्य ययातिचरितं तथा ॥
कार्त्तवीर्यस्य माहात्म्यं वृष्णिवंशानुकीर्त्तनम् ।
भृगुशापस्तथा विष्णोर्दैत्यशापस्तथैव च ॥
कीर्त्तनं पुरुवंशस्य वंशो हौताशनस्तथा ।
पुराणकीर्त्तनं तद्वत् क्रियायोगस्तथैव च ॥
व्रतं नक्षत्रसंख्याकं मार्कण्डशयनं तथा ।
कृष्णाष्टमीव्रतंतद्वद्रोहिणी चन्द्रसंज्ञितम् ॥
तडागविधिमाहात्म्यं पादपोत्सर्ग एव च ।
सौभाग्य शयनं तद्वदगस्त्यव्रतमेव च ॥
तथानन्ततृतीया [illegible] रसकल्याणिनी तथा ।
आर्द्रानन्दकरी तद्वद्व्रतं सारस्वतं पुनः ॥
उपरागाभिषेकश्च सप्तमीस्नपनं पुन ।
भीमाख्या द्वादशी तद्वदनङ्गशयन तथा ॥

अशून्यशयनं तद्वत्तथैवागारकं व्रतम् ।
सप्तमीसप्तकं तद्वद्विशोकद्वादशी तथा ॥
मेरुप्रदानं दशधा ग्रहशान्तिस्तथैव च ।
ग्रहस्वरूपकथनं तथा शिवचतुर्दशी ॥
तथा सर्वफलत्याग सूर्यवारव्रतं तथा ।
संक्रान्तिस्नपनं तद्वद्विभूतिद्वादशी व्रतम् ।
षष्टि व्रतानां माहात्म्यं तथा स्नानविधिक्रमः ॥
प्रयागस्य तु माहात्म्यं सर्वतीर्थानुकीर्तनम् ।
पैलाश्रमफलं तद्वद् द्वीपलोकानुकीर्तनम् ॥
तथान्तरिक्षचारश्च ध्रुवमाहात्म्यमेव च ।
भवनानि सुरेन्द्राणां त्रिपुरायोधनं तथा ॥
पितृपिण्डदमाहात्म्यं मन्वन्तर विनिर्णय ।
वज्राङ्गस्य तु सम्भूति तारकोत्पत्तिरेव च ॥
तारकासुरमाहात्म्य ब्रह्मदेवानुकीर्त्तनम् ।
पार्वतीसम्भवस्तद्वत् तथा शिवतपोवनम् ॥
अनङ्गदेहदाहस्तु रतिशोकस्तथैव च ।
गौरीतपोवनं तद्वद्विश्वनाथप्रसादनम् ॥
पार्वतऋषिसम्वादस्तथैवोद्वाहमङ्गलम् ।
कुमारसम्भवस्तद्वत् कुमारविजयस्तथा ॥
तारकस्य वधो घोरो नरसिंहोपवर्णनम् ।
पद्मोद्भवविसर्गस्तु तथैवान्धकघातनम् ॥
वाराणस्यास्तु माहात्म्यं नर्मदायास्तथैव च ।

प्रवरानुक्रमस्तद्वत् पितृनाथानुकीर्त्तनम् ॥
ततोभयमुखीदानं दानं कृष्णाजिनस्य च ।
तथा सावित्र्युपाख्यानं राजधर्मास्तथैव च ॥
यात्रानिमित्तकथनं स्वप्नमाङ्गल्यकीर्त्तनम् ।
वामनस्य तु माहात्म्यं तथैवादिवराहकम् ॥
क्षीरोदमथनं तद्वत्कालकूटाभिशासनम् ।
प्रासादलक्षणन्तद्वन्मण्डपानान्तु लक्षणम् ॥
पुरूर्वंशे तु सम्प्रोक्तं भविष्यद्राजवर्णनम् ।
तुलादानादि बहुशो महादानानुकीर्त्तनम् ॥
कल्पानुकीर्त्तनं तद्वद्ग्रन्थानुक्रमणी तथा ।
एतत्पवित्रमायुष्यमेतत्कीर्तिविवर्धनम् ॥
एतत्पवित्रं कल्याणं महापापहरं शुभम् ।
अस्मात् पुराणादपि पादमेकं पठेत्तु यः सोऽपि विमुक्तपापः ।
नारायणाख्यं पदमेति नूनमनङ्गवद्दिव्यसुखानि भुङ्क्ते ॥

कूर्म पुराणम्

व्यास प्रणीतेषु अष्टादश महापुराणेषु पञ्चदशे पुराणे तत्प्रतिपाद्य विषयाश्च बृहन्नारदीये दर्शिता यथा :—

श्री ब्रह्मोवाच—

शृणु वत्स ! मरीचेऽद्य पुराणं कूर्म्म संज्ञितम् ।
लक्ष्मीकल्पानुचरितं यत्र कूर्म्मवपुर्हरिः ॥

धर्म्मार्थकाममोक्षाणां माहात्म्यञ्च पृथक् पृथक् ।
इन्द्रद्युम्नप्रसङ्गेन प्राहर्षिभ्यो दयाधिकम् ॥
तत्सप्तदशसाहस्रं सचतुःसंहितं शुभम् । ·
यत्र ब्राह्मया(संहितया)पुरा प्रोक्ता धर्म्मा नानाविधा मुने॥
नानाकथाप्रसङ्गेन नृणां सद्गतिदायकाः ।"

तत्पूर्व भागे—

"तत्र पूर्वे विभागे तु पुराणोपक्रमः पुरा ।
लक्ष्मीप्रद्युम्नसम्वादः कूर्मर्षिगणसङ्कथा ॥
वर्णाश्रमाचारकथा जगदुत्पत्तिकीर्त्तनम् ।
कालसंख्या समासेन लयान्ते स्तवनं विभोः ॥
ततः सङ्क्षेपतः सर्गः शाङ्करंचरितं तथा ।
सहस्रनाम पार्वत्या योगस्य च निरूपणम् ॥
भृगुवंशसमाख्यानं ततः स्वायम्भुवस्य च ।
देवादीनां समुत्पत्तिर्दक्षयज्ञाहतिस्ततः ॥
दक्षसृष्टि कथा पश्चात् कश्यपान्वयकीर्त्तनम् ।
आत्रेयवंशकथनं कृष्णाय चरितं शुभम् ॥
मार्कण्डकृष्णसंवादो व्यासपाण्डवसंकथा ।
युगधर्म्मानुकथनं व्यासजैमिनिकी कथा ॥
वाराणस्याश्च माहात्म्यं प्रयागस्य ततः परम् ।
त्रैलोक्यवर्णनञ्चैव वेदशाखानिरूपणम् ॥"

तदुत्तर भागे—

उत्तरेऽस्य विभागे तु पुरा गीतेश्वरी ततः ।

व्यासयांता ततः प्रोक्ता नाना धर्म्मप्रबोधिनी ॥
नानाविधानां तीर्थानां माहात्म्यञ्च पृथक् ततः ।
नानाधर्म प्रकथनं ब्राह्मीयं संहिता स्मृता ॥
अतः परं भगवती संहितार्थनिरूपणे ।
कथिता यत्र वर्णानां पृथग् वृत्तिरुदाहृता ॥

तदुत्तर भागे भगवत्याख्यद्वितीयसंहितायाः पञ्चसु पादेषु—

"पादेऽस्याः प्रथमे प्रोक्ता ब्राह्मणानां व्यवस्थितिः ।
सदाचारात्मिका वत्स ! भोगसौख्यविवर्द्धिनी ॥
द्वितीये क्षत्रियाणान्तु वृत्तिः सम्यक्प्रकीर्त्तिता ।
यया त्वाश्रितया पापं विधूयेह व्रजेद्दिवम् ।
तृतीये वैश्यजातीनां वृत्तिरुक्ता चतुर्विधा ।
यया चरितया सम्यक् लभते गतिमुत्तमाम् ॥
चतुर्थेऽस्यास्तथा पादे शूद्रवृत्तिरुदाहृता ।
यया सन्तुष्यति श्रीशो नृणां श्रेयो विवर्द्धनः ॥
पञ्चमेऽस्यास्ततः पादे वृत्तिः सङ्करजन्मनाम् ।
यया चरित्याऽऽप्नोति भाविनीमुत्तमां गतिम् ॥
इत्येष पञ्चपादयुक्ता द्वितीया संहिता मुने ।
तृतीयात्रोदिता सौरी नृणां कामविधायिनी ।
थोढा षट्कर्मसिद्धिं सा बोधयन्ती च कामिनाम् ।
चतुर्थी वैष्णवी नाम मोक्षदा परिकीर्तिता ।
चतुष्पदी द्विजादीनां साक्षाद्ब्रह्मस्वरूपिणी ।
ताः क्रमात् षट्चतुर्द्वौषु साहस्राः परिकीर्तिताः ॥

तत्फलश्रुतिः :—

"एतत्कूर्मपुराणन्तु चतुर्वर्गफलप्रदम्।
पठता शृण्वता नृणां सर्वोत्कृष्टगतिप्रदम् ॥
लिखित्वैतत्तु यो भक्त्या हेमकूर्मसमन्वितम्।
ब्राह्मणायायने दद्यात् स याति परमां गतिम् ॥

स्कन्दपुराणम्

तत्प्रतिपाद्यविषयाश्च
श्री नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे
१०४ अध्याये उक्ता यथा

ब्रह्मोवाच।

शृणु वत्से मरीचे च पुराणं स्कन्दसंज्ञितम्।
यस्मिन् प्रतिपदं साक्षान्महादेवो व्यवस्थितः ॥
पुराणे शतकोटौ तु यच्छैवं वर्णितं मया।
तस्यार्थजातस्य सारो व्यासेन कीर्तितः ॥
स्कन्दाह्वयस्यात्र खण्डाः सप्तैव परिकल्पिताः।
एकाशीति सहस्रन्तु स्कान्दं सर्वाघकृन्तनम् ॥
यः शृणोति पठेद्वापि स तु साक्षाच्छिवः स्थितः।
यत्र माहेश्वरा धर्माः षण्मुखेन प्रकाशिताः।
कल्पे तत्पुरुषे वृत्ताः सर्वसिद्धिविधायिकाः ॥

तत्र माहेश्वर खण्डे :—

"तस्य माहेश्वरस्याद्य खण्डं पापप्रणाशनं ॥

किञ्चिन्न्यूनार्कसाहस्रो बहुपुण्यो बृहत्कथः ।
सुचरित्रशतैर्युक्तः स्कन्दमाहात्म्यसूचकः ॥
यत्र केदारमाहात्म्ये पुराणोपक्रमः पुरा ।
दक्षयज्ञकथा पश्चाच्छिवलिङ्गार्चनेफलम् ॥
समुद्रमथनाख्यानं देवेन्द्रचरितं ततः ।
पार्वत्या समुपाख्यानं विवाहस्तदनन्तरम् ॥
कुमारोत्पत्तिकथनं ततस्तारकसङ्गरः ।
ततः पशुपताख्यानं चण्डाख्यानसमन्वितम् ॥
द्यूतप्रवर्त्तनाख्यानं नारदेन समागम ।
ततः कुमारमाहात्म्ये पञ्चतीर्थकथानकम् ॥
धर्म्मवर्म्मनृपाख्यानं नदीसागरकीर्त्तनम् ।
इन्द्रद्युम्नकथा पश्चान्नाडीजङ्घकथान्विता ॥
प्रादुर्भावस्ततो मह्याः कथा दमनकस्य च ।
महीसागरसंयोगः कुमारेशकथा तत ॥
ततस्तारकयुद्धञ्च नानाख्यानसमन्वितम् ।
वधश्च तारकस्याथ पञ्चलिङ्गनिवेशनम् ॥
द्वीपाख्यानं तत पुण्यं ऊर्ध्वलोकव्यवस्थितः ।
ब्रह्माण्डस्थितिमानञ्च वर्करेशकथानकम् ॥
महाकालसमुद्भूतिः कथा चास्य महाद्भुता ।
वासुदेवस्य माहात्म्यं कोटितीर्थं तत परम् ॥
नानातीर्थसमाख्यानं गुप्तक्षेत्रे प्रकीर्त्तितम् ।
पाण्डवानां कथापुण्या महाविद्या प्रसाधनम् ॥

तीर्थयात्रासमाप्तिश्च कौमारमिदमद्भुतम् ।
अरुणाचलमाहात्म्ये सनकब्रह्मसंकथा ॥
गौरीतपःसमाख्यानं तत्तत्तीर्थनिरूपणम् ।
महिषासुरजाख्यानं वधश्चास्य महाद्भुतः ॥
शोणाचलेशियारख्यानं नित्यदा परिकीर्त्तितम् ।
इत्येष कथितः स्कान्दे खण्डो माहेश्वरोऽद्भुतः ॥

द्वितीये वैष्णव खण्डे :—

द्वितीयो वैष्णवः खण्डस्तस्याख्यानानि मे शृणु ।
प्रथमं भूमिवाराहं समाख्यानं प्रकीर्तितम् ॥
यत्र वोवकतुग्रस्य माहात्म्यं पापनाशनम् ।
कमलायाः कथा पुण्या श्रीनिवासस्थितिस्ततः ॥
कुलालाख्यानकश्चात्र सुवर्णमुखरी कथा ।
नानाख्यानसमायुक्ता भारद्वाजकथाद्भुता ॥
मतङ्गाञ्जनसंवादः कीर्त्तितः पापनाशनः ।
पुरुषोत्तममाहात्म्यं कीर्त्तितं चोत्कले ततः ॥
मार्कण्डेयसमाख्यानमम्बरीषस्य भूपते. ।
इन्द्रद्युम्नस्य चाख्यानं विद्यापतिकथा शुभा ॥
जैमिनेः समुपाख्यानं नारदस्यापि वाडव ।
नीलकण्ठसमाख्यानं नारसिंहोपवर्णनम् ॥
अश्वमेधकथा राज्ञो ब्रह्मलोकगतिस्तथा ।
रथयात्राविधिः पश्चाज्जन्मस्नानविधिस्तथा ॥
दक्षिणामूर्त्युपाख्यानं गुण्डिचाख्यानकं ततः ।

रथरक्षा विधानञ्च शयनोत्सवकीर्त्तनम् ॥
श्वेतोपाख्यानमप्रोक्तं वह्न्युत्सवनिरूपणम् ।
दोलोत्सवो भगवतो व्रतं सांवत्सराभिधम् ॥
पूजा च कामिभिर्विष्णोरुद्दालकनियोगकः ।
मोक्षसाधनमप्रोक्तं नानायोगनिरूपणम् ॥
दशावतारकथनं स्नानादि परिकीर्तनम् ।
ततो बदरिकायाश्च माहात्म्यं पापनाशनम् ॥
अन्यादि तीर्थमाहात्म्यं वैननेयशिलाभवम् ।
कारणं भगवद्वासे तीर्थं कापालमोचनम् ॥
पञ्चधाराभिधं तीर्थं मेरुसंस्थापनं तथा ।
ततः कार्त्तिकमाहात्म्ये माहात्म्यं मदनालसम् ॥
धूम्रकेशसमाख्यानं दिनकृत्यानि कार्तिके ।
पञ्चभीष्मव्रताख्यानं कीर्त्तितं भुक्तिमुक्तिदम् ॥
तदुद्यतस्य च माहात्म्ये विधानं स्नानजं तथा ।
पुण्ड्रादिकीर्त्तनञ्चात्र मालाधारणपुण्यकम् ॥
पञ्चामृतस्नानपुण्यं घण्टानादादिजं फलम् ।
नानापुष्पार्च्चनफलं तुलसीदलजम्फलम् ॥
नैवेद्यस्य च माहात्म्यं हरिवासन (र) कीर्तनम् ।
अखण्डैकादशी पुण्यं तथा जागरणस्य च ॥
मत्स्योत्सवविधानञ्च नाम माहात्म्यकीर्त्तनम् ।
ध्यानादि पुण्यकथनं माहात्म्यं मथुराभवम् ॥

वनाना द्वादशानाञ्च माहात्म्य कीर्त्तितं तत ॥
श्रीमद्भागवतस्यात्र माहात्म्य कीर्त्तित परम् ।
वज्रशाण्डिल्यसम्वादमन्तलीलाप्रकाशकम् ॥
ततो माघस्य माहात्म्य स्नानदानजपोद्भवम् ।
नानाख्यानसमायुक्त दशाध्याये निरूपितम् ॥
ततो वैशाखमाहात्म्ये शय्यादानादिजम्फलम् ।
जलदानादि विधय कामाख्यानमत परम् ॥
श्रुतदेवस्य चरित व्याधोपाख्यानमद्भुतम् ॥
तथाक्षयतृतीयादेर्विशेषात्पुण्यकीर्त्तनम् ।
ततस्त्वयोध्या माहात्म्ये चक्रब्रह्माह्वतीर्थके ॥
ऋणपापविमोक्षाख्ये तथाधारसहस्रकम् ।
स्वर्गद्वार चन्द्रहरि धर्म्महर्य्युपवर्णनम् ॥
स्वर्णवृष्टेरुपाख्यान तिलोदा सरयूयुति ।
सीताकुण्ड गुप्तहरि सरयूर्घर्घराचय ॥
गोप्रचारञ्च दुग्धोद गुरुकुण्डादि पञ्चकम् ।
घोषार्कादीनि तीर्थानि त्रयोदश तत परम् ॥
गयाकूपस्य माहात्म्य सर्व्वाघविनिवर्त्तकम् ।
माण्डव्याश्रमपूर्व्वाणि तीर्थानि तदनन्तरम् ॥
अजितादि मानसादि तीर्थानि गदितानि च ।
इत्येष वैष्णव खण्डो द्वितीय परिकीर्तित ॥

तृतीये ब्रह्मखण्डे—

"अत पर ब्रह्मखण्ड मरीचे शृणु पुण्यदम् ।

यत्र वै सेतुमाहात्म्ये फलं स्नानेक्षणोद्भवम् ॥
गालवस्य तपश्चर्य्या राक्षसाख्यानकं ततः ।
चक्रतीर्थादि माहात्म्यं देवीपत्तनसंयुतम् ॥
वेतालतीर्थमहिमा पापनाशादि कीर्त्तनम् ।
मङ्गलादिकमाहात्म्यं ब्रह्मकुण्डादि वर्णनम् ॥
हनूमत् कुण्डमहिमागस्त्यतीर्थभवम्फलम् ।
रामतीर्थादि कथनं लक्ष्मीतीर्थनिरूपणम् ॥
शङ्खादितीर्थमहिमा तथासाध्यामृतादिजः ।
धनुष्कोट्यादि माहात्म्यं क्षीरकुण्डादिजं तथा ॥
गायत्र्यादिक तीर्थानां माहात्म्यं चात्र कीर्त्तितम् ।
रामनाथस्य महिमा तत्त्वज्ञानोपदेशनम् ॥
यात्राविधानकथनं सेतौ मुक्तिप्रदं नृणाम् ।
धर्मारण्यस्य माहात्म्यं ततः परमुदीरितम् ॥
स्थाणुः स्कन्दाय भगवान् यत्र तत्त्वमुपादिशत् ।
धर्मारण्यसुसंभूतिस्तत्पुण्य परिकीर्त्तनम् ॥
कर्म्मसिद्धेः समाख्यानं ऋषिवंश निरूपणम् ।
अप्सरातीर्थमुख्यानां माहात्म्यं यत्र कीर्त्तनम् ॥
वर्णानामाश्रमाणाञ्च धर्मतत्त्वनिरूपणम् ।
देवस्थानविभागञ्च बकुलार्क कथा शुभा ॥
छत्रा नन्दा तथा शान्ता श्रीमाता च मतङ्गिनी ।
पुण्यदाख्याः समाख्याता यत्र देव्यः समास्थिताः ॥
इन्द्रेश्वरादि माहात्म्यं द्वारकादि निरूपणम् ।

लोहासुरसमाख्यानं गङ्गाकूपनिरूपणम् ॥
श्रीरामचरितञ्चैव सत्यमन्दिरवर्णनम् ।
जीर्णोद्धारस्यकथनं शासनप्रतिपादनम् ॥
ज्ञातिभेदप्रकथनं स्मृतिधर्म्मनिरूपणम् ।
ततस्तु वैष्णवा धर्म्मा नानाख्यानैरुदीरिताः ॥
चातुर्म्मास्ये ततः पुण्ये सर्वधर्म्मनिरूपणम् ।
दानप्रशंसा तत्पश्चाद् व्रतस्य महिमा ततः ॥
तपसश्चैव पूजायाः सच्छिद्रकथनन्ततः ।
प्रकृतीनां भिदाख्यानं शालग्रामनिरूपणम् ॥
तारकस्य वधोपायो व्यक्षार्चामहिमा तथा ।
विष्णोः शापश्च वृक्षत्वं पार्वत्यनुनयस्ततः ॥
हरस्य ताण्डवं नृत्यं रामनामनिरूपणम् ।
हरस्य लिङ्गपतनं कथायं जवनस्य च ॥
पार्वतीजन्मचरित तारकस्य वधोऽद्भुतः ।
प्रणवैश्वर्य कथनं तारकाचरित पुनः ॥
दक्षयज्ञ समाप्तिश्च द्वादशाक्षरकूपणम् ।
ज्ञानयोग समाख्यान महिमा द्वादशार्णजः ॥
श्रवणादिक पुण्यञ्च कीर्त्तित शर्म्मद नृणाम् ।

तृतीय ब्रह्मखण्डस्तोत्तर भागे—

"ततो ब्रह्मोत्तरे भागे शिवस्य महिमाद्भुतः ।
पञ्चाक्षरस्य महिमा गोकर्णमहिमा ततः ॥
शिवरात्रेश्च महिमा प्रदोषव्रतकीर्त्तनम् ।

सोमवारव्रतञ्चापि सीमन्तिन्याः कथानकम् ॥
भद्रायुत्पत्ति कथनं सदाचारनिरूपणम् ।
शिववर्म्म समुद्देशो भद्रायुद्वाहवर्णनम् ॥
भद्रायुर्महिमा चापि भस्ममाहात्म्य कीर्त्तनम् ।
शबराख्यानकञ्चैव उमामाहेश्वर व्रतम् ॥
रुद्राक्षस्य च माहात्म्य रुद्राध्यायस्य पुण्यकम् ।
श्रवणादिक पुण्यञ्च ब्रह्मखण्डोऽयमीरितः ॥"

चतुर्थ काशी खण्ड—

"अतः परं चतुर्थन्तु काशीखण्डमनुत्तमम् ।
विन्ध्यनारदयोर्यत्र सम्वादः परिकीर्त्तितः ॥
सत्यलोकप्रभावश्चागस्त्यावासे सुरागमः ।
पतिव्रता चरित्रञ्च तीर्थचर्य्या प्रशसनम् ॥
ततश्च सप्त पूर्य्याख्या संयमिन्या निरूपणम् ।
ब्रध्नस्य च तथेन्द्राग्न्योर्लोकाप्तिः शिवशर्म्मणः ॥
अग्नेः समुद्भवश्चैव क्रव्यादवरुणसम्भवः ।
गन्धवत्यलकापुर्य्योरीशपुर्य्याश्च समुद्भवः ॥
चन्द्रोडुबुधलोकानां कुजेज्यार्कसुतां क्रमात् ।
सप्तर्षिणां ध्रुवस्यापि तपोलोकस्य वर्णनम् ॥
ध्रुवलोक कथा पुण्या सत्यलोक निरीक्षणम् ।
स्कन्दागस्त्य समालापो मणिकर्णी समुद्भवः ॥
प्रभावश्चापि गङ्गाया गङ्गानाम सहस्रकम् ।
वाराणसी प्रशंसा च भैरवाविर्भवस्ततः ॥

दण्डपाणी ज्ञानवाप्योरुद्भवः समनन्तरम् ।
ततः कलावत्याख्यानं सदाचारनिरूपणम् ॥
ब्रह्मचारिसमाख्यानं ततः स्त्रीलक्षणानि च ।
कृत्याकृत्यविनिर्देशो ह्यविमुक्तेशवर्णनम् ॥
गृहस्थयोगिनो धर्म्माः कालज्ञानं ततः परम् ।
दिवोदासकथा पुण्या काशीवर्णनमेव च ॥
योगिचर्या च लोलार्कोत्तरसाम्बार्कजा कथा ।
द्रुपदार्कस्य तार्क्ष्यारुणार्कस्योदयस्ततः ॥
दशाश्वमेधतीर्थाख्या मन्दराच्च गणागमः ।
पिशाचमोचनाख्यानं गणेशप्रेषणन्ततः ॥
मायागणपतेश्चाथ भुवि प्रादुर्भवस्ततः ।
विष्णुमायाप्रपञ्चोऽथ दिवोदासविमोक्षणम् ॥
ततः पञ्चनदोत्पत्तिर्बिन्दुमाधवसम्भवः ।
ततो वैष्णवतीर्थाख्या शूलिनः काशिकागमः ॥
जैगीषव्येण सम्वादो ज्येष्ठेशाख्या महेशितुः ।
क्षेत्राख्यानं कन्दुकेशव्याघ्रेश्वरसमुद्भवः ॥
शैलेशरत्नेश्वरयोः कृत्तिवासस्य चोद्भवः ।
देवतानामधिष्ठानं दुर्गासुरपराक्रमः ॥
दुर्गाया विजयश्चाथ ओङ्कारेशस्य वर्णनम् ।
पुनरोङ्कारमाहात्म्यं त्रिलोचनसमुद्भवः ॥
केदाराख्या च धर्म्मेशकथा विश्वभुजोद्भवा ।
वीरेश्वरसमाख्यानं गङ्गामाहात्म्यकीर्त्तनम् ॥

विश्वकर्म्मेश महिमा दक्षयज्ञोद्भवस्तथा
सतीशम्भ्वोर्मुनेर्गार्देर्भुजस्तम्भः पराशरे ॥
क्षेत्रतीर्थं कदम्बञ्च मुक्तिमण्डपसत्कथा ।
विश्वेश विभवश्चाथ ततो यात्रा परिक्रमः ॥

पञ्चमे अवन्ती खण्डे :—

"अतः परं त्ववन्त्याख्यं शृणु खण्डञ्च पञ्चकम्।
महाकालवनाख्यानं ब्रह्मशीर्षच्छिदा ततः ॥
प्रायश्चित्तविधिश्चाग्नेरुत्पत्तिश्च समागमः ।
देवदीक्षा शिवस्तोत्रं नानापातकनाशनम् ॥
कपालमोचनाख्यानं महाकालवनस्थितिः ।
तीर्थं कलकलेशस्य सर्व्वपापप्रणाशनम् ॥
कुण्डमप्सरसञ्ज्ञञ्च सरो रुद्रस्य पुण्यदम् ।
कुटुम्बेशञ्च विद्याभ्रमर्कटेश्वरतीर्थकम् ॥
स्वर्गद्वारं चतुःसिन्धुतीर्थं शङ्करवापिका ।
सकरार्कं गन्धवती तीर्थं पापप्रणाशनम् ॥
दशाश्वमेधैकानंशा तीर्थं च हरिसिद्धिदम् ।
पिशाचकादि यात्रा च हनूमत्कयमेश्वरौ ॥
महाकालेशयात्रा च वल्मीकेश्वरतीर्थकम् ।
शुक्रेशमेशोपाख्यानं कुशस्थल्याः प्रदक्षिणम् ॥
अक्रूरमन्दाकिन्यङ्कपादचन्द्रार्कवैभवम् ।
करभेश कुक्कुटेश लड्डुकेशादि तीर्थकम् ॥
मार्कण्डेश यज्ञवापी सोमेश नरकान्तकम् ।

केदारेश्वर रामेश सौभाग्येश नरार्ककम् ॥
केशार्कं शक्तिभेदञ्च स्वर्णक्षरमुखानि च ।
ओङ्कारेशादि तीर्थानि अन्धकस्तुतिकीर्त्तनम् ॥
कालारण्ये लिङ्गसरया स्वर्णशृङ्गाभिधानकम् ।
कुशस्थल्या अवन्त्याश्चोज्जयिन्या अभिधानकम् ॥
पद्मावती कुमुद्वत्यमरावतीति नामकम् ।
विशाला प्रतिकल्पाभिधाने च ज्वरशान्तिकम् ॥
शिप्रास्नानादिकफलं नागोत्पीता शिवस्तुति ।
हिरण्याक्षवधाख्यान तीर्थं सुन्दरकुण्डकम् ॥
नीलगङ्गा पुष्कराख्यं विन्ध्यावासन तीर्थकम् ।
पुरुषोत्तमाधिमासं तत्तीर्थञ्चाघनाशनम् ॥
गोमती वामने कुण्डे विष्णोर्नाम सहस्रकम् ।
वीरेश्वरसरः कालभैरवस्य च तीर्थके ॥
महिमा नागपञ्चम्यां नृसिंहस्य जयन्तिका ।
कुटुम्बेश्वरयात्रा च देवसाधककीर्त्तनम् ॥
कर्करराजाख्यतीर्थञ्च विघ्नेशादि सुरोहनम् ।
रुद्रकुण्डप्रभृतिषु बहुतीर्थनिरूपणम् ॥
यात्राष्टतीर्थजा पुण्या रेवामाहात्म्यमुच्यते ।
धर्म्मपुत्रस्य वैराग्ये मार्कण्डेयेन सङ्गमः ॥
प्राग्लयानुभवाख्यान अमृता परिकीर्त्तनम् ।
कल्पे कल्पे पृथक् नाम नर्म्मदायाः प्रकीर्त्तितम् ॥
-स्तवमार्षं नार्मदञ्च कालरात्रिकथा ततः ।

महादेवस्तुतिः पश्चात् पृथक्कल्पकथाद्भुता ॥
विशल्याख्यानकं पश्चाज्जालेश्वरकथा तथा ।
गौरीव्रतसमाख्यान त्रिपुरज्वालनन्तत ॥
देहपातविधानञ्च कावेरीसङ्गमस्तत ।
शक्रतीर्थ ब्रह्मवर्त्त यज्ञेश्वर कथानकम् ॥
अग्नितीर्थं रवितीर्थं मेघनाद दिदारुकम् ।
देवतीर्थं नर्मदेशं कपिलाख्य करञ्जकम् ।
कुण्डलेश पिप्पलाद विमलेशञ्च शलभित ॥
शचीहरणमाख्यातमन्धकस्यवधस्तत ।
शूलभेदोद्भवो यत्र दानधर्म्मा पृथग्विधा ॥
आख्यान दीर्घतपसऋष्यशृङ्ग कथा तत ।
चित्रसेनकथा पुण्या काशिराजस्य मोक्षणम् ॥
ततो देवशिलाख्यान शबरी चरिताचितम् ।
व्याधाख्यान तत पुण्य पुष्करिण्यर्कतीर्थकम् ॥
आदित्येश्वर तीर्थञ्च शक्रतीर्थं करोटिकम् ।
कुमारेशमगस्त्येश च्यवनेशञ्च मातृजम् ॥
लोकेश धनदेशञ्च मङ्गलेशञ्च कामजम् ।
नागेशञ्चापि गोपारं गौतमं शङ्खचूडजम् ॥
नारदेश नन्दिकेश वरुणेश्वरतीर्थकम् ।
दधिस्कन्दादितीर्थानि हनूमन्तेश्वरस्तत ॥
रामेश्वरादि तीर्थानि सोमेशं पिङ्गलेश्वरम् ।
ऋणमोक्षं कपिलेश पूतिकेशं जलेशयम् ॥

चण्डार्कयमतीर्थञ्च कहोटीशञ्च नान्दिकम् ।
नारायणञ्च कोटीश व्यासतीर्थं प्रभासिकम् ॥
नागेश सङ्कर्षणकं मन्मथेश्वरतीर्थकम् ।
एरण्डीसङ्गम पुण्य सुवर्णशिलतीर्थकम् ॥
करञ्ज कामद तीर्थं माण्डीर रोहिणीभवम् ।
चक्रतीर्थं धौतपापं स्कान्दमाङ्गिरसाह्वयम् ॥
कोटितीर्थमपोन्यारयमङ्गाराख्यं त्रिलोचनम् ।
इन्द्रेश कम्बुकेशञ्च सोमेशं कोहनेशकम् ॥
नार्म्मद चार्कमाग्नेय भार्गवेश्वरसत्तमम् ।
ब्राह्म दैव च भागेशमादि वाराहणंकये ॥
रामेशमथ सिद्धेश माहात्म्य कङ्कटेश्वरम् ।
शाक सौम्यञ्च नान्देश तापेश रुक्मिणीभवम् ॥
योजनेश वराहेश द्वादशी शिव तीर्थके ।
सिद्धेश मङ्गलेशञ्च लिङ्गवाराहतीर्थकम् ॥
कुण्डेश श्वेतवाराह भार्गवेश रवीश्वरम् ।
शुक्लादीनि च तीर्थानि हुँकारस्वामितीर्थकम् ॥
सङ्गमेशं नारकेशं मोक्ष सार्पञ्च गोपकम् ।
नाग साम्बञ्च सिद्धेश मार्कण्डाक्रूरतीर्थके ॥
कामोदशूलारोपाख्यो माण्डव्य गोपकेश्वरम् ।
कपिलेश पिङ्गलेश भूतेश गागगौतमे ॥
आश्वमेधं भृगुकच्छं केदारेशञ्च पापलुत् ।
कनखलेशं जालेशं शालग्रामं वराहकम् ॥

चन्द्रप्रभासमादित्य श्रीपन्याख्यञ्च हंसकम्।
मूलस्थानञ्च शूलेशमाम्रायाचित्रदैवकम् ॥
शिर्खाशं कोटितीर्थञ्च दशकन्य सुवर्णकम्।
ऋणमोक्षं मारमूर्तिरजान्ते पुलपुण्डमम् ॥
आमलेश कपालेश शृङ्गेरण्डीमवन्तत ।
कोटितीर्थं लोटनेश फलस्तुतिरत परम्।
कृमिजङ्गलमाहात्म्ये रोहिताश्वकथातत ॥
धुन्धुमारसमाख्यान यथोपायस्ततोऽस्य च ।
यथो धुन्धोस्तत पश्चात ततश्चित्रवहोद्भव ।
महिमास्य ततश्चण्डीशप्रभावोस्ततोऽपर ॥
केदारेशो रुद्रतीर्थं ततो विष्णुपदीभवम्।
मुखार च्यवनाख्यार्थं ब्रह्मणश्च सरस्तत ॥
चनाख्य ललिताख्यान तीर्थञ्चबहुगोमयम्।
रुद्रावर्तञ्च मार्कण्ड तीर्थं पापप्रणाशनम् ॥
रावणेश शुद्धपट देवान्धुर्मतताचकम्।
जिह्वोदनार्थसम्भूति शिवोद्भेदं फलस्तुति ॥
एष खण्डो ह्यवन्त्याख्य शृण्वता पापनाशन ।

पष्ठे नागरखण्टे :—

"अत पर नागराख्य खण्ड षष्ठोऽभिधायते।
लिङ्गोत्पत्तिसमाख्यान हरिश्चन्द्रकथा शुभा ॥
विश्वामित्रस्य माहात्म्य त्रिशङ्कुस्वर्गतिस्तथा।
हाटकेश्वरमाहात्म्ये वृत्रासुरवधस्तथा ॥

नागविलं शङ्खतीर्थमचलेश्वरवर्णनम् ।
चमत्कारपुराख्यानं चमत्कारकरं परम् ।
गयशीर्षं बालशाख्यं बालमण्डं मृगाह्वयम् ॥
विष्णुपादञ्च गोकर्णं युगरूपं समाश्रयः ।
सिद्धेश्वरं नागसरः सप्तार्षेयं ह्यगस्तकम् ॥
भ्रूणगर्त्तंनलेशञ्च भीष्मं दुर्वैरमर्ककम् ।
शार्मिष्टं सोमनाथञ्च दौर्गमानर्जकेश्वरम् ॥
जमदग्निवधाख्यानं नैःक्षत्रियकथानकम् ।
रामह्रदं नागपुरं जडलिङ्गञ्च यज्ञभूः ॥
मुण्डीरादि त्रिकार्कञ्च सतीपरिणयस्तथा ।
बालखिल्यञ्च बागेशं बालखिल्यञ्च गारुडम् ॥
लक्ष्मीशापः सानविंशः सोमप्रासादमेव च ।
अम्बावृद्धं पादुकाख्यमाग्नेयं ब्रह्मकुण्डकम् ॥
गोमुखं लोहयष्ट्याख्यमजापालेश्वरी तथा ।
शानैश्चरं राजवापी रामेशो लक्ष्मणेश्वरः ।
कुशेशाख्यं लवेशाख्यं लिङ्गं सर्वोत्तमोत्तमम् ।
अष्टषष्टिसमाख्यानं दमयन्त्यास्त्रिजातकम् ॥
ततोऽम्बारेवती चात्र भट्टिकातीर्थसम्भवम् ।
क्षेमङ्करी च केदारं शुक्लतीर्थं मुखारकम् ॥
सत्यसन्धेश्वराख्यानं तथा कर्णोत्पला कथा ।
अटेश्वरं याज्ञवल्क्यं गौर्य्यं गाणेशमेव च ॥
ततोवास्तुपदाख्यानमजागृहकथानकम् ।

सौभाग्यान्त्रकशूलेशं धर्मराजकथानकम् ॥
मिष्टान्नदेश्वराख्यानं गाणपत्यत्रयं ततः ।
जाबालिचरितञ्चैव मकरेशकथा ततः ॥
कालेश्वर्यन्ध्रकाख्यानं कुण्डमाप्सरसन्तथा ।
पुष्यादित्यं रौहिताश्वं नागरोत्पत्तिकीर्त्तनम् ॥
भार्गवं चरितं चैव वैश्वामित्रं ततः परम् ॥
सारस्वतं पैप्पलादं कंसारीशञ्च पैण्डिकम् ॥
ब्रह्मणो यज्ञचरितं सावित्र्याख्यानसंयुतम् ॥
रैवतं भर्तृयज्ञाख्यं मुख्यतीर्थनिरीक्षणम् ।
कौरवं हाटकेशाख्यं प्रभासं क्षेत्रकत्रयम् ॥
पौष्करं नैमिषं धार्म्ममरण्यत्रितयं स्मृतम् ।
वाराणसीद्वारकाख्यावन्त्याख्येति पुरीत्रयम् ॥
वृन्दावनं खाण्डवाख्यं मद्रैकाख्यं वनत्रयम् ।
कल्पः शालस्तथा नन्दीग्रामत्रयमनुत्तमम् ॥
असिशुक्लपितृसञ्ज्ञं तीर्थत्रयमुदाहृतम् ।
श्रयुर्दो रैवतश्चैव पर्वतत्रयमुत्तमम् ॥
नदीनां त्रितयं गङ्गा नर्मदा च सरस्वती ॥
सार्द्धकोटित्रयफलमेकैकञ्चैषु कीर्तितम् ।
कूपिका शङ्खतीर्थञ्चामरकं बालमण्डनम् ।
हाटकेशक्षेत्रफलप्रदं प्रोक्तं चतुष्टयम् ॥
शाम्बादित्यं श्राद्धकल्पं यौधिष्ठिरमथान्धकम् ।
जलशायि चतुर्मास्यमशून्यशयनव्रतम् ।

मङ्कणेशं शिवरात्रिस्तुलापुरुषदानकम् ।
पृथ्वीदानं बाणकेशं कपालमोचनेश्वरम् ।
पापपिण्डं सप्तलैङ्गं युगमानादिकीर्त्तनम् ।
निम्बेशशाकम्भर्याख्या रुद्रैकादश कीर्त्तनम् ।
दानमाहात्म्यकथनं द्वादशादित्यकीर्त्तनम् ।
इत्येष नागरः खण्डः प्रभासाख्योऽधुनोच्यते ।

सप्तमे प्रभास खण्डे :—

"सोमेशो यत्र विश्वेशोऽर्कस्थलं पुण्यदं महत् ।
सिद्धेश्वरादिकाख्यानं पृथगत्र प्रकीर्त्तितम् ॥
अग्नितीर्थं कपर्द्दीश केदारेशं गतिप्रदम् ।
भीमभैरवचण्डीशभास्कराङ्गारकेश्वराः ।
बुधेज्यभृगुसौरेन्द्र शिखीशाहरविग्रहाः ।
सिद्धेश्वराद्या पश्चान्ये रुद्रास्तत्र व्यवस्थिताः ।
वरारोहा ह्यजापाला मंगला ललितेश्वरी ।
लक्ष्मीशोऽवाडवेशश्चाघीश कामेश्वरस्तथा ॥
गौरीशवरुणेशाख्यमुशीपश्च गणेश्वरम् ।
कुमारेशश्च शाकल्यं शकुलोतङ्कगौतमम् ॥
दैत्यघ्नेशं चक्रतीर्थं सन्निहत्याव्हयन्तथा ।
भूतेशादीनि लिङ्गानि आदिनारायणाह्वयम् ॥
ततश्चक्रधराख्यानं शाम्बादित्यकथानकम् ।
कथा कण्टकशोधिन्या महिषघ्न्यास्ततः परम् ॥
कपालीश्वरकोटीशबालब्रह्माहुसत् कथा ।

नरकेश सम्वर्त्तेश निर्योश्वरकथा ततः ।
वल्मीकेश्वरस्याथ गंगाया गणपस्य च ।
जाम्बवत्याश्यसरित पाण्डुपस्यसत्कथा ।
शतमेघलक्षमेघकोटिमेघकथा तथा ।
दुर्व्वासार्कयदुस्थान हिरण्यासंगमोत्कथा ॥
नगरार्कस्य कृष्णस्य सङ्कर्षणसमुद्रयोः ।
कुमार्य्याः क्षेत्रपालस्य ब्रह्मेशस्य कथा पृथक् ॥
पिंगला संगमेशस्य शंकरार्कघटेशयोः ।
ऋषितीर्थस्य नन्दार्कत्रितकूपस्य कीर्त्तनम् ॥
शशोपानस्य पर्णार्कन्यङ्कुमत्यो कथाद्भुता ।
वाराहस्वामिवृत्तान्त छायालिगाख्यगुल्फयो. ।
कथा कनकनन्दायाः कुन्तीगंगेशयोस्तथा ॥
चमसोद्भेदविदुरत्रिलोकेशकथा ततः ।
मङ्कणेश त्रैपुरेश षण्डतीर्थ कथा तथा ॥
सूर्यप्राचीत्रीक्षणयोरुमानाथ कथा तथा ।
भूद्वारशूलस्थलयोश्च्यवनार्केशयोस्तथा ।
अजापालेशबालार्ककुबेरस्थलजा कथा ॥
ऋषितोया कथा पुण्या संगालेश्वरकीर्त्तनम् ।
नारदादित्यकथनं नारायणनिरूपणम् ॥
तप्तकुण्डस्य माहात्म्यं मूलचण्डीशवर्णनम् ।
चतुर्वक्त्र गणाध्यक्ष कल्म्बेश्वरयो कथा ।
गोपालस्वामिबकुलस्वामिनोर्मरुत्या कथा ।

क्षेमार्कोन्नतविघ्नेशजलस्वामिकथा तथा ।
कालमेघस्य रुक्मिण्या ऊर्वशीश्वरभद्रयोः ।
शङ्खावर्त्तमोक्षतीर्थ गोष्पदाच्युतसद्मनाम् ।
जालेश्वरस्य हुङ्कारकूपचण्डीशयोः कथा ।
आशापुरस्थविघ्नेशकलाकुण्डकथाऽद्भुता ॥
कपिलेशस्य च कथा जरद्गवशिवस्य च ।
नलकर्कोटकेश्वरयोर्हाटकेश्वरजा कथा ॥
नारदेशमन्त्रभूपा दुर्गकूटगणेशजा ।
सुपर्णेलाख्यभैरव्योर्मल्लतीर्थभवा कथा ॥
कीर्त्तनं कर्दमालस्य गुप्तसोमेश्वरस्य च ।
बहुस्वर्णेशश्रृंगेश कोटीश्वरकथा ततः ।
मार्कण्डेश्वरकोटीश दामोदरगृहोत्कथा ।
स्वर्णरेखा ब्रह्मकुण्डं कुन्तीभीमेश्वरौ तथा ॥
मृगीकुण्डश्च सर्वस्वं क्षेत्रे वस्त्रापथे स्मृतम् ।
दुर्गाबिल्वेशगंगेशरैवतानां कथाऽद्भुता ॥
ततोऽर्बुदेश्वरकथा अचलेश्वरकीर्त्तनम् ।
नागतीर्थस्य च कथा वशिष्ठाश्रमवर्णनम् ।
भद्रं कर्णस्य माहात्म्यं त्रिनेत्रस्य ततः परम् ॥
केदारस्य च माहात्म्यं तीर्थागमनकीर्त्तनम् ।
कोटीश्वररूपतीर्थहृषीकेशकथा ततः ।
सिद्धेश शुक्रेश्वरयोर्म्मणिकर्णीशकीर्त्तनम् ॥
पंङ्गुतीर्थ-यमतीर्थ-वाराहतीर्थवर्णनम् ।

चन्द्रप्रभासपिण्डोद् श्रीमाता शुक्लतीर्थजम् ॥
कात्यायन्याश्च माहात्म्यं ततः पिण्डारकस्य च ।
ततः कनखलस्याथ चक्रमानुषतीर्थयोः ॥
कपिलाग्नितीर्थकथा तथा रक्तानुबन्धजा ।
गणेशपार्थेश्वरयोर्यात्राया मुद्गलस्य च ॥
चण्डीस्थानं नागभवशिरः कुण्डमहेशजा ।
कामेश्वरस्य मार्कण्डेयोत्पत्तेश्च कथा ततः ॥
उद्दालकेश सिद्धेश गततीर्थकथा पृथक् ।
श्रीदेवमातोत्पत्तिश्च व्यासगौतमतीर्थयोः ॥
कुलसन्तारमाहात्म्य रामकोट्यग्रहतीर्थयो ।
चन्द्रोद्भेदेशालभद्र ब्रह्मस्थानोद्भवोत्सवम् ॥
त्रिपुष्कर-रुद्रहृद-गुहेश्वर-कथा शुभा ।
अविमुक्तस्य माहात्म्यमुमामाहेश्वरस्य च ॥
महौजसः प्रभावश्च जम्बुतीर्थस्य वर्णनम् ।
गङ्गाधरमिश्रकयोः कथाचाथ फलश्रुतिः ॥
द्वारकायाश्च माहात्म्ये चन्द्रशर्मकथानकम् ।
जागरायाग्यव्रतञ्च व्रतमेकादशीभवम् ।
महाद्वादशीकाख्यान प्रह्लादर्षि समागमः ।
दुर्वासस उपाख्यान यात्रोपक्रमकीर्तनम् ॥
गोमत्युत्पत्तिकथनं तस्यां स्नानादिजफलम् ।
चक्रतीर्थस्य माहात्म्यं गोमत्युदधिसङ्गमः ॥
सनकादिहदाख्यानं नृगतीर्थकथा ततः ।

एकोनविंशत्साहस्रं तार्क्ष्यकल्पकथाचितम् ॥

तत्र पूर्वखण्डे :—

पुराणोपक्रमो यत्र सर्गः संक्षेपतस्ततः।
सूर्यादिपूजनविधि दीक्षाविधिरतः परम्।
श्रद्धादिपूजा ततः पश्चान्नवव्यूहार्च्चनं द्विज।
पूजाविधानञ्च वैष्णवं तथा पञ्जरस्ततः।
योगाध्यायस्ततो विष्णो र्नामसाहस्रकीर्त्तनम्।
ध्यानं विष्णोस्ततः सूर्यपूजामृत्युञ्जयार्च्चनम्।
माला मंत्रा शिवार्चाथ गणपूजा ततः परम्।
गोपालपूजा त्रैलोक्यमोहनं श्रीधरार्च्चनम्।
विष्ण्वर्चा पञ्चतत्त्वार्चा चक्रार्चा देवपूजनम्।
न्यासादि सन्ध्योपास्तिश्च दुर्गार्चाथसुरार्चनम्।
पूजा माहेश्वरी चातः पवित्रारोहणार्च्चनम्।
मूर्तिध्यानं वास्तुमानं प्रासादानाञ्च लक्षणम्।
प्रतिष्ठा सर्वदेवानां पृथक् पूजाविधानतः।
योगोऽष्टाङ्गो दानधर्मः प्रायश्चित्तविधिक्रिया।
द्वीपेशनरकाख्यानं सूर्यव्यूहश्च ज्योतिषम्।
सामुद्रिकं स्वरज्ञानं नवरत्नपरीक्षणम्।
माहात्म्यमथ तीर्थानां गयामाहात्म्यमुत्तमम्।
ततो मन्वन्तराख्यानं पृथक्पृथग्विभागशः।
पित्राख्यानं वर्णधर्मा द्रव्यशुद्धिसमर्पणम्।
श्राद्धं विनायकस्यार्चा ग्रहयज्ञस्तथाऽऽश्रमाः।

मलहारव्या प्रेताशौचं नीचिसारोऽमृतोक्तयः ।
सूर्यवंश सोमवंशोऽवतारकथनं हरेः ।
रामायणं हरिवंशो भारताख्यानकन्तनः ।
आयुर्वेदे निदानम्प्राक् चिकित्साद्रव्यजागुणाः ।
रोगघ्नं कवचं विष्णो र्गारुडस्त्रैपुरोमनुः ।
प्रश्नचूडामणिश्चान्ते हयायुर्वेदकीर्त्तनम् ।
ओपधीनामकथनं ततो व्याकरणोहनम् ।
छन्दः शास्त्रं सदाचारस्ततः स्नानविधि स्मृतः ।
तर्पणं वैश्वदेवञ्च सन्ध्यापार्वणकर्म च ।
नित्यश्राद्धं सपिण्डाख्यं धर्मसारोऽघनिष्कृतिः ।
प्रतिसङ्क्रम उक्तोऽस्माद् युगधर्माः कृतेः फलम् ।
योगशास्त्रं विष्णुभक्तिर्नमस्कृति फलं हरेः ।
माहात्म्यं वैष्णवञ्चाथ नारसिंहस्तवोत्तमम् ।
ज्ञानामृतं गुह्याष्टकं स्तोत्रं विष्ण्वर्च्चनाह्वयम् ।
वेदान्तसांख्यसिद्धान्तं ब्रह्मज्ञानात्मकं तथा ।
गीतासारः फलोत्कीर्त्तिः पूर्वखण्डोऽयमीरितः ।

उत्तरखण्डे प्रेतकल्पे :—

अथास्यैवोत्तरे खण्डे प्रेतकल्पः पुरोदितः ।
यत्र तार्क्ष्येण संस्पृष्टो भगवानाह वाडव ।
धर्मप्रकटनं पूर्वं योनीनां गतिकारणम् । १
दानादिकम्फलञ्चापि प्रोक्तमत्रौर्ध्वदेहिकम् । २

यमलोकस्य मार्गस्य वर्णनञ्च ततः परम्।
षोडशश्राद्धफलकं वृत्तानाञ्चात्र वर्णितम्।
निष्कृतिर्यममार्गस्य धर्मराजस्य वैभवम्।
प्रेतपीड़ा विनिर्देशः प्रेतचिन्हनिरूपणम्।
प्रेतानां चरिताख्यानं कारणम्प्रेततां प्रति।
प्रेतकृत्यविचारश्च सपिण्डीकरणोक्तयः।
प्रेतत्वमोक्षणाख्यानं दानानि च विमुक्तये।
आवश्यकोत्तरं दानं प्रेतसौख्यकरं हितम्।
शारीरकविनिर्देशो यमलोकस्य वर्णनम्।
प्रेतत्वोद्धारकथनं कर्मकर्तृ विनिर्णयः।
मृत्योः पूर्वक्रियाख्यानं पश्चात्कर्मनिरूपणम्।
मध्यं षोडशकं श्राद्धं स्वर्गप्राप्तिक्रियोहनम्।
सूतकस्याथ संख्यानं नारायणबलिक्रिया।
वृषोत्सर्गस्य माहात्म्यं निषिद्धपरिवर्जनम्।
अपमृत्युक्रियोक्तिश्च विपाकः कर्मणां नृणाम्।
कृत्याकृत्यविचारश्च विष्णुध्यानं विमुक्तये।
स्वर्गतौ विहिताख्यानं स्वर्गसौख्यनिरूपणम्।
भूर्लोकवर्णनञ्चैव सप्तधालोक वर्णनम्।
पञ्चोर्ध्वलोककथनं ब्रह्माण्डस्थिति कीर्त्तनम्।
ब्रह्माण्डानेकचरितं ब्रह्मजीवनिरूपणम्।
आत्यन्तिकलयाख्यानं फलस्तुतिनिरूपणम्।
इत्येतद्गारुडंनाम पुराणभुक्तिमुक्तिदम्॥

तत्फलश्रुति :—

कीर्तितं पापशमनं पठतां शृण्वतां नृणाम् ।
लिखित्वैतत्पुराणन्तु विषुवे यः प्रयच्छति ॥
सौवर्णं हंसयुग्माढ्यं विप्राय स दिवं व्रजेत् ।

ब्रह्माण्डपुराणम्

नारदीय पुराणे ४ पा० १०६ अध्याय उक्ता
अस्य विषयाः ।

शृणु वत्स ! प्रवक्ष्यामि ब्रह्माण्डाख्यं पुरातनम् ।
तच्च द्वादशसाहस्रं भाविकल्पकथायुतम् ॥
प्रक्रियाख्योऽनुषङ्गाख्य उपोद्घातस्तृतीयकः ।
चतुर्थ उपसंहारः पादाश्चत्वार एव हि ॥
पूर्वपादद्वयं पूर्वो भागोऽत्र समुदाहृतः ।
तृतीयोमध्यमो भागश्चतुर्थस्तूत्तरोमतः ॥

तत्रपूर्वभागे प्रक्रियापादे :—

"आदौ कृत्यसमुद्देशो नैमिषाख्यानकं ततः ।
हिरण्यगर्भोत्पत्तिश्च लोककल्पनमेव च ॥
एष वै प्रथमःपादो द्वितीयं शृणु नारद ।

पूर्वभागेऽनुपङ्गपादे :—

कल्पमन्वन्तराख्यानं लोकज्ञानं ततः परम् ।
मानस सृष्टिकथनं रुद्रप्रसववर्णनम् ॥

महादेवविभूतिश्च ऋषिसर्गस्ततः परम् ।
अग्नीनां विचयश्चाथ कालसद्भाववर्णनम् ॥
प्रियव्रतान्वयोद्देशः पृथिव्या याम विस्तरः ।
वर्णनं भारतस्यास्य ततोऽन्येषां निरूपणम् ॥
जम्बादिसप्तद्वीपाख्या ततोऽधोलोकवर्णनम् ।
ऊर्ध्वलोकानुकथनं ग्रहचारस्ततः परम् ॥
आदित्यव्यूहकथनं देवग्रहानुकीर्त्तनम् ।
नीलकण्ठाह्वयाख्यानं महादेवस्य वैभवम् ॥
अमावास्यानुकथनं युगतत्त्वनिरूपणम् ।
यज्ञप्रवर्तनञ्चाथ युगयोरन्त्ययोः कृतिः ॥
युगप्रजालक्षणञ्च ऋषिप्रवरवर्णनम् ।
वेदानां व्यसनाख्यानं स्वायम्भुवनिरूपणम् ॥
शेषमन्वन्तराख्यानं पृथिवीदोहनन्ततः ।
चाक्षुषेऽद्यतने सर्गो द्वितीयोऽङ्घ्रि पुरोदले ॥

मध्यभागे उपोद्घात पादे :—

"अथोपोद्घातपादे च सप्तर्षिपरिकीर्त्तनम् ।
राजापत्यान्वयस्तस्माद्देवादीनां समुद्भवः ॥
ततो जयाभिव्याहारौ मरुदुत्पत्तिकीर्त्तनम् ।
काश्यपेयानुकथनं ऋषिवंशनिरूपणम् ॥
पितृकल्पानुकथनं श्राद्धकल्पस्ततः परम् ।
वैवस्वतसमुत्पत्तिस्सृष्टिस्तस्य ततः परम् ॥
मनुपुत्रान्वयश्चातो गान्धर्वस्य निरूपणम् ।

इक्ष्वाकुवंशकथनं वंशोऽत्रेः सुमहात्मनः ॥
अमावसोरायवंश्च रजेश्चरितमद्भुतम् ।
ययातिचरितञ्चाथ यदुवंशनिरूपणम् ॥
कार्तवीर्यस्यचरितं जामदग्न्यं ततः परम् ।
वृष्णिवंशानुकथनं सगरस्याथ सम्भवः ॥
भार्गवस्यानुचरितं तथार्यैकवधाश्रयम् ।
सगरस्याथचरितं भार्गवस्य कथा पुनः ॥
देवासुराहवकथा कृष्णाविर्भाववर्णनम् ।
इनस्य च स्तवः पुण्यः शुक्रेण परिकीर्तितः ॥
विष्णुमाहात्म्यकथनं बलीवंशनिरूपणम् ।
भविष्यराजचरितं सम्प्राप्तेऽथकलौ युगे ॥
एवमुद्घातपादोऽयं तृतीयो मध्यमे दले ।

उत्तरभागे उपसंहार पादे :—

चतुर्थमुपसंहारं वक्ष्ये खण्डे तथोत्तरे ॥
वैवस्वतान्तराख्यानं विस्तरेण यथातथम् ।
पूर्वमेव समुद्दिष्टं संक्षेपादिह कथ्यते ॥
भविष्याणां मनूनाञ्च चरितं हि ततः परम् ।
कल्पप्रलय निर्देशः कालमानं ततः परम् ॥
लोकाश्चतुर्दश ततः कथिता मानलक्षणैः ।
वर्णनं नरकाणाञ्च विकर्माचरणैस्ततः ॥
मनोमयपुराख्यानं लयः प्राकृतिकस्ततः ।
शैवस्याथ पुरस्यापि वर्णनञ्च ततः परम् ॥

त्रिविधाद् गुणसम्बन्धाज्जन्तूनां कीर्तिता गतिः ।
अनिर्देश्या प्रतर्क्यस्य ब्रह्मणः परमात्मनः ॥
अन्वय व्यतिरेकाभ्यां वर्णनं हि ततः परम् ।
इत्येव उपसंहारः पादो वृत्तः सचोत्तरः ॥
चतुष्पादं पुराणन्ते ब्रह्माण्ड समुदाहृतम् ।
अष्टादशमनौपम्यं सारात्सारतरं द्विजः ! ॥
ब्रह्माण्डञ्चचतुर्लक्षं पुराणत्वेन पठ्यते ।
तदेव व्यस्य गदितमत्राष्टादशधा पृथक् ॥
पाराशर्येण मुनिना सर्वेषामपि मानद ।
वस्तुद्रष्टाय तेनैव मुनीनां भावितात्मनाम् ॥
मत्तः श्रुत्वा पुराणानि लोकेभ्यः प्रचकाशिरे ।
मुनयो धर्मशीलास्ते दीनानुग्रहकारिणः ॥
मया चेदं पुराणन्तु वशिष्ठाय पुरोदितम् ।
तेन शक्तिसुतायोक्तं जातूकार्णाय तेन च ॥
व्यासो लब्ध्वा ततश्चैतत् प्रभञ्जनमुखोद्गतम् ।
प्रमाणीकृत्यलोकेऽस्मिन् प्रावर्त्तयदनुत्तमम् ॥

तत्फलश्रुति :—

य इदं कीर्तयेद्वत्स ! शृणोति च समाहितः ।
स विधूयेह पापानि याति लोकमनामयम् ॥
लिखित्वै तत् पुराणन्तु स्वर्णसिंहासनन्वितम् ।
पात्रेणाच्छादितं यस्तु ब्राह्मणाय प्रयच्छति ॥
स याति ब्रह्मणोलोकं नात्र कार्या विचारणा ।

मरीचे ! ऽष्टादशैतानि मया प्रोक्तानि यानि ते ॥
पुराणानि तु संक्षेपाच्छ्रोतव्यानि च विस्तरात् ।
अष्टादश पुराणानि यः शृणोति नरोत्तमः ॥
कथयेद्वा विधानेन नेह भूयः स जायते ।
सूत्रमेतत्पुराणानां यन्मयोक्तं तवाऽधुना ॥
तन्नित्यं शीलनीयं हि पुराणं फलमिच्छता ।
न दाम्भिकाय पापाय देवगुर्वनसूयवे ।
देयं कदापि साधूनां द्वेषिणे न शठाय च ।
शान्तायाशमचित्ताय शुश्रूषाभिरताय च ॥
निर्मत्सराय शुचये देयं सद्वैष्णवाय च ।

विष्णुभागवतम् ।

तत्प्रतिपाद्यविषयाश्च नारद पु० ९६ अ० उक्ता यथा—

मरीचे ! शृणु वक्ष्यामि वेदव्यासेन यत्कृतम् ।
श्रीमद्भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसंमितम् ॥
तदष्टादशसाहस्रं कीर्त्तितं पापनाशनम् ।
सुरपादपरूपोऽयं स्कन्धैर्द्वादशभिर्युतः ॥
भगवानेव विप्रेन्द्र ! विश्वरूपी समीरितः ।

तस्य प्रथमस्कन्धे :—

तत्र तु प्रथमे स्कन्धे सूतर्षीणां समागमः ।
व्यासस्य चरितं पुण्यं पाण्डवानां तथैव च ॥
पारीक्षितमुपाख्यानमितीदं समुदाहृतम् ।"

द्वितीयस्कन्धे :—

"परीक्षिच्छुकसम्वादे सृतिद्वयनिरूपणम् ।
ब्रह्मनारदसंवादेऽवतारचरितामृतम् ॥
पुराणलक्षणञ्चैव सृष्टिकारणसम्भवः ।
द्वितीयोऽयंसमुदितः स्कन्धो व्यासेन धीमता ॥"

तृतीयस्कन्धे :—

"चरितं विदुरस्याथ मैत्रेयेणास्य सङ्गमः ।
सृष्टिप्रकरणं पश्चाद्ब्रह्मणः परमात्मनः ॥
कापिलं सांख्यमप्यत्र तृतीयोऽयमुदाहृतः ।

चतुर्थस्कन्धे :—

"सत्याश्चरितमादौ तु ध्रुवस्यचरितं ततः ।
पृथोः पुण्यसमाख्यानं ततः प्राचीनबर्हिषः ॥
इत्येष तूर्यो गदितो विसर्गे स्कन्ध उत्तमः ।"

पञ्चमस्कन्धे :—

"प्रियव्रतस्य चरितं तद्वंश्यानाञ्च पुण्यदम् ।
ब्रह्माण्डान्तर्गतानाञ्च लोकानां वर्णनन्ततः ॥
नरकस्थितिरित्येव संस्थाने पञ्चमोमतः ।

षष्ठस्कन्धे :—

अजामिलस्य चरितं दक्षसृष्टिनिरूपणम् ।
वृत्राख्यानं ततःपश्चान्मरुतां जन्म पुण्यदम् ॥
षष्ठोऽयमुदितस्कन्धो व्यासेन परिपोषणे ।

सप्तमस्कन्धे :—

"प्रह्लादचरितं पुण्यं वर्णाश्रमनिरूपणम् ।
सप्तमोगदितो वत्स ! वासनाकर्मकीर्त्तने ॥

अष्टमस्कन्ध :—

"गजेन्द्रमोक्षणाख्यानं मन्वन्तरनिरूपणम् ।
समुद्रमथनञ्चैव बलिवैभवबन्धनम् ॥
मत्स्यावतारचरितमष्टमोऽयं प्रकीर्त्तितः।

नवमस्कन्धे :—

"सूर्यवंशसमाख्यानं सोमवंशनिरूपणम् ।
वंश्यानुचरिते प्रोक्तो नवमोऽयं महामते ॥

दशमस्कन्धे :—

"कृष्णस्य बालचरितं कौमारञ्च व्रजस्थितिः ।
कैशोरं मथुरास्थानं यौवने द्वारकास्थितिः ॥
भूभारहरणञ्चात्र निरोधे दशमः स्मृतः ।

एकादशस्कन्धे :—

"नारदेन तु संवादो वसुदेवस्य कीर्तितः ।
यदोश्च दत्तात्रेयेण श्रीकृष्णेनोद्धवस्य च ॥
यादवानां मिथोऽन्तश्च मुक्तावेकादशः स्मृतः ।

द्वादशस्कन्धे :—

"भविष्यकलिनिर्देशो मोक्षो राज्ञः परीक्षितः ।
वेदशाखाप्रणयनं मार्कण्डेयतपः स्मृतम् ॥

सौरी विभूतिरुदिता सात्त्वती च ततः परम् ।
पुराणसंख्याकथनमाश्रये द्वादशो ह्ययम् ॥
इत्येवं कथितं वत्स ! श्रीमद्भागवतं तव ।

तत्फलश्रुतिः :—

"वक्तुः श्रोतुश्चोपदेष्टुरनुमोदितुरेव च ।
साहाय्यकर्तुर्गदितं भक्तिभुक्तिविमुक्तिदम् ॥
प्रौष्ठपद्यां पूर्णिमायां हेमसिंहसमान्वितम् ।
देयं भागवतायेदं द्विजाय प्रीतिपूर्वकम् ॥
सम्पूज्य वस्त्रहेमाद्यैर्भगवद्भक्तिमिच्छता ।
सोऽप्यनुक्रमणीमेतां श्रावयेच्छृणुयात्तथा ॥
स पुराणश्रवणजं प्राप्नोति फलमुत्तमम् ।

अष्टादशपुराणानामनुक्रमतोऽ वतरणवर्णनम्वायुपुराणे प्रतिपादितम् :—

सर्वपापहरं पुण्यं पवित्रं च यशस्वि च ।
ब्रह्मा ददौ शास्त्रमिदं पुराणं मातरिश्वने ॥ ५८ ॥
तस्माच्चोशनसा प्राप्तं तस्माच्चापि बृहस्पतिः ।
बृहस्पतिस्तु प्रोवाच सवित्रे तदनन्तरम् ॥ ५९ ॥
सविता मृत्यवे प्राह मृत्युश्चेन्द्राय वै पुनः ।
इन्द्रश्चापि वशिष्ठाय सोऽपि सारस्वताय च ॥ ६० ॥
सारस्वतस्त्रिधाम्ने च त्रिधामा च शरद्वते ।
शरद्वतस्त्रिविष्टाय सोऽन्तरिक्षाय दत्तवान् ॥ ६१ ॥

धर्षिणे चान्तरिक्षो वै सोऽपि प्रय्यारुणाय च।
प्रय्यारुणो धनञ्जये सच प्रादात्कृतञ्जये ॥ ६२ ॥
कृतञ्जयात्तृणंजयो [भरद्वाजाय सोऽप्यथ।
गौतमाय भरद्वाज सोऽपि निर्यन्तरे पुन ॥ ६३ ॥
निर्यन्तरस्तु प्रोवाच तथा वाजश्रवाय च।
स ददौ सोममुष्माय स ददौ तृणबिन्दवे ॥ ६४ ॥
तृणबिन्दुस्तु दक्षाय दक्ष प्रोवाच शक्तये।
शक्तेः पराशरश्चापि गर्भस्थ श्रुतवानिदम् ॥ ६५ ॥
पराशराज्जातुकर्णस्तस्माद्द्वैपायन प्रभु।
द्वैपायनात्पुनश्चापि‍ मया प्रोक्त द्विजोत्तमा ॥६६॥

सांख्यायन उवाच :—

मया वै तत्पुन प्रोक्तं पुत्रायामितबुद्धये।
इत्येव वाचा ब्रह्मादिगुरुणा समुदाहृता ॥



पुराण परिचय (परिशिष्ट)

कतिपय सम्मतयः

एफ० मैक्समूलरः प्रतिपादयति स्वकीय ग्रन्थे

India what can it teach us

By Rt Hon
F Maxmuller,
(Longmans Green & Co.)
India, 1919.

COLLECTED WORKS

नामके

Page 3

"If I were to look over the whole world to find out the country richly endowed with all the wealth, power and beauty that nature can bestow—in some parts a very paradise on earth—I should point to India. If I were

यदि सारे संसार भर में मुझे ऐसे देश को खोजने के लिये कहा जाय जो धन, जन और प्राकृतिक सौन्दर्य साधन सम्पत्ति से परिपूर्ण हो और कुछ अश में पृथ्वी पर स्वर्ग सदृश हो तो मेरा केन्द्र बिन्दु भारत होगा। यदि मुझे यह पूछा जाय कि विश्व में मानव मस्तिष्क के अधिकाधिक पवित्रतम

asked under what sky the human mind has most freely developed some of its choicest gifts, has most deeply pondered on the greatest problems of life and has found solutions of some of them which will deserve the attention even of those who have studied Plato and Kant I should point to India

And if I were to ask myself from what literature we here in Europe, we, who have been *nurtured* almost exclusively on the thoughts of Greeks and Romans and of one Semitic race the jewish, may draw that

---

विकास की सुन्दरतम भेंट कौन से देश को प्राप्त हुई और किस देश के निवासियों ने जीवन की महती समस्याओं पर गम्भीर रूप से विचार किया है और उनका निश्चित समाधान भी पूर्ण रूप से प्राप्त कर लिया जिसके लिये प्लेटो और काण्ट जैसे दार्शनिकों की रचनाओंके प्रेमी भी अपने को अध्ययन करने का अधिकारी मानते है तो मेरा सङ्केत भारत भूमि के लिये होगा।

और यदि मुझे फिर एक प्रश्नवाचक चिन्ह द्वारा यह कहा जाय कि यूरोप में हमलोगों ने जिनके आदर्श पूर्णतया ग्रीस और रोमन जाति की विचार धारा पर आश्रित हैं और यहूदी जाति से भी प्रेरणा प्राप्त की है ऐसे सभी को किस साहित्य द्वारा

corrective which is most wanted in order to make our inner life more perfect, more comprehensive, more universal, in fact, more lively human—a life not for this life only, but a transfigured and eternal life—again I should point to India.

14

That very Sanskrit the study of which may at first seem so tedious to you and so useless, if only you will carry it on, as you may carry it on here at Cambridge better than anywhere else, open before you large

---

पूर्णता प्राप्ति की आन्तरिक रूप से पूर्ण बनने की, सर्वांशतः सार्वभौम और विकसनशील बनने की प्रेरणा मिली है। वास्तव में ऐहिक जीवन के सम्बन्ध में ही नहीं बल्कि आमुष्मिक सत्य शाश्वत जीवन के लिये महत्त्व पूर्ण साहित्य से देन मिली तो मेरा सङ्केत फिर भी भारत ही होगा।

१४

यह संस्कृत भाषा का अध्ययन ही है जो पहले आपलोगों को कठिन परिश्रमसाध्य और अनुपयोगी लगता है यदि इसका सतत स्वाध्याय जैसा आपलोग कैम्ब्रिज में करते हैं वैसी ही गति और उत्साह से सदा ही करते रहे तो आपके सामने ऐसी साहित्यक उन्मेष की गवेषणा दृष्टिगोचर होगा जो अभी तक

layers of literature as yet almost unknown and unexplored and allow you an insight into strata of thought deeper than any you have known before and rich in lessons that appeal to the deepest sympathies of the human heart.

"India occupies a place second to no other country."

15

Whatever sphere of the human mind you may select for your special study, whether it be language, or religion, or mythology or philosophy, whether it be laws or customs, primitive

---

अज्ञात और अनुसन्धान रहित थी और अन्तर्दर्शन की ऐसी सूक्ष्म क्षमता प्रदान करेगी अब शिक्षाप्रद उपदेशों से हमें उदात्त मानव बनने की वरा बर प्रेरणा मिलती रहेगी, मानव हृदय की गम्भीर सहानुभूतियों को भी पूर्णतया प्रभावित करती हैं।

सत्यान्वेषण के मार्ग में भारत राष्ट्र का ही सर्व प्रथम प्रमुख स्थान है।

मानव मस्तिष्क के विकास की कोई भी देश को अपने विशेष अध्ययन के लिये हम क्यों न ले भले ही वह भाषा हो, धर्म हो, पौराणिक गाथा हो, दर्शन हो, व्यवहार हो, रीति नीति हो या आरम्भिक कला या विज्ञान हो हमें उसका स्रोत भारत ही

art or primitive science, everywhere you have to go to India; whether you like it or not, because some of the most valuable and most instructive materials in the history of man are treasured up in India, and in India only."

August wilhelm fon Schleger :—

It is perhaps the deepest and loftiest thing the world has to show.

"Schopen Hauer. The production of the highest Human Wisdom."

"Almost Super—Human Conception."

"It is the most satisfying and elevating reading (with the exception of the original texts) which is possible in the world; it has been the solace of my life and will be the solace of my death."

मिलेगा। आप इस में सहमत हों या न हों सबसे अधिक मूल्यवान् और सर्वाधिक शिक्षाप्रद सामग्री जो मानव के इतिहास में उपलब्ध होती है उसकी सञ्चित निधि केवल भारत में ही है अन्यत्र नहीं।

आगष्ट विल्हेल्म फोनश्लेगर कहते हैं—भारत की आध्यात्मिक विशेषता गम्भीर और उदात्त वस्तुतत्त्वों की संसार को देन है।

शोपेन हावर कहता है—भारतीय दर्शन मनुष्य की उच्चतम विकसित बुद्धि का अपूर्व आदर्श है जो कि विचारांश में अतिमानव प्रायः है।

"Now, if Einstein is right, or even partly right no physicists before his time knew quite well *what they were talking* about. When they *used the ideas of distance and time* and practically every statement that they made which purported to be accurate was false "

Possible worlds by
J. B. S. Haldane

Science is not yet in contact with ultimate reality.

वह यह भी सम्मति देता है कि उपनिषद् साहित्य का अध्ययन सन्तोष दायक, उन्नायक विचारों से पूर्ण है इसका स्वाध्याय जैसे मुझे जीवन में शान्ति और स्फूर्तिदायक हुआ वह मृत्यु शय्या पर भी वैसे ही शान्तिदायक होगा।

यदि सापेक्षवाद का अनुसन्धान कर्ता आइन्स्टीन ठीक हो या अंशत ठीक हो तो कोई भी विज्ञान नेता इस के पूर्व इस से अनभिज्ञ था कि आजकल वैज्ञानिक लोग क्या क्या नई गवेषणा कर रहे हैं। जब उन्होंने दूरी समय औसतसम्बन्धी प्रत्येक विवरण तैयार किया और जिसे उस समय बिल्कुल ठीक बतलाते थे आज मिथ्या मालूम होता है।

—जी० बी० एस० हाल्डेन

विज्ञान अभी तक पूर्ण सत्य के सम्पर्क में नहीं आया है।

Once more then, if we mean by primitive, people who inhabited this earth as soon as the vanishing of the glacial period make this earth inhabitable, the Vedic poets were certainly not primitive If we mean by primitive, people who were without a knowledge of fire, who used unpolished flints, and ate raw flesh, the Vedic poets were not primitive If we mean by primitive, people who did not cultivate soil, had no fixed abodes, no kings, no sacrifices, no laws, again I say, the Vedic poets were not primitive But if we mean by primitive the people who have been the first of the Aryan race to leave behind literary relics of their existence

---

एक वार फिर यदि हम आरम्भिक से ऐसे लोगोंको समझें जिन्होंने आदि कालमें सृष्टिको निवास योग्य बनाया तो वैदिक ऋषि आरम्भिक नहीं थे। पुन यदि हमारा अभिप्राय आदि निवासी से ऐसी जातिका हो जिन्हें अग्निका ज्ञान नही था जो पत्थरके चकमकसे अग्नि जलाते थे और कच्चा मास खाते थे तो इस अर्थ में वैदिक ऋषि आदिकालीन नहीं थे। पुन यदि हमारा यह अभिप्राय हो कि वे ऐसे आदिवासी थे जिन्होंने भूमि पर हल नहीं चलाया न स्थिरनिवासकी योजनाकी न उनके राजा थे न वे यज्ञकरते थे और न उनकेलिये राज्यके नियन्त्रण करनेवाले

on earth, then I say the Vedic poets are primitive, the Vedic language is primitive, the Vedic religion is primitive, and taken as a whole, more primitive than anything else that we are ever likely to recover in the whole history of our race

The prosperity of a country depends not on the abundance of its revenues, not on the strength of its fortifications not on the beauty of its public buildings but it consists in the number of its cultivated citizens, in the men of education, enlightenment and character

---

नियम थे तो वैदिक ऋषिप्राचीन नहीं थे। परन्तु यदि हमारा अभि-प्राय यह हो कि आदिकालीन वही हैं, जिन्होंने आर्य जाति के आदि पुरुष होकर अपनी स्थिति में एक ऐसा अखण्ड साहित्य छोड़ा जिसको आजो से सभी गौरव अनुभव करते हैं, तो मैं कहूंगा कि वैदिक ऋषि आदि हैं वेदविद्या आदिकाल की है, वैदिक धर्म आद्य है और ये ऋषि सम्पूर्ण मानव सभ्य संसार के इतिहास में भी सर्वप्रथम सभ्य होने का गौरव रखते हैं।

किसी देश की समृद्धि न तो इसके करोड़ोंप्रभूत संग्रह सम्पत्ति पर आश्रित है, न इसका सुपुष्ट रक्षा पङ्क्ति पर निर्भर है और न इसके सार्वजनिक शोभायुक्त स्थानों पर अवलम्बित है। परन्तु इसका आधार तो सुसभ्य, नागरिक और शिक्षित जन जो नैतिक और बौद्धिक विकास में आगे बढ़े हुए हैं और जो उन्नतिशील हैं वे ही देश की समृद्धि के वास्तविक मापदण्ड हैं।

Lecture II

Warren Hastings thus speaks of the Hindus general —

"They are gentle and benevolent, more sceptible of gratitude for kindness shown em, and less prompted to vengeance for ongs inflicted than any people on the face the earth, faithful, affectionate, submissive legal authority

But it is not Europe alone that has profited this revival of the study of Sanskrit India self has lost the recollection of her past, here rature was sinking in oblivion numerous rks of her celebrated writers had perished l others were annually perishing, her ient language had died away and was

---

वारेन हेस्टिंग्ज कहता है कि भारतीय भद्र, उदार, कृतज्ञ, संसार की समस्त जातियों में जो बदला लेने की भावना है उससे ऊपर उठे हुए विश्वासी, प्रेममय, और न्यायके लिे नतमस्तक होनेवाले मनुष्य हैं।

संस्कृत विद्याके पुनरुद्धार एवं पुनरुज्जीवनका केवल यूरोपने लाभ नहीं उठाया बल्कि और देशोंने भी विशेषरूपेण पूर्ण ते प्राप्त की है। परन्तु भारत अपने गौरवपूर्ण अतीत के रणों को स्वयं खो चुका है। इस देश में प्रसिद्ध ग्रन्थ ों के महत्वपूर्ण ग्रन्थ सदा के लिये विलय हो गये और

cultivated merely by a few of her sons, and last but least her social fabric and religious belief had come to rest on mediaeval and modern works professedly derived from, and in harmony with her most ancient sacred texts but in truth the composition of an interested degenerated priesthood, corrupting her faith depraving her morality and sapping the very foundations of her life

Introduction to Jaiminiya
Nyaya Mala Vistar
Edited by—Theoder Goldstucker
London Edition 1878

प्रतिवर्ष नष्ट हो रहे हैं। उसकी प्राचीन गौरवमयी भाषा मृत प्राय हो गई और केवल कुछ थोडेसे सरस्वतीके सुपुत्रों द्वारा पढी जाती है। और अन्तमें, उसका सामाजिक ढांचा तथा धार्मिक विश्वास मध्यकालीन एवं वर्तमानकालीन ग्रन्थोंकी रचनापर आधारित है। कहनेको तो उनका स्रोत भी प्राचीन वैदिक साहित्य कहा जाता है परन्तु वास्तवमें यह सर्व निर्माण आधुनिक स्वार्थी पौरोहित्य कला विज्ञों का है इससे उसके निवासियोंका धार्मिक विश्वास विरत, उसकी नैतिक पतनकी पराकाष्ठा एवं उसके जीवनकी आधारभूत शिलायें भी निष्प्राण एवं गतिहीन हो गई है।

थ्योडोर गोल्डस्टकर द्वारा सम्पादित जैमिनीयन्यायमाला
विस्तरकी अंग्रेजी भूमिकासे लन्दन संस्करण १८७८ सन्।

Religious experience is a reality.

Science and theology as art forms.

Reality seems to concern rel gious beliefs much more than any others.

Page 326. The nature of the physical world : Eddington.

(Cambridge University edition)

Science is not yet in contact with ultimate reality. [Encyclopedia of modern knowledge the world ; whence and how].

Sir James Jeans.

(साइन्स और थ्योलोजीः एज आर्ट फार्मस से)

धार्मिक विश्वासोंका सत्यके साथ अन्य वस्तुओंसे कहीं घनिष्ठतर सम्बन्ध है।

३२६ पृ० (दी नेचर आव् दी फीजिकल वर्ल्ड)

एडिङ्गटन कृत (केम्ब्रिज विश्वविद्यालय संस्करण)

विज्ञान अन्तिम सत्यके सन्निकट नहीं पहुंचा है।

धार्मिक अनुभव वास्तविक तथ्य है।

इन्साइक्लोपिडिया ऑफ माडर्न नालेज।

अभीतक हम वास्तविक तथ्यके सम्पर्कमें नहीं आये हैं

पदार्थका वस्तुतत्त्व हमारे मनस्तत्व और बुद्धितत्त्व के गम्य नहींहै—

दी वर्ल्ड व्हेन्स ॲण्ड हाउः सर जेम्स जीन्स

We are not yet in contact with ultimat reality

Real essence of substance is beyond ou knowledge

When we consider the modern estimat we may be inclined to sympathise rather wit ancient Brahmins who thought that the worl had always existed

Science News
Penguin Books 10

Bishop Auber said —

The Hindus are brave courteous, intelligent most eager for knowledge and improvement sober, industrious, dutiful to parents, affection able to their children , uniformally gentle and

---

जब हम आधुनिक विवरण पर विचार करते हैं तो हमें प्राचीन ब्राह्मणों के विचारों में सत्य दीखता है जो ससार को शाश्वत बतलाते है ।

पेड्गिन न्यूज पेड्गिन बुक्स १०

विशप ओबर कहते है ।

भारतीय हिन्दू वीर, विनम्र, वुद्धिमान, विवेको, ज्ञानकी अमर जिज्ञासा रखनेवाले और विकासशील जाति है जो गौरवपूर्ण परिश्रमशील, माता पिता के प्रति कर्तव्यपरायण और बालकोंको

patient and more easily affected by kindness and attention to their wants and feelings than any people I ever met with.

Let us not forget that just as moral strength is the backbone of British prestige and power, as art is the backbone of life in France, so also religion is the bedrock of India's future prosperity and happiness. Religion plays a signal role in our lives in bringing the three hundred sixty two million people of India with numerous barriers of sects and castes in them together under one banner whether we are rich or poor, whether we are Hindus, Jains or Christians.

स्नेह भरी दृष्टि से देखनेवाले, एक समान उदार दयालु, धीर गम्भीर और सरलता पूर्वक मनाये जाने और सबकी भावनाओं का अधिकाधिक आदर करनेवाले राष्ट्र के व्यक्ति हैं।

हमें यह नहीं भूल जाना चाहिये कि जिस प्रकार ब्रिटिश गौरव और शक्तिका आधार उस राष्ट्र की नौ सेना है और फ्रांस देशवासियोंके जीवन का मेरुदण्ड कलानिर्माणकी शृँखला है इसी प्रकार भारतीय भावी समृद्धि और आनन्द की आधारशिला धर्म है। ३६ करोड़ भारतीयों के विभिन्न जाति, भाषा, धर्म आदि की विभिन्न बाधाओं के रहते हुए भी एक पताका के नीचे लानेवाला तत्त्व धर्म ही है। फिर भले ही कोई धनी या

We are all in a sense receiving our vital sustenance from the pulse beat of faith in one God

Members of the Sanskrit Text Society —
Patron
His Royal Highness the Prince of Wales
Vice Patron
His Majesty the king of Belgians.
The Rt Hon the secretary of state for India
President
His Royal Highness the
Duc D' Aumala

निर्धन हो, चाहे कोई हिन्दू, जैन, फारसी या ईसाई हो हम सब, एक शब्द में, अपनी धमनियों की अव्यर्थ जीवनी शक्तिके स्रोत के लिये आत्मामें ईश्वर दृढ विश्वास को ही मानते है।

इङ्गलैण्ड में स्थापित संस्कृत ग्रन्थ प्रकाशन समिति के सदस्यों की नामावलि—

संरक्षक—हिज रायल हाइनेस वेल्स के राजकुमार।

उपसंरक्षक—

हिज मेजेस्टी बेल्जियन्स के राजा व माननीय भारत मंत्री।

सभापति—

हिज रायल हाइनेस ड्यूक ड आमला।

Vice Presidents :

His Excellency Mr. Van De Weyer.

The Right Hon. Lord Dufferin and Clanerboye

Treasurer :

David Salomons Esqr. M. M.

Hony Secy :

Octane Depierre, Esqr.

उपसभापति—

हिज एक्सेलेन्सी श्री वानडेवेयर, माननीय लार्ड डफरिन और क्लेनर वाय।

कोषाध्यक्ष—डेविड सलोमन्स एम० एम०।

अवैतनिक मंत्री—ओक्टेन डि पियर।

अणुभाष्येऽपि :—

अलौकिको हि वेदार्थो न युक्त्या प्रतिपद्यते ।
तपसा वेद युक्त्या तु प्रसादात्परमात्मनः ॥
सन्देहवारकं शास्त्रं बुद्धिदोषात्तदुद्भवः ।
विरुद्धशास्त्रसम्भेदादङ्गैश्चाशक्यनिश्चयः ॥
तस्मात्सूत्रानुसारेण कर्तव्यः सर्वनिर्णयः ।
अन्यथा भ्रश्यते स्वार्थान्मध्यमश्च तथाऽऽदिमः ॥
"श्रुतिस्मृति पुराणानां विरोधो यत्र दृश्यते ।
तत्र श्रौतं प्रमाणन्तु तयोर्द्वैधे स्मृतिर्वरा ॥ ४ ॥"

व्यास स्मृति १ अध्याय

वेदवेदाङ्गशास्त्राणि सेतिहासानि चाभ्यसेत् ।
अध्यापयेच्च तच्छिष्यान् सद्विप्रांश्च द्विजोत्तमः ॥
इतिहासपुराणानां वेदोपनिषदां द्विज. ।
शक्त्या सम्यक्पठेन्नित्यमल्पमप्यासमापनात् ॥ १०

स यज्ञदानतपसामखिलं फलमाप्नुयात्। वेदेभ्योऽन्यत्र सग
स विप्रः शूद्रतामियात्। तस्माद्दहर्वेदं द्विजोऽधीयीत वाग्यत

ब्रह्मपुराणेऽपि

इतिहासपुराणानि यदन्यच्छब्दगोचरम्। स्वतो मुखे मम यादभूच स्मृतिगोचरम्। वेदार्थश्च मया सर्वो ज्ञातोऽसौ तत्व न् घ। ततः पुराणसूक्तं तदस्मरं लोकविश्रुतम्। यशोपक सर्वं तदुक्तं त्वकल्पयम्। १६१ अ० २७-२८श

ब्राह्मणं च पुरस्कृत्य ब्राह्मणेन च कीर्तितम् ।
पुराणं शृणुयान्नित्यं महापापदवानलम् ॥
पुराणं सर्वतीर्थेषु तीर्थश्चाधिकमुच्यते ।
यस्यैकपादश्रवणाद्धरिरेव प्रसीदति ।
सर्वेषां जगतामेव हरिरालोकहेतवे ।
तथैवान्त प्रकाशाय पुराणाथवचो हरिः ।
विचरेदिह भूतेषु पुराणं पावनं परम् ।
तस्माद्यदि हरेः प्रीतेरुत्पादे धीयते मतिः ।
श्रोतव्यमनिशं पुम्भिः पुराणं कृष्णरूपिणः ।
विष्णुभक्तेन शान्तेन श्रोतव्यमिति दुर्लभम् ।
पुराणाख्यानममलममलीकरणं परम् ।
यस्मिन्वेदार्थमाहृत्य हरिणा व्यासरूपिणा ।
पुराणं निर्मितं विप्र तस्मात्तत्परमो भवेत् ।
पुराणो निश्चितो धर्मो धर्मश्च केशवः स्वयम् ।
तस्माच्छ्रुते पुराणे हि श्रुते विष्णुर्भवेदिति ।
तथा गङ्गाम्बुसेकेन नाशयेत्किल्बिषं स्वकम् ।
केशवो द्रवरूपेण पापात्तारयते महीम् ।
वैष्णवो विष्णुभजनस्याऽऽकाङ्क्षी यदि वर्तते ।
गङ्गाम्बुसेकममलममलीकरणं चरेत् ।
विष्णुभक्तिप्रदा देवी गङ्गा भुवि च गीयते ।
विष्णुरूपा हि सा गङ्गा लोकनिस्तारकारिणी ।

ब्राह्मणेषु पुराणेषु गङ्गाया गोषु पिप्पले ।
नारायणधियापुम्भिर्भक्ति कार्या ह्यहैतुकी ।
पद्मपुराण आदिखण्डे ६२ अध्याय—५८ श्लो०

योऽधीते श्रुतिमेवाऽऽदौ समस्यात्तपसा मुने । श्रुतेऽध्यापनात्पुण्य यदाप्नोति द्विजोत्तम । तदभ्यायाच्च जप्याच्च द्विगुण फलमश्नुते। जगद्यथा निरालोक जायते शशिभास्करौ । विना तथा पुराण हि ध्येयमस्मान्महामुने ॥ तपमान सदाज्ञान यो धारयति शास्वत सम्बोधयति लोकञ्च तस्मात्पूज्यतमो गुरु । सर्वेषाञ्चैव पात्राणा श्रेष्ठ पात्र पुराणवित् पतनात्त्रायते यस्मात्तस्मात्पात्रमुदाहृतम्।
विष्णोरायतने यस्तु कारयेद्धर्म पुस्तक देव्या शम्भोर्गणेशस्य अर्कस्यच तथा पुन ॥ राजसूयाश्वमेधाभ्या फलम्प्राप्नोति मानव। इतिहासपुराणाना पुण्य पुस्तकवाचनम् सर्वान्कामानवाप्नोति सूर्यलोकम्भिनत्ति ॥ ।सूर्यलोकञ्चभित्वाऽसौ ब्रह्मलोकञ्च गच्छति। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कार्यम्पुस्तकवाचनम्। इतिहासपुराणाना
[पद्मपुराण उत्तर खण्ड]

वैष्णव दक्षिणो बाहु शैव वामो महेशितु ।
उरू भागवतप्रोक्त नाभि स्यान्नारदीयकम् ।
मार्कण्डेयञ्च दक्षाङ्घ्रिर्वामो ह्याग्नेयमुच्यते ।
भविष्य दक्षिणो जानुर्विष्णोरेव महात्मन ।
ब्रह्मवैवर्तसञ्ज्ञन्तु वामजानुरुदाहृत ।
लैङ्गन्तु गुल्फक दक्ष वाराह वामगुल्फकम् ।

स्कान्दं पुराणं लोमानि त्वगस्य वामनं स्मृतम् ।
कौर्मं पृष्ठं समाख्यातं मात्स्यं मेदः प्रकीर्त्यते ।
मज्जा तु गारुडम्प्रोक्तं ब्रह्माण्डमस्थि गीयते ।
एवमेवाभवद्विष्णुः पुराणावयवो हरिः ।

[पद्मपुराण आदिम खण्ड]

अथ विष्णोः परेशस्य नानाविग्रहधारिणः ।
एकं पुराणफलकं तच्छृणुध्वं द्विजोत्तमाः ।

तत्र ब्रह्मकल्पवृत्तान्तोद्भवं ब्राह्मं हरेर्मस्तकं पद्मककल्पवृत्तान्तोद्भवं पाद्मं हृदयं, वाराहकल्पवृत्तान्तोद्भवं वैष्णवं दक्षिणबाहुः, श्वेतकल्पवृत्तान्तोद्भवं शिवपुराणं वामबाहुः, सारस्वतकल्पवृत्तान्तोद्भवं भागवतं वक्षःस्थलं, बृहत्कल्पवृत्तान्तोद्भवं नारदीयं नाभिः, श्वेतवाराहकल्पवृत्तान्तोद्भवं मार्कण्डेयं दक्षिणाङ्घ्रिः, ईशानकल्पवृत्तान्तोद्भवं आग्नेयं वामांघ्रिः, अघोरकल्पवृत्तान्तोद्भवं भविष्यं दक्षिणजानु, रथन्तरकल्पवृत्तान्तोद्भवं ब्रह्मवैवर्तं वामजानु, कल्पान्तवृत्तान्तोद्भवं लैङ्गं दक्षिणगुल्फः, मनुकल्पवृत्तान्तोद्भवं वाराहं वामगुल्फः, तत्पुरुषकल्पवृत्तान्तोद्भवं स्कान्दं हरेः रोमाणि, शिवकल्पानुषङ्गि वामनं शरीरत्वक्, लक्ष्मीकल्पवृत्तान्तोद्भवं कौर्मं पृष्ठं, कल्पादौ सतकल्पवृत्तान्तोद्भवं मात्स्यं मेद्रम्, गरुड़कल्पवृत्तान्तोद्भवं गारुड़ं दक्षिणं पादाग्रं, भविष्यकल्पानांवृत्तान्तोद्भवं ब्रह्माण्डं वामपादाग्रं, एवं सत्त्वरजस्तम आद्यात्मकमष्टादश पुराणरूपो हरिः पुराणेषु प्रकाशते। तत्र सात्त्विक पुराणे विष्णो रधिकमाहात्म्यं राजसे प्रकृतिब्रह्मसूर्याणां तामसेऽग्निशिव-

भैरवादीनां माहात्म्यम्। मिश्रे तु पितॄणां माहात्म्यम्। एव-मष्टादशं मुख्यपुराणसंख्यासमूहश्चतुर्लक्ष एव।

(इतिपाद्ममात्स्ययोः)

अथ च अष्टादशभ्यश्च पृथक् पुराणं यत्प्रदृश्यते। विजानीध्वं द्विजश्रेष्ठास्तदेतेभ्यो विनिर्गतम्।

तन्त्रवार्तिके प्रथमाध्यायस्य तृतीय पादे:—

एवेवेतिहासपुराणयोरप्युपदेशवाक्यानां गतिः।
उपाख्यानानि त्वर्थवादेषु व्याख्यातानि।
यत्तु पृथिवीविभागकथनं तद्धर्माधर्मसाधनफलोपभोग-प्रदेशविवेकाय किञ्चिद्दर्शनपूर्वकं किञ्चिद्वेदमूलम्।
वंशानुक्रमणमपि-ब्राह्मणक्षत्रियजातिगोत्रज्ञानार्थं दर्शनस्मरणमूलम्। देशकालपरिमाणमपि लोकज्योतिः-शास्त्रव्यवहारसिद्ध्यर्थं दर्शनगणितसम्प्रदायानुमान-पूर्वकम् भाविकथनमपि त्वनादिकालप्रवृत्तयुगस्वभाव-धर्माधर्मानुष्ठानफलविपाकवैचित्र्यज्ञानद्वारेण वेदमूलम् अङ्गविद्यानामपिकत्वर्थपुरुषार्थप्रतिपादनं लोकवेदपूर्वकत्वेन विवेक्तव्यम्—

इससे स्पष्ट हो गया कि धर्मशास्त्रों के पढ़े बिना विशाल भावना का निर्माण असम्भव है। विशाल भावना के बिना शान्ति, ऐश्वर्य और सुशील की अभिवृद्धि कभी नहीं हुआ करती।

कुछ विद्वानों की यह धारणा है कि पुराणों में अनेक स्थलों पर उत्तरवर्ती आचार्यों ने अपने अपने मतों के स्थापन तथा पुष्टि

लिये अनेक प्रक्षिप्त पाठ समाविष्ट कर दिये हैं; परन्तु जहाँ तक
इन पुराणोंका पारायण व मनन किया है उससे मेरी तुच्छ
इसी निष्कर्ष पर पहुंची है कि इन अष्टादश पुराणों में कहीं
प्रक्षिप्त पाठ का समावेश नहीं किया है। अन्य श्रीमद्भागवत
दि उपपुराणोंमें चाहे प्रक्षिप्त श्लोक समाविष्ट कर दिये गये हों
तु अष्टादश महापुराणों में महर्षिप्रणीत पुरातन पाठ ही ज्यों
त्यों अपरिवर्तित तथा अपरिवर्द्धित रूपमें चला आ रहा है
में किसी प्रकार की वृद्धि साम्प्रदायिक आचार्यों के द्वारा
की गई प्रतीत होती है। प्रत्युत वराहपुराण में तो महर्षि-
त पूरा पाठ भी नहीं उपलब्ध हो रहा है। इनमें आया हुआ
एक शब्द ध्रुव सत्य तथा सृष्टि कल्याण भावना से ओत-
है। उसमें किसी प्रकार आशंका व सन्देह का अवकाश नहीं
ईश्वरीय प्रकृति की मर्यादारूप से इनमें स्थिति है। इनकी
कारी न होने के कारण ही आज का मानव मनमाने कर्म
नाना कष्टों का शिकार बना हुआ है, अतः आत्म कल्याणा-
र्थी प्रत्येक मानव को इनका मनन करना नितान्त आव-
क है।

आजकल विशाल भावनायें कितनी संकुचित होती जा रही
इसी बातसे स्पष्ट है कि बालकों के धर्मामज्ञान को थोड़े
मय के लिये दिये गये प्रश्नपत्रों द्वारा ही परीक्षा कर
ी योग्यता का प्रमाण पत्र दे दिया जाता है। इससे
ासनहीनता, प्राचीन गुरुशिष्य-परम्परा का अभाव और

और इतनी विशाल ज्ञान राशि पाने पर भी अज्ञानान्धकारमें आज-कलके नवयुवकों का मस्तिष्क भटकता है कि इन्हें केवल सङ्घर्ष, अशान्ति और कलह की चिनगारी सुलगाने में ही आनन्द आता है।

आज कल हमारे बालकों को जो पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं उससे विकाश बिलकुल ही रुक जाता है। आज तो कुछ प्रश्नपत्र पढ़ाकर उनके अपेक्षित उत्तरों से सन्तोष माननेवाला अध्यापक सब शिष्य और उनके अभिभावकगण कृतकृत्य हो जाते हैं, सब एकही ध्येय बनाये रहते हैं ; उत्तीर्ण होना। क्या बालक के माता पिता; क्या भाई बहिन क्या अन्य शुभचिन्तक एक ही बात कहते है कि हमारा बालक उत्तीर्ण हो।

इसका बुरा परिणाम यहां तक देखने में आता है कि नौनिहाल राष्ट्र की भावी उन्नति ये बालक और ये नवयुवक अपने जीवन तक की भी बाजी लगा देते है। अर्थात् इस पर भी दुर्भाग्य से उत्तीर्ण होने का सुसमाचार न मिला तो लज्जित होकर यह नवयुवक आत्महत्या तक कर लेते है। ऐसे सुन्दर ज्ञान की प्राप्ति के लिये घृणित उपाय काम मे लेते है जैसे, नकल करना, परीक्षक को अनाचार का शिकार बना उससे अनुचित रीति से अङ्क ले लेना। कहां तक कहें यदि कहीं थोडा सा भी प्रश्नपत्र कठिन आ जावे तो परीक्षा भवन में हो हल्ला मचा कर उद्दण्डता से प्रश्नपत्र के विरोध में हड़ताल कर देना अनुशासन तोडना, और यहांतक कि परीक्षा भवन के अध्यक्ष की हत्यातक भी की गई देखी गई है। ऐसे राष्ट्र की जड़ को खोखले

बनानेवाले दूषित तत्त्व इस शिक्षा के अनिवार्य अङ्ग बन चुके हैं। बस ऐसे विकास से भगवान ही रक्षा करे। हमें विकास की अवश्य आवश्यकता है परन्तु शक्तिक्षीण करने वाला विकास अनिच्छित है।

ऊपर निवेदन किया है कि सारा यह दोष आजके विद्यार्थी का ही नहीं है इसमें उनकी शिक्षा पद्धति का बाह्य और अन्त रूप बनाने वाली विश्वविद्यालय जैसी संस्थाओं का भी कम दोष नहीं है। वे सब समय एक ही दृष्टि से काम करते हैं। किसी प्रकार विश्व-विद्यालय के परीक्षार्थी छात्रों की संख्या बढ़े। वे यह कभी नहीं सोचते कि जहां पञ्चवर्षीय योजना के लिये बड़े भारी रूप में जो नदी बाध योजनायें विद्युत् उत्पादनशक्तिकेन्द्र और अन्नोत्पादनार्थ नहरें बनाई जा रही हैं उनके पीछे सब को चलाने वाले इस यौद्रिक केन्द्र मनुष्यरूपी शक्ति का सञ्चालन करने के लिये हमने क्यों उपेक्षा और अनवधानता कर रक्खी है? आज तक इस शिक्षाको भारतीय रूपरेखा में ढालने का प्रयत्न हुआ अवश्य लेकिन सब ही नक्कार खाने में तूती की आवाज ही सिद्ध हुई। आज उत्तीर्ण होने के लिये प्रयत्न जोरों से चालू है और संसार यात्रामें प्रवेश करने पर उस कर्तव्याकर्तव्यशून्य व्यक्ति का ज्ञान उसे सदा थपेड़ों से सीधा करता है।

इस प्रकार हमें अपने आपको भावी सन्तान की विकाश शील प्रवृत्ति के लिये सचेष्ट रूपमें प्रयत्न करना चाहिये इसीमें सब का कल्याण है।

और इतनी विशाल ज्ञान राशि पाने पर भी अज्ञानान्धकारमें आज कलके नवयुवकों का मस्तिष्क भटकता है कि इन्हें केवल सट्टे, अशान्ति और कलह की चिनगारी सुलगानेमें ही आनन्द आता है।

आज कल हमारे बालकों को जो पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं उससे विकाश बिल्कुलही रुक जाता है। आज तो कुछ प्रश्नपत्र पढ़ाकर उनके अपेक्षित उत्तरों से सन्तोष माननेवाला अध्यापक सब शिष्य और उनके अभिभावकगण एकतरल्य हो जाते हैं, सब एकही ध्येय बनाये रहते हैं; उत्तीर्ण होना। क्या बालक के माता पिता, क्या भाई बहिन क्या अन्य शुभचिन्तक एक ही बात कहते है कि हमारा बालक उत्तीर्ण हो।

इसका बुरा परिणाम यहा तक देखने में आता है कि नौनिहाल राष्ट्र की भावी उन्नति ये बालक और ये नवयुवक अपने जीवन तक की भी बाजी लगा देते हैं। अर्थात् इस पर भी दुर्भाग्य से उत्तीर्ण होने का सुसमाचार न मिला तो लज्जित होकर यह नवयुवक आत्महत्या तक कर लेते हैं। ऐसे सुन्दर ज्ञान की प्राप्ति के लिये घृणित उपाय काम में लेते है जैसे नकल करना, परीक्षक को अनाचार का शिकार बना उससे अनुचित रीति से अङ्क ले लेना। कहा तक कहें यदि कहीं थोड़ा सा भी प्रश्नपत्र कठिन आ जावे तो परीक्षा भवन में हो हल्ला मचा कर उद्दण्डता से प्रश्नपत्र के विरोध में हडताल कर देना अनुशासन तोडना, और यहातक कि परीक्षा भवन के अध्यक्ष की हत्यातक भी की गई देखी गई हैं। ऐसे राष्ट्र की जड को खोख

बनानेवाले दूषित तत्त्व इस शिक्षा के अनिवार्य अङ्ग बन चुके है। बस ऐसे विकास से भगवान ही रक्षा करे। हमें विकास की अवश्य आवश्यकता है परन्तु शक्तिक्षीण करने वाला विकास अनिच्छित है।

ऊपर निवेदन किया है कि सारा यह दोष आजके विद्यार्थी का ही नहीं है इसमें उनकी शिक्षा पद्धति का बाह्य और अन्त रूप बनाने वाली विश्वविद्यालय जैसी सस्थाओं का भी कम दोष नहीं है। वे सब समय एक ही दृष्टि से काम करते है। किसी प्रकार विश्व विद्यालय के परीक्षार्थी छात्रों की सख्या बढे। ये यह कभी नहीं सोचते कि जहा पञ्चवर्षीय योजना के लिये बडे भारी रूप में जो नदी बाध योजनायें विद्युत् उत्पादनशक्तिकेन्द्र और अन्नोत्पादनार्थ नहरें बनाई जा रही है उनके पीछे सब को चलाने वाले इस यौद्धिक केन्द्र मनुष्यरूपी शक्ति का सञ्चालन करने के लिये हमने क्यों उपेक्षा और अनवधानता कर रक्खी है? आज तक इस शिक्षाको भारतीय रूपरेखा में ढालने का प्रयत्न हुआ अवश्य लेकिन सब ही नक्कार खाने में तूती की आवाज ही सिद्ध हुई। आज उत्तीर्ण होने के लिये प्रयत्न जोरों से चालू है और ससार यात्रामें प्रवेश करने पर उस कर्तव्याकर्तव्यशून्य व्यक्ति का ज्ञान उसे सदा थपेडों से सीधा करता है।

इस प्रकार हमें अपने आपको भावी सन्तान की विकाश शील प्रवृत्ति के लिये सचेष्ट रूपमें प्रयत्न करना चाहिये इसीमें सब का कल्याण है।

धर्मशास्त्र ग्रन्थों में महर्षियों ने ज्ञान विज्ञान को कूट कूट कर भर दिया है। इन पुण्यश्लोक महर्षियों के लक्ष्य को उन्हीं के समान उदार लोकोपकारितापूर्ण बुद्धिसम्पन्न व्यक्ति ही जानसकते हैं क्योंकि इनका निर्माण ही तप. पूत महर्षियों की कल्याणमयी प्रवृत्ति एवं सद्विचारपूर्ण भावनाओं से हुआ है।

आधुनिक लोग सत्यमार्ग बताने वाले शास्त्रों के अध्ययन को एक किनारे छोड बडीर डिग्रियों के लिये एटी चोटी का पसीना एक कर देते है। अपनी विद्वत्ता की कसौटी उन्हीं उपाधियों के प्रमाण पत्रों को ही समझते है। परन्तु यह सब शास्त्रीय ज्ञान एवं साहित्य को सङ्कुचित करने में ही अधिक सहायक हुआ है और साथ ही उस सुन्दर ज्ञान की खिल्ली उडाने में भी। क्योंकि इन गम्भीर परोक्ष अर्थों से पूर्ण शास्त्रों को सङ्कुचित भावोंसे देखने से ही अपना पराया किसी का भी हित साधन नही हो सकता है। इसी का परिणाम है सृष्टि की अशान्ति। मुझे तो खेद और दुःख तब होता है जब मैं यह सोचता हू कि ऐसे महानुभाव श्रुति स्मृति एव पुराणादि के विना अपने को सङ्कीर्ण मनोवृत्ति का शिकार बना अपनी उपाधियों से गौरवान्वित होकर हमारी भावी पीढा को किस प्रकार शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, आत्मिक एवं सर्वाङ्गीण शिक्षा देकर उन्नत बनाने के लिये शिक्षा के अधिकारी कर्णधारों द्वारा चुने जाते हैं। क्या ये कभी भावी सन्तान को उन्नत शिक्षा दे सकेंगे? यह सब

प्रभु ही साक्षात्प से जानें। मुझे तो किसी प्रकार भी उन भावी सन्तानों का उद्धार इनसे असम्भव सा ही लगता है।

शास्त्र स्पष्ट कहते हैं कि शास्त्रों के विना जो भी कार्य करता है वह अपना एवं अपने से सम्बन्धित सभी का अत्यधिक अहित करता है।

श्रुतिर्हीनाय विप्राय स्मृतिर्हीने तथैव च। दानम्भोजनमन्यच्च दत्त कुलविनाशनम्।

अस्तु, सृष्टि में शान्ति स्थापना इनमें निहित भावों को व्यापक दृष्टि से प्रचार करने से ही हो सकती है। इसका एकमात्र उपाय है बहुश्रुतता, श्रुति स्मृति पुराणादि की पूरी सङ्गति विठाना एवं उदार प्राणिहित की भावना से अर्थ का प्रकाश करना।

बुद्धिवृद्धिकराण्याशु धन्यानि च हितानि च। नित्य शास्त्राण्यवेक्षेत निगमाञ्चैव वैदिकान्॥ यथा यथा हि पुरुष शास्त्र समधिगच्छति। तथा तथा विजानाति विज्ञानञ्चास्य रोचते। मनुस्मृति अ० ४।१९।२०।

शास्त्रों को बुद्धिके द्वारा कसौटी पर कस कर पूर्ण सङ्गत अर्थ निकालना चाहिये जो सर्व प्राणि हित में पूर्ण सहायक हो क्योंकि इनका एक एक शब्द ईश्वराज्ञा है जिसका स्वार्थमय अभिप्राय मानव की अपूर्णता और अवनति का द्योतक और हमारे लिये सदा ही घातक है।

जो लोग इस ज्ञानमे वञ्चित हैं उनकी खाली डिग्रिया

उपाधिमात्र है। "ज्ञानं भारः क्रियाम्विना।" स्वरूपकी उपलब्धि युक्त क्रिया के बिना ज्ञान भार स्वरूप है।

"शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खा यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान्" शास्त्राध्ययन करनेपर भी क्रिया रहित उच्च आशय से जीवनमें शास्त्र के सिद्धान्तों का आचरण न करने से प्राणिमात्र का उपकार न कर सकने के कारण ऐसे व्यक्ति के सब ग्रन्थों का पठन अपूर्ण ही माना जाता है। आज तो जब परीक्षा पिशाचिनी का जोर बढ़ रहा है तो ग्रन्थका उच्च लक्ष्य से आशय बिलकुल समझा ही नहीं जाता और "पुस्तकी भवति पण्डितः" होकर अपने को धन्य समझनेमें ही उनके लक्ष्य की पूर्ति हो जाती है। फलतः शास्त्र जीवन शास्त्रबुद्धि और संस्कृति का रूप सब विकृत हो गया है ऐसे लोगोंको शास्त्र का तत्त्व दुरधिगम है।

गुरु प्रसाद, भगवत्कृपा और शास्त्र बुद्धिसे इनका स्वाध्याय उदार हृदय और लोकोपकारितापूर्ण भावना द्वारा अध्ययन करने से ही शास्त्र जीवनी प्रवलित हो सकती है। तभी प्राणीमात्र का पूर्ण कल्याण है।

इस लिये सभी से मेरी विनम्र प्रार्थना है कि शास्त्रों में जो तत्त्व कूट कूटकर भरा है उसे यथार्थ रूपमें जानने का प्रयत्न हो इसी से शान्ति प्राप्त होकर अमरता, सफलता और स्थायिता मिलती है। अतः विशाल हृदय और उच्च भावना से इनका स्वाध्याय कर प्राणी मात्र के कल्याण में संलग्न रहें। साथही

यह ध्यान रहे वृद्धि के विना तत्त्व परिणाम और ज्ञान की वृद्धि नहीं होती एवं ज्ञान की प्राप्ति के विना मोक्ष असम्भव है। संस्कृत का अक्षर ज्ञान मुझे स्वल्प है न तो मैं स्वयं व्याकरण के व्युत्पत्ति लभ्य शब्द अर्थ का ज्ञाता हूँ, न ही मैंने साहित्य का किसी प्रकार से विशेष अध्ययन किया है परन्तु मेरा मन सदा से ही इधर लगा है। हां, गतदशकों से मैं संस्कृत साहित्य का यत्किञ्चिन् आस्वादन पण्डितों की सहायता से कर पाया हूँ। ज्यों ज्यों मेरा प्रवेश होता गया त्यों त्यों ज्ञानवृद्धि के साथ मेरा प्रेम और आकर्षण इस अलौकिक साहित्य के प्रति अधिकाधिक अगाध श्रद्धा के साथ बढता गया। मुझे प्रति दिन अमित धन राशि मिलती जाती है। मेरा समय दूसरे व्यवहार के कार्यों में लगा रहनेपर भी अपना मन अहर्निश इनके स्वाध्याय में प्रवृत्त होकर अमित आनन्द लूटने की अभिलाषा करता है। अवश्य ही जीवन में इनका स्वाध्याय स्पृहणीय है।

इसी अगाध श्रद्धा एव प्रेम का ही प्रत्यक्ष फल यह पुराण परिचयके रूपमें इन पृष्ठोंमें एकत्रित संग्रह थोडा बहुत सेवा में प्रस्तुत है। मैं अपने नित्य स्वाध्यायसे जो कुछ इस महान् अगाध समुद्र में से प्राप्त करता हूँ वह सब यथासमय पत्रों द्वारा निवेदन किया जाता ही है।

आशा है, उदार पाठकगण अभिनव, स्वतन्त्रता के विकसनशील वातावरण में सर्वाधिक शास्त्रमय जीवन बनाकर आदर्श

एवं यथार्थवादी कसौटी पर सिद्धान्तों का निर्धारण कर इन महान् ग्रन्थों में प्रस्तुत ज्ञान का सच्चे अर्थों में प्रचार करेंगे।

इनमें जो कुछ सुन्दर बन सका है वह आप उदार सज्जनोंकी महनीय कृपा का फल है और कोई त्रुटिपूर्ण या असुन्दर वस्तु भूल से रह गई हो उसके लिये मैं करबद्ध क्षमा प्रार्थी हूँ। मैं अहर्निश आप सभी महानुभावों के शुभाशीर्वाद का इच्छुक हूँ जिससे प्रभु कृपा द्वारा शक्ति एवं सत्प्रेरणा से कर्तव्य पालन में लगा रहूँ। अपने विनम्र निवेदन का उपसंहार करते हुए प्रभु से हम सब को सद्बुद्धि प्रदान एवं कर्तव्य पालन क्षमता की सतत प्रार्थना है।

ॐ तत्सद् ब्रह्मार्पणमस्तु।

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

श्रीब्रह्मपुराण में आये हुए विषयों का अनुक्रम

का आख्यान। उत्तानपाद के वंश का वर्णन। प्रसङ्ग से पृथुका जन्म। प्रचेताओं की उत्पत्ति प्रचेताओं के मुख से निकली हुई अग्नि से वृक्षों का जलना। उनका वृक्षकन्या के साथ विवाह। वृक्षकन्या में दक्ष की उत्पत्ति एवं दक्ष का वंशवर्णन एवं इस कथा के सुनने का फल।

देवताओं की उत्पत्ति कथन। सर्व प्रथम दक्ष की मानसिक सन्तान का वर्णन पुन मैथुन धर्म से असिक्नी नामक पत्नी में हर्यश्वों का जन्म। पिता की आज्ञा से वंश बढाने के लिये इच्छुक हर्यश्वों को नारदजी का उपदेश और उनका वन में जाना। फिर शबलाश्व नाम पुत्रों की उत्पत्ति, उनक भी नारद जो के उपदेश से पूर्ववत् वन में जाना। शबलाश्वों को नष्ट जान कर दक्ष ने फिर ६० कन्याओं का उत्पत्ति क उनका विवाह एव उनका सन्तानों का वर्णन। मरुद्गण की उत्पत्ति।

अकृत्वा पादयो शौच दिति शयनमाविशत्।
निद्रा चाहारयामास तस्यां कुक्षिं प्रविश्य ह ॥
वज्रपाणिस्ततो गर्भं सप्तधा त न्यकृन्तयत्।
स पाट्यमानो गर्भोऽथ वज्रेण प्ररुरोद ह ॥
मा रोदीरिति त शक्र पुन पुनरथाब्रवीत्।
सोऽभवत् सप्तधा गर्भ स्तमिन्द्रो रुषित पुन ॥
एकैक सप्तधा चक्रे वज्रेणैवारिकर्षण ।

मरुतो नाम ते देवा बभूवु द्विजसत्तमाः ॥
भूत सर्ग के सुनने का फल।

पितामह द्वारा उन-उन स्थलों पर किये गये देव दानवों का राज्याभिषेकवर्णन।
पृथुचरित्र का आरम्भ। वेन का चरित। वेन के दुश्चरित्रों को देखकर ऋषियों द्वारा शाप देना। ऋषियों के शाप से मरे हुये वेन की बाहु के मथन से पृथु का जन्म, पृथु का राज्याभिषेक, पृथु के राज्यकी स्थितिका वर्णन, सूत, मागध एवं वन्दी जन द्वारा पृथु की स्तुति।
आपस्तस्तम्भिरे तस्य समुद्रमभियास्यतः।
पर्वताश्च ददुर्मार्गं ध्वजभङ्गश्च नाभवत् ॥
अकृष्टपच्या पृथिवी सिध्यन्त्यन्नानि चिन्तनात्।
सर्वकामदुघा गावः पुटके पुटके मधु।
पृथु का पृथ्वी पर शासन।

पृथु का पृथ्वी के दोहने का वर्णन।
तत उत्सारयामास शैलान् शतसहस्रशः।
धनुष्कोट्या तदा वैन्यस्तेन शैला विवर्द्धिताः ॥
नहि पूर्वे विसर्गे वै विषमे पृथिवीतले।

का आख्यान। उत्तानपाद के वंश का वर्णन। प्रसङ्ग से पृथुका जन्म। प्रचेताओं की उत्पत्ति प्रचेताओं के मुख से निकली हुई अग्नि से वृक्षों का जलना। उनका वृक्षकन्या के साथ विवाह। वृक्षकन्या में दक्ष की उत्पत्ति एवं दक्ष का वंशवर्णन एवं इस कथा के सुनने का फल।

देवताओं की उत्पत्ति कथन। सर्व प्रथम दक्ष की मानसिक सन्तान का वर्णन पुन: मैथुन धर्म से असिक्नी नामक पत्नी में हर्यश्वो का जन्म। पिता की आज्ञा से वंश बढाने के लिये इच्छुक हर्यश्वों को नारदजी का उपदेश और उनका वन में जाना। फिर शबलाश्व नाम पुत्रों की उत्पत्ति, उनका भी नारद जी के उपदेश से पूर्ववत् वन में जाना। शबलाश्वों को नष्ट जान कर दक्ष ने फिर ६० कन्याओं की उत्पत्ति की उनका विवाह एवं उनको सन्तानों का वर्णन। मरुद्गण की उत्पत्ति।

अकृत्वा पादयो. शौचं दिति· शयनमाविशत्।
निद्रा चाहारयामास तस्यां कुक्षिं प्रविश्य सः॥
वज्रपाणिस्ततो गर्भं सप्तधा त न्यकृन्तयत्।
स पाट्यमानो गर्भोऽथ वज्रेण प्ररुरोदह॥
मा रोदीरिति त शक्र. पुन पुनरथाब्रवीत्।
सोऽभवत् सप्तधा गर्भ स्तमिन्द्रो रुपितः पुनः॥
एकैक. सप्तधा चक्रे वज्रेणैवारिकर्षणः।'

मरुतो नाम ते देवा बभूवु द्विजसत्तमाः ॥
भूत सर्ग के सुनने का फल।

पितामह द्वारा उन-उन स्थलों पर किये गये देव दानवों का राज्याभिषेकवर्णन।
पृथुचरित का आरम्भ। वेन का चरित। वेन के दुश्चरित्रों को देखकर ऋषियों द्वारा शाप देना। ऋषियों के शाप से मरे हुये वेन की बाहु के मथन से पृथु का जन्म, पृथु का राज्याभिषेक, पृथु के राज्यकी स्थितिका वर्णन, सूत, मागध एवं बन्दी जन द्वारा पृथु की स्तुति।
आपस्तस्तम्भिरे तस्य समुद्रमभियास्यत।
पर्वताश्च ददुर्मार्गं ध्वजभङ्गश्च नाभवत् ॥
अकृष्टपच्या पृथिवी सिध्यन्त्यन्नानि चिन्तनात्।
सर्वकामदुघा गाव पुटके पुटके मधु।
पृथु का पृथ्वी पर शासन।

पृथु का पृथ्वी के दोहने का वर्णन।
तत उत्सारयामास शैलान् शतसहस्रश।
धनुष्कोट्या तदा वैन्यस्तेन शैला विवर्द्धिता ॥
नहि पूर्वे विसर्गे वै विषमे पृथिवीतले।

सविभागं पुराणां च ग्रामाणां चाभवत्तदा ॥
न शस्यानि न गोरक्ष्यं न कृषिर्न वणिक् पथः ।
नैव सत्यानृतं चासीन्न लोभो न च मत्सरः ॥
वैवस्वतेऽन्तरे तस्मिन् साम्प्रतं समुपस्थिते ।
वैन्यात्प्रभृति वै विप्राः सर्वस्यैतस्य सम्भवः ॥
यत्र यत्र समं त्वस्या भूमेरासीत्तदा द्विजाः ।
तत्र तत्र प्रजाः सर्वा निवासं समरोचयन् ॥
आहारः फलमूलानि प्रजानामभवत्तदा ।
कृच्छ्रेण महता युक्त इत्येवमनुशुश्रुम ॥
स कल्पयित्वा वत्सं तु मनुं स्वायम्भुवं प्रभुम् ।
स्वपाणौ पुरुषव्याघ्रो दुदोह पृथिवीं ततः ॥
शस्यजातानि सर्वाणि पृथुर्वैन्यः प्रतापवान् ।
तेनान्नेन प्रजाः सर्वा वर्तन्तेऽद्यापि सर्वशः ॥

दोहने में वत्स, पात्र, दुग्ध और दोहनेवालों का वर्णन ।

ऋषयश्च सदा देवा पितरोऽथ सरीसृपाः । ६८
दैत्या यक्षाः पुण्यजना गन्धर्वाः पर्वता नगाः ॥
एते पुरा द्विजश्रेष्ठा दुदुहुर्धरणीं किल ।
क्षीरं वत्सश्च पात्रञ्च तेषां दोग्धा पृथक् पृथक् ॥
ऋषीणामभवत्सोमो वत्सो दोग्धा बृहस्पतिः ।
क्षीरं तेषां तपो ब्रह्म पात्रं छन्दांसि भो द्विजाः ॥
देवानां काञ्चनं पात्रं वत्सस्तेषां शतक्रतुः ।
क्षीरमोजस्करञ्चैव दोग्धा च भगवान् रविः ।

पितृणां राजतं पात्रं यमोवत्सः प्रतापवान्।
अन्तकश्चाभवद् दोग्धा क्षीरं तेषां सुधा स्मृता ॥
नागाना तक्षकोवत्सः पात्रं चालाबुसंज्ञकम्।
दोग्धा त्वैरावतो नागस्तेषां क्षीरं विषं स्मृतम् ॥
असुराणां मधुर्दोग्धा क्षीरं मायामयं स्मृतम्।
विरोचनस्तु वत्सोऽभूदायसं पात्रमेव च ॥
यक्षाणामामपात्रं तु वत्सो वैश्रवणः प्रभुः।
दोग्धा रजतनाभस्तु क्षीरान्तर्धानमेव च ॥
सुमाली राक्षसेन्द्राणां वत्सं क्षीरञ्च शोणितम्।
दोग्धा रजत नाभस्तु कपालं पात्रमेव च ॥
गन्धर्वाणां चित्ररथो वत्स पात्रं च पङ्कजम्।
दोग्धा च सुरुचिः क्षीरं तेषां गन्धः शुचिः स्मृतः ॥
शैलं पात्रं पर्वतानां क्षीरं रत्नौषधीस्तथा।
वत्सस्तु हिमवानासीद् दोग्धा मेरुर्महागिरिः ॥
प्लक्षो वत्सस्तु वृक्षाणा दोग्धा शालस्तु पुष्पितः।
पालाशपात्रं क्षीरञ्च छिन्नदग्धप्ररोहणम् ॥
सेयं धात्री विधात्री च पावनी च वसुन्धरा।
चराचरस्य सर्वस्य प्रतिष्ठा योनिरेव च ॥
सर्वकामदुघा दोग्ध्री सर्वशस्यप्ररोहिणी।
आसीदियं समुद्रान्ता मेदिनी परिविश्रुता।
मधुकैटभयोः कृत्स्ना मेदसा समभिप्लुता।
तेनेयं मेदिनी देवी उच्यते ब्रह्मवादिभिः ॥

का वध। घुन्धुमार को उत्तङ्क का वरदान। घुन्धुमार के वंशमें होने वाले राजाओं का संक्षेप में चरित्र वर्णन। सत्यव्रत राजाका चरित्र वर्णन एवं गालव चरित्र कथन।

समा द्वादश सो विप्रास्तेनाधर्मेण वै तदा।
दारास्तु तस्य विषये विश्वामित्रो महातपाः॥
सन्यस्य सागरान्तेतु चकार विपुलं तपः।
तस्य पत्नी गले बद्ध्वा मध्यमं पुत्रमौरसम्॥
शेषस्य भरणार्थाय व्यक्रीणाद् गोशते न वै।
तं च बद्धं गले दृष्ट्वा विक्रमार्थं नृपात्मजः॥
महर्षिपुत्रं धर्मात्मा मोक्षयामास सो द्विजाः।
सत्यव्रतो महाबाहुर्भरणं तस्य चाकरोत्॥
विश्वामित्रस्य तुष्ट्यर्थमनुकम्पार्थमेव च।
सोऽभवद्गालवोनाम गलेबन्धान्महातपाः॥
महर्षिः कौशिको धीमांस्तेन धीरेण मोक्षितः।

सत्यव्रतका त्रिशंकु नाम प्राप्ति करना, सशरीर त्रिशंकु का स्वर्ग जाना। हरिश्चन्द्र का जन्म कथन।

अर्द्धं शकानां शिरसो मुण्डयित्वा व्यसर्जयत्।
यवनानां शिरः सर्वं काम्बोजानां तथैव च॥
पारदा मुक्तकेशाश्च पह्लवाः श्मश्रुधारिणः।

न स्वाध्यायवषट्कारा कृतास्तेन महात्मना ॥
शका यवनकाम्बोजा पारदाश्च द्विजोत्तमा ।
कोणिसर्पा माहिषका दर्वाश्चोला सकेरला: ॥

राजा सगर का अश्वमेध यज्ञ करना। घोड़े को खोजने के लिये पृथ्वी को खोदते हुये साठ हजार सगर के पुत्रों को कपिल मुनिका शाप। अवशिष्ट चार पुत्रोंको कपिलजी का वरदान। साठ हजार पुत्रों का जन्मकथन।

घृतपूर्णेषु कुम्भेषु तान् गर्भान्निदधे सत ।
धात्रीश्चैकैकश प्रादात्तावती पोषणे नृप ॥
ततो दशसु मासेषु समुत्तस्थुर्यथा क्रमम् ।
कुमारास्ते यथाकाल सगरप्रीतिवर्द्धना ॥
षष्टि पुत्र सहस्राणि तस्यैवमभवन् द्विजा ।

भगीरथ की उत्पत्ति गगाका भागीरथी नाम प्राप्त करना।

अत्रि ऋषि का तप करना एव अत्रि के नेत्रों द्वारा दश तरह की सृष्टि का वर्णन। चन्द्र की उत्पत्ति। चन्द्र का बीज और औषधियोंका स्वामी बनना एवं राजसूय यज्ञारंभ। चन्द्र द्वारा वृहस्पतिजी की स्त्री तारा का हरण उसके निमित्त देव दानवों का युद्ध। वृहस्पति का तारा की प्राप्ति। गर्भ त्याग के लिये तारा के प्रति वृहस्पति का क्रोधयुक्त वचन कहना। इषीकास्तम्ब में तारा द्वारा गर्भ त्याग एवं बुधका प्रादुर्भाव।

सन्तान का वर्णन। धनु नाम के राजा से धन्वन्तरि का जन्म तथा भरद्वाज से आयुर्वेद की प्राप्ति। आयुर्वेद के आठ भाग करके अपने शिष्यों को वितरण करना। काशी को निकुम्भ का शापदान तथा शाप के अन्त में अलर्क द्वारा पुनः स्थापना करना।

नहुष से ययाति आदि पुत्रों का जन्म। ययाति के वंश का वर्णन। ययाति से पञ्च पुत्रों की उत्पत्ति। "मज्जरां गृहाण" मेरी वृद्धावस्था को ग्रहण करो इस प्रकार यदु के प्रति ययाति की आज्ञा। जरा नहीं ग्रहण करने वाले यदु को ययातिका शाप। पुरुसे ययातिको युवावस्था का दान और भोगनेके बाद ययातिको ज्ञान।

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूयएवाभिवर्द्धते॥
यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवःस्त्रियः।
नाल मेकस्य तत्सर्व मिति कृत्वा न मुह्यति॥

पुरुवंश का वर्णन। पुरुवंश के अन्तर्गत वंशवंशकथन। दुष्यन्त का जन्म। दुष्यन्त से शकुन्तला नामक पत्नी में भरत की उत्पत्ति। "भरत प्रभृति वंश जातानां पुरुषाणां भारता इति संज्ञा"। जह्नु के द्वारा गङ्गाजी को शाप। कुरु से निर्मित कुरुक्षेत्र का वर्णन। सोम वंश में प्रसिद्ध शान्तनु

अक्रूर के पास स्यमन्तक मणि का मिलना।

मुनियों का लोमहर्षण के साथ संवाद। भूगोल का वर्णन। सप्त द्वीप का वर्णन।

एते द्वीपा समुद्रैस्तु सप्तसप्तभिरावृता ।
लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलै समम् ॥

जम्बू द्वीप का वर्णन एव मेरु पर्वत का वर्णन। भरतादि-खण्डों का वर्णन।

अनीलोत्तरमम्भोधिं समम्येति द्विजोत्तमा ।
आनीलनिषधायामौ माल्यवद्गन्धमादनौ ॥
तयोर्मध्यगतो मेरु कर्णिकाकारसंस्थित ।
भारता केतुमालाश्च भद्राश्वा कुरवस्तथा ॥
पत्राणि लोकशैलास्य मर्यादा शैलबाहत ।
जठरो देवकूटश्च मर्यादापर्वतावुभौ ॥
तौ दक्षिणोत्तरायामावानीलनिषधायतौ ।
गन्धमादनकैलासौ पूर्वे पश्चात्तु तावुभौ ॥
अशीति ■ ोजनायामावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ ।
निषध पारियात्रश्च मर्यादापर्वतावुभौ ॥
तौ दक्षिणोत्तरायामावानीलनिषधायतौ ।
मेरो पश्चिम दिग्भागे यथा पूर्वौ तथा स्थितौ ॥

मर्यादा पर्वतों का वर्णन

पापी पुरुषों के पापों को नाश करने के लिये हरि स्मरण ही प्रायश्चित्त बताया है।

कृते पापेऽनुतापो वै यस्य पुंसः प्रजायते।
प्रायश्चित्तन्तु तस्यैकं हरिसंस्मरणम्परम् ॥
प्रातर्निशि तथा सन्ध्या मध्याह्नादिषु संस्मरन्।
नारायणमवाप्नोति सद्यः पापक्षयान्नरः ॥
विष्णुसंस्मरणात् क्षीणसमस्तक्लेशसञ्चयः।
मुक्तिं प्रयाति भो विप्रा विष्णोस्तस्यानुकीर्तनात् ॥
वासुदेवे मनोयस्य जपहोमार्चनादिषु।
तस्यान्तरायो विप्रेन्द्रा देवेन्द्रत्वादिकं फलम् ॥
क्व नाकपृष्ठगमनं पुनरावृत्तिलक्षणम्।
क्व जपो वासुदेवेति मुक्तिबीजमनुत्तमम् ॥
तस्मादहर्निशं विष्णुं संस्मरन् पुरुषो द्विजः।
न याति नरकं शुद्धः संक्षीणाखिलपातकः ॥
मनः प्रीतिकरो स्वर्गो नरकस्तद्विपर्ययः।
नरकस्वर्गसंज्ञे वै पापपुण्ये द्विजोत्तमाः ॥
वस्त्वेकमेव दुःखाय सुखायेर्ष्योदयाय च।
कोपाय च यतस्तस्माद्वस्तु दुःखात्मकं कुतः ॥
तदेव प्रीतये भूत्वा पुनर्दुःखाय जायते।
तदेव कोपाय यतः प्रसादाय च जायते ॥
तस्माद्दुःखात्मकं नास्ति न च किञ्चित्सुखात्मकम्।
मनसः परिणामोऽयं सुखदुःखादिलक्षणः ॥

ज्ञानमेव परं ब्रह्म ज्ञानं बन्धाय चेष्यते ।
ज्ञानात्मकमिदं विश्वं न ज्ञानाद्विद्यते परम् ॥

वृष्ट्या धृतमिदं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
सापि निष्पद्यते वृष्टि सवित्रा मुनिसत्तमाः ॥

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम् ।
विद्या तपश्च कीर्त्तिश्च स तीर्थ फलमश्नुते ॥

मनो विशुद्धं पुरुषस्य तीर्थं वाचां तथा चेन्द्रियनिग्रहश्च ।
एतानि तीर्थानि शरीरजानि स्वर्गस्य मार्गं प्रतिबोधयन्ति ॥

चित्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थस्नानैर्न शुद्ध्यति ।
शतशोऽपि जलैर्धौतं सुराभाण्डमिवाशुचि ॥

प्रथमं पुष्करं तीर्थं नैमिषारण्यमेव च ।

"वरं वृणीष्व" (वर मांगो) ऐसा कहा। तब अदिति ने "मेरे पुत्रों को यज्ञभागी बनाओ।" मैं तुम्हारे जन्म लेकर तुम्हारे शत्रुओं का नाश करूँगा ऐसा कहते हुए सूर्य का अलक्षित होना। देवमाता अदिति के गर्भमें सूर्यकी स्थिति। कृच्छ्र एवं चान्द्रायणादि व्रतों से गर्भ धारण करती हुई अदिति को कश्यपजी ने कहा "गर्भाण्डं मारयसि किं" अर्थात् इतने क्लिष्ट व्रतादिकों से गर्भ को क्यों नष्ट करती हो। तदनन्तर पति के वचनों से क्रोधित अदिति का गर्भ त्याग। गर्भाण्ड से प्रकट हुए आदित्य की कलाप (कश्यप) के द्वारा स्तुति। यह मार्तण्ड नामक तुम्हारा पुत्र होगा इस प्रकार आकाशवाणी हुई। आकाशवाणी का वचन सुन कर देवताओं का आगमन। मार्तण्ड की सहायता से देवताओं का दैत्यों के साथ युद्ध। युद्ध में दैत्यों की पराजय। प्रसन्न हुए देवताओं द्वारा सूर्यकी स्तुति। सूर्य का संज्ञा के साथ विवाह। सूर्य की सन्तानों का वर्णन। संज्ञा और छाया का संवाद। संज्ञा का पिता के घर जाना। तदनन्तर छाया की सतानों का वर्णन। छाया का संज्ञा की सन्तानों के साथ विषम भाव—

यदा तर्जयसे यस्मात्पितुर्भार्यां गरीयसीम्।
तस्मात्तवैष चरणः पतिष्यति न संशयः॥
यमस्तु तेन शापेन भृशं पीडितमानसः।
मनुना सह धर्मात्मा पित्रे सर्वं न्यवेदयत्॥

नामक पत्नी मे तीन कन्याओं की उत्पत्ति एवं उनका नाम करण। तप करती हुई पार्वती को ब्रह्मा का वरदान।

३५ पार्वत्युपाख्यानवर्णनम् २४१

उमा का देवताओं के साथ संवाद। विकृतरूपधारी महादेव का पार्वती के पास जाना। विकृत रूप का वर्णन जैसे—

विकृतं रूपमास्थाय ह्रस्वो बाहुक एव च।
विभग्ननासिको भूत्वा कुब्जः केशान्तपिङ्गलः॥

शिव पार्वती का संवाद।

पार्वतीजी कहती है—

भगवन्न स्वतन्त्राहं पिता मे त्वप्रणीर्गृहे।
स प्रभुर्मम दाने वै कन्याहं द्विजपुङ्गव॥
गत्वा याचस्व पितरं मम शैलेन्द्रमव्ययम्।
स चेद्ददाति मां विप्र तुभ्यं तदुचितं मम॥

विकृत रूपी शिव का हिमालय के साथ वार्तालाप। "अयं शिव." ऐसा जान कर पार्वती का शिवजी को वरण करना।

अशोक वृक्ष के प्रति शिवजी का वरदान। शिवजी का अन्तर्धान होना। ग्राह से ग्रस्त बालक का रोदन एवं पार्वती तथा ग्राह का संवाद। "मेरा तप नष्ट हो गया" यह जान कर पार्वती का पुनः तप करना और पार्वती को शंकर का वरदान।

१६ पार्वतीस्वयम्वरवर्णनम् — २४६

पार्वती के स्वयम्वर में सम्पूर्ण देवताओंका आना। देवताओं द्वारा पार्वती की प्रशंसा। शिशु रूप से पार्वती की गोद में शंकर का शयन। क्रोधयुक्त इन्द्रादि देवताओं द्वारा शिवजी पर शस्त्र प्रहार। शिवजी ने सम्पूर्ण देवताओं को अपनी माया से स्तम्भित (रोका) किया। सम्पूर्ण देवताओं को छुडाने के लिये ब्रह्माजी द्वारा शिवस्तुति।

प्रधान पुरुषो यस्त्वं ब्रह्म ध्येयं तदक्षरम्।
अमृतं परमात्मा च ईश्वरं कारणं महत्॥
ब्रह्म सृक् प्रकृतेः स्रष्टा सर्वकृत् प्रकृतेः परः।
इयञ्च प्रकृतिर्देवी सदा ते सृष्टिकारणम्॥
पत्नी रूपं समास्थाय जगत्कारणमागता।

स्तुति सुन कर शंकर का प्रादुर्भाव। पार्वती के द्वारा शंकर के चरणों में माला का अर्पण। ब्रह्माजी का हिमालय की प्रशंसा करना। शिवजी के विवाह के लिये ब्रह्माके द्वारा नगर का निर्माण। देव गन्धर्वादिकों का आगमन एवं वसन्तादि षट् (छै) ऋतुओं का आना।

असितजलदधीरध्वानवित्रस्तहंसा।
विमलसलिलधारोत्पातनप्रोत्पलाग्रा॥
सुरभिकुसुमरेणुक्लृप्तसर्वाङ्गशोभा।
गिरिदुहितृविवाहे प्रावृडाविर्बभूव॥
निर्मुक्तासितमेघकञ्चुकपटा पूर्णेन्दुबिम्बानना।

नारायणपरा पृथ्वी नारायणपरं जलम्।
नारायणपरोवह्निर्नारायणपरं नभः ॥
नारायणपरो वायुर्नारायणपरं मनः।
अहङ्कारश्च बुद्धिश्च उभे नारायणात्मके ॥
जले स्थले च पाताले स्वर्गलोकेऽम्बरे नगे।
अव्यक्तं इदं सर्वमास्तेनारायणः प्रभुः ॥
किं चात्र बहुनोक्तेन जगदेतच्चराचरम्।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं सर्वनारायणात्मकम् ॥
नारायणात्परं किञ्चिन्नेह पश्यामि भो द्विजाः।
तेन व्याप्तमिदं सर्वं दृश्यादृश्यं चराचरम् ॥
आपो ह्यायतनं विष्णोः स च एवाम्भसांपतिः।
तस्मादप्सुस्मरेन्नित्यं नारायणमघापहम् ॥
स्नानकाले विशेषेण चोपस्थाय जले शुचिः।
स्मरेन्नारायणं ध्यायेद्धस्ते काये च विन्यसेत् ॥
आस्तीर्य च कुशान्साग्रांस्तानावाह्य समन्त्रतः।
प्राचीनाग्रे षु वै देवान्याम्याग्रेषु तथा पितॄन् ॥

यथा देहे तथा देवे सर्वतत्त्वानि योजयेत्।

का कृष्ण की स्तुति करना। कृष्ण की मूर्ति का दर्शन करने से फल प्राप्ति।

कपिलाशतदानेन यत्फलं पुष्करे स्मृतम्।
तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं सहलायुधम्॥
सुभद्रां च मुनिश्रेष्ठाः प्राप्नोति शुभकृन्नरः।
भूमिदानेन विधिवद्यत्फलं समुदाहृतम्।
तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः॥
यत्फलं चान्नदानेन अर्घातिथ्येन कीर्तितम्।
तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः॥
यत्फलं तोयदानेन ग्रीष्मे वाऽन्यत्र कीर्तितम्।
तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः॥
ततः समस्ततीर्थानां लभेत्स्नानादिकं फलम्।
स्नानशेषेण कृष्णस्य तोयेनाऽऽत्माभिषिच्यते॥
वन्ध्या मृतप्रजा या तु दुर्भगा ग्रहपीडिता।
राक्षसाद्यैर्गृहीता या तथा रोगैश्च संहताः॥
सद्यस्ताः स्नानशेषेण उदकेनाभिषेचिताः।
प्राप्नुवन्तीप्सितान् कामान्यान्यान्वाञ्छन्ति चेप्सितान्।

६६ गुड़िचा यात्रामाहात्म्यवर्णनम् ४४८

गुण्डिचा यात्रा का माहात्म्य।
राजा इन्द्रद्युम्न ने भगवान् से प्रार्थना की कि हे भगवन् आपकी यात्रा सात दिन तक मेरे तालाब के पास होनी चाहिए।

में जाना। गणेशजी की आज्ञा से गोरूप धारण करके जया (गणेशजी को बहिन) का गौतमजी के आश्रम में जाना, गौतम के रोकने पर जया का गिरना। गोवध के पाप को दूर करने के लिये गौतमजी को उपाय बतलाना। अपने संकल्प की सिद्धि के लिये "भवतां प्रसादोऽस्तु" इस प्रकार गौतम की प्रार्थना। सम्पूर्ण जनों का अपने २ स्थान में जाना। शंकर को प्रसन्न करने के लिये गौतमजी का कैलास पर्वत पर गमन।

गौतम का उमामहेश्वर की स्तुति करना। गौतमजी को उमामहेश्वर का दर्शन। तदनन्तर गङ्गा प्राप्ति के लिये गौतम की प्रार्थना। गङ्गा की प्रशंसा और गौतमी का लाना।

श्लाघ्यं कृते तपः प्रोक्तं त्रेतायां यज्ञकर्म च।
द्वापरे यज्ञदाने च दानमेव कलौ युगे।

स्वर्ग, मर्त्य और पाताल में विभाजित होकर १५ आकृति से गङ्गा का गमन। गोदावरी तीर्थ की स्नान विधि।

ब्राह्मणान् भोजयित्वा च तेषामाज्ञां प्रगृह्य च।
ब्रह्मचर्येण गच्छन्ति पतितालापवर्जिताः॥

कह कर जनक और याज्ञवल्क्य वरुण के पास गये तदनन्तर वरुण ने कहा—

द्विधा तु संस्थिता मुक्ति कर्मद्वारेऽप्यकर्मणि ।
वेदे च निश्चितो मार्ग. कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः ॥
सर्वं च कर्मणा यद्वं पुरुषार्थचतुष्टयम् ।
अकर्मणेवाऽऽप्यत इति मुक्ति मार्गो मृषोच्यते ॥
कर्मणा सर्वधान्यानि सेत्स्यन्ति नृपसत्तम ।
तस्मात्सर्वात्मना कर्म कर्तव्यं वैदिकं नृभिः ।
तेन भुक्तिश्च मुक्तिश्च प्राप्नुवन्तीह मानवाः ॥

गृहस्थ से ही भुक्ति एवं मुक्ति मिलती है ऐसा वरुण का मत दर्शन। जनक और याज्ञवल्क्य ने वरुण से पूछा कि भुक्ति मुक्ति प्रदायक कौन देश, कौन तीर्थ है; इस पर वरुण ने कहा गौतमी सबसे श्रेष्ठ तीर्थ है ऐसा सुन कर दोनों अपने २ स्थान पर चले गये। जनस्थान तीर्थ का प्रयोजन।

८९ अरुणावरुणासंगमाश्वमानुतीर्थवर्णनम् ५९६

सूर्य पत्नी उषा ने छाया से कहा कि मैं पिता के घर जाती हूँ मेरे लौटने तक बालकों का पालन करो। तदनन्तर छाया का पिता के घर जाना। त्वष्टा का पुनः पति के घर जानेका आदेश। उषा का उत्तर कुरुदेश में तप करने के लिए जाना। छाया की सन्तानों का जन्म कथन। छाया ने यमराज को शाप दिया इसका वर्णन। यमराज ने पिता से कहा कि यह मुझे क्रोध दृष्टि से देखती है अतः मेरी

माता नहीं है। उत्तर कुरु में घोड़ी का रूप धारण कर उषा रहती है ऐसा जान कर घोड़े के रूप को धारण कर सूर्य का चला जाना। आत्मरक्षा के लिये गौतमी पर वडवा का जाना उसके बाद सूर्य का जाना। ऋषियों के प्रति सूर्य का शाप कथन। पुन अश्विनीकुमारों की उत्पत्ति। त्वष्टा ने सूर्य से कहा कि उषा के निमित्त तेज को शमन करो।

गरुड से अभयदान प्राप्ति के लिये मणिनाग नामक शेष पुत्र द्वारा शिव की स्तुति। शकर से वरदान प्राप्त करके मणिनाग का इधर उधर भ्रमण। नन्दिकेश्वर ने शकर के प्रति कहा—मालूम होता है कि गरुडने नागको भक्षण कर लिया है अथवा बाध लिया है इस लिये नहीं आया है। शकर की आज्ञा से नाग को लाने के लिये नन्दीश्वर विष्णु के पास गया। विष्णु ने गरुड से कहा कि नन्दी को सर्प दो तब गरुड ने गर्वपूर्वक उत्तर दिया कि मेरे बल से ही दैत्यों को पराजित करते हो तदनन्तर भगवान् ने गरुड का गर्व दूर किया। गरुड के द्वारा विष्णु की स्तुति। विष्णु की आज्ञा से नाग सहित गरुड का शकर के पास गमन। शिव की आज्ञा से गरुड गौतमी पर स्नान करने को गया और उसका शरीर वज्र की तरह हो गया अपि च विष्णु की प्राप्ति हुई।

द्वारा शंकर की स्तुति। पश्चात् आकाशवाणी हुई। शंकर का अपने स्थान पर गमन। पौलस्त्य तीर्थ का माहात्म्य।

मधुदैत्य से जातवेदा और दक्ष का वध। भाई के मरने पर अग्नि का गङ्गा में प्रवेश। अग्नि के पास देवताओं का जाना। देवताओं ने कहा—

देवाञ्जीवय हव्येन कव्येन च पितृंस्तथा।

मानुषानन्नपानेन योजाना क्लेदनेन च।

अग्नि तीर्थ का माहात्म्य वर्णन।

कक्षीवान् ने पुत्रों से कहा कि ऋणमय (तीनों ऋण) से मुक्त होने के लिये विवाह करो—पुत्रों को विवाह के लिये उदासीन देख कर स्नान के लिये गौतमी पर जाने की आज्ञा ऋण मोचन तीर्थ का माहात्म्य।

वालखिल्यों ने कश्यपजी से कहा—हमारे दिये हुए आधे तपसे इन्द्र के दर्प (घमण्ड) को दूर करनेवाला पुत्र उत्पन्न करो। पुन. प्रजापति कश्यपने अर्धतप को ग्रहण कर सुपर्णा एवं कद्रू में गर्भ की स्थापना कर कहीं भी न जाने की आज्ञा दी। कद्रू और सुपर्णाका ऋषियज्ञमें जाना। वहां पर दोनों को नदी होने का शाप। वालखिल्यों ने कश्यपजी से

ने उनसे प्रश्न किया कि पुत्र से क्या होगा। पुत्रवान् पुरुष की प्रशंसा।

नापुत्रस्य परो लोको विद्यते नृपसत्तम।
जाते पुत्रे पिता स्नानं यः करोति जनाधिप॥
दशानामश्वमेधानाममिषेकफलं लभेत्।
आत्मप्रतिष्ठापुत्रात्स्यज्ञायते चामरोत्तम॥
अमृतेनामरा देवा पुत्रेण ब्राह्मणादयः।
त्रिऋणान्मोचयेत्पुत्रः पितरञ्च पितामहान्॥
पुत्रएव परो लोको धर्मः कामोऽर्थ एव च।
पुत्रो मुक्तिः परञ्ज्योतिस्तारकः सर्वदेहिनाम्।

ऋषियों के प्रति पुत्रोत्पादन विषयक हरिश्चन्द्र का प्रश्न। पुत्र प्राप्ति के लिए वरुणाराधन कथन। वरुण की प्रसन्नता से हरिश्चन्द्र को पुत्र प्राप्ति। वरुण और हरिश्चन्द्र की परस्पर उक्ति प्रत्युक्ति। विष्णुयजन के लिए रोहित की प्रार्थना। अजीगर्त और रोहित का प्रश्नोत्तर। रोहित का वन में जाना। वरुण के कोप से हरिश्चन्द्र को जलोदर की प्राप्ति। अजीगर्त की रोहित के साथ पुत्र खरीदने के विषय में वातचीत। अजीगर्त के द्वारा पुत्र का विक्रय। रोहित ने अजीगर्त के पुत्र शुनःशेप को हरिश्चन्द्र के लिए दिया। शुनःशेप के यज्ञ में आकाशवाणी से यज्ञ की समाप्ति और विश्वामित्र को शुनःशेप पर कृपा परञ्च पुत्रत्व स्वीकार कर सब पुत्रों में शुनःशेप को ज्येष्ठ बना दिया।

के आश्रम में जाना। इला का बुध के साथ सम्वाद और दोनों का विवाह। बुधसे इलामें पुत्रोत्पत्ति व देवताओं का वहाँ आना। बालक का पुरूरवा नामकरण। इला के साथ उसका सम्वाद। पुरूरवा को इक्ष्वाकु कुल का वर्णन और अपना पहले का वृत्तान्त कथन। बुध और ऐल का सम्वाद। इला की पुंस्त्व प्राप्ति के लिये पुरूरवाका प्रयत्न। ऐल और इला का हिमालय पर जाना वहाँ पर शंकर की स्तुति। देवी से पुंस्त्व की याचना। शंकर और पार्वती के अनुग्रह से पुंस्त्व प्राप्ति। ऐल का अभिषेक।

पार्वती का दक्ष यज्ञ मे जाना। वहाँ पर शिव निन्दा सुनकर—

पितरं नाशये पापं क्षमेय न कथंचन।
शृण्वती दोषवाक्यानि पित्रा चोक्तानि भर्तरि॥
पत्यु: शृण्वन्ति या निन्दां तासां पापावधिः कृतः।
यादृशस्तादृशोवाऽपि पतिः स्त्रीणां परागतिः॥

पार्वती का देह त्याग। महेश्वर का दक्ष यज्ञ में आना। यज्ञ का वर्णन। वीरभद्र द्वारा यज्ञ विध्वंस। देवताओं द्वारा शिव स्तुति। दक्षकृत शिव स्तुति। देवताओं द्वारा विष्णु की स्तुति। दैत्यों से उत्पन्न भय को जान कर देवताओं के साथ विष्णु का परामर्श। विष्णु के द्वारा चक्र प्राप्ति के लिये शिव की आराधना। विष्णु को शंकर का वरदान और चक्र का होना।

१९० पिप्पलतीर्थवर्णनम्-दधीचेरुपाख्यानम् ६६७

पिप्पल तीर्थ का वर्णन। दधीचि ऋषि एवं लोपामुद्रा का वर्णन। दधीचि ऋषि के आश्रम में सब देवताओंका आगमन। अस्त्रों को रखने के लिये देवताओं का दधीचि से प्रश्न ? लोपामुद्रा का दधीचि के साथ वार्तालाप। देवताओं का दधीचि के पास अस्त्रों का रखना।

एतदेव फलं पुंसां जीवतां मुनिसत्तम।
तीर्थाप्लुतिर्भूतदया दर्शनं च भवादृशाम्॥

दैत्यों के डरसे दधीचि द्वारा अस्त्रों के तेज का पान। दैत्यों से देवताओं को भय प्राप्ति। देवताओं का दधीचि के पास अस्त्रों के लिये जाना। देवताओं के लिये दधीचि का अस्थि दान। देवताओं का अस्त्र बनाना। दधीचि की पत्नी का आगमन और उसका अग्नि के साथ सम्वाद तदनन्तर अग्निकृत समाधान, प्रातिथेयी के द्वारा कुक्षिस्थ पुत्र का निकालना। प्रातिथेयी का अग्निप्रवेश, आश्रम स्थित वृक्षों का विलाप। दधीचि के पुत्र को अमृत प्राप्ति तथा पिप्पलाद नाम की प्राप्ति।

प्राप्ति और सोम की आज्ञा से शकर की स्तुति की। प्रसन्न हुए शकर से देवताओं को नाश करने के लिये वर मागना। पिप्पलाद के तप का वर्णन और शकर के तृतीय नेत्र का दर्शन। तृताय नेत्र से उत्पन्न कृत्या को देवताओं के संहार के लिये आदेश। कृत्या से अग्नि की उत्पत्ति तथा अग्नि के डरसे देवताओं का शकर के पास जाना। देवताओं द्वारा शकर की स्तुति। शकर एव देवताओं का संवाद। देवताओं का पिप्पलाद के साथ संवाद। पिप्पलाद ने देवताओं से कहा कि मेरे माता पिता को दिखाओ। पिप्पलाद का स्वर्गलोक में जाना वहाँ पर माता पिता का दर्शन। विवाह करने के लिये दधीचि और पिप्पलाद का सम्वाद। देवताओं के संहार के लिये उत्पन्न कृत्या का समाधान। कृत्या को नदी रूप की प्राप्ति। शकर के साथ देवताओं का सम्वाद। दधीचि की अस्थियों का एव देवताओं का तथा गायोंका पवित्र होना। देवताओं का अपने २ स्थानों पर जाना एव सर्यका वहीं रहना। पिप्पलाद का गौतम की पुत्री के साथ विवाह। पिप्पलाद तीर्थ पर पिप्पलेश्वर नामकी प्राप्ति।

पुत्रको पिता का सम्पूर्ण वृत्तान्त कह दिया। देवापि की प्रतिज्ञा। नन्दि द्वारा मिथु की मृत्यु। रसातल से देवापि के पिता का आगमन। हयमेध की समाप्ति। अनेक तीर्थों का वर्णन।

के वचन से इन्द्र ने विष्णु की आराधना की पुनः प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु ने महाशनि दैत्य को मार दिया।

१३० आपस्तम्बतीर्थवर्णनम्, आपस्तम्बोपाख्यानम् ८३५

आपस्तम्बकृत शिवस्तुतिः।

आपस्तम्ब मुनि की प्रशंसा और उन के आश्रम में अगस्त्य मुनि का गमन। आपस्तम्ब ने अगस्त्यकी पूजा की और पूछा कि तीनों देवों में कौन श्रेष्ठ है? अगस्त्य ने कहा कि तीनों देवों में भेद न होते हुए भी शिव ही सर्वसिद्धियों को देने वाला है। अगस्त्य के वचन से आपस्तम्ब का गौतमी पर जाना और वहां पर शंकर की स्तुति तदनन्तर आपस्तम्ब को शंकर का वरदान और आपस्तम्ब तीर्थ की महिमा।

१३१ यमतीर्थवर्णनम्, सरमाख्यानवर्णनम् ८४०

यमतीर्थ के प्रसंग मे सरमा के आख्यान का कथन। देव॰ गायों की रक्षा करने वाली सरमा को द्रव्य देकर दैत्यों ने गो हरण किया। सरमा ने इन्द्र से कहा कि मेरे को बांध कर दैत्य गायों को ले गये। पश्चात् बृहस्पति ने इन्द्र से कहा कि सरमा झूठ बोलती है तब इन्द्र ने सरमा को लात मारी और शाप दिया। गायों को लाने के लिये इन्द्र ने विष्णु की स्तुति की। विष्णु और दैत्यों का युद्ध तथा दैत्यों की पराजय। देवताओं को गायों की प्राप्ति। अपनी

यत्र देवा सगन्धर्वा ऋषय कपिलोमुनि ।
महीं गोरूपमापन्ना नर्मदाया महामुने ॥
सरस्वत्या भागीरथ्या गोदघर्या विशेषत ।
महानदीषु सर्वासु दुदुहेऽसौ पयो महत् ॥
सा दुह्यमाना पृथुना पुण्यतोयाऽभवन्नदी ।
गौतम्या सगता चामृतवदद्भुतमिवाभवत् ॥

अपनी विजय के लिए और शूरवीर पुरुष की प्राप्ति के लिए देवताओं द्वारा महेश्वर की स्तुति। शकर की कृपा से प्राप्त मन्यु नामक पुरुष के प्रति सामर्थ्यपरीक्षा के लिये देवताओं का वचन। मन्यु के स्वरूप का वर्णन। देवों द्वारा मन्यु की स्तुति। मन्यु के आश्रय से देवताओं को विजय प्राप्ति।

परशु नामक राक्षस ने ब्राह्मण रूप धारण कर शाकल्य मुनि से कहा कि मुझे भोजन दो।

दूरादभ्यागत श्रान्तमनुगच्छन्ति देवता ।
तस्मिस्तृप्ते तु तृप्ता स्युरतृप्ते तु विपर्यय ॥
अतिथिश्चापवादी च द्वावेतौ विश्वबान्धवौ ।
अपवादी हरेत्पापमतिथि स्वर्गसङ्क्रम ॥
अभ्यागत पथिश्रान्त सावज्ञ योऽभिवीक्षते ।
तत्क्षणादेव नश्यन्ति तस्य धर्मयश श्रिय ॥

भोजन के समय परशु ने शाकल्य से कहा कि मैं ब्राह्मण नहीं हूँ तुम्हारा शत्रु हूँ तुम्हें खाने के लिये आया हूँ फिर शाकल्य ने अपना अपूर्व शरीर दिखाया। परशुराक्षस

ने शाकल्यकी स्तुति की। शाकल्यकी आज्ञासे परा
ने, सरस्वतीकी स्तुति की और उसको स्वर्ग प्राप्ति।

१६४ चिचिकतीर्थवर्णनम् ६६२

पवमान राजा का चिचिक नामक पक्षी से संवाद। पवमान
राजा के प्रति चिचिक पक्षी का पूर्वजन्म वृत्तान्तकथन।
ब्रह्महत्या सदृश पापों का वर्णन।

अविज्ञातं चोपविष्टं बिभेमीति च वादिनम्।
तं यदि क्षत्रियो हन्यात्सतु स्याद्ब्रह्मघातकः॥
अधीतं विस्मरति यस्त्वं करोति तथोत्तमम्।
अनादरश्च गुरुषु तमाहुर्ब्रह्मघातकम्॥
प्रत्यक्षे च प्रियं वक्ति परोक्षे परुषाणि च।
अन्यद्धृदि वचस्यन्यत्करोत्यन्यत्सदैव यः॥
गुरूणां शपथं कर्ता द्वेष्टा ब्राह्मणनिन्दकः।
मिथ्याविनीतः पापात्मा स तु स्याद्ब्रह्मघातकः॥
देवं वेदमथाध्यात्मं धर्मब्राह्मणसंगतिम्।
एतान्निन्दति यो द्वेषात्सतु स्याद्ब्रह्मघातकः॥

चिचिक की मुक्ति के लिए राजा का प्रश्न। चिचिक ने
राजा से प्रार्थना की कि मुझे मुक्तिके लिए श्वेत पर्वत स्थित
भगवान् गदाधर के पास ले चलो। राजाके साथ गंगा, और
गदाधर के दर्शन के लिए चिचिक का गमन। चिचिक
द्वारा गंगा का स्तवन एवं स्वर्ग प्राप्ति। राजा पवमान का
अपने सेवकों के साथ अपने नगर में आना।

सोम स्तुति। आदित्य और बार्हस्पत्यादि तीर्थों का वर्णन।

१७५ तीर्थादीनांचातुर्विध्यादिनिरूपणम् १०१६

गंगा की ब्रह्मा के कमण्डलु में, विष्णुके पद में, शिवजी की जटाजूट में, ब्रह्मगिरि में और पूर्व समुद्र में क्रम से स्थिति का वर्णन। चार प्रकार के तीर्थों का बताना। तीर्थों का सत्ययुगादि में क्रम से त्रिदेवत्व भाव होने से कलियुग में भी देवत्व भाव का निरूपण बताया है। तीर्थों का युग क्रम से दैव, आसुर, आर्ष और मनुष्यत्व प्राप्ति का वर्णन। गणेशजी को शंकर की जटा से गंगावतरण का पार्वती द्वारा कथन। पार्वती और गणेशजी के संवाद में ब्रह्मगिरि पर्वत से समुद्र पर्यन्त गौतमी के दोनों तटों की स्थिति विषयक गौतम के प्रति हर्षपुलकित शिवजी का वर प्रदान। शिवजी द्वारा वर्णित गौतमी की यात्रादि का वर्णन। विस्तार सहित गौतमी माहात्म्य का फल कथन।

१७६ अनन्तवासुदेवमाहात्म्यवर्णनम् १०२६

अनन्तवासुदेव भगवान् का माहात्म्य। ब्रह्माजी की विश्वकर्मा को वासुदेव भगवान् की मूर्ति बनाने के लिये आज्ञा। देवताओंके साथ रावणका संग्राम। रावण द्वारा इन्द्रको पराजय। रावणका इन्द्रपुरी में गमन। वहाँ पर स्थित भगवान् वासुदेवको मूर्तिको पुष्पक विमान द्वारा लङ्कामें ले आना। रावणसे विभीषणको मूर्तिकी

प्राप्ति। राम और रावण का युद्ध। युद्ध में रावण की मृत्यु। भगवान् राम का अयोध्या के प्रति गमन।

वसुदेवकुले धीमान्वासुदेवत्वमागतः।
अमरैश्चाऽऽवृतं पुण्यं पुण्यकृद्भिरलंकृतम्॥
देवलोकं किमुत्सृज्य मर्त्यलोक इहाऽऽगतः।
देवमानुषयोर्नेता द्योर्भुवः प्रभवोऽव्ययः॥
किमर्थं दिव्यमात्मानं मानुषेषु न्ययोजयत्।
यश्चक्रं वर्तयत्येको मानुषाणामनामयम्॥

मुनियों के प्रश्नोत्तरमें व्यासकृत भगवत्स्तुति व नानावतारों का वर्णन। चतुर्व्यूहकथन।

भाराक्रान्तायाः पृथ्व्या ब्रह्मणः समीपेगमनम्।
ब्रह्माणं प्रति भगवद्वाक्यम्। हरेरंशावतारनिरूपणम्।

भगवान् के अवतार धारण करने का प्रयोजन वर्णन। भार से पीडित पृथ्वी का ब्रह्माजी के पास जाना और अपने दुःख का निवेदन।

अग्नि सुवर्णस्य गुरुर्गवां सूर्योऽपरो गुरुः ।
ममाप्यखिललोकानां गुरुर्नारायणोगुरुः ॥
तत्सामप्रतिमैर्दैत्या कालनेमिपुरोगमाः ।
मर्त्यलोकं समागम्य बाधन्तेऽहर्निशं प्रजाः ॥

भगवान् की प्रशंसा से गर्वित देवताओं के प्रति ब्रह्माजी का कथन। ब्रह्माजी द्वारा विष्णुस्तुति। स्तुतिश्रवण के अनन्तर विष्णु के द्वारा ब्रह्मा को सफेद और कृष्ण दो केशों का दान। विष्णु की सहायता के लिये इन्द्रादि देवताओं का अवतार। नारदजी ने कंस से कहा कि देवकी के आठवें गर्भ से तुम्हारी मृत्यु होगी ऐसा सुन कर क्रोधित कंसने वसुदेव तथा देवकीको कारागारमें डाल दिया। देवकी

के छे पुत्रों का कंस द्वारा वध। विष्णु और माया के संवाद में माया के प्रति भगवान् की आज्ञा।

त्वं भूतिः संनतिः कीर्तिः कान्तिर्भूः पृथिवी धृतिः।
लज्जा पुष्टिरुषा या च काचिदन्या त्वमेव सा॥
ये त्वामार्येति दुर्गेति वेदगर्भेऽम्बिकेति च।
भद्रेति भद्रकालीति क्षेम्या क्षेमकरीति च॥
प्रातश्चैवाऽपराह्णे च स्तोष्यन्त्यानम्रमूर्तयः।
तेषां हि वाञ्छितं सर्वं मत्प्रसादाद्भविष्यति॥

१८२ श्रीकृष्णोत्पत्तिकथानिरूपणम्। १०७४

भगवान् की आज्ञासे माया द्वारा देवकी के गर्भ का आकर्षण और रोहिणी के गर्भ में स्थापन। यशोदा के उदर में माया की स्थिति। देवकी के उदर में भगवान् का प्रवेश। भगवान् के अवतार के समय देवताओं द्वारा पुष्प वृष्टि। वसुदेव देवकी द्वारा भगवान् की स्तुति। देवकीके प्रति भगवान् का वचन। गोकुल में जाकर वसुदेव द्वारा [illegible] में पुत्रकी स्थापना कर कन्या को लाना। [illegible] सुन कर देवकी के पुत्र जन्म का दूतों द्वारा [illegible] कारागार में कंस का आगमन। बलात्कार से [illegible] हुई देवकी से कन्या का आकर्षण तत्पश्चात् [illegible] गमन।

१८३ कंसविचारकथनम्। [illegible]

अशान्त कंस द्वारा प्रलम्बादि दैत्यों [illegible]

'कथन। कंस ने दैत्यों को बालकों के मारने का आदेश दिया। कंस ने वसुदेव देवकी के बन्धन को खोल कर उन्हें शान्ति करवाई।

१८४ श्रीकृष्णबालचरितवर्णनम्। १०७६

मथुरा में ही नन्द के पास वसुदेव का आना। वसुदेव और नन्द का प्रेम संवाद। वसुदेव की आज्ञा से नन्दादि गोपों का गोकुल में आना। कृष्ण के द्वारा पूतना का वध। गोपुच्छादि से कृष्ण की रक्षा। नन्द ने कृष्ण का स्वस्ति वाचन करवाया। बालक के चरण प्रहार से शकट (गाडा) का गिरना। उससे गोपियों का आश्चर्य। तदनन्तर यशोदा द्वारा शकट की पूजा। वसुदेव से प्रेरित गर्ग द्वारा गुप्त रूप से बालकों का नामकरण। बाललीला का वर्णन। यमलार्जुन का उद्धार। उत्पातों के भय से गोप गोपियों का वृन्दावन प्रवेश। वृन्दावन की शोभा का वर्णन। बालकों की क्रीडा का वर्णन।

१८५ कालीयदमनाख्यानम्। १०८५

बलराम के बिना गोपों के साथ कृष्ण का कालीयहद पर आगमन। उसको विषयुक्त देख कर कृष्ण का कालीयहद में कूदना। वहाँ पर सपरिवार कालीय का आगमन एवं कृष्ण को डँसना। गोपियों का विलाप। नन्दादिकों के दुःख को छुडाने के लिए बलदेव का कृष्ण के प्रति स्पष्टी

अर्जुन का संवाद एवं युद्ध। अर्जुन की पराजय। म्लेच्छों द्वारा श्रेष्ठ स्त्रियों का हरण। अर्जुन के विषाद का वर्णन। व्यासजी और अर्जुन के संवाद में व्यासजी द्वारा अर्जुन का समाधान। अष्टावक्र के आख्यान का वर्णन। अष्टावक्र के तप का वर्णन। तिलोत्तमा रम्भा आदि अप्सराओं द्वारा अष्टावक्र की प्रशंसा। रम्भा को पुरुषोत्तम पति प्राप्ति रूप अष्टावक्र का वर प्रदान। जल से बाहर आये मुनि के शरीर का टेढ़ापन देख कर रम्भा द्वारा हास्य। रम्भा के हास्यसे कुपित मुनिका शाप पश्चात् प्रसन्न होकर वरप्रदान। सबान्धव पाण्डवों का महाप्रस्थान। परीक्षित् को राज्य दान तदुपरान्त वनगमन। कृष्ण चरित्र की समाप्ति कथन।

वराह अवतार का वर्णन। वराहरूपी परमेश्वर के शरीर के अङ्गों का वर्णन। यज्ञवराह कृत पृथ्वी का उद्धरण। नृसिंह अवतार का वर्णन। हिरण्यकशिपु के तप का वर्णन एवं वरप्रदान। ब्रह्मा के साथ देवताओं का भगवान् के पास गमन। देवताओं द्वारा भगवान् की स्तुति। भगवान् का नृसिंह रूप में अवतरित होना। नृसिंह भगवान् द्वारा

दक्षिण मार्ग से जाने वाले प्राणियों के दुखों का वर्णन। चित्रगुप्त द्वारा पापियों का वर्णन। भयंकर नरकोंका वर्णन। अनेक प्रकार के पापों का वर्णन। पापों के अनुरोध से नरक प्राप्ति कथन।

नरकों के दुःख निवारण के लिये मुनियों द्वारा व्यास के प्रति प्रश्न। व्यासजी द्वारा धर्म के आचरण से सुगति प्राप्ति का वर्णन।

प्राणांस्त्यजति यो मर्त्यः स्मरन्विष्णुं सनातनम्।
यानेनार्कप्रकाशेन याति धर्मपुरं नरः॥
सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वयज्ञेषु यत्फलम्।
अम्रांसभक्षणे विप्रास्तच्च तच्च च तत्समम्॥
ये तु तं धर्मराजानं नराः पुण्यानुभावतः।
पश्यन्ति सौम्यमनसं पितृभूतमिवाऽऽत्मनः॥
तस्माद्धर्मः सेवितव्यः सदा मुक्तिफलप्रदः।
धर्मादर्थस्तथाकामो मोक्षश्चपरिकीर्त्यते॥
धर्मोमाता पिताभ्राता धर्मोनाथःसुहृत्तथा।
धर्मः स्वामी सखागोप्ता तथा धाता च पोषकः॥
धर्मस्तु सेवितोविप्रास्त्रायते महतोभयात्।
देवत्वं च द्विजत्वं च धर्मात्प्राप्नोत्यसंशयम्॥

ये नरा नरकध्वंसिवासुदेवमनुव्रताः ।
ते स्वप्नेऽपि न पश्यन्ति यमं वा नरकार्णवम् ॥
कर्मणा मनसा वाचा येऽच्युतं शरणंगता. ।
न समर्थो यमस्तेषा ते मुक्तिफलभागिन' ॥

२१७ धर्मश्रैष्ठ्यवर्णनम् । शरीरोत्पत्तिकथनम् । १२६९
पुण्यपापानुरोधेन नानायोनिषुजननवर्णनम् ।

धर्म की श्रेष्ठता का वर्णन । शरीर की उत्पत्ति का वर्णन । पुण्य एवं पाप के अनुरोध से अनेक योनियों में जनन वर्णन । तदनन्तर पापपुण्य का वर्णन ।

२१८ अन्नदानप्रशंसावर्णनम् १२८१

शुभप्राप्ति विषयक मुनियों का व्यास के प्रति प्रश्न । अन्नकी प्रशंसा । अन्नदान से शुभ प्राप्ति का कथन ।

नर कृत्वाऽप्यकर्माणि सतो धर्मेण युज्यते ।
सर्वेषामेव दानानामन्नंश्रेष्ठमुदाहृतम् ॥
सर्वमन्नं प्रदातव्यमृजुनाधर्ममिच्छता ।
प्राणाह्यन्नं मनुष्याणा तस्माज्जन्तु प्रजायते ॥
अन्ने प्रतिष्ठिता लोकास्तस्मादन्नंप्रशस्यते ।
अन्नमेव प्रशंसन्ति देवर्षिपितृमानवाः ॥
अन्नस्यहि प्रदानेन स्वर्गमाप्नोति मानव ।
न्यायलब्धं प्रदातव्यं द्विजातिभ्योऽन्नमुत्तमम् ॥

वृत्त्यर्थं धर्महेतोर्वा कामकारात्तथैव च ।
अनृतं ये न भाषन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ॥
श्लक्ष्णां वाणीं स्वच्छवर्णां मधुरां पापवर्जिताम् ।
स्वागतेनाभिभाषन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ॥
परुषं ये न भाषन्ते कटुकं निष्ठुरं तथा ।
न पैशुन्यरताः सन्तस्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥
न कोपाद्व्याहरन्ते ये वाचं हृदयदारिणीम् ।
शान्तिं विन्दन्ति ये क्रुद्धास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥
अरण्ये विजने न्यस्तं परस्वं दृश्यते यदा ।
मनसाऽपि न गृह्णन्ति ते नराः स्वर्गगामिनः ॥
तथैव परदारान्ये कामवृत्ता रहोगताः ।
मनसाऽपि न हिंसन्ति ते नराः स्वर्गगामिनः ॥
अवैरा ये त्वनायासा मैत्रचित्तरताः सदा ।
सर्वभूतदयावन्तस्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

कर्म के फलोदय का फल कथन ।

पापेन कर्मणा देवि युक्तो हिंसादिभिर्यतः ।
अहितः सर्वभूतानां हीनायुरुपजायते ॥
शुभेन कर्मणा देवि प्राणिघातविवर्जितः ।
निक्षिप्तशस्त्रो निर्दण्डो न हिंसन्ति कदाचन ॥
न घातयति नो हन्ति घ्नन्तं नैवानुमोदते ।
सर्वभूतेषु सस्नेहो यथाऽऽत्मनि तथा परे ॥

विष्णु भगवान् के जागरणमें भगवद्भजन का फल। चाण्डाल और राक्षस का संवाद।

धर्मार्थकाममोक्षाणां शरीरं साधनं यतः।
महता तु प्रयत्नेन शरीरं पालयेद्बुधः॥
जीवधर्मार्थसुखं नरस्तथाप्नोति मोक्षगतिमग्र्याम्।
जीवन्कीर्तिमुपैति च भवति मृतस्य का कथालोके॥

सत्य की प्रशंसा :—

सत्येनार्कः प्रतपति सत्येनाऽऽपो रसात्मिकाः।
ज्वलत्यग्निश्च सत्येन वाति सत्येन मारुतः॥
धर्मार्थकामसंप्राप्ति र्मोक्षप्राप्तिश्च दुर्लभा।
सत्येन जायते पुंसां तस्मात्सत्यं न संत्यजेत्॥
सत्यं ब्रह्म परंलोके सत्यं यज्ञेषु चोत्तमम्।
सत्यं स्वर्गसमायातं तस्मात्सत्यं न संत्यजेत्॥

जागरण की पुण्य प्राप्ति के लिये राक्षस द्वारा मातङ्ग की प्रार्थना। ब्रह्मराक्षस के पूर्वजन्म का कथन एवं राक्षसत्व की प्राप्ति। चाण्डाल के पूर्वजन्म का कथन। मूर्ख ब्राह्मण और उर्वशी का संवाद। शकटदान का माहात्म्य।

व्यास और मुनियोंके संवादमें विष्णुभक्तिका हेतु कथन। सूर्यादि देवोंकी आराधना कथन। भगवान्की मायाका

शूद्राश्च वादिनश्चैव ब्राह्मणाश्चान्त्यवासिनः ॥
शुक्लदन्ता जिताक्षाश्च मुण्डाः काषायवाससः ।
शूद्रा धर्मं वदिष्यन्ति शाठ्यबुद्ध्योपजीविनः ॥
आयुस्तत्र ■ मर्त्यानां परं त्रिंशद्भविष्यति ।
दुर्बला विषयग्लाना जराशोकैरभिप्लुताः ॥

न यः समुत्सुकः कश्चिद्ग्रन्थार्थं स्थूलबुद्धिमान् ।
स कथं मन्दविज्ञानो ग्रन्थं वक्ष्यामि निर्णयात् ॥
अज्ञात्वा ग्रन्थतत्त्वानि वादं यः कुरुते नरः ।
लोभाद्वाऽप्यथवा दम्भात्स पापी नरकं व्रजेत् ॥
निर्णयं चापि छिद्रात्मा न तद्वक्ष्यति तत्त्वतः ।
सोऽपीहास्यार्थतत्त्वज्ञो यस्मान्नैवाऽऽत्मवानपि ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

ब्रह्मपुराणम् ।



प्रथमोऽध्यायः

तत्रादौ नैमिषारण्य वर्णनम्

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीञ्चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

यस्मात् सर्व्वमिदं प्रपञ्चरचित मायाजगज्जायते,
यस्मिंस्तिष्ठति याति चान्तसमये कल्पानुकल्पे पुनः ।
यं ध्यात्वा मुनयः प्रपञ्चरहितं विन्दन्ति मोक्षं ध्रुवं,
तं वन्दे पुरुषोत्तमाख्यममलं नित्यं विभुं निश्चलम् ॥१॥
यं ध्यायन्ति बुधाः समाधिसमये शुद्धं वियत्सन्निभं,
नित्यानन्दमयं प्रसन्नममलं सर्व्वेश्वरं निर्गुणम् ।
व्यक्ताव्यक्तपरं प्रपञ्चरहितं ध्यानैकगम्यं विभुं,
तं संसारविनाशहेतुमजरं वन्दे हरिं मुक्तिदम् ॥ २ ॥
सुपुण्ये नैमिषारण्ये पवित्रे सुमनोहरे ।
नानामुनिजनाकीर्णे नानापुष्पोपशोभिते ॥ ३ ॥
सरलैः कर्णिकारैश्च पनसैर्धवखादिरैः ।
आम्रजम्बूकपित्थैश्च न्यग्रोधैर्देवदारुभिः ॥ ४ ॥

मुनय ऊचुः ।

पुराणागमशास्त्राणि सेतिहासानि सत्तम ।
जानासि देवदैत्यानां चरितं जन्म कर्म च ॥ १६ ॥
न तेऽस्त्यविदितं किञ्चिद्वेदे शास्त्रे च भारते ।
पुराणे मोक्षशास्त्रे च सर्वज्ञोऽसि महामते ॥ १७ ॥
यथापूर्वमिदं सर्वमुत्पन्नं सचराचरम् ।
ससुरासुरगन्धर्वं सयक्षोरगराक्षसम् ॥ १८ ॥
श्रोतुमिच्छामहे सूत ब्रूहि सर्वं यथा जगत् ।
बभूव भूयश्च यथा महाभाग भविष्यति ॥ १९ ॥
यतश्चैव जगत् सूत यतश्चैव चराचरम् ।
लीनमासीत्तथा यत्र लयमेष्यति यत्र च ॥ २० ॥

लोमहर्षण उवाच ।

अविकाराय शुद्धाय नित्याय परमात्मने ।
सदैकरूपरूपाय विष्णवे सर्वजिष्णवे ॥ २१ ॥
नमो हिरण्यगर्भाय हरये शङ्कराय च ।
वासुदेवाय ताराय सर्गस्थित्यन्तकर्मणे ॥ २२ ॥
एकानेकस्वरूपाय स्थूलसूक्ष्मात्मने नमः ।
अव्यक्तव्यक्तभूताय विष्णवे मुक्तिहेतवे ॥ २३ ॥
सर्गस्थितिविनाशाय जगतो योऽजरामरः ।
मूलभूतो नमस्तस्मै विष्णवे परमात्मने ॥ २४ ॥
आधारभूतं विश्वस्याप्यणीयांसमणीयसाम् ।
प्रणम्य सर्वभूतस्थमच्युतं पुरुषोत्तमम् ॥ २५ ॥

ज्ञानस्वरूपमत्यन्त निर्मल परमार्थत ।
तमेवार्थस्वरूपेण भ्रान्तिदर्शनत स्थितम् ॥ २६ ॥
विष्णुं ग्रसिष्णुं विश्वस्य स्थितौ स्वर्गे तथा प्रभुम् ।
सर्वज्ञ जगतामीशमजमक्षयमव्ययम् ॥ २७ ॥
आद्य सुसूक्ष्मं विश्वेशं ब्रह्मादीन् प्रणिपत्य च ।
इतिहासपुराणज्ञ वेदवेदाङ्गपारगम् ॥ २८ ॥
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञ पराशरसुत प्रभुम् ।
गुरु प्रणम्य वक्ष्यामि पुराण वेदसम्मितम् ॥ २९ ॥
कथयामि यथापूर्वं दक्षाद्यैर्मुनिसत्तमै ।
पृष्ट प्रोवाच भगवानब्जयोनि पितामह ॥ ३० ॥
शृणुध्व सम्प्रवक्ष्यामि कथा पापप्रणाशिनीम् ।
कथ्यमाना मया चित्रा बह्वर्था श्रुतिविस्तराम् ॥ ३१ ॥
यस्त्विमा धारयेन्नित्य शृणुयाद्वाप्यभीक्ष्णश ।
स्ववशधारण कृत्वा स्वर्गलोके महीयते ॥ ३२ ॥
अव्यक्त कारण यत्तन्नित्य सदसदात्मकम् ।
प्रधान पुरुषस्तस्मान्निर्ममे विश्वमीश्वर ॥ ३३ ॥

कीर्त्तितं स्थिरकीर्त्तीनां सर्व्वेषां पुण्यवर्द्धनम्।
ततः स्वयम्भूर्भगवान् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ॥ ३७ ॥
अप एव ससर्ज्जादौ तासु वीर्य्यमथासृजत्।
आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ॥ ३८ ॥
अयनं तस्य ताः पूर्व्वं तेन नारायणः स्मृतः।
हिरण्यवर्णमभवत्तदण्डमुदकेशयम् ॥ ३९ ॥
तत्र जज्ञे स्वयं ब्रह्मा स्वयम्भूरिति नः श्रुतम्।
हिरण्यवर्णो भगवानुषित्वा परिवत्सरम् ॥ ४० ॥
तदण्डमकरोद्द्वैधं दिवं भुवमथापि च।
तयोः शकलयोर्म्मध्य आकाशमकरोत्प्रभुः ॥ ४१ ॥
अप्सु पारिप्लवां पृथ्वीं दिशश्च दशधा दधे।
तत्र कालं मनो वाचं कामं क्रोधमथो रतिम् ॥ ४२ ॥
ससर्ज सृष्टिं तद्रूपां स्रष्टुमिच्छन्प्रजापतीन्।
मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ॥ ४३ ॥
वसिष्ठं च महातेजाः सोऽसृजत्सप्त मानसान्।
सप्त ब्राह्मण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः ॥ ४४ ॥
नारायणात्मकानां तु सप्तानां ब्रह्मजन्मनाम्।
ततोऽसृजत् पुरा ब्रह्मा रुद्रं रोषात्मसम्भवम् ॥ ४५ ॥
सनत्कुमारं च विभुं पूर्व्वेषामपि पूर्व्वजम्।
सप्तस्वेता अजायन्त प्रजा रुद्राश्च भो द्विजाः ॥ ४६ ॥
स्कन्दः सनत्कुमारश्च तेजः संक्षिप्य तिष्ठतः।
तेषां सप्त महावंशा दिव्या देवगणान्विताः ॥ ४७ ॥

क्रियावन्त प्रजावन्तो महर्षिभिरलङ्कृता ।
विद्युतोऽशनिमेघाश्च रोहितेन्द्रधनूषि च ॥ ४८ ॥
वयासि च ससर्जादौ पर्जन्यञ्च ससर्ज ह ।
ऋचो यजूषि सामानि निर्ममे यज्ञसिद्धये ॥ ४९ ॥
साध्यानजनयद्देवानित्येवमनुसञ्शुश्रुम ।
उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्य जज्ञिरे ॥ ५० ॥
आपवस्य प्रजासर्ग सृजतो हि प्रजापते ।
सृज्यमाना प्रजा नैव विवर्द्धन्ते यदा तदा ॥ ५१ ॥
द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्द्धेन पुरुषोऽभवत् ।
अर्द्धेन नारी तस्या तु सोऽसृजद्विविधा प्रजा ॥ ५२ ॥
दिवञ्च पृथिवीं चैव महिम्ना व्याप्य तिष्ठति ।
विराजमसृजद्विष्णु सोऽसृजत् पुरुष विराट् ॥ ५३ ॥
पुरुष त मनु विद्यात्तस्य मन्वन्तर स्मृतम् ।
द्वितीय मानसस्यैतन्मनोरन्तरमुच्यते ॥ ५४ ॥
स वैराज प्रजासर्गं ससर्ज पुरुष प्रभु ।
नारायणविसर्गस्य प्रजास्तस्याप्ययोनिजा ॥ ५५ ॥
आयुष्मान् कीर्तिमान् पूर्णप्रज्ञावाश्च भवेन्नर ।
आदिसर्गं विदित्वेम यथेष्टा चाप्नुयाद्गतिम् ॥ ५६ ॥

इति श्रीब्रह्म महापुराणे आदिसर्गवर्णन
प्रथमोऽध्याय ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः ।

तत्रादौ स्वयम्भुव मनुवंश वर्णनम्

लोमहर्षण उवाच ।

स सृष्ट्वा तु प्रजास्त्वेवमापवो वै प्रजापतिः ।
लेभे वै पुरुषः पत्नीं शतरूपामयोनिजाम् ॥ १ ॥
आपवस्य महिम्ना तु दिवमावृत्य तिष्ठतः ।
धर्मेणैव मुनिश्रेष्ठाः शतरूपा व्यजायत ॥ २ ॥
सा तु वर्षायुतं तप्त्वा तपः परमदुश्चरम् ।
भर्त्तारं दीप्ततपसं पुरुषं प्रत्यपद्यत ॥ ३ ॥
स वै स्वायम्भुवो विप्राः पुरुषो मनुरुच्यते ।
तस्यैकसप्ततियुगं मन्वन्तरमिहोच्यते ॥ ४ ॥
वैराजात् पुरुषाद्वीरं शतरूपा व्यजायत ।
प्रियव्रतोत्तानपादौ वीरात् काम्या व्यजायत ॥ ५ ॥
काम्या नाम सुता श्रेष्ठा कर्दमस्य प्रजापतेः ।
काम्यापुत्रास्तु चत्वारः सम्राट् कुक्षिर्विराट्प्रभुः ॥ ६ ॥
उत्तानपादं जग्राह पुत्रमत्रिः प्रजापतिः ।
उत्तानपादाच्चतुरः सूनृता सुषुवे सुतान् ॥ ७ ॥
धर्मस्य कन्या सुश्रोणी सूनृता नाम विश्रुता ।
उत्पन्ना वाजिमेधेन ध्रुवस्य जननी शुभा ॥ ८ ॥
ध्रुवञ्च कीर्त्तिमन्तञ्च आयुष्मन्तं वसुं तथा ।
उत्तानपादोऽजनयत् सूनृतायां प्रजापतिः ॥ ९ ॥

ध्रुवो वर्षसहस्राणि त्रीणि दिव्यानि भो द्विजाः ।
तपस्तेपे महाभागः प्रार्थयन् सुमहद्यशः ॥ १० ॥
तस्मै ब्रह्मा ददौ प्रीतः स्थानमात्मसमं प्रभुः ।
अचलञ्चैव पुरतः सप्तर्षीणां प्रजापतिः ॥ ११ ॥
तस्याभिमानमृद्धिञ्च महिमानं निरीक्ष्य च ।
देवासुराणामाचार्य्यः श्लोकं प्रागुशना जगौ ॥ १२ ॥
अहोऽस्य तपसो वीर्य्यमहो श्रुतमहोऽद्भुतम् ।
यमद्य पुरतः कृत्वा ध्रुवं सप्तर्षयः स्थिताः ॥ १३ ॥
तस्माच्छिलष्टिं च भव्यं च ध्रुवाच्छम्भुर्व्यजायत ।
श्लिष्टेराधत्त सुच्छाया पञ्च पुत्रानकल्मषान् ॥ १४ ॥
रिपुं रिपुञ्जयं वीरं वृकलं वृकतेजसम् ।
रिपोराधत्त बृहती चक्षुषं सर्व्वतेजसम् ॥ १५ ॥
अजीजनत् पुष्करिण्यां वैरण्यां चाक्षुषं मनुम् ।
प्रजापतेरात्मजाया वीरणस्य महात्मनः ॥ १६ ॥
मनोरजायन्त दश नड्वलाया महौजसः ।
कन्यायां मुनिशार्दूला वैराजस्य प्रजापतेः ॥ १७ ॥
कुत्सः पुरुः शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवाक्कविः ।
अग्निष्टुदतिरात्रश्च सुद्युम्नश्चेति ते नव ॥ १८ ॥
अभिमन्युश्च दशमो नड्वलायां महौजसः ।
पुरोरजनयत् पुत्रान् षडाग्नेयी महाप्रभान् ॥ १९ ॥
अङ्गं सुमनसं ख्यातिं क्रतुमङ्गिरसं गयम् ।
अङ्गात् सुनीथापत्यं वै वेनमेकं व्यजायत ॥ २० ॥

अपचारेण वेनस्य प्रकोपः सुमहानभूत् ।
प्रजार्थमृषयो यस्य ममन्थुर्दक्षिणं करम् ॥ २१ ॥

वेनस्य मथिते पाणौ स बभूव महान्नृपः ।
तं दृष्ट्वा मुनयः प्राहुरेष वै मुदिताः प्रजाः ॥ २२ ॥

करिष्यति महातेजा यशश्च प्राप्स्यते महत् ।
स धन्वी कवची जातो ज्वलज्ज्वलनसन्निभः ॥ २३ ॥

पृथुर्वैन्यस्तथा चेमां ररक्ष क्षत्रपूर्व्वजः ।
राजसूयाभिषिक्तानामाद्यः स वसुधाधिपः ॥ २४ ॥

तस्माच्चैव समुत्पन्नौ निपुणौ सूतमागधौ ।
तेनेयं गौर्मुनिश्रेष्ठा दुग्धा शस्यानि भूभृता ॥ २५ ॥

प्राचीनाग्राः कुशास्तस्य पृथिव्यां द्विजसत्तमाः ।*
प्राचीनबर्हिर्भगवान् पृथिवीतलचारिणीः ॥ ३१ ॥
समुद्रतनयायां तु कृतदारोऽभवत् प्रभुः ।
महतस्तपसः पारे सवर्णायां प्रजापतिः ॥ ३२ ॥
सवर्णाधत्त सामुद्री दश प्राचीनबर्हिषः ।
सर्वान् प्राचेतसो नाम धनुर्वेदस्य पारगान् ॥ ३३ ॥
अपृथग्धर्मचरणास्तेऽतप्यन्त महत्तपः ।
दश वर्षसहस्राणि समुद्रसलिलेशयाः ॥ ३४ ॥
तपश्चरत्सु पृथिवीं प्रचेतःसु महीरुहाः ।
अरक्ष्यमाणामावव्रुर्बभूवाथ प्रजाक्षयः ॥ ३५ ॥
नाशकन्मारुतो वातुं वृतं खमभवद्द्रुमैः ।
दश वर्षसहस्राणि न शेकुश्चेष्टितुं प्रजाः ॥ ३६ ॥
तदुपश्रुत्य तपसा युक्ताः सर्वे प्रचेतसः ।
मुखेभ्यो वायुमग्निं च ससृजुर्जातमन्यवः ॥ ३७ ॥
उन्मूलानथ वृक्षांस्तु कृत्वा वायुरशोषयत् ।
तानग्निरदहद्धोर एवमासीद्द्रुमक्षयः ॥ ३८ ॥
द्रुमक्षयमथो बुद्ध्वा किञ्चिच्छिष्टेषु शाखिषु ।
उपगम्याब्रवीदेतांस्तदा सोमः प्रजापतीन् ॥ ३९ ॥
कोपं यच्छत राजानः सर्वे प्राचीनबर्हिषः ।
वृक्षशून्या कृता पृथ्वी शाम्येतामग्निमारुतौ ॥ ४० ॥

---

* इदमर्धं क्वचिन्न दृश्यते ।

मुनय ऊचु ।

देवाना दानवानाञ्च गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।
सम्भवस्तु श्रुतोऽस्माभिर्दक्षस्य च महात्मन ॥ ५१ ॥
अङ्गुष्ठाद्ब्रह्मणो जज्ञे दक्ष किल शुभव्रत ।
वामाङ्गुष्ठात्तथा चैव तस्य पत्नी व्यजायत ॥ ५२ ॥
कथ प्राचेतसत्वं स पुनर्लेभे महातपा ।
एत न सशय सूत व्याख्यातु त्वमिहार्हसि ॥
दौहित्रश्चैव सोमस्य कथं श्वशुरता गत ॥ ५३ ॥

लोमहर्षण उवाच ।

उत्पत्तिश्च निरोधश्च नित्य भूतेषु भोद्विजा ।
ऋषयोऽत्र न मुह्यन्ति विद्यावन्तश्च ये जना ॥ ५४ ॥
युगे युगे भवन्त्येते पुनर्दक्षादयो नृपा ।
पुनश्चैव निरुध्यन्ते विद्वांस्तत्र न मुह्यति ॥ ५५ ॥
ज्यैष्ठ्य कानिष्ठ्यमप्येषापूर्वंनासीद्द्विजोत्तमा ।
तप एव गरीयोऽभूत्प्रभावश्चैव कारणम् ॥ ५६ ॥
इमा विसृष्टिं दक्षस्य यो विद्यात् सचराचराम् ।
प्रजावानायुरुत्तीर्ण स्वर्गलोके महीयते ॥ ५७ ॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे सृष्टिकथन नाम
द्वितीयोऽध्याय ॥ २ ॥

— —

तृतीयोऽध्यायः ।

देवदानवोत्पत्ति वर्णनम्

मुनय ऊचुः ।

देवानां दानवानां च गन्धर्व्वोरगरक्षसाम् ।
उत्पत्तिं विस्तरेणैव लोमहर्षण कीर्त्तय ॥ १ ॥

लोमहर्षण उवाच ।

प्रजाः सृजति व्यादिष्टः पूर्व्वं दक्षः स्वयम्भुवा ।
यथा ससर्ज भूतानि तथा शृणुत भो द्विजाः ॥ २ ॥
मानसान्येव भूतानि पूर्व्वमेवासृजत् प्रभुः ।
ऋषीन्देवान्सगन्धर्व्वानसुरान्यक्षराक्षसान् ॥ ३ ॥
यदास्य मानसी विप्रा न व्यवर्द्धत वै प्रजाः ।
तदा सञ्चिन्त्य धर्म्मात्मा प्रजाहेतोः प्रजापतिः ॥ ४ ॥
स मैथुनेन धर्म्मेण सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ।
असिक्नीमावहत् पत्नीं वीरणस्य प्रजापतेः ॥ ५ ॥
सुतां सुतपसा युक्तां महतीं लोकधारिणीम् ।
अथ पुत्रसहस्राणि वैरण्यां पञ्च वीर्य्यवान् ॥ ६ ॥
असिक्न्यां जनयामास दक्ष एव प्रजापतिः ।
तांस्तु दृष्ट्वा महाभागानभिवर्द्धयिषून् प्रजाः ॥ ७ ॥
देवर्षिः प्रियसंवादो नारदः प्राब्रवीदिदम् ।
नाशाय वचनं तेषां शापायैवात्मनस्तथा ॥ ८ ॥
यं कश्यपः सुतवरं परमेष्ठी व्यजीजनत् ।
दक्षस्य वै दुहितरि दक्षशापभयान्मुनिः ॥ ९ ॥

पूर्वं स हि समुत्पन्नो नारदः परमेष्ठिनः ।
असिक्न्यामथ वैरण्यां भूयो देवर्षिसत्तमः ॥ १० ॥
तं भूयो जनयामास पितेव मुनिपुङ्गवम् ।
तेन दक्षस्य वै पुत्रा हर्यश्वा इति विश्रुताः ॥ ११ ॥
निर्मथ्य नाशिताः सर्व्वे विधिना च न संशयः ।
तस्योद्यतस्तदा दक्षो नाशायामितविक्रम ॥ १२ ॥
ब्रह्मर्षीन् पुरतः कृत्वा याचितः परमेष्ठिना ।
ततोऽभिसन्धिश्चक्रे वै दक्षस्य परमेष्ठिना ॥ १३ ॥
कन्यायां नारदो मह्यं तव पुत्रो भवेदिति ।
ततो दक्षः सुतां प्रादात् प्रियां वै परमेष्ठिने
स तस्यां नारदो जज्ञे भूयः शापभयादृषिः ॥ १४ ॥

मुनय ऊचुः ।

कथं प्रणाशिताः पुत्रा नारदेन महर्षिणा ।
प्रजापतेः सूतवर्य्य श्रोतुमिच्छाम तत्त्वतः ॥ १५ ॥

लोमहर्षण उवाच ।

दक्षस्य पुत्रा हर्य्यश्वा विवर्द्धयिषवः प्रजाः ।
समागता महावीर्य्या नारदस्तानुवाच ह ॥ १६ ॥

नारद उवाच ।

बालिशा वत यूयं वै नास्या जानीत वै भुवः ।
प्रमाणं स्रष्टुकामा वै प्रजाः प्राचेतसात्मजाः ॥ १७ ॥
अन्तरूर्द्ध्वमधश्चैव कथं सृजथ वै प्रजाः ।
ते तु तद्वचनं श्रुत्वा प्रयाताः सर्व्वतो दिशः ॥ १८ ॥

अद्यापि न निवर्त्तन्ते समुद्रेभ्य इवापगा ।
हर्यश्वेष्वथ नष्टेषु दक्ष प्राचेतस पुन ॥ १९ ॥
वैरण्यामथ पुत्राणा सहस्रमसृजत्प्रभु ।
विवर्द्धयिषवस्ते तु शबलाश्वास्तथा प्रजा ॥ २० ॥
पूर्व्वोक्त वचन ते तु नारदेन प्रचोदिता ।
अन्योन्यमूचुस्ते सर्व्वे सम्यगाह महामुनि ॥ २१ ॥
भ्रातृणा पदवी ज्ञातु गन्तव्य नात्र सशय ।
ज्ञात्वा प्रमाण पृथ्व्याश्च सुखम् स्रक्ष्यामहे प्रजा ॥ २२ ॥
तेऽपि तेनैव मार्गेण प्रयाता सर्व्वतो दिशम् ।
अद्यापि न निवर्त्तन्ते समुद्रेभ्य इवापगा ॥ २३ ॥
तदा प्रभृति वै भ्राता भ्रातुरन्वेषणे द्विजा ।
प्रयातो नश्यति क्षिप्र तन्न कार्य्यं विपश्चिता ॥ २४ ॥
तांश्चैव नष्टान् विज्ञाय पुत्रान् दक्ष प्रजापति ।
षष्टि ततोऽसृजन् कन्या वैरण्यामिति न श्रुतम् ॥ २५ ॥
तास्तदा प्रतिजग्राह भार्य्यार्थं कश्यप प्रभु ।
सोमो धर्म्मश्च भो विप्रास्तथैवान्ये महर्षय ॥ २६ ॥
ददौ स दश धर्म्माय कश्यपाय त्रयोदश ।
सप्तविंशति सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमिने ॥ २७ ॥
द्वे चैव बहुपुत्राय द्वे चैवाङ्गिरसे तथा ।
द्वे कृशाश्वाय विदुषे तासा नामानि मे शृणु ॥ २८ ॥
अरुन्धती वसुर्यामी लम्बा भानुर्मरुत्वती ।
सङ्कल्पा च मुहूर्त्ता च साध्या विश्वा च भो द्विजा ॥ २९ ॥

धर्म्मपत्न्यो दश त्वेतास्तास्वपत्यानि बोधत ।
विश्वेदेवास्तु विश्वाया साध्या साध्यान् व्यजायत ॥ ३० ॥
मरुत्वत्या मरुत्वन्तो वसोस्तु वसव सुता ।
भानोस्तु भानव पुत्रा मुहूर्त्तास्तु मुहूर्त्तजा ॥ ३१ ॥
लम्बायाश्चैव घोषोऽथ नागवीथी च यामिजा ।
पृथिवीविषय सर्व्वमरुन्धत्या व्यजायत ॥ ३२ ॥
सङ्कल्पायास्तु विश्वात्मा जज्ञे सङ्कल्प एव हि ।
नागवीथ्याश्च यामिन्या वृषलश्च व्यजायत ॥ ३३ ॥
परा या सोमपत्नीश्च दक्ष प्राचेतसो ददौ ।
सर्व्वा नक्षत्रनाम्न्यस्ता ज्योतिषे परिकीर्त्तिता ॥ ३४ ॥
ये त्वन्ये ख्यातिमन्तो वै देवा ज्योतिष्पुरोगमा ।
वसवोऽष्टौ समाख्यातास्तेषा वक्ष्यामि विस्तरम् ॥ ३५ ॥
आपो ध्रुवश्च सोमश्च धवश्चैवानिलोऽनल ।
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवो नामभि स्मृता ॥ ३६ ॥
आपस्य पुत्रो वैतण्ड श्रम श्रान्तो मुनिस्तथा ।
ध्रुवस्य पुत्रो भगवान् कालो लोकप्रकालन ॥ ३७ ॥
सोमस्य भगवान् वर्चा वर्चस्वी येन जायते ।
धवस्य पुत्रो द्रविणो हुतह व्यवहस्तथा ॥ ३८ ॥
मनोहराया शिशिर प्राणोऽथ रमणस्तथा ।
अनिलस्य शिवा भार्य्या तस्या पुत्रो मनोजव ।
अविज्ञातगतिश्चैव द्वौ पुत्रावनिलस्य च ॥ ३९ ॥

अग्निपुत्र कुमारस्तु शरस्तम्बे श्रिया वृत ।
तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च पृष्ठज ॥ ४० ॥
अपत्य कृत्तिकाना तु कार्त्तिकेय इति स्मृत ।
प्रत्यूषस्य विदु पुत्रमृषि नाम्नाथ देवलम् ॥ ४१ ॥
द्वौ पुत्रौ देवलस्यापि क्षमावन्तौ मनीषिणौ ।
बृहस्पतेस्तु भगिनी वरस्त्री ब्रह्मवादिनी ॥ ४२ ॥
योगसिद्धा जगत् कृत्स्नमसक्ता विचचार ह ।
प्रभासस्य तु सा भार्य्या वसूनामष्टमस्य तु ॥ ४३ ॥
विश्वकर्म्मा महाभागो यस्या जज्ञे प्रजापति ।
कर्त्ता शिल्पसहस्राणा त्रिदशानाञ्च वार्द्धकि ॥ ४४ ॥
भूषणानाञ्च सर्व्वेषा कर्त्ता शिल्पवता वर ।
य सर्व्वेषा विमानानि देवताना चकार ह ॥ ४५ ॥
मानुषाश्चोपजीवन्ति यस्य शिल्प महात्मन ।
सुरभी कश्यपाद्रुद्रानेकादस विनिर्म्ममे ॥ ४६ ॥
महादेवप्रसादेन तपसा भाविता सती ।
अजैकपादहिर्बुध्न्यस्त्वष्टा रुद्रस्च वीर्य्यवान् ॥ ४७ ॥
हरश्च बहुरूपश्च त्र्यम्बकश्चापराजित ।
वृषाकपिश्च शम्भुश्च कपर्द्दी रैवतस्तथा ॥ ४८ ॥
मृगव्याधश्च शर्वश्च कपाली च द्विजोत्तमा ।
एकादशैते विख्याता रुद्रास्त्रिभुवनेश्वरा ॥ ४९ ॥
शत त्वेव समाख्यात रुद्राणाममितौजसाम् ।
पुराणे मुनिशार्दूला यैर्व्याप्त सचराचरम् ॥ ५० ॥

दारान् शृणुध्वं विप्रेन्द्राः कश्यपस्य प्रजापतेः ।
अदितिर्दितिर्दनुश्चैव अरिष्टा सुरसा खसा ॥ ५१ ॥
सुरभिर्विनता चैव ताम्रा क्रोधवशा इला ।
कद्रुर्मुनिश्च भो विप्रास्तास्वपत्यानि बोधत ॥ ५२ ॥
पूर्व्वमन्वन्तरे श्रेष्ठाद्वादशासन् सुरोत्तमाः ।
तुषिता नाम तेऽन्योन्यमूचुर्वैवस्वतेऽन्तरे ॥ ५३ ॥
उपस्थितेऽतियशसश्चाक्षुषस्यान्तरे मनोः
हितार्थं सर्व्वलोकानां समागम्य परस्परम् ॥ ५४ ॥
आगच्छत द्रुतं देवा अदितिं सम्प्रविश्य वै ।
मन्वन्तरे प्रसूयामस्तन्नः श्रेयो भविष्यति ॥ ५५ ॥
एवमुक्त्वा तु ते सर्व्वे चाक्षुषस्यान्तरे मनोः
मारीचात् कश्यपाज्जातास्त्वदित्या दक्षकन्यया ॥ ५६ ॥
तत्र विष्णुश्च शक्रश्च जज्ञाते पुनरेव हि ।
अर्य्यमा चैव धाता च त्वष्टा पूषा तथैव च ॥ ५७ ॥
विवस्वान् सविता चैव मित्रो वरुण एव च ।
अंशो भगश्चातितेजा आदित्या द्वादश स्मृताः ॥ ५८ ॥
चाक्षुषस्यान्तरे पूर्व्वमासंस्ते तुषिताः सुराः ।
वैवस्वतेऽन्तरे ते वा आदित्या द्वादश स्मृताः *
सप्तविंशति ताः प्रोक्ताः सोमपत्न्यो महाव्रताः
तासामपत्यान्यभवन् दीप्तान्यमिततेजसः ॥ ५९ ॥

* क्वचिदयं श्लोकोनास्ति ।

अरिष्टनेमिपत्नीनामपत्यानीह षोड़श।
वहुपुत्रस्य विदुषश्चतस्रो विद्युतः स्मृताः ॥ ६० ॥
चाक्षुपस्यान्तरे पूर्व्वे ऋचो ब्रह्मर्पिसत्कृताः।
कृशाश्वस्य च देवर्षेर्देवप्रहरणाः स्मृताः ॥ ६१ ॥
एते युगसहस्रान्ते जायन्ते पुनरेव हि।
सर्व्वे देवगणाश्चात्र त्रयस्त्रिंशत्तु कामजाः ॥ ६२ ॥
तेपामपि च भो विप्रा निरोधोत्पत्तिरुच्यते
यथा सूर्य्यस्य गगन उदयास्तमयाविह ॥ ६३ ॥
एवं देवनिकायास्ते सम्भवन्ति युगे युगे।
दित्याः पुत्रद्वयं जज्ञे कश्यपादिति नः श्रुतम् ॥ ६४ ॥
हिरण्यकशिपुश्चैव हिरण्याक्षश्च वीर्य्यवान्।
सिंहिकाचाभवन् कन्या विप्रचित्तेःपरिग्रहः ॥ ६५ ॥
सैंहिकेया इति ख्याता तस्याः पुत्रा महाबलाः।
हिरण्यकशिपोः पुत्राश्चत्वारः प्रथितौजसः ॥ ६६ ॥
ह्लादश्च अनुह्लादश्च प्रह्लादश्चैव वीर्य्यवान्।
संह्लादश्च चतुर्थोऽभूद्ध्लादपुत्रो ह्रदस्तथा ॥ ६७ ॥
ह्रदस्य पुत्रौ द्वौ वीरौ शिवः कालस्तथैव च।
विरोचनस्तु प्राह्लादिर्वलिर्जज्ञे विरोचनात् ॥ ६८ ॥
वलेः पुत्रशतं त्वासीद्वाणज्येष्ठं तपोधनाः।
धृतराष्ट्रश्च सूर्यश्चचन्द्रमाश्चन्द्रतापनः ॥ ६९ ॥
कुम्भनाभो गर्द भाक्षः कुक्षिरित्येवमादयः।
वाणस्तेपामतिवलो ज्येष्ठः पशुपतेः प्रियः ॥ ७० ॥

पुरा कल्पे तु बाणेन प्रसाद्योमापतिं प्रभुम् ।
पार्श्वतो विहरिष्यामि इत्येवं याचितो वरः ॥ ७१ ॥
हिरण्याक्षसुताश्चैव विद्वांसश्च महाबलाः ।
उर्ज्जरः शकुनिश्चैव भूतसन्तापनस्तथा ॥ ७२ ॥
महानाभश्च विक्रान्तः कालनामस्तथैव च ।
अभवन् दनुपुत्राश्च शतं तीव्रपराक्रमाः ॥ ७३ ॥
तपस्विनो महावीर्य्याः प्राधान्येन ब्रवीमि तान् ।
द्विमूर्द्धा शङ्कुकर्णश्च तथा हयशिरा विभुः ॥ ७४ ॥
अयोमुखः शम्बरश्च कपिलो वामनस्तथा ।
मारीचिर्मेघवाश्चैव इल्वलः खसृमस्तथा ॥ ७५ ॥
विक्षोभणश्च केतुश्च केतुवीर्य्यशतह्रदौ ।
इन्द्रजित्सर्व्वजिच्चैव वज्रनाभस्तथैव च ॥ ७६ ॥
एकचक्रो महाबाहुस्तारकश्च महाबलः ।
वैश्वानरः पुलोमा च विद्रावणमहाशिराः ॥ ७७ ॥
स्वर्भानुर्वृषपर्व्वा च विप्रचित्तिश्च वीर्य्यवान् ।
सर्व्वे एते दनोः पुत्राः कश्यपादभिजज्ञिरे ॥ ७८ ॥
विप्रचित्तिप्रधानास्ते दानवाः सुमहाबलाः ।
एतेषां पुत्रपौत्रन्तु न तच्छक्यं द्विजोत्तमाः ॥ ७९ ॥
प्रसङ्ख्यातुं बहुत्वाच्च पुत्रपौत्रमनन्तकम् ।
स्वर्भानोस्तु प्रभा कन्या पुलोम्नस्तु शची सुता ॥ ८० ॥
उपदानवी हयशिराः शर्मिष्ठा वार्षपर्व्वणी ।
पुलोमा कालिका चैव वैश्वानरसुते उभे ।
बह्वपत्ये महापत्ये मारीचेस्तु परिग्रहः ॥ ८१ ॥

पुरा कल्पे तु बाणेन प्रसाद्योमापतिं प्रभुम्।
पार्श्वतो विहरिष्यामि इत्येव याचितो वरः ॥ ७१ ॥
हिरण्याक्षसुताश्चैव विद्वांसश्च महाबलाः।
उज्झरः शकुनिश्चैव भूतसन्तापनस्तथा ॥ ७२ ॥
महानाभश्च विक्रान्तः कालनाभस्तथैव च।
अभवन् दनुपुत्राश्च शतं तीव्रपराक्रमाः ॥ ७३ ॥
तपस्विनो महावीर्य्याः प्राधान्येन ब्रवीमि तान्।
द्विमूर्द्धा शङ्कुकर्णश्च तथा हयशिरा विभुः ॥ ७४ ॥
अयोमुखः शम्बरश्च कपिलो वामनस्तथा।
मारीचिर्मेघवांश्चैव इल्वलः स्वसृमस्तथा ॥ ७५ ॥
विक्षोभणश्च केतुश्च केतुवीर्य्यशतह्रदौ।
इन्द्रजित्सर्वजिच्चैव वज्रनाभस्तथैव च ॥ ७६ ॥
एकचक्रो महाबाहुस्तारकश्च महाबलः।
वैश्वानरः पुलोमा च विद्रावणमहाशिराः ॥ ७७ ॥
स्वर्भानुर्वृषपर्व्वा च विप्रचित्तिश्च वीर्य्यवान्।
सर्व्वे एते दनोः पुत्राः कश्यपादभिजज्ञिरे ॥ ७८ ॥
विप्रचित्तिप्रधानास्ते दानवाः सुमहाबलाः।
एतेषां पुत्रपौत्रन्तु न तच्छक्यं द्विजोत्तमाः ॥ ७९ ॥
प्रसंख्यातुं बहुत्वाच्च पुत्रपौत्रमनन्तकम्।
स्वर्भानोस्तु प्रभा कन्या पुलोम्नस्तु शची सुता ॥ ८० ॥
उपदानवी हयशिरा शर्मिष्ठा वार्षपर्व्वणी।
पुलोमा कालिका चैव वैश्वानरसुते उभे।
बह्वपत्ये महापत्ये मारीचेस्तु परिग्रहः ॥ ८१ ॥

तिस्रः कोट्यः सुतास्तेषांमनिघत्यां निवासिनः
अवध्यास्तेऽपि देवानामर्ज्जुनेन निपातिताः ।
षट्सुताः सुमहाभागास्ताम्राया: परिकीर्त्तिताः ॥ ६२ ॥
क्रौञ्ची श्येनी च भासी च सुग्रीवी शुचिगृध्रिका ।
क्रौञ्ची तु जनयामास उलूकप्रत्यलूककान् ॥ ६३ ॥
श्येनी श्येनांस्तथा भासी भासान्गृध्रांश्च गृध्र्यपि ।
शुचिरौदकान्पक्षिगणान्सुग्रीवी तु द्विजोत्तमाः ॥ ६४ ॥
अश्वानुष्ट्रान् गर्दभांश्च ताम्रावंशः प्रकीर्त्तितः ।
विनतायास्तु द्वौ पुत्रौ विख्यातौ गरुडारुणौ ॥ ६५ ॥
गरुडः पततां श्रेष्ठो दारुणः स्वेन कर्मणा ।
सुरसायाः सहस्रन्तु सर्पाणाममितौजसाम् ॥ ६६ ॥
अनेकशिरसां विप्राः खचराणां महात्मनाम् ।
काद्रवेयास्तु बलिनः सहस्रममितौजसः ॥ ६७ ॥
सुपर्णवशगा नागा जज्ञिरे नैकमस्तकाः ।
येषां प्रधानाः सततं शेषवासुकितक्षकाः ॥ ॥ ६८ ॥
ऐरावतो महापद्मः कम्बलाश्वतरावुभौ ।
एलापत्रश्च शङ्खश्च कर्कोटकधनञ्जयौ ॥ ६९ ॥
महानीलमहाकर्णौ धृतराष्ट्रबलाहकौ ।
कुहरः पुष्पदंष्ट्रश्च दुर्मुखः सुमुखस्तथा ॥ १०० ॥
शङ्खश्च शङ्खपालश्च कपिलो वामनस्तथा ।
नहुषः शङ्खरोमा च मनिरित्येवमादयः ॥ १०१ ॥

तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः ।
चतुर्दशसहस्राणि क्रूराणामनिलाशिनाम् ॥ १०२ ॥
गणं क्रोधवशं विप्रास्तस्य सर्वे च दंष्ट्रिणः
स्थलजाः पक्षिणोऽजाश्च धरायाः प्रसवाः स्मृताः ॥ १०३ ॥
गास्तु वै जनयामास सुरभिर्महिषीस्तथा ।
इरा वृक्षलता वल्लीस्तृणजातीश्च सर्वशः ॥ १०४ ॥
खसा तु यक्षरक्षांसि मुनिरप्सरसस्तथा ।
अरिष्टा तु महासिद्धा गंधर्व्वानमितौजसः ॥ १०५ ॥
एते कश्यपदायादाः कीर्तिताः स्थाणुजङ्गमाः ।
येषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १०६ ॥
एष मन्वन्तरे विप्राः सर्गः स्वारोचिषे स्मृतः ।
वैवस्वतेऽनिमहति वारुणे वितते क्रतौ ॥ १०७ ॥
जुह्वानस्य ब्रह्मणो वै प्रजासर्ग इहोच्यते ।
पूर्व्वं यत्र समुत्पन्नान्ब्रह्मर्षीन्सप्त मानसान् ॥ १०८ ॥
पुत्रत्वे कल्पयामास स्वयमेव पितामहः ।
ततो विरोधे देवानां दानवानां च भो द्विजाः ॥ १०९ ॥
दितिर्विनष्टपुत्रा वै तोषयामास कश्यपम् ।
कश्यपस्तु प्रसन्नात्मा सम्यगाराधितस्तया ॥ ११० ॥
वरेण छन्दयामास सा च वव्रे वरं तदा ।
पुत्रमिन्द्रवधार्थाय समर्थममितौजसम् ॥ १११ ॥
स च तस्मै वरं प्रादात् प्रार्थितः सुमहातपाः ।
दत्वा च वरमत्युग्रो मारीचः सममापत ॥ ११२ ॥

इन्द्रं पुत्रो निहन्ता ते गर्भं वै शरदां शतम् ।
यदि धारयसे शौचतत्परा व्रतमास्थिता ॥ ११३ ॥
तथेत्यभिहितो भर्त्ता तया देव्या महातपाः ।
धारयामास गर्भं तु शुचिः सा मुनिसत्तमाः ॥ ११४ ॥
ततोऽभ्युपागमद्दित्यां गर्भमाधाय कश्यपः ।
रोचयन् वै गणं श्रेष्ठं देवानाममितौजसम् ॥ ११५ ॥
तेजः संहृत्य दुर्धर्षमवध्यममरैरपि ।
जगाम पर्व्वतायैव तपसे संशितव्रता ॥ ११६ ॥
तस्याश्चैवान्तरप्रेप्सुरभवत् पाकशासनः ।
जाते वर्षशते चास्या ददर्शान्तरमच्युतः ॥ ११७ ॥
अकृत्वा पादयोः शौचं दितिः शयनमाविशत् ।
निद्रां चाहारयामास तस्यां कुक्षिं प्रविश्य सः ॥ ११८ ॥
वज्रपाणिस्ततो गर्भं सप्तधा तं न्यकृन्तयत् ।
स पाट्यमानो गर्भोऽथ वज्रेण प्रररोद ह ॥ ११९ ॥
मा रोदीरिति तं शक्रः पुनःपुनरथाब्रवीत् ।
सोऽभवत् सप्तधा गर्भस्तमिन्द्रो रुषितः पुनः ॥ १२० ॥
एकैकं सप्तधा चक्रे वज्रेणैवारिकर्षणः ।
मरुतो नाम ते देवा बभूवु द्विजसत्तमाः ॥ १२१ ॥
यथोक्तं वै मघवता तथैव मरुतोऽभवन् ।
देवाश्चैकोनपञ्चाशत्सहाया वज्रपाणिनः ॥ १२२ ॥
तेषामेवं प्रवृत्तानां भूतानां द्विजसत्तमाः ।
रोचयन् वै गणश्रेष्ठान् देवानाममितौजसाम् ॥ १२३ ॥

निकायेषु निकायेषु हरिः प्रादात् प्रजापतीन्।
क्रमशस्तानि राज्यानि पृथुपूर्वाणि भो द्विजाः ॥ १२४ ॥
स हरिः पुरुषो वीरः कृष्णो जिष्णुः प्रजापतिः
पर्जन्यस्तपनोऽनन्तस्तस्य सर्वमिदं जगत् ॥ १२५ ॥
भूतसर्गमिमं सम्यग्जानतो द्विजसत्तमाः।
नावृत्तिभयमस्तीह परलोकभयं कुतः ॥ १२६ ॥
इति श्रीब्राह्मे महापुराणे देवासुराणामुत्-
पत्तिकथनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः।

पृथुमारभ्य सर्वदेवदानवादीनां राज्याभिषेक वर्णनम्

लोमहर्षण उवाच।

अभिषिच्याधिराज्येन्द्रं पृथुं वैन्यं पितामहः।
ततः क्रमेण राज्यानि व्यादेष्टुमुपचक्रमे ॥ १ ॥
द्विजानां वीरुधां चैव नक्षत्रग्रहयोस्तथा।
यज्ञानां तपसां चैव सोमं राज्येऽभ्यषेचयत् ॥ २ ॥
अपां तु वरुणं राज्ये राज्ञां वैश्रवणं पतिम्।
आदित्यानां तथा विष्णुं वसूनामथ पावकम् ॥ ३ ॥

प्रजापतीना दक्ष तु मरतामथ वासवम् ।
दैत्याना दानवाना वै प्रह्लादममितौजसम् ॥ ४ ॥
वैवस्वत पितृणाञ्च यम राज्येऽभ्यषेचयत् ।
यक्षाणा राक्षसाणाञ्च पार्थिवाणा तथैव च ॥ ५ ॥
सर्व्वभूतपिशाचाना गिरीश शूलपाणिनम् ।
शैलाना हिमवन्तञ्च नदीनामथ सागरम् ॥ ६ ॥
गन्धर्व्वाणामधिपतिं चक्रे चित्ररथ प्रभुम् ।
नागाना वासुकि चक्रे सर्पाणामथ तक्षकम् ॥ ७ ॥
वारणाना [illegible] राजानमैरावतमथादिशत् ।
उच्चैःश्रवसमश्वाना गरुडञ्चैव पक्षिणाम् ॥ ८ ॥
मृगाणामथ शार्दूल गोवृषन्तु गवा पतिम् ।
वनस्पतीना राजान प्लक्षमेवाभ्यषेचयत् ॥ ९ ॥
एव विभाज्य राज्यानि क्रमेणैव पितामह ।
दिशा पालानथ तत स्थापयामास स प्रभु ॥ १० ॥
पूर्व्वस्या दिशि पुत्र तु वैराजस्य प्रजापते ।
दिश पाल सुधन्वान राजान सोऽभ्यषेचयत् ॥ ११ ॥
दक्षिणस्या दिशि तथा कर्दमस्य प्रजापते ।
पुत्र शङ्खपद नाम राजान सोऽभ्यषेचयत् ॥ १२ ॥
पश्चिमस्या दिशि तथा रजस पुत्रमच्युतम् ।
केतुमन्त महात्मान राजान सोऽभ्यषेचयत् ॥ १३ ॥
तथा हिरण्यरोमाण पर्ज्जन्यस्य प्रजापते ।
उदीच्या दिशि दुर्द्धर्ष राजान सोऽभ्यषेचयत् ॥ १४ ॥

तैरियं पृथिवी सर्व्वा सप्तद्वीपा सपत्तना ।
यथाप्रदेशमद्यापि धर्म्मेण प्रतिपाल्यते ॥ १५ ॥
राजसूयाभिषिक्तस्तु पृथुरेतैर्नराधिपैः ।
वेददृष्टेन विधिना राजा राज्ये नराधिपः ॥ १६ ॥
ततो मन्वन्तरेऽतीते चाक्षुषेऽमिततेजसि ।
वैवस्वताय मनवे पृथिव्यां राज्यमादिशत् ॥ १७ ॥
तस्य विस्तरमाख्यास्ये मनोर्वैवस्वतस्य ह ।
भवतां चानुकूल्याय यदि श्रोतुमिहेच्छथ ।
महदेतदधिष्ठानं पुराणे तदधिष्ठितम् ॥ १८ ॥

मुनय ऊचुः ।

विस्तरेण पृथोर्जन्म लोमहर्षण कीर्त्तय ।
यथा महात्मना तेन दुग्धा वेयं वसुन्धरा ॥ १९ ॥
यथा चापि नृभिर्दुग्धा यथा देवैर्महर्षिभिः ।
यथा दैत्यैश्च नागैश्च यथा यक्षैर्यथा द्रुमैः ॥ २० ॥
यथा शैलैः पिशाचैश्च गंधर्व्वैश्च द्विजोत्तमैः ।
राक्षसैश्च महासत्त्वैर्यथा दुग्धा वसुन्धरा ॥ २१ ॥
तेषां पात्रविशेषांश्च वक्तुमर्हसि सुव्रत ।
वत्सक्षीरविशेषांश्च दोग्धारं चानुपूर्व्वशः ॥ २२ ॥
यस्माच्च कारणात् पाणिर्वेनस्य मथितः पुरा ।
क्रुद्धैर्महर्षिभिस्तात कारणं तच्च कीर्त्तय ॥ २३ ॥

लोमहर्षण उवाच ।

शृणुध्वं कीर्त्तयिष्यामि पृथोर्वैन्यस्य विस्तरम् ।
एकाग्राः प्रयताश्चैव पुण्यार्थां वै द्विजर्षभाः ॥ २४ ॥

नाशुचेः क्षुद्रमनसो नाशिष्यस्याव्रतस्य च ।
कीर्त्तयेयमिदं विप्राः कृतघ्नायाहिताय च ॥ २५ ॥
स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं धन्यं वेदैश्च सम्मितम् ।
रहस्यमृषिभिः प्रोक्तं शृणुध्वं वै यथातथम् ॥ २६ ॥
यश्चेमं कीर्त्तयेन्नित्यं पृथोर्वैन्यस्य विस्तरम् ।
ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य न स शोचेत् कृताकृतम् ॥ २७ ॥
आसीद्धर्मस्य संगोप्ता पूर्व्वमत्रिसमः प्रभुः ।
अत्रिवंशे समुत्पन्नस्त्वङ्गो नाम प्रजापतिः ॥ २८ ॥
तस्य पुत्रोऽभवद्वेनो नात्यर्थं धर्म्मकोविदः ।
जातो मृत्युसुतायां वै सुनीथायां प्रजापतिः ॥ २९ ॥
स मातामहदोषेण तेन कालात्मजात्मजः ।
स्वधर्म्मं पृष्ठतः कृत्वा कामलोभेष्ववर्त्तत ॥ ३० ॥
मर्य्यादा भेदयामास धर्म्मोपेतां स पार्थिवः
वेदधर्म्मानतिक्रम्य सोऽधर्म्मनिरतोऽभवत् ॥ ३१ ॥
निःस्वाध्यायवषट्कारा. प्रजास्तस्मिन् प्रजापतौ ।
प्रवृत्तं न पपुः सोमं हुतं यज्ञेषु देवताः ॥ ३२ ॥
न यष्टव्यं न होतव्यमिति तस्य प्रजापतेः ।
आसीत् प्रतिज्ञा क्रूरेयं विनाशे प्रत्युपस्थिते ॥ ३३ ॥
अहमिज्यश्च यष्टा च यज्ञश्चेति भृगूद्वह ।
मयि यज्ञो विधातव्यो मयि होतव्यमित्यपि ॥ ३४ ॥
तमतिक्रान्तमर्य्यादमाददानमसाम्प्रतम् ।
ऊचुर्महर्षयः सर्व्वे मरीचिप्रमुखास्तदा ॥ ३५ ॥

वयं दीक्षां प्रवेक्ष्याम संवत्सरगणान् बहून् ।
अधर्मं कुरु मा वेन एष धर्म्मः सनातनः ॥ ३६ ॥
निधनेऽत्रेः प्रसूतस्त्व प्रजापतिरसंशयम् ।
प्रजाश्च पालयिष्येऽहमितीह समयः कृत. ॥ ३७ ॥
तांस्तथा ब्रुवतः सर्व्वान्महर्षीनब्रवीत्तदा ।
वेनः प्रहस्य दुर्बुद्धिरिममर्थमनर्थवित् ॥ ३८ ॥

वेन उवाच ।

स्रष्टा धर्म्मस्य कश्चान्य. श्रोतव्यं कस्य वा मया ।
श्रुतवीर्य्यतप·सत्यै मया वा कः समो भुवि ॥ ३६ ॥
प्रभवं सर्व्वभूतानां धर्म्माणां च विशेषतः ।
सम्मूढा न विदुर्नूनं भवन्तो मां विचेतस ॥ ४० ॥
इच्छन् दहेयं पृथिवीं प्लावयेयं जलैस्तथा ।
द्यां वै भुवं च रुन्धेयं नात्र कार्य्या विचारणा ॥ ४१ ॥
यदा न शक्यते मोहादवलेपाच्च पार्थिवः ।
अपनेतुं तदा वेनस्ततः क्रुद्धा महर्षयः ॥ ४२ ॥
तं निगृह्य महात्मानो विस्फुरन्तं महाबलम् ।
ततोऽस्य सव्यमुरुं ते ममन्थुर्जातमन्यवः ॥ ४३ ॥
तस्मिन्निर्मथ्यमाने वै राज्ञ उरौ तु जज्ञिवान् ।
ह्रस्वोऽतिमात्र· पुरुषः कृष्णश्चेति बभूव ह ॥ ४४ ॥
स भीत. प्राञ्जलिर्भूत्वा तस्थिवान् द्विजसत्तमाः ।
तमत्रिर्विह्वलं दृष्ट्वा निषीदेत्यब्रवीत्तदा ॥ ४५ ॥

निषादवंशकर्त्तासौ बभूव वदतांवराः ।
धीवरानसृजच्चापि वेनकल्मषसम्भवान् ॥ ४६ ॥
ये चान्ये विन्ध्यनिलयास्तथा पर्व्वतसंश्रयाः ।
अधर्मरुचयो विप्रास्ते ते वै वेनकल्मषाः ॥ ४७ ॥
ततः पुनर्महात्मानः पाणिं वेनस्य दक्षिणम् ।
अरणीमिव संरब्धा ममन्थुर्जातमन्यवः ॥ ४८ ॥
पृथुस्तस्मात् समुत्पन्नः कराज्ज्वलनसन्निभः ।
दीप्यमानः स्ववपुषा साक्षादग्निरिव ज्वलन् ॥ ४९ ॥
अथ सोऽजगवं नाम धनुर्गृह्य महारवम् ।
शरांश्च दिव्यान् रक्षार्थं कवचं च महाप्रभम् ॥ ५० ॥
तस्मिन् जातेऽथ भूतानि सम्प्रहृष्टानि सर्व्वशः ।
समापेतुर्महाभागा वेनस्तु त्रिदिवं ययौ ॥ ५१ ॥
समुत्पन्नेन भो विप्राः सत्पुत्रेण महात्मना ।
त्रातः स पुरुषव्याघ्रः पुन्नाम्नो नरकात्तदा ॥ ५२ ॥
तं समुद्राश्च नद्यश्च रत्नान्यादाय सर्व्वशः ।
तोयानि चाभिषेकार्थं सर्व्वे एवोपतस्थिरे ॥ ५३ ॥
पितामहश्च भगवान् देवैराङ्गिरसैः सह ।
स्थावराणि च भूतानि जङ्गमानि च सर्व्वशः ॥ ५४ ॥
समागम्य तदा वैन्यमभ्यषिञ्चन्नराधिपम् ।
महता राजराजेन प्रजास्तेनानुरञ्जिताः ॥ ५५ ॥
सोऽभिषिक्तो महातेजा विधिवद्धर्म्मकोविदैः
आधिराज्ये तदा राज्ञां पृथुर्वैन्यः प्रतापवान् ॥ ५६ ॥ .

पित्रापरञ्जितास्तस्य प्रजास्तेनानुरञ्जिताः ।
अनुरागात्ततस्तस्य नाम राजाभ्यजायत ॥ ५७ ॥
आपस्तस्तम्भिरे तस्य समुद्रमभियास्यतः ।
पर्व्वताश्च ददुर्म्मार्गं ध्वजभङ्गश्च नाभवत् ॥ ५८ ॥
अकृष्टपच्या पृथिवी सिध्यन्त्यन्नानि चिन्तनात् ।
सर्व्वकामदुघा गावः पुटके पुटकेमधु ॥ ५९ ॥
एतस्मिन्नेव काले तु यज्ञे पैतामहे शुभे ।
सूतः सूत्यां समुत्पन्नः सौत्येऽहनि महामतिः ॥ ६० ॥
तस्मिन्नेव महायज्ञे यज्ञे प्राज्ञोऽथ मागधः ।
पृथोः स्तवार्थं तौ तत्र समाहूतौ महर्षिभिः ॥ ६१ ॥
तावूचुर्म्मुनयः सर्व्वे स्तूयतामेष पार्थिवः ।
कर्म्मैतदनुरूपं वां पात्रं चायं नराधिपः ॥ ६२ ॥
तावूचतुस्तदा सर्व्वांस्तानृषीन् सूतमागधौ ।
आवां देवानृषींश्चैव प्रीणयावः स्वकर्म्मभिः ॥ ६३ ॥
न चास्य विद्मो वै कर्म्म नाम वा लक्षणं यशः ।
स्तोत्रं येनास्य कुर्व्याव राज्ञस्तेजस्विनो द्विजाः ॥ ६४ ॥
ऋषिभिस्तौ नियुक्तौ तु भविष्यैः स्तूयतामिति
यानि कर्म्माणि कृतवान पृथुः पश्चान्महाबलः ॥ ६५ ॥
ततः प्रभृति वै लोके स्तवेषु मुनिसत्तमाः ।
आशीर्वादाः प्रयुज्यन्ते सूतमागधवन्दिभिः ॥ ६६
तयो स्तवान्ते सुप्रीतः पृथुः प्रादात्प्रजेश्वरः
अनूपदेशं सूताय मगधं मागधाय च ॥ ६७ ॥

तं दृष्ट्वा परमप्रीताः प्रजाः प्रोचुर्मनीषिणः ।
वृत्तीनामेष वो दाता भविष्यति नराधिपः ॥ ६८ ॥
ततो वैन्यं महात्मानं प्रजाः समभिदुद्रुवुः ।
त्वं नो वृत्तिं विधत्स्वेति महर्षिवचनात्तदा ॥ ६९ ॥
सोऽभिद्रुतः प्रजाभिस्तु प्रजाहितचिकीर्षया ।
धनुर्गृह्य पृषत्कांश्च पृथिवीमार्द्रयद्बली ॥ ७० ॥
ततो वैन्यभयत्रस्ता गौर्भूत्वा प्राद्रवन्मही ।
तां पृथुर्धनुरादाय द्रवन्तीमन्वधावत ॥ ७१ ॥
सा लोकान् ब्रह्मलोकादीन् गत्वा वैन्यभयात्तदा
प्रददर्शाग्रतो वैन्यं प्रगृहीतशरासनम् ॥ ७२ ॥
ज्वलद्भिर्निशितैर्बाणैर्दीप्ततेजसमन्ततः ।
महायोगं महात्मानं दुर्धर्षममरैरपि ॥ ७३ ॥
अलभन्ती तु सा त्राणं वैन्यमेवान्वपद्यत ।
कृताञ्जलिपुटा भूत्वा पूज्या लोकैस्त्रिभिस्तदा ॥ ७४ ॥
उवाच वैन्यं नाधर्मं स्त्रीवधे परिपश्यसि ।
कथं धारयिता चासि प्रजा राजन् विना मया ॥ ७५ ॥
मयि लोकाः स्थिता राजन्मयेदं धार्यते जगत् ।
मद्विनाशे विनश्येयुः प्रजाः पार्थिव विद्धि तत् ॥ ७६ ॥
न मामर्हसि हन्तुं वै श्रेयश्चेत्त्वं चिकीर्षसि।
प्रजानां पृथिवीपाल शृणु चेदं वचो मम ॥ ७७ ॥
उपायतः समारब्धाः सर्वे सिध्यन्त्युपक्रमाः ।
उपायं पश्य येन त्वं धारयेथाः प्रजामिमाम् ॥ ७८ ॥

हत्वापि मा न शक्तस्त्व प्रजाना पोषणे नृप ।
अनुकूला भविष्यामि यच्छ कोप महामते ॥ ७९ ॥
अवध्या च स्त्रिय प्राहुस्तिर्यग्योनिगतेष्वपि ।
यद्येव पृथिवीपाल न धर्म्मं त्यक्तुमर्हसि ॥ ८० ॥
एव बहुविध वाक्य श्रुत्वा राजा महामना ।
कोप निगृह्य धर्म्मात्मा वसुधामिदमब्रवीत् ॥ ८१ ॥

पृथुरुवाच ।

एकस्यार्थे तु यो हन्यादात्मनो वा परस्य वा ।
बहून् वा प्राणिनोऽनन्त भवेत्तस्येह पातकम् ॥ ८२ ॥
सुखमेधन्ति बहवो यस्मिन्स्तु निहतेऽशुभे ।
तस्मिन् हते नास्ति भद्रे पातक चोपपातकम् ॥ ८३ ॥
सोऽह प्रजानिमित्तं त्वा हनिष्यामि वसुन्धरे
यदि मे वचनान्नाद्य करिष्यसि जगद्धितम् ॥ ८४ ॥
त्वा निहत्याद्य बाणेन मच्छासनपराङ्मुखीम् ।
आत्मान प्रथयित्वाह प्रजा धारयिता स्वयम् ॥ ८५ ॥
सा त्व शासनमास्थाय मम धर्म्मभृता वरे ।
सञ्जीवय प्रजा सर्व्वा समर्था ह्यसि धारणे ॥ ८६ ॥
दुहितृत्व च मे गच्छ तत एनमह शरम् ।
नियच्छेय त्वद्वधार्थमुद्यन्त घोरदर्शनम् ॥ ८७ ॥

वसुधोवाच ।

सर्व्वमेतदह वीर विधास्यामि न सशय ।
वत्स तु मम सपश्य क्षरेय येन वत्सला ॥ ८८ ॥

समाज्ञ कुरु सर्व्वत्र मा त्व धर्मभृता वर ।
तथा विस्यन्दमान मे क्षीर सर्व्वत्र भावयेत् ॥ ८६ ॥

लोमहर्षण उवाच ।

तत उत्सारयामास शैलान् शतसहस्रश ।
धनुष्कोट्या तदा वैन्यस्तेन शैला विवर्द्धिता ॥ ६० ॥
न हि पूर्व्वविसर्गे वै विषमे पृथिवीतले ।
सविभाग पुराणा वा ग्रामाणा वाभवत्तदा ॥ ६१ ॥
न शस्यानि न गोरक्ष्य न कृषिर्न वणिक्पथ ।
नैव सत्यानृत चासीन्न लोभो न च मत्सर ॥ ६२ ॥
वैवस्वतेऽन्तरे तस्मिन् साम्प्रत समुपस्थिते ।
वैन्यात्प्रभृति वै विप्रा सर्व्वस्यैतस्य सम्भव ॥ ६३ ॥
यत्र यत्र सम त्वस्या भूमेरासीत्तदा द्विजा ।
तत्र तत्र प्रजा सर्व्वा निवास समरोचयन् ॥ ६४ ॥
आहार फलमूलानि प्रजानामभवत्तदा ।
कृच्छ्रेण महता युक्त इत्येवमनुशुश्रुम ॥ ६५ ॥
स कल्पयित्वा वत्स तु मनु स्वायम्भुव प्रभुम् ।
स्वपाणौ पुरुषव्याघ्रो दुदोह पृथिवीं तत ॥ ६६ ॥
शस्यजातानि सर्व्वाणि पृथुर्वैन्य प्रतापवान् ।
तेनान्नेन प्रजा सर्व्वा वर्त्तन्तेऽद्यापि सर्व्वश ॥ ६७ ॥
ऋषयश्च तदा देवा पितरोऽथ सरीसृपा ।
दैत्या यक्षा पुण्यजना गन्धर्व्वा पर्व्वता नगा ॥ ६८ ॥

एते पुरा द्विजश्रेष्ठा दुदुहुर्धरणीं किल।
क्षीरं वत्सश्च पात्रं च तेषा दोग्धा पृथक्पृथक् ॥ ९९ ॥
ऋषीणाममवत्सोमो वत्सो दोग्धा बृहस्पतिः।
क्षीरं तेषा तपो ब्रह्म पात्र छन्दांसि भो द्विजाः ॥ १००
देवानां काञ्चन पात्र वत्सस्तेषा शतक्रतु।
क्षीरमोजस्करं चैव दोग्धा च भगवान्रवि ॥ १०१ ॥
पितॄणां राजन पात्रं यमो वत्स प्रतापवान्।
अन्तकश्चाभवद्दोग्धा क्षार तेषा सुधा स्मृता ॥ १०२ ॥
नागाना तक्षको वत्स पात्र चालाबुसज्ञकम्।
दोग्धा त्वैरावतो नागस्तेषा क्षार विषं स्मृतम् ॥ १०३ ॥
असुराणां मधुर्दोग्धा क्षीरं मायामयं स्मृतम्।
विरोचनस्तु वत्सोऽभूदायस पात्रमेव च ॥ १०४ ॥
यक्षाणामामपात्रं तु वत्सो वैश्रवण. प्रभु।
दोग्धा रजतनामस्तु क्षीरान्तर्धानमेव च ॥ १०५ ॥
सुमाली राक्षसेन्द्राणावत्सं क्षीरञ्च शोणितम्।
दोग्धा रजतनामस्तु कपाल पात्रमेव च ॥ १०६ ॥
गन्धर्वाणा चित्ररथो वत्स पात्रं च पङ्कजम्।
दोग्धा च सुरुचि क्षीर तेषा गन्धः शुचि स्मृत ॥ १०७ ॥
शैलं पात्रं पर्वतानां क्षीरं रत्नौषधीस्तथा।
वत्सस्तु हिमवानासीद्दोग्धा मेरुर्महागिरिः ॥ १०८ ॥
प्लक्षो वत्सस्तु वृक्षाणा दोग्धा शालस्तु पुष्पित।
पालाशपात्र क्षीरञ्च छिन्नदग्धप्ररोहणम् ॥ १०९ ॥

सेयं धात्री विधात्री च पावनी च वसुन्धरा।
चराचरस्य सर्व्वस्य प्रतिष्ठा योनिरेव च ॥ ११० ॥
सर्व्वकामदुघा दोग्ध्री सर्व्वशस्यप्ररोहणी।
आसीदियं समुद्रान्ता मेदिनी परिविश्रुता ॥ १११ ॥
मधुकैटभयोः कृत्स्ना मेदसा समभिप्लुता।
तेनेयं मेदिनी देवी उच्यते ब्रह्मवादिभिः ॥ ११२ ॥
ततोऽभ्युपगमाद्राज्ञः पृथोर्वैन्यस्य भो द्विजाः।
दुहितृत्वमनुप्राप्ता देवी पृथ्वीति चोच्यते ॥ ११३ ॥
पृथुना प्रविभक्ता च शोधिता च वसुन्धरा।
शस्याकरवती स्फीता पुरपत्तनशालिनी ॥ ११४ ॥
एवम्प्रभावो वैन्यः स राजासीद्राजसत्तमः।
नमस्यश्चैव पूज्यश्च भूतग्रामैर्न संशयः ॥ ११५ ॥
ब्राह्मणैश्च महाभागैर्वेदवेदाङ्गपारगैः।
पृथुरेव नमस्कार्य्यो ब्रह्मयोनिः सनातनः ॥ ११६ ॥
पार्थिवैश्च महाभागैः पार्थिवत्वमिहेच्छुभिः।
आदिराजो नमस्कार्य्यः पृथुर्वैन्यः प्रतापवान् ॥ ११७ ॥
योधैरपि च विक्रान्तैः प्राप्तुकामैर्जयं युधि।
आदिराजो नमस्कार्य्यो योधानां प्रथमो नृपः ॥ ११८ ॥
यो हि योद्धा रणं याति कीर्त्तयित्वा पृथुं नृपम्।
स घोररूपात्संग्रामात्क्षेमी भवति कीर्त्तिमान् ॥ ११९ ॥
वैश्यैरपि च वित्ताढ्यैर्वैश्यवृत्तिविधायिभिः।
पृथुरेव नमस्कार्य्यो वृत्तिदाता महायशाः ॥ १२० ॥

तथैव शूद्रैः शुचिभिस्त्रिवर्णपरिचारिभिः ।
पृथुरेव नमस्कार्य्यः श्रेयः परमिहेप्सुभिः ॥ १२१ ॥
एते वत्सविशेषाश्च दोग्धारः क्षीरमेव च ।
पात्राणि च मयोक्तानि किं भूयो वर्णयामि वः ॥ १२२ ॥
इति श्रीब्राह्मे महापुराणे पृथोर्जन्ममाहात्म्यकथनं
नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः

मन्वन्तर वर्णनम्

ऋषय ऊचुः ।

मन्वन्तराणि सर्व्वाणि विस्तरेण महामते ।
तेषां पूर्व्वविसृष्टिं च लोमहर्षण कीर्त्तय ॥ १ ॥
यावन्तो मनवश्चैव यावन्तं कालमेव च ।
मन्वन्तराणि भो सूत श्रोतुमिच्छाम तत्त्वतः ॥ २ ॥

लोमहर्षण उवाच ।

न शक्यो विस्तरो विप्रा वक्तुं वर्षशतैरपि ।
मन्वन्तराणां सर्व्वेषां संक्षेपाच्छृणुत द्विजाः ॥ ३ ॥
स्वायम्भुवो मनुः पूर्व्वं मनुः स्वारोचिषस्तथा ।
उत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुषस्तथा ॥ ४ ॥

वैवस्वतश्च यो विप्राः साम्प्रतं मनुरुच्यते।
सावर्णिश्च मनुस्तद्वद्रैभ्यो रौच्यस्तथैव च ॥ ५ ॥
तथैव मेरुसावर्ण्याश्चत्वारो मनवः स्मृताः ।
अतीता वर्तमानाश्च तथैवानागता द्विजाः ॥ ६ ॥
कीर्त्तिता मनवस्तुभ्यं मयैवैते यथाश्रुताः ।
ऋषींस्त्वेषां प्रवक्ष्यामि पुत्रान्देवगणांस्तथा ॥ ७ ॥
मरीचिरत्रिर्भगवानङ्गिराः पुलहः क्रतुः ।
पुलस्त्यश्च वसिष्ठश्च सप्तैते ब्रह्मणः सुताः ॥ ८ ॥
उत्तरस्यां दिशि तथा द्विजाः सप्तर्षयस्तथा ।
आग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्च मेध्यो मेधातिथिर्वसुः ॥ ९ ॥
ज्योतिष्मान्द्युतिमान्हव्यः सबलः पुत्रसंज्ञकः ।
मनोः स्वायम्भुवस्यैते दश पुत्रा महौजसः ॥ १० ॥
एतद्वै प्रथमं विप्रा मन्वन्तरमुदाहृतम् ।
और्वो वसिष्ठपुत्रश्च स्तम्बः काश्यप एव च ॥ ११ ॥
प्राणो बृहस्पतिश्चैव दत्तोऽत्रिश्च्यवनस्तथा ।
एते महर्षयो विप्रा वायुप्रोक्ता महाव्रताः ॥ १२ ॥
देवाश्च तुषिता नाम स्मृताः स्वारोचिषेऽन्तरे ।
हविघ्नः सुकृतिर्ज्योतिरापोमूर्तिरपि स्मृतः ॥ १३ ॥
प्रतीतश्च नभस्यश्च नभ ऊर्जस्तथैव च ।
स्वारोचिषस्य पुत्रास्ते मनोर्विप्रा महात्मनः ॥ १४ ॥
कीर्तिताः पृथिवीपाला महावीर्यपराक्रमाः ।
द्वितीयमेतत्कथितं विप्रा मन्वन्तरं मया ॥ १५ ॥

वैवस्वतश्च भो विप्राः साम्प्रतं मनुरुच्यते ।
सावर्णिश्च मनुस्तद्वद्रैभ्यो रौच्यस्तथैव च ॥ ५ ॥
तथैव मेरुसावर्ण्यश्चत्वारो मनवः स्मृताः ।
अतीता वर्तमानाश्च तथैवानागता द्विजाः ॥ ६ ॥
कीर्तिता मनवस्तुभ्यं मयैवैते यथाश्रुताः ।
ऋषींस्त्वेषां प्रवक्ष्यामि पुत्रान्देवगणांस्तथा ॥ ७ ॥
मरीचिरत्रिर्भगवानङ्गिराः पुलहः क्रतुः ।
पुलस्त्यश्च वसिष्ठश्च सप्तैते ब्रह्मणः सुताः ॥ ८ ॥
उत्तरस्यां दिशि तथा द्विजाः सप्तर्षयस्तथा ।
आग्निध्रश्चाग्निबाहुश्च मेध्यो मेधातिथिर्वसुः ॥ ९ ॥
ज्योतिष्मान्द्युतिमांश्चैव सवलः पुत्रसंज्ञकः ।
मनोः स्वायम्भुवस्यैते दश पुत्रा महौजसः ॥ १० ॥

इदं तृतीय वक्ष्यामि तद्वु ध्यध्वं द्विजोत्तमाः।
वसिष्ठपुत्राः सप्तासन् वासिष्ठा इति विश्रुताः॥ १६॥
हिरण्यगर्भस्य सुता ऊर्जा जाताः सुतेजसः।
ऋषयोऽत्र मया प्रोक्ता कीर्त्यमानान्निबोधत॥ १७॥
उत्तमेयान्मुनिश्रेष्ठा दश पुत्रान्मनोरिमान्।
इष ऊर्जस्तनूर्जस्तु मधुर्माधव एव च॥ १८॥
शुचि शुक्रः सहश्चैव नभस्यो नभ एव च।
भानवस्तत्र देवाश्च मन्वन्तरमुदाहृतम्॥ १६॥
मन्वन्तरं चतुर्थं वः कथयिष्यामि साम्प्रतम्।
काव्यः पृथुस्तथैवाग्निर्जह्नुर्धाता द्विजोत्तमाः॥ २०॥
कपीवानकपीवांश्च तत्र सप्तर्षयो द्विजाः।
पुराणे कीर्त्तिताविप्रा पुत्रा पौत्राश्चमोद्विजाः॥ २१॥
तथा देवगणाश्चैव तामसस्यान्तरे मनोः।
द्युतिस्तपस्यः सुतपास्तपोभूतः सनातनः॥ २२॥
तपोरतिरकल्माषस्तन्वी धन्वी परन्तपः।
तामसस्य मनोरेते दश पुत्राः प्रकीर्त्तिताः॥ २३॥
वायुप्रोक्ता मुनिश्रेष्ठाश्चतुर्थं चैतदन्तरम्।
देववाहुर्यदुध्रश्च मुनिर्वेदशिरास्तथा॥ २४॥
हिरण्यरोमा पर्ज्जन्य ऊर्द्धवाहुश्च सोमजः।
सत्यनेत्रस्तथात्रेय एते सप्तर्षयोऽपरे॥ २५॥
देवाश्चाभूतरजसस्तथा प्रकृतयः स्मृताः।
पारिप्लवश्च रैभ्यश्च मनोरन्तरमुच्यते॥ २६॥

अथ पुत्रानिमास्तस्य बुध्यध्वं गदतो मम।
धृतिमानव्ययो युक्तस्तत्त्वदर्शी निरुत्सुक ॥ २७ ॥
आरण्यश्च प्रकाशश्च निर्मोह सत्यवाक्कृती।
रैवतस्य मनो पुत्रा पञ्चम चैतदन्तरम् ॥ २८ ॥
षष्ठं तु सम्प्रवक्ष्यामि तद्बुध्यध्वं द्विजोत्तमा ।
भृगुर्नभो विवस्वांश्च सुधामा विरजास्तथा ॥ २९ ॥
अतिनामा सहिष्णुश्च सप्तैते च महर्षय ।
चाक्षुषस्यान्तरे विप्रा मनोर्देवास्त्विमे स्मृता ॥ ३० ॥
अप्रसूताश्च ऋषय * पृथक्त्वेन दिवौकस ।
लेखाश्च नामतो विप्रा पञ्च देवगणा स्मृता ॥ ३१ ॥
ऋषेरङ्गिरस पुत्रा महात्मानो महौजस ।
नाड्वलेया मुनिश्रेष्ठा दश पुत्रास्तु विश्रुता ॥ ३२ ॥
रुरुप्रभृतयो विप्राश्चाक्षुषस्यान्तरे मनो ।
षष्ठ मन्वन्तर प्रोक्त सप्तमं तु निबोधत ॥ ३३ ॥
अत्रिर्वसिष्ठो भगवान् कश्यपश्च महानृषि ।
गौतमोऽथ भरद्वाजो विश्वामित्रस्तथैव च ॥ ३४ ॥
तथैव पुत्रो भगवानृचीकस्य महात्मन ।
सप्तमो जमदग्निश्च ऋषय साम्प्रत दिवि ॥ ३५ ॥
साध्या रुद्राश्च विश्वे च वसवो मरुतस्तथा।
आदित्याश्चाश्विनौ चापि देवौ वैवस्वतौ स्मृतौ ॥ ३६ ॥

---

* "भायाळ प्रथिता स्ते वै" क्वचिदेव पाठ ।

मनोर्व्वैवस्वतस्यैते वर्त्तन्ते साम्प्रतेऽन्तरे।
इक्ष्वाकुप्रमुखाश्चैव दश पुत्रा महात्मन ॥ ३७ ॥
एतेषा कीर्त्तितानान्तु महर्षीणां महौजसाम्।
तेषापुत्राश्च पौत्राश्च दिक्षु सर्व्वासु भो द्विजा ॥ ३८ ॥
मन्वन्तरेषु सर्व्वेषु प्रागासन् सप्त सप्तका ।
लोके धर्म्मव्यवस्थार्थं लोकसंरक्षणाय च ॥ ३९ ॥
मन्वन्तरे व्यतिक्रान्ते चत्वार. सप्तका गणा ।
कृत्वा कर्म्म दिव यान्ति ब्रह्मलोकमनामयम् ॥ ४० ॥
ततोऽन्ये तपसा युक्ता स्थान तत्पूरयन्त्युत ।
अतीता वर्त्तमानाश्च क्रमेणैतेन भो द्विजा ॥ ४१ ॥
अनागताश्च सप्तैते स्मृता दिवि महर्षय ।
मनोरन्तरमासाद्य सावर्णस्येह भो द्विजा ॥ ४२ ॥
रामो व्यासस्तथात्रेयो दीप्तिमन्तो बहुश्रुता ।
भारद्वाजस्तथा द्रौणिरश्वत्थामा महाद्युति ॥ ४३ ॥
गौतमश्चाजरश्चैव शरद्वान्नाम गौतम. ।
कौशिको गालवश्चैव और्व्व काश्यप एव च ॥ ४४ ॥
एते सप्त महात्मानो भविष्या मुनिसत्तमा ।
वैरी चैवाध्वरीवांश्च शमनो धृतिमान् वसु ॥ ४५ ॥
आरिष्टश्चाप्यधृष्टश्च वाजी सुमतिरेव च ।
सावर्णस्य मनो पुत्रा भविष्या मुनिसत्तमाः ॥ ४६ ॥
एतेषा कल्यमुत्थाय कीर्त्तनात् सुखमेधते ।
यशश्चाप्नोति सुमहदायुष्मांश्च भवेन्नरः ॥ ४७ ॥

एतान्युक्तानि भो विप्राः सप्तसप्त च तत्वतः ।
मन्वन्तराणि संक्षेपाच्छृणुतानागतान्यपि ॥ ४८ ॥
सावर्णा मनवो विप्राः पञ्च तांश्च निबोधत ।
एको वैवस्वतस्तेषां चत्वारस्तु प्रजापतेः ॥ ४९ ॥
परमेष्ठिसुता विप्रा मेरुसावर्णतां गताः ।
दक्षस्यैते हि दौहित्राः प्रियायास्तनया नृपाः ॥ ५० ॥
महता तपसा युक्त्वा मेरुपृष्ठे महौजसः ।
रुचेः प्रजापतेःपुत्रो रौच्यो नाम मनुःस्मृतः ॥ ५१ ॥
भूत्यां चोत्पादितो देव्यां भौत्यो नाम रुचेः सुतः ।
अनागताश्च सप्तैते कल्पेऽस्मिन्मनवः स्मृताः ॥ ५२ ॥
तैरियं पृथिवी सर्व्वा सप्तद्वीपा सपत्तना ।
पूर्णं युगसहस्रन्तु परिपाल्या द्विजोत्तमाः ॥ ५३ ॥
प्रजापति (ते) श्च तपसा संहारं तेषु नित्यशः ।
युगानि सप्ततिस्तानि साग्राणि कथितानि च ॥ ५४ ॥
कृतत्रेतादियुक्तानि मनोरन्तरमुच्यते ।
चतुर्दशैते मनवः कथिताः कीर्त्तिवर्द्धनाः ॥ ५५ ॥
वेदेषु सपुराणेषु सर्व्वेषु प्रभविष्णवः ।
प्रजानां पतयो विप्रा धन्यमेषां प्रकीर्त्तनम् ॥ ५६ ॥
मन्वन्तरेषु संहाराः संहारान्तेषु सम्भवाः ।
न शक्यतेऽन्तस्तेषां वै वक्तुं वर्षशतैरपि ॥ ५७ ॥
विसर्गस्य प्रजानां वै संहारस्य च भो द्विजाः ।
मन्वन्तरेषु संहाराः श्रूयन्ते द्विजसत्तमाः ॥ ५८ ॥

सशेयास्तत्र तिष्ठन्ति देवाः सप्तर्षिभिः सह ।
तपसा ब्रह्मचर्य्येण श्रुतेन च समन्विताः ॥ ५९ ॥
पूर्णे युगसहस्रे तु कल्पो निःशेष उच्यते ।
तत्र भूतानि सर्व्वाणि दग्धान्यादित्यरश्मिभिः ॥ ६० ॥
ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा सहादित्यगणैर्द्विजाः ।
प्रविशन्ति सुरश्रेष्ठं हरिंनारायणं प्रभुम् ॥ ६१ ॥
स्रष्टारं सर्व्वभूतानां कल्पान्तेषु पुनः पुनः ।
अव्यक्तं शाश्वतो देवस्तस्य सर्व्वमिदं जगत् ॥
अत्र वः कीर्त्तयिष्यामि मनोर्वैवस्वतस्य वै ।
विसर्गं मुनिशार्द्दूलाः साम्प्रतन्तु महाद्युतेः ॥ ६३ ॥
अत्र वंशं प्रसङ्गेन कथ्यमानं पुरातनम् ।
यत्रोत्पन्नो महात्मा स हरिर्वृष्णिकुले प्रभुः ॥ ६४ ॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे मन्वन्तरकीर्त्तनं नाम
पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ।

आदित्योत्पत्ति कथनम्

लोमहर्षण उवाच ।

विवस्वान् कश्यपाज्जज्ञे दाक्षायण्यां द्विजोत्तमा ।
तस्य भार्याभवत्संज्ञा त्वाष्ट्री देवी विवस्वत ॥ १ ॥
सुरेणुरिति विख्याता त्रिषु लोकेषु भामिनी ।
सा वै भार्या भगवतो मार्त्तण्डस्य महात्मन ॥ २ ॥
भर्तृरूपेण नातुष्यद्रूपयौवनशालिनी ।
संज्ञा नाम सुतपसा सुदीप्तेन समन्विता ॥ ३ ॥
आदित्यस्य हि तद्रूप मण्डलस्य सुतेजसा ।
गात्रेषु परिदग्ध वै नातिकान्तमिवाभवत् ॥ ४ ॥
न खल्वय मृतोऽण्डस्थ इति स्नेहादभाषत ।
अजानन् कश्यपस्तस्मान्मार्त्तण्ड इति चोच्यते ॥ ५ ॥
तेजस्त्वभ्यधिक तस्य नित्यमेव विवस्वत ।
येनातितापयामास त्रीँल्लोकान् कश्यपात्मज ॥ ६ ॥
त्रीण्यपत्यानि सो विप्रा संज्ञायां तपतां वर
आदित्यो जनयामास कन्यां द्वौ च प्रजापती ॥ ७ ॥
मनुर्वैवस्वत पूर्वं श्राद्धदेव प्रजापति ।
यमश्च यमुना चैव यमजौ सम्बभूवतु ॥ ८ ॥

श्यामवर्णन्तु तद्रूप संज्ञा दृष्ट्वा विवस्वत ।
असहन्ती तु स्वां छायां सवर्णां निर्ममे तत ॥ ९ ॥
मायामयी तु सा संज्ञा तस्या छायासमुत्थिताम् ।
प्राञ्जलि प्रणता भूत्वा छाया संज्ञा द्विजोत्तमा ॥ १० ॥
उवाच किं मया कार्यं कथयस्व शुचिस्मिते ।
स्थितास्मि तव निर्देशे शाधि मां वरवर्णिनि ॥ ११ ॥

संज्ञोवाच ।

अहं यास्यामि भद्रं ते स्वमेव भवनं पितु ।
त्वयैव भवने मह्यं वस्तव्यं निर्विशङ्कया ॥ १२ ॥
इमौ च बालकौ मह्यं कन्या चेयं सुमध्यमा ।
सम्भाव्यास्ते न चाख्येयमिदं भगवते क्वचित् ॥ १३ ॥

सवर्णोवाच ।

आ कचग्रहणाद्देवि आ शापान्नैव कर्हिचित् ।
आख्यास्यामि नमस्तुभ्यं गच्छ देवि यथासुखम् ॥ १४ ॥

लोमहर्षण उवाच ।

समाश्वास्य सवर्णां तां तथेत्युक्ता तया च सा ।
त्वष्टु समीपमगमद्व्रीडितेव तपस्विनी ॥ १५ ॥
पितु समीपगा सा तु पित्रा निर्भर्त्सिता शुभा ।
भर्तु समीपं गच्छेति नियुक्ता च पुन पुन ॥ १६ ॥
आगच्छद्वडवा भूत्वाच्छाद्यरूपमनिन्दिता ।
कुरूनथोत्तरान् गत्वा तृणान्यथ चचार ह ॥ १७ ॥

द्वितीयायान्तु सञ्ज्ञाया सञ्ज्ञेयमिति चिन्तयन्।
आदित्यो जनयामास पुत्रमात्मसम तदा ॥ १८ ॥

पूर्वजस्य मनोर्विप्रा सदृशोऽयमिति प्रभु ।
मनुरेवाभवन्नाम्ना सावर्ण इति चोच्यते ॥ १९ ॥

द्वितीयो य सुतस्तस्या स विज्ञेय शनैश्चर. ।
सञ्ज्ञा तु पृथिवी विप्रा स्वस्य पुत्रस्य वै तदा ॥ २० ॥

चकाराभ्यधिक स्नेह न तथा पूर्वजेषु वै ।
मनुस्तस्या अक्षम यमस्तस्या न चक्षमे ॥ २१ ॥

स वै रोषाच्च बाल्याच्च भाविनोऽर्थस्य चानघ ।
पदा सन्तर्जयामास सञ्ज्ञा वैवस्वतो यम ॥ २२ ॥

त शशाप तत क्रोधात् सावर्णजननी तदा ।
चरण पततामेष तवैति भृशदु खिता ॥ २३ ॥

विवस्वानुवाच

असंशयं पुत्र महद्भविष्यत्यत्र कारणम्।
येन त्वामाविशेत् क्रोधो धर्म्मज्ञं सत्यवादिनम्॥ २८॥
न शक्यमेतन्मिथ्या तु कर्त्तुं मातृवचस्तव।
कृमयो मांसमादाय यास्यन्त्यवनिमेव च॥ २९॥
कृतमेवं वचस्तथ्यं मातुस्तव भविष्यति।
शापस्य परिहारेण त्वं च त्रातो भविष्यसि॥ ३०॥
आदित्यश्चाब्रवीत् संज्ञां किमर्थं तनयेषु वै।
तुल्येष्वप्यधिकः स्नेह एकस्मिन् क्रियते त्वया॥ ३१॥
सा तत् परिहरन्ती तु नाचचक्षे विवस्वते।
स चात्मानं समाधाय योगात्तथ्यमपश्यत॥ ३२॥
तां शप्तुकामो भगवान्नाशपन्मुनिसत्तमाः।
मूर्द्धजेषु निजग्राह स तु तां मुनिसत्तमाः॥ ३३॥
ततः सर्व्वं यथावृत्तमाचचक्षे विवस्वते।
विवस्वानथ तच्छ्रुत्वा क्रुद्धस्त्वष्टारमभ्यगात्॥ ३४॥
दृष्ट्वा तु तं यथान्यायमर्च्चयित्वा विभावसुम्।
निर्द्दग्धुकामं रोषेण सान्त्वयामास वै तदा॥ ३५॥

त्वष्टोवाच।

तवातितेजसाविष्टमिदं रूपं न शोभते।
असहन्ती च संज्ञा सा वने चरति शाद्वले॥ ३६॥
द्रष्टा हि तां भवानद्य स्वां भार्य्यां शुभचारिणीम्।
श्लाघ्यां योगबलोपेतां योगमास्थाय गोपते॥ ३७॥

अनुकूलं तु ते देव यदि स्यान्मम सम्मतम् ।
रूपं निर्वर्त्तयाम्यद्य तव कान्तमरिन्दम ॥ ३८ ॥
ततोऽभ्युपागमत्त्वष्टा मार्त्तण्डस्य विवस्वतः ।
भ्रमिमारोप्य तत्तेजः सान्त्वयामास भो द्विजाः ॥ ३९ ॥
ततो निर्भासितं रूपं तेजसा संहतेन वै ।
कान्तात् कान्ततरं द्रष्टुमधिकं शुशुभे तदा ॥ ४० ॥
ददर्श योगमास्थाय स्वां भार्य्यां वड़वां ततः ।
अधृष्यां सर्व्वभूतानां तेजसा नियमेन च ॥ ४१ ॥
वड़वावपुषा विप्राश्चरन्तीमकुतोभयाम् ।
सोऽश्वरूपेण भगवांस्तां मुखे समभावयत् ॥ ४२ ॥
मैथुनाय विचेष्टन्तीं परपुंसोऽवशङ्कया ।
सा तन्निरवमच्छुक्रं नासिकाभ्यां विवस्वतः ॥ ४३ ॥
देवौ तस्यामजायेतामश्विनौ भिषजां वरौ ।
नासत्यश्चैव दस्रश्च स्मृतौ द्वावश्विनाविति ॥ ४४ ॥
मार्त्तण्डस्यात्मजावेतावष्टमस्य प्रजापतेः ।
तां तु रूपेण कान्तेन दर्शयामास भास्करः ॥ ४५ ॥
सा तु दृष्ट्वैव भर्त्तारं तुतोष मुनिसत्तमाः ।
यमस्तु कर्म्मणा तेन भृशं पीड़ितमानसः ॥ ४६ ॥
धर्मेण रञ्जयामास धर्म्मराज इमाः प्रजाः ।
स लेभे कर्म्मणा तेन शुभेन परमद्युतिः ॥ ४७ ॥
पितृणामाधिपत्यं च लोकपालत्वमेव च ।
मनुः प्रजापतिस्त्वासीत्सावर्णिः स तपोधनाः ॥ ४८ ॥

माव्यः समागते तस्मिन्मनुः सावर्णिकेऽन्तरे।
मेरुपृष्ठे तपो नियमद्यापि स चरत्युत ॥ ४९ ॥
भ्राता शनैश्चरस्तस्य ग्रहत्वं स तु लब्धवान्।
त्वष्टा तु तेजसा तेन विष्णोश्चक्रमकल्पयत् ॥ ५० ॥
तदप्रतिहतं युद्धे दानवान्तचिकीर्षया।
यवीयसी तु साप्यासीद्यमी कन्या यशस्विनी ॥ ५१ ॥
अभवच्च सरिच्छ्रेष्ठा यमुना लोकपावनी।
मनुरित्युच्यते लोके सावर्ण इति चोच्यते ॥ ५२ ॥
द्वितीयो यः सुतस्तस्य मनोर्भ्राता शनैश्चरः।
ग्रहत्वं स च लेभे वै सर्वलोकाभिपूजितः ॥ ५३ ॥
य इदं जन्म देवानां शृणुयान्नरसत्तमः।
आपदं प्राप्य मुच्येत प्राप्नुयाच्च महद्यशः ॥ ५४ ॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे आदित्योत्पत्तिकथनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः।

सूर्यवंश वर्णनम्।

लोमहर्षण उवाच।

मनोर्वैवस्वतस्यासन् पुत्रा वै नव तत्समाः।
इक्ष्वाकुश्चैव नाभागो धृष्टः शर्यातिरेव च ॥ १ ॥

नरिष्यन्तश्च षष्ठो वै प्रांशू रिष्टश्च सप्तमः ।
करूषश्च पृषध्रश्च नवैते मुनिसत्तमाः ॥ २ ॥
अकरोत् पुत्रकामस्तु मनुरिष्टिं प्रजापतिः ।
मित्रावरुणयोर्विप्राः पूर्व्वमेव महामतिः ॥ ३ ॥
अनुत्पन्नेषु बहुषु पुत्रेष्वेतेषु भो द्विजाः ।
तस्यां च वर्त्तमानायामिष्ट्यां च द्विजसत्तमाः ॥ ४ ॥
मित्रावरुणयोरंशे मनुराहुतिमावहत् ।
तत्र दिव्याम्बरधरा दिव्याभरणभूषिता ॥ ५ ॥
दिव्यसंहनना चैव इला जज्ञ इति श्रुतिः ।
तामिलेत्येव होवाच मनुर्दण्डधरस्तदा ॥ ६ ॥
अनुगच्छस्व मां भद्रे तमिला प्रत्युवाच ह ।
धर्मयुक्तमिदं वाक्यं पुत्रकामं प्रजापतिम् ॥ ७ ॥

इलोवाच ।

मित्रावरुणयोरंशे जातास्मि वदतांवर ।
तयोः सकाशं यास्यामि न मां धर्म्महतां कुरु ॥ ८ ॥
सैवमुक्त्वा मनुं देवं मित्रावरुणयोरिला ।
गत्वान्तिकं वरारोहा प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ ९ ॥

इलोवाच ।

अंशेऽस्मि युवयोर्जाता देवौ किं करवाणि वाम् ।
मनुना चाहमुक्ता वा अनुगच्छस्व मामिति ॥ १० ॥
तां तथावादिनीं साध्वीमिलां धर्म्मपरायणाम् ।
मित्रश्च वरुणश्चोभावूचतुस्तां द्विजोत्तमाः ॥ ११ ॥

मित्रावरुणावूचतु ।

अनेन तव धर्म्मेण प्रश्रयेण दमेन च ।
सत्येन चैव सुश्रोणि प्रीतौ स्वो वरवर्णिनि ॥ १२ ॥
आवयोस्त्वं महाभागे ख्यातिं कन्येति यास्यसि ।
मनोर्व्वंशकरः पुत्रस्त्वमेव च भविष्यसि ॥ १३ ॥
सुद्युम्न इति विख्यातस्त्रिषु लोकेषु शोभने ।
जगत्प्रियो धर्म्मशीलो मनोर्व्वंशविवर्द्धनः ॥ १४ ॥
निवृत्ता सा तु तच्छ्रुत्वा गच्छन्ती पितुरन्तिकात् ॥ १५ ॥
बुधेनान्तरमासाद्य मैथुनायोपमन्त्रिता ।
सोमपुत्राद्बुधाद्विप्रास्तस्या जज्ञे पुरूरवा ॥ १६ ॥
जनयित्वा ततः सा तमिला सुद्युम्नतां गता ।
सुद्युम्नस्य तु दायादास्त्रयः परमधार्म्मिकाः ॥ १७ ॥
उत्कलश्च गयश्चैव विनताश्वश्च भो द्विजाः ।
उत्कलस्योत्कला विप्रा विनताश्वस्य पश्चिमा ॥ १८ ॥
दिक् पूर्व्वा मुनिशार्दूला गयस्य तु गया स्मृता ।
प्रविष्टेषु तु मनौ विप्रा दिवाकरमरिन्दमम् ॥ १९ ॥
दशधा तत्पुनः क्षत्रमकरोत् पृथिवीमिमाम् ।
इक्ष्वाकुर्ज्येष्ठदायादो मध्यदेशमवाप्तवान् ॥ २० ॥
कन्याभावात्तु सुद्युम्नो नैतद्राज्यमवाप्तवान् ।
वसिष्ठवचनात्त्वासीत् प्रतिष्ठाने महात्मनः ॥ २१ ॥
प्रतिष्ठा धर्म्मराजस्य सुद्युम्नस्य द्विजोत्तमाः ।
तत्पुरूरवसे प्रादाद्राज्यं प्राप्य महायशाः ॥ २२ ॥

मानवेयो मुनिश्रेष्ठा स्त्रीपुंसोल क्षणैर्युत ।
धृतवास्तामिलेत्येव सुद्युम्नेति च विश्रुत ॥ २३ ॥
नरिष्यन्ता शका पुत्रा नाभागस्य तु भो द्विजा ।
अम्बरीषोऽभवत् पुत्र पार्थिवर्षभसत्तम ॥ २४ ॥
धृष्टस्य धार्ष्टिक क्षत्र रणदृप्त बभूव ह ।
करूषस्य च कारूषा क्षत्रिया युद्धदुर्मदा ॥ २५ ॥
नाभागधृष्टपुत्राश्च क्षत्रिया वैश्यता गता ।
प्राशोरेकोऽभवत्पुत्र प्रजापतिरिति स्मृत ॥ २६ ॥
नरिष्यन्तस्य द यादो राजा दण्डधरो यम ।
शर्यातेर्मिथुन त्वासादानर्त्तो नाम विश्रुत ॥ २७ ॥
पुत्र कन्या सुक या च या पत्नी च्यवनस्य ह ।
आनर्त्तस्य तु दायादो रैवो नाम महाद्युति ॥ २८ ॥
आनर्त्तविषयश्चैव पुरी चास्य कुशस्थली ।
रैवस्य रैवत पुत्र ककुद्मी नाम धार्मिक ॥ २९ ॥
ज्येष्ठ पुत्र स तस्यासाद्राज्य प्राप्य कुशस्थलीम् ।
स कन्यासहित श्रुत्वा गान्धर्वं ब्रह्मणोऽन्तिके ॥ ३० ॥
मुहूर्त्तभूत देवस्य तस्थौ बहुयुग द्विजा ।
आजगाम स चैवाथ स्वा पुरा यादवैर्वृताम् ॥ ३१ ॥
कृता द्वारवतीं नाम बहुद्वारा मनोरमाम् ।
भोजवृष्ण्यन्धकैर्गुप्ता वसुदेवपुरोगमै ॥ ३२ ॥
तत्रैव रैवतो ज्ञात्वा यथातत्त्व द्विजोत्तमा ।
कन्या ता बलदेवाय सुभद्रा नाम रेवतीम् ॥ ३३ ॥

दत्वा जगाम शिखरं मेरोस्तपसि संस्थितः ।
रेमे रामोऽपि धर्म्मात्मा रेवत्या सहितः सुखी ॥ ३४ ॥

मुनय ऊचुः ।

कथं बहुयुगे काले समतीते महामते ।
न जरा रेवतीं प्राप्ता रैवतं च ककुद्मिनम् ॥ ३५ ॥
मेरुं गतस्य वा तस्य शर्याते सन्ततिः कथम् ।
स्थिता पृथिव्यामद्यापि श्रोतुमिच्छाम तत्त्वतः ॥ ३६ ॥

लोमहर्षण उवाच ।

न जरा क्षुत्पिपासा वा न मृत्युर्मुनिसत्तमाः ।
ऋतुचक्रं प्रभवति ब्रह्मलोके सदानघाः ।
ककुद्मिनः स्वर्लोकं तु रैवतस्य गतस्य ह ॥ ३७ ॥
हृता पुण्यजनैर्विप्रा राक्षसैः सा कुशस्थली ।
तस्य भ्रातृशतं त्वासीद्धार्मिकस्य महात्मनः ॥ ३८ ॥
तद्वध्यमानं रक्षोभिर्दिशः प्राक्रामदच्युताः ।
विद्रुतस्य च विप्रेन्द्रास्तस्य भ्रातृशतस्य वै ॥ ३९ ॥
अन्वयास्तु सुमहास्तत्र तत्र द्विजोत्तमाः ।
तेषां ह्येते मुनिश्रेष्ठाः शार्याता इति विश्रुताः ॥ ४० ॥
क्षत्रिया गुणसम्पन्ना दिक्षु सर्व्वासु विश्रुताः ।
सर्व्वशः सर्व्वगहनं प्रविष्टास्ते महौजसः ॥ ४१ ॥
नाभागरिष्टपुत्रौ द्वौ वैश्यौ ब्राह्मणतां गतौ ।
करूपस्य तु कारूषाः क्षत्रिया युद्धदुर्म्मदाः ॥ ४२ ॥

पृषध्रो हिंसयित्वा तु गुरोर्गां द्विजसत्तमाः ।
शापाच्छूद्रत्वमापन्नो नवैते परिकीर्त्तिताः ॥ ४३ ॥
वैवस्वतस्य तनया मुनेर्व्वै मुनिसत्तमाः ।
क्षुवतस्तु मनोर्विप्रा इक्ष्वाकुरभवत् सुतः ॥ ४४ ॥
तस्य पुत्रशतं त्वासीदिक्ष्वाकोर्भूरिदक्षिणम् ।
तेषां विकुक्षिर्ज्येष्ठस्तु विकुक्षित्वादयोधताम् ॥ ४५ ॥
प्राप्तः परमधर्मज्ञः सोऽयोध्याधिपतिः प्रभुः ।
शकुनिप्रमुखास्तस्य पुत्राः पञ्चशतं स्मृताः ॥ ४६ ॥
उत्तरापथदेशस्य रक्षितारो महाबलाः ।
चत्वारिंशद्‌शाष्टौ च दक्षिणस्यां तथा दिशि ॥ ४७ ॥
वशातिप्रमुखाश्चान्ये रक्षितारो द्विजोत्तमाः ।
इक्ष्वाकुस्तु विकुक्षिं वा अष्टकायामथादिशत् ॥ ४८ ॥
मांसमानय श्राद्धार्थं मृगान् हत्वा महाबलः ।
श्राद्धकर्मणि चोद्दिष्टे अकृते श्राद्धकर्मणि ॥ ४९ ॥
भक्षयित्वा शशं विप्रा शशादो मृगयां गतः ।
इक्ष्वाकुणा परित्यक्तो वसिष्ठवचनात् प्रभुः ॥ ५० ॥
इक्ष्वाकौ संस्थिते विप्राः शशादस्तु नृपोऽभवत् ।
शशादस्य तु दायादः ककुत्स्थो नाम वीर्य्यवान् ॥ ५१ ॥
अनेनास्तु ककुत्स्थस्य पृथुश्चानेनसः स्मृतः ।
विष्टराश्वः पृथोः पुत्रस्तस्मादार्द्रस्त्वजायत ॥ ५२ ॥
आर्द्रस्य युवनाश्वस्तु श्रावस्तस्तत्सुतो द्विजाः ।
जज्ञे श्रावस्तको राजा श्रावस्ती येन निर्मिता ॥ ५३ ॥

श्रावस्तस्य तु दायादो बृहदश्वो महीपतिः ।
कुवलाश्व सुतस्तस्य राजा परमधार्म्मिकः ॥ ५४ ॥
यः स धुन्धुवधाद्राजा धुन्धुमारत्वमागतः ॥ ५५ ॥

मुनय ऊचुः ।

धुन्धोर्व्वध महाप्राज्ञ श्रोतुमिच्छाम तत्त्वतः ।
यद्वधात्कुवलाश्वोऽसौ धुन्धुमारत्वमागतः ॥ ५६ ॥

लोमहर्षण उवाच ।

कुवलाश्वस्य पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम् ।
सर्व्वे विद्यासु निष्णाता बलवन्तो दुरासदाः ॥ ५७ ॥
बभूवुर्धार्म्मिकाः सर्व्वे यज्वानो भूरिदक्षिणाः ।
कुवलाश्वं पिता राज्ये बृहदश्वो न्ययोजयत् ॥ ५८ ॥
पुत्रसङ्क्रामितश्रीस्तु वनं राजा विवेश ह ।
तमुत्तङ्कोऽथ विप्रर्षिः प्रयान्तं प्रत्यवारयत् ॥ ५९ ॥

उत्तङ्क उवाच ।

भवता रक्षणं कार्य्यं तत्र कर्त्तुं त्वमर्हसि ।
निरुद्विग्नस्तपश्चर्त्तुं न हि शक्नोमि पार्थिव ॥ ६० ॥
ममाश्रमसमीपे वै समेषु मरुधन्वसु ।
समुद्रो वालुकापूर्ण उद्दालक इति स्मृतः ॥ ६१ ॥
देवतानामवध्यश्च महाकायो महाबलः ।
अन्तर्भूमिगतस्तत्र वालुकान्तर्हितो महान् ॥ ६२ ॥
राक्षसस्य मधोः पुत्रो धुन्धुर्नाम महासुरः ।
शेते लोकविनाशाय तप आस्थाय दारुणम् ॥ ६३ ॥

सवत्सरस्य पर्यन्ते स निश्वास विमुञ्चति ।
यदा तदा मही तत्र चलति स्म नराधिप ॥ ६४ ॥
तस्य नि श्वासवातेन रज उद्धयते महत् ।
आदित्यपथमावृत्य सप्ताह भूमिकम्पनम् ॥ ६५ ॥
सविस्फुलिङ्ग साङ्गार मधुममतिदारुणम् ।
तेन तात न शक्नोमि तस्मिन् स्थातु स्व आश्रमे ॥ ६६ ॥
त मारय महाकाय लोकाना हितकाम्यया ।
लोका स्वस्था भवन्त्यद्य तस्मिन् विनिहते त्वया ॥ ६७ ॥
त्व हि तस्य वधायैक समर्थ पृथिवीपते ।
विष्णुना च वरो दत्तो मह्य पूर्वयुगे नृप ॥ ६८ ॥
यस्त महासुर रौद्र हनिष्यति महाबलम् ।
तस्य त्व वरदानेन तेजश्चाप्याययिष्यसि ॥ ६९ ॥
न हि धुन्धुर्महातेजास्तेजसाल्पेन शक्यते ।
निर्दग्धु पृथिवीपाल चिर युगशतैरपि ॥ ७० ॥
वार्यश्च सुमहत्तस्य देवैरपि दुरासदम् ।
स एवमुक्तो राजर्षिरुत्तङ्केन महात्मना ।
कुवलाश्व सुत प्रादात्तस्मै धुन्धुनिबर्हणे ॥ ७१ ॥

बृहदश्व उवाच ।

भगवन्न्यस्तशस्त्रोऽहमय तु तनयो मम ।
भविष्यति द्विजश्रेष्ठ धुन्धुमारो न सशय ॥ ७२ ॥

लोमहर्षण उवाच ।

स त व्यादिश्य तनय राजर्षिर्धुन्धुमारणे ।
जगाम पर्वतायैव नृपति सशितव्रत ॥ ७३ ॥

कुवलाश्वस्तु पुत्राणां शतेन सह भो द्विजाः ।
प्रायादुत्तङ्कसहितो धुन्धोस्तस्य निबर्हणे ॥ ७४ ॥
तमाविशत्तदा विष्णुस्तेजसा भगवान् प्रभुः ।
उत्तङ्कस्य नियोगाद्वै लोकानां हितकाम्यया ॥ ७५ ॥
तस्मिन् प्रयाते दुर्धर्षे दिवि शब्दो महानभूत् ।
एष श्रीमान्नृपसुतो धुन्धुमारो भविष्यति ॥ ७६ ॥
दिव्यैर्गन्धैश्च माल्यैश्च तं देवाः समवाकिरन् ।
देवदुन्दुभयश्चैव प्रणेदुर्द्विजसत्तमाः ॥ ७७ ॥
स गत्वा जयतां श्रेष्ठस्तनयैः सह वीर्यवान् ।
समुद्रं खानयामास वालुकार्णवमव्ययम् ॥ ७८ ॥
तस्य पुत्रैः खनद्भिश्च वालुकान्तर्हितस्तदा ।
धुन्धुरासादितो विप्रा दिशमाश्रित्य पश्चिमाम् ॥ ७९ ॥
मुखजेनाग्निना क्रोधाल्लोकानुद्वर्तयन्निव ।
वारि सुस्राव वेगेन महोदधिरिवोदये ॥ ८० ॥
सोमस्य मुनिशार्दूला वरोर्मिकलिलो महान् ।
तस्य पुत्रशतं दग्धं त्रिभिरूनं तु रक्षसा ॥ ८१ ॥
ततः स राजा द्युतिमान् राक्षसं तं महाबलम् ।
आससाद महातेजा धुन्धुं धुन्धुविनाशनः ॥ ८२ ॥
तस्य वारिमयं वेगमापीय स नराधिपः ।
योगी योगेन वह्निं च शमयामास वारिणा ॥ ८३ ॥
निहत्य तं महाकायं बलेनोदकराक्षसम् ।
उत्तङ्कं दर्शयामास कृतकर्मा नराधिपः ॥ ८४ ॥

उत्तङ्कस्य वरं प्रादात्तस्मै राज्ञे महात्मने ।
ददौ तस्याक्षयं वित्तं शत्रुभिश्चापराजितम् ॥ ८५ ॥
धर्मे रतिश्च सततं स्वर्गे वासं तथाक्षयम् ।
पुत्राणां चाक्षयाँल्लोकान् स्वर्गे ये रक्षसा हताः ॥ ८६ ॥
तस्य पुत्रास्त्रयः शिष्टा दृढाश्वो ज्येष्ठ उच्यते ।
चन्द्राश्वकपिलाश्वौ तु कनीयांसौ कुमारकौ ॥ ८७ ॥
धौन्धुमारेर्दृढाश्वस्य हर्यश्वश्चात्मजः स्मृतः ।
हर्यश्वस्य निकुम्भोऽभूत् क्षत्रधर्मरतः सदा ॥ ८८ ॥
संहताश्वो निकुम्भस्य सुतो रणविशारदः ।
अकृशाश्वकृशाश्वौ तु संहताश्वसुतौ द्विजाः ॥ ८९ ॥
तस्य हैमवती कन्या सतां मत्या दृषद्वती ।
विख्याता त्रिषु लोकेषु पुत्रश्चास्याः प्रसेनजित् ॥ ९० ॥
लेभे प्रसेनजिद्भार्यां गौरीं नाम पतिव्रताम् ।
अभिशस्ता तु सा भर्त्रा नदी वै बाहुदाभवत् ॥ ९१ ॥
तस्य पुत्रो महानासीद्युवनाश्वो नराधिपः ।
मान्धाता युवनाश्वस्य त्रिलोकविजयी सुतः ॥ ९२ ॥
तस्य चैत्ररथी भार्या शशबिन्दोः सुताभवत् ।
साध्वी बिन्दुमती नाम रूपेणासदृशी भुवि ॥ ९३ ॥
पतिव्रता च ज्येष्ठा च भ्रातॄणामयुतस्य वै ।
तस्यामुत्पादयामास मान्धाता द्वौ सुतौ द्विजाः ॥ ९४ ॥
पुरुकुत्समधर्मज्ञं मुचुकुन्दं च पार्थिवम् ।
पुरुकुत्ससुतस्त्वासीत्त्रसदस्युर्महीपतिः ॥ ९५ ॥

नर्म्मदायामथोत्पन्नः सम्भृतस्तस्य चात्मजः ।
सम्भृतस्य तु दायादस्त्रिधन्वा रिपुमर्द्दनः ॥ ६६ ॥
राज्ञस्त्रिधन्वनस्त्वासीद्विद्वांस्त्रय्यारुणः प्रभुः ।
तस्य सत्यव्रतो नाम कुमारोऽभून्महाबलः ॥ ६७ ॥
परिग्रहणमन्त्राणां विघ्नं चक्रे सुदुर्म्मतिः ।
येन भार्य्या कृतोद्वाहा हृता चैव परस्य ▪ ॥ ६८ ॥
बाल्यात् कामाच्च मोहाच्च साहसाच्चापलेन च ।
जहार कन्यां कामार्त्तः कस्यचित् पुरवासिनः ॥ ६६ ॥
अधर्म्मशङ्कुना तेन तं स त्रय्यारुणोऽत्यजन् ।
अपध्वंसेति बहुशो वदन् क्रोधसमन्वितः ॥ १०० ॥
सोऽब्रवीत् पितरं त्यक्तः क्व गच्छामीति वै मुहुः ।
पिता च तमथोवाच श्वपाकैः सह वर्त्तय ॥ १०१ ॥
नाहं पुत्रेण पुत्रार्थी त्वयाद्य कुलपांसन ।
इत्युक्तः स निराक्रामन्नगराद्वचनात् पितु' ॥ १०२ ॥
न च तं वारयामास वसिष्ठो भगवानृषिः ।
स तु सत्यव्रतो विप्राः श्वपाकावसथान्तिके ॥ १०३ ॥
पित्रा त्यक्तोऽवसद्वीरः पिताप्यस्य वनं ययौ ।
ततस्तस्मिंस्तु विषये नावर्षत् पाकशासनः ॥ १०४ ॥
समा द्वादश भो विप्रास्तेनाधर्म्मेण वै तदा ।
दारांस्तु तस्य विषये विश्वामित्रो महातपाः ॥ १०५ ॥
संन्यस्य सागरान्ते तु चकार विपुलं तपः ।
तस्य पत्नी गले बद्ध्वा मध्यमं पुत्रमौरसम् ॥ १०६ ॥

शोवस्य भरणार्थाय व्यक्रीणाद्गोशतेन वै ।
तं च बद्धं गले दृष्ट्वा विक्रयार्थं नृपात्मजः ॥ १०७ ॥
महर्षिपुत्रं धर्म्मात्मा मोक्षयामास भो द्विजाः ।
सत्यव्रतो महाबाहुर्भरणं तस्य चाकरोत् ॥ १०८ ॥
विश्वामित्रस्य तुष्ट्यर्थमनुकम्पार्थमेव च ।
सोऽभवद्गालवो नाम गले बन्धान्महातपाः ॥ १०९ ॥
महर्षिः कौशिको धीमांस्तेन वीरेण मोक्षितः ।
इति श्रीब्राह्मे महापुराणे सूर्य्यवंशनिरूपणं नाम
सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ।

सूर्यवंश वर्णनम् ।

लोमहर्षण उवाच ।

सत्यव्रतस्तु भक्त्या च कृपया च प्रतिज्ञया ।
विश्वामित्रकलत्रं तु बभार विनये स्थितः ॥ १ ॥
हत्वा मृगान् वराहांश्च महिषांश्च वनेचरान् ।
विश्वामित्राश्रमाभ्यासे मांसं वृक्षे बबन्ध च ॥ २ ॥
उपांशुव्रतमास्थाय दीक्षां द्वादशवार्षिकीम् ।
पितुर्नियोगादवसत्तस्मिन् वनगते नृपे ॥ ३ ॥

अयोध्या चैव राज्यं च तथैवान्तःपुरं मुनिः
याज्योपाध्यायसंयोगाद्वसिष्ठः पर्य्यरक्षत ॥ ४ ॥
सत्यव्रतस्तु बाल्याच्च भाविनोऽर्थस्य वै बलात् ।
वसिष्ठेऽभ्यधिकं मन्युं धारयामास नित्यशः ॥ ५ ॥
पित्रा हि त तदा राष्ट्रात्त्यज्यमानं प्रियं सुतम् ।
निवारयामास मुनिर्बहुना कारणेन च ॥ ६ ॥
पाणिग्रहणमन्त्राणां निष्ठा स्यात् सप्तमे पदे ॥ ७ ॥
न च सत्यव्रतस्तस्माद्धृतवान् सप्तमे पदे ॥
जानन् धर्मं वसिष्ठस्तु न मां त्रातीति भो द्विजाः ।
सत्यव्रतस्तदा रोषं वसिष्ठे मनसाकरोत् ॥ ८ ॥
गुणबुद्ध्या तु भगवान् वसिष्ठः कृतवांस्तथा ।
न च सत्यव्रतस्तस्य तमुपांशुमबुध्यत ॥ ९ ॥
तस्मिन्नपरितोषश्च पितुरासीन्महात्मन ।
तेन द्वादश वर्षाणि नावर्षत् पाकशासनः ॥ १० ॥
तेन त्विदानीं विहितां दीक्षां तां दुर्वहां भुवि ।
कुलस्य निष्कृतिर्विप्राः कृता सा वै भवेदिति ११ ॥
न तं वसिष्ठो भगवान् पित्रा त्यक्तं न्यवारयत् ।
अभिषेक्ष्याम्यहं पुत्रमस्येत्येवंमतिर्मुनिः ॥ १२ ॥
स तु द्वादश वर्षाणि तां दीक्षामवहद्बली ।
अविद्यमाने मांसे तु वसिष्ठस्य महात्मनः ॥ १३ ॥
सर्व्वकामदुघां दोग्ध्रीं स ददर्श नृपात्मजः ।
तां वै क्रोधाच्च मोहाच्च श्रमाच्चैव क्षुधान्वितः ॥ १४ ॥

देशधर्मगतो राजा जघान मुनिसत्तमा ।
तन्मांसं स स्वयं चैव विश्वामित्रस्य चात्मजान् ॥ १५ ॥
भोजयामास तच्छ्रुत्वा वसिष्ठोऽप्यस्य चुक्रुधे ॥ १६ ॥
वसिष्ठ उवाच ।
पातयेयमहं क्रूर तव शङ्कुमसंशयम् ।
यदि ते द्वाविमौ शङ्कू न स्यातां वै कृतौ पुनः ॥ १७ ॥
पितुश्चापरितोषेण गुरुदोग्ध्रीवधेन च ।
अप्रोक्षितोपयोगाच्च त्रिविधस्ते व्यतिक्रमः ॥ १८ ॥
एवं त्रीण्यस्य शङ्कूनि तानि दृष्ट्वा महातपाः ।
त्रिशङ्कुरिति होवाच त्रिशङ्कुस्तेन स स्मृतः ॥ १९ ॥
विश्वामित्रस्य दाराणामनेन भरणं कृतम् ।
तेन तस्मै वरं प्रादान्मुनिः प्रीतस्त्रिशङ्कवे ॥ २० ॥
छन्द्यमानो वरेणाथ वरं वव्रे नृपात्मजः ।
सशरीरो व्रजे स्वर्गमित्येवं याचितो वरः ॥ २१ ॥
अनावृष्टिभये तस्मिन् गते द्वादशवार्षिके ।
पित्र्ये राज्येऽभिषिच्याथ याजयामास पार्थिवम् ॥ २२ ॥
मिषतां देवतानां च वसिष्ठस्य च कौशिकः ।
दिवमारोपयामास सशरीरं महातपाः ॥ २३ ॥
तस्य सत्यरथा नाम पत्नी कैकेयवंशजा ।
कुमारं जनयामास हरिश्चन्द्रमकल्मषम् ॥ २४ ॥
स वै राजा हरिश्चन्द्रस्त्रैशङ्कव इति स्मृतः ।
आहर्ता राजसूयस्य सम्राडिति विश्रुतः ॥ २५ ॥

हरिश्चन्द्रस्य पुत्रोऽभूद्रोहितो नाम पार्थिव ।
हरितो रोहितस्याथ चञ्चुर्हारित उच्यते ॥ २६ ॥
विजयश्च मुनिश्रेष्ठाश्चञ्चुपुत्रो बभूव ह ।
जेता स सर्व्वपृथिवीं विजयस्तेन स स्मृत ॥ २७ ॥
रुरुकस्तनयस्तस्य राजा धर्म्मार्थकोविद ।
रुरुकस्य वृक पुत्रो वृकाद्बाहुस्तु जज्ञिवान् ॥ २८ ॥
हैहयास्तालजङ्घाश्च निरस्यन्ति स्म त नपम् ।
तत्पत्नी गर्भमादाय ऊर्व्वस्याश्रममाविशत् ॥ २९ ॥
नात्यर्थं धार्मिकश्चैव स हि धर्म्मयुगेऽभवत् ।
सगरस्तु सुतो बाहोर्यज्ञे सह गरेण वै ॥ ३० ॥
ऊर्व्वस्याश्रममासाद्य भार्गवेणाभिरक्षित ।
आग्नेयमस्त्र लब्ध्वा च भार्गवात् सगरो नप ॥ ३१ ॥
जिगाय पृथिवीं हत्वा तालजङ्घान् सहैहयान् ।
शकाना पह्लवाना च धर्म्मं निरसदच्युत ।
क्षत्रियाणा मुनिश्रेष्ठा पारदाना च धर्म्मवित् ॥ ३२ ॥

मुनय ऊचु ।

कथ स सगरो जातो गरेणैव सहाच्युत ।
किमर्थं च शकादीना क्षत्रियाणा महौजसाम् ॥ ३३ ॥
धर्म्मान्कुलोचितान् राजा क्रुद्धो निरसदच्युत ।
एतन्न सर्व्वमाचक्ष्व विस्तरेण महामते ॥ ३४ ॥

लोमहर्षण उवाच ।

बाहोर्व्यसनिन पूर्व्वं हृत राज्यमभून् किल ।
हैहयैस्तालजङ्घैश्च शकै सार्द्धं द्विजोत्तमा ॥ ३५ ॥

यवनाः पारदाश्चैव काम्बोजाः पह्लवास्तथा ।
एते ह्यपि गणा पञ्च हैहयार्थे पराक्रमम् ॥ ३६ ॥
हृतराज्यस्तदा राजा स वै बाहुर्वनं ययौ ।
पत्न्या चानुगतो दुःखी तत्र प्राणानवासृजत् ॥ ३७ ॥
पत्नी तु यादवी तस्य सगर्भा पृष्ठतोऽन्वगात् ।
सपत्न्या च गरस्तस्यै दत्तः पूर्वं किलानघाः ॥ ३८ ॥
सा तु भर्तुश्चितां कृत्वा वने तामभ्यरोहत ।
ऊर्वस्तां भार्गवो विप्राः कारुण्यात् समवारयत् ॥ ३९ ॥
तस्याश्रमे च गर्भः स गरेणैव सहाच्युतः ।
व्यजायत महाबाहुः सगरो नाम पार्थिवः ॥ ४० ॥
ऊर्वस्तु जातकर्मादींस्तस्य कृत्वा महात्मनः ।
अध्याप्य वेदशास्त्राणि ततोऽस्त्रं प्रत्यपादयत् ॥ ४१ ॥
आग्नेयं तु महाभागो अमरैरपि दुःसहम् ।
स तेनास्त्रबलेनाजौ बलेन च समन्वितः ॥ ४२ ॥
हैहयान् विजघानाशु क्रुद्धो रुद्रः पशूनिव ।
आजहार च लोकेषु कीर्तिं कीर्तिमतां वरः ॥ ४३
ततः शकांश्च यवनान् काम्बोजान् पारदांस्तथा ।
पह्लवांश्चैव निःशेषान् कर्तुं व्यवसितो नृपः ॥ ४४ ॥
ते वध्यमाना वीरेण सगरेण महात्मना ।
वसिष्ठं शरणं गत्वा प्रणिपेतुर्मनीषिणम् ॥ ४५ ॥
वसिष्ठस्त्वथतान् दृष्ट्वा समयेन महाद्युतिः ।
सगरं वारयामास तेषां दत्त्वाभयं तदा ॥ ४६ ॥

सगरः स्वां प्रतिज्ञां तु गुरोर्वाक्यं निशम्य च ।
धर्म्मं जघान तेषां वै वेशानन्यांश्चकार ह ॥ ४७ ॥
अर्द्धं शकानां शिरसो मुण्डयित्वा व्यसर्जयत् ।
यवनानां शिर सर्व्वं काम्बोजानां तथैव च ॥ ४८ ॥
पारदा मुक्तकेशाश्च पह्नवाः श्मश्रुधारिणः ।
निःस्वाध्यायवषट्काराः कृतास्तेन महात्मना ॥ ४९ ॥
शका यवनकाम्बोजाः पारदाश्च द्विजोत्तमाः ।
कोणिसर्पा माहिषका दर्व्वाश्चोलाः सकेरलाः ॥ ५० ॥
सर्व्वे ते क्षत्रिया विप्रा धर्म्मस्तेषा निराकृतः
वसिष्ठवचनाद्राजा सगरेण महात्मना ॥ ५१ ॥
स धर्म्मविजयी राजा विजित्येमां वसुन्धराम् ।
अश्वं प्रचारयामास वाजिमेधाय दीक्षितः ॥ ५२ ॥
तस्य चारयतः सोऽश्वः समुद्रे पूर्व्वदक्षिणे ।
वेलासमीपेऽपहृतो भूमिं चैव प्रवेशितः ॥ ५३ ॥
स त देशं तदा पुत्रैः खानयामास पार्थिवः ।
आसेदुस्तु तदा तत्र खन्यमाने महार्णवे ॥ ५४ ॥
तमादिपुरुषं देव हरिं कृष्णं प्रजापतिम् ।
विष्णुं कपिलरूपेण स्वपन्त पुरुषं तदा ॥ ५५ ॥
तस्य चक्षुःसमुत्थेन तेजसा प्रतिबुध्यतः ।
दग्धाः सर्व्वे मुनिश्रेष्ठाश्चत्वारस्त्ववशेषिताः ॥ ५६ ॥
बर्हिकेतुः सुकेतुश्च तथा धर्म्मरथो नृपः ।
शूरः पञ्चनदश्चैव तस्य वंशकरा नृपाः ॥ ५७ ॥

प्रादाच्च तस्मै भगवान् हरिर्नारायणो वरम् ।
अक्षय वशमिक्ष्वाको कीर्ति चाप्यनिवर्तिनीम् ॥ ५८ ॥
पुत्र समुद्र च विभु स्वर्गे वास तथाक्षयम् ।
समुद्रश्चार्घ्यमादाय ववन्दे त महीपतिम् ॥ ५९ ॥
सागरत्व च लेभे स कर्मणा तेन तस्य ह ।
तवश्चाश्वमेधिक सोऽश्व समुद्रादुपलब्धवान् ॥ ६० ॥
आजहाराश्वमेधाना शत स सुमहातपा ।
पुत्राणा च सहस्राणि षष्टिस्तस्येति न श्रुतम् ॥ ६१ ॥

मुनय ऊचु ।

सगरस्यात्मजा वीरा कथ जाता महाबला ।
विक्रान्ता षष्टिसाहस्रा विधिना केन सत्तम ॥ ६२ ॥

लोमहर्षण उवाच ।

द्वे भार्ये सगरस्यास्ता तपसा दग्धकिल्बिषे ।
ज्येष्ठा विदर्भदुहिता केशिनी नाम नामत ॥ ६३ ॥
कनीयसी तु महती पत्नी परमधर्मिणी ।
अरिष्टनेमिदुहिता रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥ ६४ ॥
ऊर्वस्ताभ्या वर प्रादात्तद्बुध्यध्व द्विजोत्तमा ।
षष्टि पुत्रसहस्राणि गृह्णात्वेका नितम्बिनी ॥ ६५ ॥
एक वशधर त्वेका यथेष्ट वरयत्विति ।
तत्रैका जगृहे पुत्रान् षष्टिसाहस्रसम्मितान् ॥ ६६ ॥
एक वशधर त्वेका तथेत्याह ततो मुनि ।
राजा पञ्चजनो नाम बभूव स महाद्युति ॥ ६७ ॥

इतरा सुषुवे तुम्बीं बीजपूर्णामिति श्रुतिः।
तत्र षष्टिसहस्राणि गर्भास्ते तिलसम्मिताः॥ ६८॥
घृतपूर्णेषु कुम्भेषु तान् गर्भान्निदधे ततः॥ ६९॥
धात्रीश्चैकैकशः प्रादात्तावतीः पोषणे नृपः।
ततो दशसु मासेषु समुत्तस्थुर्यथाक्रमम्॥ ७०॥
कुमारास्ते यथाकालं सगरप्रीतिवर्धनाः।
षष्टिपुत्रसहस्राणि तस्यैवमभवन् द्विजाः॥ ७१॥
गर्भादलाबुमध्याद्वै जातानि पृथिवीपतेः।
तेषां नारायणं तेजः प्रविष्टानां महात्मनाम्॥ ७२॥
एकः पञ्चजनो नाम पुत्रो राजा बभूव ह।
शूरः पञ्चजनस्यासीदंशुमान्नाम वीर्यवान्॥ ७३॥
दिलीपस्तस्य तनयः खट्वाङ्ग इति विश्रुतः।
येन स्वर्गादिहागम्य मुहूर्तं प्राप्य जीवितम्॥ ७४॥
त्रयोऽभिमन्त्रिता लोका बुद्ध्या सत्येन चानघाः।
दिलीपस्य तु दायादो महाराजो भगीरथः॥ ७५॥
यः स गङ्गां सरिच्छ्रेष्ठामवातारयत प्रभुः।
समुद्रमानयच्चैनां दुहितृत्वेऽप्यकल्पयत्॥ ७६॥
तस्माद्भागीरथी गङ्गा कथ्यते वंशवित्तमैः।
भगीरथसुतो राजा श्रुत इत्यभिविश्रुतः॥ ७७॥
नाभागस्तु श्रुतस्यासीत् पुत्रः परमधार्मिकः।
अम्बरीषस्तु नाभागिः सिन्धुद्वीपपिताभवत्॥ ७८॥

अयुताजित्तु दायाद सिन्धुद्वीपस्य वीर्य्यवान्।
अयुताजित्सुतस्त्वासीदृतुपर्णो महायशा ॥ ७९ ॥
दिव्याक्षहृदयज्ञो वै राजा नलसखो बली।
ऋतुपर्णसुतस्त्वासीदार्त्तपर्णिर्महायशा ॥ ८० ॥
सुदासस्तस्य तनयो राजा इन्द्रसखोऽभवत्।
सुदासस्य सुत प्रोक्त सौदासो नाम पार्थिव ॥ ८१ ॥
ख्यात कल्मापपादो वै राजा मित्रसहोऽभवत्।
कल्मापपादस्य सुत सर्वकर्मेति विश्रुत ॥ ८२ ॥
अनरण्यस्तु पुत्रोऽभूद्विश्रुत सर्वकर्मण।
अनरण्यसुतो निघ्नो निघ्नौतो द्वौ बभूवतु ॥ ८३ ॥

क्षेमधन्वसुतस्त्वासीद्देवानीकः प्रतापवान् ।
आसीदहीनगुर्नाम देवानीकात्मजः प्रभुः ॥ ९० ॥
अहीनगोस्तु दायादः सुधन्वा नाम पार्थिवः ।
सुधन्वनः सुतश्चापि ततो जज्ञे शलो नृपः ॥ ९१ ॥
उक्थो नाम स धर्मात्मा शलपुत्रो बभूव ह ।
वज्रनाभः सुतस्तस्य नलस्तस्य महात्मनः ॥ ९२ ॥
नलौ द्वावेव विख्यातौ पुराणे मुनिसत्तमाः ।
वीरसेनात्मजश्चैव यश्चेक्ष्वाकुकुलोद्वहः ॥ ९३ ॥
इक्ष्वाकुवंशप्रभवाः प्राधान्येन प्रकीर्तिताः ।
एते विवस्वतो वंशे राजानो भूरितेजसः ॥ ९४ ॥
पठन् सम्यगिमां सृष्टिमादित्यस्य विवस्वतः ।
श्राद्धदेवस्य देवस्य प्रजानां पुष्टिदस्य च ।
प्रजावानेति सायुज्यमादित्यस्य विवस्वतः ॥ ९५ ॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे आदित्यवंशानुकीर्त्तनं
नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

स याच्यमानो देवैश्च तथा देवर्षिभिर्मुहुः ।
नैव व्यसर्ज्जयत्तारां तस्मा आङ्गिरसे तदा ॥ २० ॥
उशना तस्य जग्राह पार्ष्णिमाङ्गिरसस्तथा ।
रुद्रश्च पार्ष्णिं जग्राह गृहीत्वाजगवं धनुः ॥ २१ ॥
तेन ब्रह्मशिरो नाम परमास्त्रं महात्मना ।
उद्दिश्य देवानुत्सृष्टं येनैषां नाशितं यशः ॥ २२ ॥
तत्र तद्युद्धमभवत् प्रख्यातं तारकामयम् ।
देवानां दानवानाञ्च लोकक्षयकरं महत् ॥ २३ ॥
तत्र शिष्टाश्च ये देवास्तुषिताश्चैव ये द्विजाः ।
ब्रह्माणं शरणं जग्मुरादिदेवं सनातनम् ॥ २४ ॥
तदा निवार्य्योशनसं तं वै रुद्रञ्च शङ्करम् ।
ददावाङ्गिरसे तारां स्वयमेव पितामहः ॥ २५ ॥
तामन्तःप्रसवां दृष्ट्वा क्रुद्धः प्राह बृहस्पतिः ।
मदीयायां न ते योनौ गर्भो धार्य्यः कथञ्चन ॥ २६ ॥
इषीकास्तम्बमासाद्य गर्भं सा चोत्ससर्ज्ज ह ।
जातमात्रः स भगवान् देवानामाक्षिपद्वपुः ॥ २७ ॥
ततः संशयमापन्नास्तारामूचुः सुरोत्तमाः ।
सत्यं ब्रूहि सुतः कस्य सोमस्याथ बृहस्पतेः ॥ २८ ॥
पृच्छ्यमाना यदा देवैर्नाह सा विबुधान् किल ।
तदा तां शप्तुमारब्धः कुमारो दस्युहन्तमः ॥ २९ ॥
तं निवार्य्य ततो ब्रह्मा तारां पप्रच्छ संशयम् ।
यदत्र तथ्यं तद्ब्रूहि तारे कस्य सुतस्त्वयम् ॥ ३० ॥

उवाच प्राञ्जलि सा तत्सोमस्येति पितामहम् ।
तदा तं मूर्ध्निंचाघ्राय सोमो राजा सुतप्रति ॥ ३१ ॥
बुध इत्यकरोन्नाम तस्य बालस्य धीमत ।
प्रतिकूलश्च गगने समभ्युत्तिष्ठने बुध ॥ ३२ ॥
उत्पादयामास तदा पुत्र वै राजपुत्रिकाम् ।
तस्यापत्य महातेजा बभूवैल पुरूरवा ॥ ३३ ॥
उर्वश्या जज्ञिरे यस्य पुत्रा सप्त महात्मन
एतत् सोमस्य वो जन्म कोत्तित कीर्त्तिवर्द्धनम् ॥ ३४ ॥
वंशमस्य मुनिश्रेष्ठा कीर्त्यमान निबोधत ।
धन्यमायुष्यमारोग्य पुण्य सङ्कल्पसाधनम् ॥ ३५ ॥
सोमस्य जन्म श्रुत्वैव पापेभ्यो विप्रमुच्यते ॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे सोमोत्पत्तिकथन नाम
नवमोऽध्याय ॥ ९ ॥

दशमोऽध्याय·

तत्रादौ सोमवंशवर्णनम्

लोमहर्षण उवाच ।

बुधस्य तु मुनिश्रेष्ठा विद्वान् पुत्र पुरूरवा ।
तेजस्वी दानशीलश्च यज्वा विपुलदक्षिण ॥ १ ॥
ब्रह्मवादी पराक्रान्त शत्रुभिर्युधि दुर्दम ।
आहर्त्ता चाग्निहोत्रस्य यज्ञानाञ्च महीपति ॥ २ ॥

सत्यवादी पुण्यमतिः सम्यक् संवृतमैथुनः।
अतीव त्रिषु लोकेषु यशसाऽप्रतिमः सदा ॥ ३ ॥
तं ब्रह्मवादिनं शान्तं धर्मज्ञं सत्यवादिनम्।
उर्वशी वरयामास हित्वा मानं यशस्विनी ॥ ४ ॥
तया सहावसद्राजा दश वर्षाणि पञ्च च।
षट्पञ्च सप्त चाष्टौ च दश चाष्टौ च भो द्विजाः ॥ ५ ॥
वने चैत्ररथे रम्ये तथा मन्दाकिनीतटे।
अलकायां विशालायां नन्दने च वनोत्तमे ॥ ६ ॥
उत्तरान् स कुरून् प्राप्य मनोरमफलद्रुमान्।
गन्धमादनपादेषु मेरुशृङ्गे तथोत्तरे ॥ ७ ॥
एतेषु वनमुख्येषु सुरैराचरितेषु च।
उर्वश्या सहितो राजा रेमे परमया मुदा ॥ ८ ॥
देशे पुण्यतमे चैव महर्षिभिरभिष्टुते।
राज्यं स कारयामास प्रयागे पृथिवीपतिः ॥ ९ ॥
एवंप्रभावो राजासीदैलस्तु नरसत्तमः ॥ १० ॥ *

लोमहर्षण उवाच

ऐलपुत्रा बभूवुस्ते सप्त देवसुतोपमाः।
गन्धर्वलोके विदिता आयुर्धीमानमावसुः ॥ ११ ॥
विश्वायुश्चैव धर्मात्मा श्रुतायुश्च तथापरः।
दृढायुश्च वनायुश्च बह्वायुश्चोर्वशीसुताः ॥ १२ ॥

* अत्र वरं "उत्तरे जाह्नवीतीरे प्रतिष्ठाने महायशाः" इति पाठं कविदधिकं पश्यति।

अमावसोस्तु दायादो भीमो राजाथ राजराट्।
श्रीमान् भीमस्य दायादो राजासीत्काञ्चनप्रभः ॥ १३ ॥
विद्वांस्तु काञ्चनस्यापि सुहोत्रोऽभून्महाबलः।
सुहोत्रस्याभवज्जह्नुः केशिन्या गर्भसम्भवः ॥ १४ ॥
आजह्रे यो महत् सत्रं सर्वमेधं महामखम्।
पतिलोभेन यं गङ्गा पतित्वेन ससार ह ॥ १५ ॥
नेच्छतः प्लावयामास तस्य गङ्गा तदा सदः।
स तया प्लावितं दृष्ट्वा यज्ञवाटं समन्ततः ॥ १६ ॥
सौहोत्रिरशपद्गङ्गां क्रुद्धो राजा द्विजोत्तमाः।
एष ते विफलं यत्नं पिबन्नम्भः करोम्यहम् ॥ १७ ॥
अस्य गङ्गेऽवलेपस्य सद्यः फलमवाप्नुहि।
जह्नुराजर्षिणा पीतां गङ्गां दृष्ट्वा महर्षयः ॥ १८ ॥
उपनिन्युर्महाभागां दुहितृत्वेन जाह्नवीम्।
युवनाश्वस्य पुत्रीं तु कावेरीं जह्नुरावहत् ॥ १९ ॥
युवनाश्वस्य शापेन गङ्गार्द्धेन विनिर्गता।
कावेरीं सरितां श्रेष्ठां जह्नोर्भार्य्यामनिन्दिताम् ॥ २० ॥
जह्नुस्तु दयितं पुत्रं सुनद्यं नाम धार्म्मिकम्।
कावेर्य्यां जनयामास अजकस्तस्य चात्मजः ॥ २१ ॥
अजकस्य तु दायादो बलाकाश्वो महीपतिः।
बभूव मृगयाशीलः कुशस्तस्यात्मजोऽभवत् ॥ २२ ॥
कुशपुत्रा बभूवुर्हि चत्वारो देववर्च्चसः।
कुशिकः कुशनाभश्च कुशाम्बो मूर्त्तिमांस्तथा ॥ २३ ॥

पह्लवैः सह सवृद्धो राजा वनचरः सदा।
कुशिकस्तु तपस्तेपे पुत्रमिन्द्रसमं प्रभुः ॥ २४ ॥
लभेयमिति तं शक्रस्त्रासादभ्येत्य जज्ञिवान्।
पूर्णे वर्षसहस्रे वै ततः शक्रो ह्यपश्यत ॥ २५ ॥
अत्युग्रतपसं दृष्ट्वा सहस्राक्षः पुरन्दरः।
समर्थः पुत्रजनने स्वयमेवास्य शाश्वतः ॥ २६ ॥
पुत्रार्थं कल्पयामास देवेन्द्रः सुरसत्तमः।
स गाधिरभवद्राजा मघवान् कौशिकः स्वयम् ॥ २७ ॥
पौरकुत्स्यभवद्भार्या गाधिस्तस्यामजायत।
गाधेः कन्या महाभागा नाम्ना सत्यवती शुभा ॥ २८ ॥
तां गाधिः काव्यपुत्राय ऋचीकाय ददौ प्रभुः।
तस्याः प्रीतः स वै भर्त्ता भार्गवो भृगुनन्दनः ॥ २९ ॥
पुत्रार्थं साधयामास चरुं गाधेस्तथैव च।
उवाचाहूय तां भार्य्यामृचीको भार्गवस्तदा ॥ ३० ॥
उपयोज्यश्चरुरयं त्वया मात्रा त्वयं शुभे।
तस्यां जनिष्यते पुत्रो दीप्तिमान्क्षत्रियर्षभः ॥ ३१ ॥
अजेयः क्षत्रियैर्लोके क्षत्रियर्षभसूदनः।
तवापि पुत्रं कल्याणि धृतिमन्तं तपोधनम् ॥ ३२ ॥
शमात्मकं द्विजश्रेष्ठं चरुरेष विधास्यति।
एवमुक्त्वा तु तां भार्य्यामृचीको भृगुनन्दनः ॥ ३३ ॥
तपस्यभिरतो नित्यमरण्यं प्रविवेश ह।
गाधिः सदारस्तु तदा आश्रमं समभ्यगात् ॥ ३४ ॥

तीर्थयात्राप्रसङ्गेन सुतां द्रष्टुं नरेश्वरः ।
चरुद्वयं गृहीत्वा सा ऋषेः सत्यवती तदा ॥ ३५ ॥
चरुमादाय यत्नेन सा तु मात्रे न्यवेदयत् ।
माता तु तस्या दैवेन दुहित्रे स्वं चरुं ददौ ॥ ३६ ॥
तस्याश्चरुमथाज्ञानादात्मसंस्थं चकार ह ।
अथ सत्यवती सद्यं क्षत्रियान्तकरं तदा ॥ ३७ ॥
धारयामास दीप्तेन वपुषा घोरदर्शना ।
तामृचीकस्ततो दृष्ट्वा योगेनाभ्युपसृत्य च ॥ ३८ ॥
ततोऽब्रवीद्द्विजश्रेष्ठ स्वां भार्य्यां वरवर्णिनीम् ।
मात्रासि वञ्चिता भद्रे चरुव्यत्यासहेतुना ॥ ३९ ॥
जनिष्यति हि पुत्रस्ते क्रूरकर्म्मातिदारुणः ।
भ्राता जनिष्यते चापि ब्रह्मभूतस्तपोधनः ॥ ४० ॥
विश्वं हि ब्रह्म तपसा मया तस्मिन् समर्पितम् ।
एवमुक्ता महाभागा भर्त्रा सत्यवती तदा ॥ ४१ ॥
प्रसादयामास पतिं पुत्रो मे नेदृशो भवेत् ।
ब्राह्मणापसदस्त्वत्त इत्युक्तो मुनिरब्रवीत् ॥ ४२ ॥

ऋचीक उवाच ।

नैव सङ्कल्पितः कामो मया भद्रे तथास्त्विति ।
उग्रकर्म्मा भवेत् पुत्रः पितुर्म्मातुश्च कारणात् ॥ ४३ ॥
पुनः सत्यवती वाक्यमेवमुक्त्वाब्रवीदिदम् ।
इच्छँल्लोकानपि मुने सृजेथाः किं पुनः सुतम् ॥ ४४ ॥

शमात्मकमृजुं त्वं मे पुत्रं दातुमिहार्हसि ।
काममेवंविधः पौत्रो मम स्यात्तव च प्रभो ॥ ४५ ॥
यद्यन्यथा न शक्यं वै कर्त्तुमेतद्द्विजोत्तम ।
ततः प्रसादमकरोत् स तस्यास्तपसो बलात् ॥ ४६ ॥
पुत्रे नास्ति विशेषो मे पौत्रे वा वरवर्णिनि ।
त्वया यथोक्तं वचनं तथा भद्रे भविष्यति ॥ ४७ ॥
ततः सत्यवती पुत्रं जनयामास भार्गवम् ।
तपस्यभिरतं दान्तं जमदग्निं शमात्मकम् ॥ ४८ ॥
भृगोर्जगत्या वंशेऽस्मिञ्जमदग्निरजायत ।
सा हि सत्यवती पुण्या सत्यधर्मपरायणा ॥ ४९ ॥
कौशिकीति समाख्याता प्रवृत्तेयं महानदी ।
इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रेणुर्नाम नराधिपः ॥ ५० ॥
तस्य कन्या महाभागा कामली नाम रेणुका ।
रेणुकायां तु कामल्यां तपोविद्यासमन्वितः ॥ ५१ ॥
आर्चीको जनयामास जामदग्न्यं सुदारुणम् ।
सर्व्वविद्यान्तगं श्रेष्ठं धनुर्वेदस्य पारगम् ॥ ५२ ॥
रामं क्षत्रियहन्तारं प्रदीप्तमिव पावकम् ।
और्वस्यैवमृचीकस्य सत्यवत्यां महायशाः ॥ ५३ ॥
जमदग्निस्तपोवीर्य्याज्जज्ञे ब्रह्मविदां वरः ।
मध्यमश्च शुनःशेपः शुनःपुच्छः कनिष्ठकः ॥ ५४ ॥
विश्वामित्रं तु दायादं गाधिः कुशिकनन्दनः ।
जनयामास पुत्रं तु तपोविद्याशमात्मकम् ॥ ५५ ॥

प्राप्य ब्रह्मर्षिसमतां योऽयं ब्रह्मर्षितां गत ।
विश्वामित्रस्तु धर्मात्मा नाम्ना विश्वरथ स्मृत ॥ ८६ ॥
जज्ञे भृगुप्रसादेन कौशिकाद्वंशवर्द्धन ।
विश्वामित्रस्य च सुता देवरातादय स्मृता ॥ ८७ ॥
प्रख्यातास्त्रिषु लोकेषु तेषां नामान्यत परम् ।
देवरात कतिश्चैव यस्मात् कात्यायना स्मृता ॥ ८८ ॥
शालावत्या हिरण्याक्षो रेणुर्जज्ञेऽथ रेणुक ॥ ८९ ॥
सांकृतिर्गालवश्चैव मुद्गलश्चैव विश्रुत ॥
मधुच्छन्दो जयश्चैव देवलश्च तथाष्टक ।
कच्छपो हारितश्चैव विश्वामित्रस्य ते सुता ॥ ९० ॥
तेषां ख्यातानि गोत्राणि कौशिकानां महात्मनाम् ।
पाणिनो बभ्रवश्चैव ध्यानजप्यास्तथैव च ॥ ९१ ॥
पार्थिवा देवराताश्च शालङ्कायनबाष्कला ।
लोहिता यमदूताश्च तथा कारूषका स्मृता ॥ ९२ ॥
पौरवस्य मुनिश्रेष्ठ ब्रह्मर्षे कौशिकस्य च ।
सम्बन्धोऽप्यस्य वंशेऽस्मिन् ब्रह्मक्षत्रस्य विश्रुत ॥ ९३ ॥
विश्वामित्रात्मजानां तु शुन शेपोऽग्रज स्मृत ।
भार्गव कौशिकत्वं हि प्राप्त स मुनिसत्तम ॥ ९४ ॥
विश्वामित्रस्य पुत्रस्तु शुन शेपोऽभवत् किल ।
हरिदश्वस्य यज्ञे तु पशुत्वे विनियोजित ॥ ९५ ॥
देवैर्दत्त शुन शेपो विश्वामित्राय वै पुन ।
देवैर्दत्त स वै यस्माद्देवरातस्ततोऽभवत् ॥ ९६ ॥

देवरातादय सप्त विश्वामित्रस्य वै सुता ।
दृषद्वतीसुतश्चापि वैश्वामित्रास्तथाष्टक ॥ ६७ ॥
अष्टकस्य सुतो लौहि प्रोक्तो जह्नुगणोमया ।
अत उर्द्ध प्रवक्ष्यामि वंशमायोर्महात्मन ॥ ६८ ॥

इति श्रीब्राह्म महापुराणे सोमवंशे ऽमावसुवंशानुकीर्तनं नाम दशमोऽध्याय ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः ।

सोमवंशवर्णनआयुवंशवर्णनम्

लोमहर्षण उवाच ।

आयो पुत्राश्च ते पञ्च सर्वे वीरा महारथा ।
स्वर्भानुतनयायां च प्रभायां जज्ञिरे नृपा ॥ १ ॥
नहुष प्रथम जज्ञे वृद्धशर्मा तत परम् ।
रम्भो रजिरनेनाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुता ॥ २ ॥
रजि पुत्रशतानाह जनयामास पञ्च वै ।
राजेयमिति विख्यातं क्षत्रमिन्द्रभयावहम् ॥ ३ ॥
यत्र देवासुरे युद्धे समुत्पन्ने सुदारुणे ।
देवाश्चैवासुराश्चैव पितामहमथाब्रुवन् ॥ ४ ॥

देवासुरा ऊचुः ।

आवयोर्भगवन् युद्धे को विजेता भविष्यति ।
ब्रूहि नः सर्वभूतेश श्रोतुमिच्छाम तत्त्वतः ॥ ५ ॥

ब्रह्मोवाच ।

येषामर्थाय सङ्ग्रामे रजिरात्तायुधः प्रभुः ।
योत्स्यते ते विजेष्यन्ति त्रीँल्लोकान्नात्र संशयः ॥ ६ ॥
यतो रजिर्धृतिस्तत्र श्रीश्च तत्र यतो धृतिः ।
यतो धृतिश्च श्रीश्चैव धर्मस्तत्र जयस्तथा ॥ ७ ॥
ते देवा दानवाः प्रीता देवेनोक्ता रजिंतदा ।
अभ्ययुर्जयमिच्छन्तो वृण्वानास्तं नरर्षभम् ॥ ८ ॥
स हि स्वर्भानुदौहित्रः प्रभायाः समपद्यत ।
राजा परमतेजस्वी सोमवंशविवर्द्धनः ॥ ९ ॥
ते हृष्टमनसः सर्वे रजिं वै देवदानवाः ।
ऊचुरस्मज्जयाय त्वं गृहाण वरकार्मुकम् ॥ १० ॥
अथोवाच रजिस्तत्र तयोर्वै देवदैत्ययोः ।
अर्थज्ञः स्वार्थमुद्दिश्य यशः स्वं च प्रकाशयन् ॥ ११ ॥

रजिरुवाच ।

यदि दैत्यगणान् सर्वान् जित्वा वीर्येण वासव ।
इन्द्रो भवामि धर्मेण ततो योत्स्यामि संयुगे ॥ १२ ॥
देवाः प्रथमतो विप्राः प्रतीयुर्हृष्टमानसाः ।
एवं यथेष्टं नृपते कामः सम्पद्यतां तव ॥ १३ ॥

श्रुत्वा सुरगणानान्तु वाक्यं राजा रजिस्तदा ।
पप्रच्छासुरमुख्यांस्तु यथा देवानपृच्छत ॥ १४ ॥
दानवा दर्पसम्पूर्णाः स्वार्थमेवावगम्य ह ।
प्रत्यूचुस्तं नृपवरं साभिमानमिदं वचः ॥ १५ ॥

दानवा ऊचुः ।

अस्माकमिन्द्रः प्रह्लादो यस्यार्थे विजयामहे ।
अस्मिंस्तु समरे राजंस्तिष्ठ त्वं राजसत्तम ॥ १६ ॥
स तथेति ब्रुवन्नेव देवैरप्यभिचोदितः ।
भविष्यसीन्द्रो जित्वैनं देवैरुक्तस्तु पार्थिवः ॥ १७ ॥
जघान दानवान् सर्व्वान् येऽवध्या वज्रपाणिनः ।
स विप्रनष्टां देवानां परमश्रीः श्रियं वशी ॥ १८ ॥
निहत्य दानवान् सर्व्वानाजहार रजिः प्रभुः ।
ततो रजिं महावीर्यं देवैः सह शतक्रतुः ॥ १९ ॥
रजिपुत्रोऽहमित्युक्त्वा पुनरेवाब्रवीद्वचः ।
इन्द्रोऽसि तात देवानां सर्व्वेषां नात्र संशयः ॥ २० ॥
यस्याहमिन्द्रः पुत्रस्ते ख्यातिं यास्यामि कर्मभिः ।
स तु शक्रवचः श्रुत्वा वञ्चितस्तेन मायया ॥ २१ ॥
तथेत्येवाब्रवीद्राजा प्रीयमाणः शतक्रतुम् ।
तस्मिंस्तु देवैः सदृशे दिवं प्राप्ते महीपतौ ॥ २२ ॥
दायाद्यमिन्द्रादाजह्रु राज्यं तत्तनया रजेः ।
पञ्च पुत्रशतान्यस्य तद्वै स्थानं शतक्रतोः ॥ २३ ॥

समाक्रामन्त बहुधा स्वर्गलोकं त्रिविष्टपम् ।
ते यदा तु सुसम्मूढा रागोन्मत्ता विधर्म्मिणः ॥ २४ ॥
ब्रह्मद्विषश्च संवृत्ता हतवीर्य्यपराक्रमाः ।
ततो लेभे स्वमैश्वर्य्यमिन्द्रः स्थानं तथोत्तमम् ॥ २५ ॥
हत्वा रजिसुतान् सर्व्वान् कामक्रोधपरायणान् ।
य इदं च्यावनं स्थानात्प्रतिष्ठानं शतक्रतोः
शृणुयाद्धारयेद्वापि न स दौर्गत्यमाप्नुयात् ॥ २६ ॥

लोमहर्षण उवाच ।

रम्भोऽनपत्यस्त्वासीच्च वशं वक्ष्याम्यनेनसः ।
अनेनस· सुतो राजा प्रतिक्षत्रो महायशाः ॥ २७ ॥
प्रतिक्षत्रसुतश्चासीन् सञ्जयो नाम विश्रुत· ।
सञ्जयस्य जयः पुत्रो विजयस्तस्य चात्मजः ॥ २८ ॥
विजयस्य कृति· पुत्रस्तस्य हर्य्यत्वतः सुतः ।
हर्य्यत्वतसुतो राजा सहदेवः प्रतापवान् ॥ २९ ॥
सहदेवस्य धर्म्मात्मा नदीन इति विश्रुतः ।
नदीनस्य जयत्सेनो जयत्सेनस्य सङ्कृतिः ॥ ३० ॥
सङ्कृतेरपि धर्म्मात्मा क्षत्रवृद्धो महायशाः ।
अनेनसः समाख्याताः क्षत्रवृद्धस्य चापर· ॥ ३१ ॥
क्षत्रवृद्धात्मजस्तत्र सुनहोत्रो महायशाः ।
सुनहोत्रस्य दायादास्त्रयः परमधार्म्मिकाः ॥ ३२ ॥
काशः शलश्च द्वावेतौ तथा गृत्समदः प्रभुः ।
पुत्रो गृत्समदस्यापि शुनको यस्य शौनक· ॥ ३३ ॥

ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चैव वैश्याः शूद्रास्तथैव च ।
शलात्मजो ह्यार्ष्टिसेनस्तनयस्तस्य काश्यपः ॥ ३४ ॥
काशस्य काशिपो राजा पुत्रो दीर्घतपास्तथा ।
धनुस्तु दीर्घतपसो विद्वान् धन्वन्तरिस्ततः ॥ ३५ ॥
तपसोऽन्ते सुमहतो जातो वृद्धस्य धीमतः ।
पुनर्धन्वन्तरिर्देवो मानुषेष्विह जन्मनि ॥ ३६ ॥
तस्य गेहे समुत्पन्नो देवो धन्वन्तरिस्तदा ।
काशिराजो महाराजः सर्व्वरोगप्रणाशनः ॥ ३७ ॥
आयुर्वेदं भरद्वाजात् प्राप्येह स भिषक्क्रियः ।
तमष्टधा पुनर्व्यस्य शिष्येभ्यः प्रत्यपादयत् ॥ ३८ ॥
धन्वन्तरेस्तु तनयः केतुमानिति विश्रुतः ।
अथ केतुमतः पुत्रो वीरो भीमरथः स्मृतः ॥ ३९ ॥
पुत्रो भीमरथस्यापि दिवोदासः प्रजेश्वरः ।
दिवोदासस्तु धर्म्मात्मा वाराणस्यधिपोऽभवत् ॥ ४० ॥
एतस्मिन्नेव काले तु पुरीं वाराणसीं द्विजाः ।
शून्यां निवेशयामास क्षेमको नाम राक्षसः ॥ ४१ ॥
शप्ता हि सा मतिमता निकुम्भेन महात्मना ।
शून्या वर्षसहस्रं वै भवित्री तु न संशयः ॥ ४२ ॥
तस्यां हि शप्तमात्रायां दिवोदासः प्रजेश्वरः ।
विषयान्ते पुरीं रम्यां गोमत्यां संन्यवेशयत् ॥ ४३ ॥
भद्रश्रेण्यस्य पूर्व्वं तु पुरी वाराणसी ह्यभूत् ।
भद्रश्रेण्यस्य पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम् ॥ ४४ ॥

हत्वा निवेशयामास दिवोदासो नराधिपः ।
भद्रश्रेण्यस्य तद्राज्यं हृतं येन बलीयसा ॥ ४५ ॥
भद्रश्रेण्यस्य पुत्रस्तु दुर्दमो नाम विश्रुतः ।
दिवोदासेन बालेति घृणया स विसर्जितः ॥ ४६ ॥
हैहयस्य तु दायादं हतवान् यो महीपतिः ।
आजह्रे पितृदायाद्यं दिवोदासहृतं बलात् ॥ ४७ ॥
भद्रश्रेण्यस्य पुत्रेण दुर्दमेन महात्मना ।
वैरस्यान्तो महाभागाः कृतश्चात्मीयतेजसा ॥ ४८ ॥
दिवोदासाद्दृषद्वत्यां वीरो जज्ञे प्रतर्दनः ।
तेन बालेन पुत्रेण प्रहृतं तु पुनर्बलम् ॥ ४९ ॥
प्रतर्दनस्य पुत्रौ द्वौ वत्सभर्गौ सुविश्रुतौ ।
वत्सपुत्रो ह्यलर्कस्तु सन्नतिस्तस्य चात्मजः ॥ ५० ॥
अलर्कस्तस्य पुत्रस्तु ब्रह्मण्यः सत्यसङ्गरः ।
अलर्कं प्रति राजर्षिं श्लोको गीतः पुरातनैः ॥ ५१ ॥
षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च ।
युवा रूपेण सम्पन्नः प्रागासीच्च कुलोद्वहः ॥ ५२ ॥
लोपामुद्राप्रसादेन परमायुरवाप्तवान् ।
तस्यासीत् सुमहद्राज्यं रूपयौवनशालिनः ॥ ५३ ॥
शापस्यान्ते महाबाहुर्हत्वा क्षेमकराक्षसम् ।
रम्यां निवेशयामास पुरीं वाराणसीं पुनः ॥ ५४ ॥
सन्नतेरपि दायादः सुनीथो नाम धार्मिकः ।
सुनीथस्य तु दायादः क्षेमो नाम महायशाः ॥ ५५ ॥

क्षेमस्य केतुमान् पुत्रः सुकेतुस्तस्य चात्मजः ।
सुकेतोस्तनयश्चापि धर्मकेतुरिति स्मृतः ॥ ५६ ॥
धर्मकेतोस्तु दायादः सत्यकेतुर्महारथः ।
सत्यकेतुसुतश्चापि विभुर्नाम प्रजेश्वरः ॥ ५७ ॥
आनर्त्तस्तु विभोः पुत्रः सुकुमारश्च तत्सुतः ।
सुकुमारस्य पुत्रस्तु धृष्टकेतुः सुधार्मिकः ॥ ५८ ॥
धृष्टकेतोस्तु दायादो वेणुहोत्रः प्रजेश्वरः ।
वेणुहोत्रसुतश्चापि भार्गो नाम प्रजेश्वरः ॥ ५९ ॥
वत्सस्य वत्सभूमिस्तु भार्गभूमिस्तु भार्गजः ।
एते त्वङ्गिरसः पुत्रा जाता वंशेऽथ भार्गवे ॥ ६० ॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्यास्त्रयः पुत्राः सहस्रशः ।
इत्येते काश्यपाः प्रोक्ता नहुषस्य निबोधत ॥ ६१ ॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे सोमवंशे वृद्धक्षत्रप्रसूतिनिरूपणं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः ।

सोमवंशवर्णने ययातिचरित्रवर्णनम्

लोमहर्षण उवाच ।

उत्पन्नाः पितृकन्यायां विरजायां महौजसः ।
नहुषस्य तु दायादाः षडिन्द्रोपमतेजसः ॥ १ ॥

यतिर्ययातिः संयातिरायातिर्यातिरेव च ।
सुयातिः षष्ठस्तेषां वै ययातिः पार्थिवोऽभवत् ॥ २ ॥
ककुत्स्थकन्यां गां नाम लेभे परमधार्मिकः ।
यतिस्तु मोक्षमास्थाय ब्रह्मभूतोऽभवन्मुनिः ॥ ३ ॥
तेषां ययातिः पञ्चानां विजित्य वसुधामिमाम् ।
देवयानामुशनसः सुतां भार्यामवाप सः ॥ ४ ॥
शर्म्मिष्ठामासुरीं चैव तनया वृषपर्व्वणः ।
यदुञ्च तुर्व्वसुञ्चैव देवयानी व्यजायत ॥ ५ ॥
द्रुह्यं चानुं च पूरुं च शर्मिष्ठा वार्षपर्व्वणी ।
तस्मै शक्रो ददौ प्रीतो रथं परमभास्वरम् ॥ ६ ॥
असङ्गं काञ्चनं दिव्यं दिव्यैः परमवाजिभिः ।
युक्तं मनोजवैः शुभ्रैर्येन कार्य्यं समुद्वहन् ॥ ७ ॥
स तेन रथमुख्येन षड्रात्रेणाजयन्महीम् ।
ययातिर्युधि दुर्द्धर्षस्तथा दैवान् सदानवान् ॥ ८ ॥
स रथः कौरवाणां तु सर्व्वेषाममवत्तदा ।
संवर्त्तवसुनामस्तु कौरवाज्जनमेजयात् ॥ ६ ॥
कुरोः पुत्रस्य राजेन्द्रराज्ञः पारिक्षितस्य ह ।
जगाम स रथो नाशं शापाद्गर्गस्य धीमतः ॥ १० ॥
गर्गस्य हि सुतं बालं स राजा जनमेजयः ।
कालेन हिंसयामास ब्रह्महत्यामवाप सः ॥ ११ ॥
स लोहगन्धो राजर्षिः परिधावन्नितस्ततः ।
पौरजानपदैस्त्यक्तो न लेभे शर्म्म कर्हिचित् ॥ १२ ॥

ततः स तु परसन्तप्तो नालभत्संविदं क्वचित् ।
विप्रेन्द्रं शौनकं राजा शरणं प्रत्यपद्यत ॥ १३ ॥
याजयामास च ज्ञानी शौनको जनमेजयम् ।
अश्वमेधेन राजानं पावनार्थं द्विजोत्तमाः ॥ १४ ॥
स लोहगन्धो व्यनशत्तस्यावभृथमेत्य ह ।
स च दिव्यरथो राज्ञो वसोश्चेदिपतेस्तदा ॥ १५ ॥
दत्तः शक्रेण तुष्टेन लेभे तस्माद्बृहद्रथः ।
बृहद्रथात्क्रमेणैव गतो बार्हद्रथं नृपम् ॥ १६ ॥
ततो हत्वा जरासन्धं भीमस्तं रथमुत्तमम् ।
प्रददौ वासुदेवाय प्रीत्या कौरवनन्दनः ॥ १७ ॥
सप्तद्वीपां ययातिस्तु जित्वा पृथ्वीं ससागराम् ।
विभज्य पञ्चधा राज्यं पुत्राणां नाहुषस्तदा ॥ १८ ॥
ययातिर्दिशि पूर्वस्यां यदुं ज्येष्ठं न्ययोजयत् ।
मध्ये पूरुं च राजानमभ्यषिञ्चत् स नाहुषः ॥ १९ ॥
दिशि दक्षिणपूर्वस्यां तुर्वसुं मतिमान्नृप. ।
तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपत्तना ॥ २० ॥
यथाप्रदेशमद्यापि धर्मेण प्रतिपाल्यते ।
प्रजास्तेषां पुरस्तात्तु वक्ष्यामि मुनिसत्तमाः ॥ २१ ॥
धनुर्न्यस्य पृषत्कांश्च पञ्चभिः पुरुषर्षभैः ।
जरावानभवद्राजा भारमावेश्य बन्धुषु ॥ २२ ॥
निक्षिप्तशस्त्रः पृथिवीं चचार पृथिवीपतिः ।
प्रीतिमानभवद्राजा ययातिरपराजितः ॥ २३ ॥

एवं विभज्य पृथिवीं ययातिर्यदुमब्रवीत् ।
जरां मे प्रतिगृह्णीष्व पुत्र कृत्यान्तरेण वै ॥ २४ ॥
तरुणस्तव रूपेण चरेयं पृथिवीमिमाम् ।
जरां त्वयि समाधाय तं यदुः प्रत्युवाच ह ॥ २५ ॥

यदुरुवाच ।

अनिर्दिष्टा मया भिक्षा ब्राह्मणस्य प्रतिश्रुता ।
अनपाकृत्य तां राजन्न ग्रहीष्यामि ते जराम् ॥ २६ ॥
जरायां बहवो दोषाः पानभोजनकारिताः ।
तस्माज्जरां न ते राजन् ग्रहीतुमहमुत्सहे ॥ २७ ॥
सन्ति ते बहवः पुत्रा मत्तः प्रियतरा नृप ।
प्रतिग्रहीतुं धर्मज्ञ पुत्रमन्यं वृणीष्व वै ॥ २८ ॥
स एवमुक्तो यदुना राजा कोपसमन्वितः ।
उवाच वदतां श्रेष्ठो ययातिर्गर्हयन् सुतम् ॥ २९ ॥

ययातिरुवाच ।

क आश्रमस्तवान्योऽस्ति को वा धर्मो विधीयते ।
मामनादृत्य दुर्बुद्धे यदहं तव देशिकः ॥ ३० ॥
एवमुक्तो यदुं विप्राः शशापैनं स मन्युमान् ।
अराज्या ते प्रजा मूढ भविजीति न संशयः ॥ ३१ ॥
द्रुह्युं च तुर्वसुं चैवाप्यनुं च द्विजसत्तमाः ।
एवमेवाब्रवीद्राजा प्रत्याख्यातश्च तैरपि ॥ ३२ ॥
शशाप तानतिक्रुद्धो ययातिरपराजितः ।
यथावत् कथितं सर्वं मयास्य द्विजसत्तमाः ॥ ३३ ॥

एवं शप्त्वा सुतान् सर्व्वांश्चतुरः पूरुपूर्वजान्।
तदेव वचनं राजा पूरुमप्याह भो द्विजाः ॥ ३४ ॥
तरुणस्तव रूपेण चरेयं पृथिवीमिमाम्।
जरां त्वयि समाधाय त्वं पूरो यदि मन्यसे ॥ ३५ ॥
स जरां प्रतिजग्राह पितुः पूरुः प्रतापवान्।
ययातिरपि रूपेण पूरोः पर्य्यचरन् महीम् ॥ ३६ ॥
स मार्गमाणः कामानामन्तं नृपतिसत्तमः।
विश्वाच्या सहितो रेमे वने चैत्ररथे प्रभुः ॥ ३७ ॥
यदा स तृप्तः कामेषु भोगेषु च नराधिपः।
तदा पूरोः सकाशाद्वै स्वां जरां प्रत्यपद्यत ॥ ३८ ॥
यत्र गाथा मुनिश्रेष्ठा गीताः किल ययातिना।
याभिः प्रत्याहरेत् कामान् सर्व्वं श्वङ्गानि कूर्म्मवत् ॥ ३९ ॥
न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते ॥ ४० ॥
यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
नालमेकस्य तत्सर्व्वमिति कृत्वा न मुह्यति ॥ ४१ ॥
यदा भावं न कुरुते सर्व्वभूतेषु पापकम्।
कर्म्मणा मनसा वाचा ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥ ४२ ॥
यदा तेभ्यो न बिभेति यदा चास्मान्न बिभ्यति।
यदा नेच्छति न द्वेष्टि ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥ ४३ ॥
या दुस्त्यजा दुर्म्मतिभिर्या न जीर्य्यति जीर्य्यतः।
योऽसौ प्राणान्तिको रोगस्तां तृष्णां त्यजतः सुखम् ॥ ४४ ॥

जीर्य्यन्ति जीर्य्यतः केशा दन्ता जीर्य्यन्ति जीर्य्यतः।
धनाशा जीविताशा च जीर्य्यतोऽपि न जीर्य्यति ॥ ४५ ॥
यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम्।
तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हन्ति षोडशीं कलाम् ॥ ४६ ॥
एवमुक्त्वा स राजर्षिः सदारः प्राविशद्वनम्।
कालेन महता चायं चचार विपुलं तपः ॥ ४७ ॥
भृगुतुङ्गे गतिं प्राप तपसोऽन्ते महायशाः।
अनश्नन् देहमुत्सृज्य सदारः स्वर्गमाप्तवान् ॥ ४८ ॥
तस्य वंशे मुनिश्रेष्ठाः पञ्च राजर्षिसत्तमाः।
यैर्व्याप्ता पृथिवी सर्वा सूर्यस्येव गभस्तिभिः ॥ ४९ ॥
यदोस्तु वंशं वक्ष्यामि शृणुध्वं राजसत्तमम्।
यत्र नारायणो जज्ञे हरिर्वृष्णिकुलोद्वहः ॥ ५० ॥
सुस्थः प्रजावानायुष्मान् कीर्तिमांश्च भवेन्नरः।
ययातिचरितं नित्यमिदं शृण्वन् द्विजोत्तमाः ॥ ५१ ॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे सोमवंशे ययातिचरितनिरूपणं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

———

त्रयोदशोऽध्यायः ।

पूरुवंशवर्णनम्

ब्राह्मणा ऊचुः ।

पूरोर्वंशं वयं सूत श्रोतुमिच्छाम तत्त्वतः
द्रुह्यस्यानोर्यदोश्चैव तुर्वसोश्च पृथक् पृथक् ॥ १ ॥

लोमहर्षण उवाच ।

शृणुध्वं मुनिशार्दूलाः पूरोर्वंशं महात्मनः ।
विस्तरेणानुपूर्व्या च प्रथमं वदतो मम ॥ २ ॥
पूरोः पुत्रः सुवीरोऽभून्मनस्युस्तस्य चात्मजः ।
राजा चाभयदो नाम मनस्योरभवत् सुतः ॥ ३ ॥
तथैवाभयदस्यासीत् सुधन्वा नाम पार्थिवः ।
सुधन्वनः सुबाहुश्च रौद्राश्वस्तस्य चात्मजः ॥ ४ ॥
रौद्राश्वस्य दशार्णेयुः कृकणेयुस्तथैव च ।
कक्षेयुस्थण्डिलेयुश्च सन्नतेयुस्तथैव च ॥ ५ ॥
ऋचेयुश्च जलेयुश्च स्थलेयुश्च महाबलः ।
धनेयुश्च वनेयुश्च पुत्रकाश्च दश स्त्रियः ॥ ६ ॥
भद्रा शूद्रा च मद्रा च शलदा मलदा तथा ।
खलदा च ततो विप्रा नलदा सुरसापि च ॥ ७ ॥
तथा गोचपला च स्त्रीरत्नकूटा च ता दश ।
ऋषिर्जातोऽत्रिवंशे च तासां भर्ता प्रभाकरः ॥ ८ ॥

उशीनरश्च धर्मज्ञ तितिक्षुश्च महारथम् ।
उशीनरस्य पत्न्यस्तु पञ्च राजर्षिवंशजा ॥ २० ॥
नृगा कृमिर्नवा दर्वा पञ्चमा च दृषद्वती ।
उशीनरस्य पुत्रास्तु पञ्च तासु कुलोद्वहा ॥ २१ ॥
तपसा चैव महता जाता वृद्धस्य चात्मजा ।
नृगायास्तु नृग पुत्र कृम्या कृमिरजायत ॥ २२ ॥
नवायास्तु नव पुत्रो दर्वाया सुव्रतोऽभवत् ।
दृषद्वत्यास्तु सञ्जज्ञे शिबिरौशीनरो नृप ॥ २३ ॥
शिबेस्तु शिबयो विप्रा यौधेयास्तु नृगस्य ह ।
नवस्य नवराष्ट्रन्तु कृमेस्तु कृमिला पुरी ॥ २४ ॥
सुव्रतस्य तथाम्बष्ठा शिबिपुत्रान्निबोधत ।
शिबेस्तु शिबय पुत्राश्चत्वारो लोकविश्रुता ॥ २५ ॥
वृषदर्भ सुवीरश्च केकयो मद्रकस्तथा ।
तेषा जनपदा स्फीता केकया मद्रकास्तथा ॥ २६ ॥
वृषदर्भा सुवीराश्च तितिक्षोस्तु प्रजास्त्विमा ।
तितिक्षुरभवद्राजा पूर्वस्या दिशि भो द्विजा ॥ २७ ॥
उषद्रथो महावीर्य्य फेनस्तस्य सुतोऽभवत् ।
फेनस्य सुतपा जज्ञे तत सुतपसो बलि ॥ २८ ॥
जातो मानुषयोनौ तु स राजा काञ्चनेषुधि ।
महायोगी स तु बलिर्बभूव नृपति पुरा ॥ २९ ॥
पुत्रानुत्पादयामास पञ्च वंशकरान् भुवि ।
अङ्ग प्रथमतो जज्ञे वङ्ग सुह्मस्तथैव च ॥ ३० ॥

पुण्ड्रः कलिङ्गश्च तथा बालेयं क्षत्रमुच्यते ।
बालेया ब्राह्मणाश्चैव तस्य वंशकरा भुवि ॥ ३१ ॥
बलेश्च ब्रह्मणा दत्तो वरः प्रीतेन भो द्विजाः ।
महायोगित्वमायुश्च कल्पस्य परिमाणतः ॥ ३२ ॥
बले चाप्रतिमत्वं वै धर्म्मतत्त्वार्थदर्शनम् ।
संग्रामे चाप्यजेयत्वं धर्म्मे चैव प्रधानताम् ॥ ३३ ॥
त्रैलोक्यदर्शनञ्चापि प्राधान्यं प्रसवे तथा ।
चतुरो नियतान् वर्णांस्त्वञ्च स्थापयितेति च ॥ ३४ ॥
इत्युक्तो विभुना राजा बलिः शान्तिं परां ययौ ।
कालेन महता विप्राः स्वञ्च स्थानमुपागमत् ॥ ३५ ॥
तेषां जनपदाः पञ्च अङ्गा वङ्गाः ससुह्मकाः ।
कालिङ्गाः पुण्ड्रकाश्चैव प्रजास्त्वङ्गस्य साम्प्रतम् ॥ ३६ ॥
अङ्गपुत्रो महानासीद्राजेन्द्रो दधिवाहनः ।
दधिवाहनपुत्रस्तु राजा दिविरथोऽभवत् ॥ ३७ ॥
पुत्रो दिविरथस्यासीच्छक्रतुल्यपराक्रमः ।
विद्वान् धर्म्मरथो नाम तस्य चित्ररथः सुतः ॥ ३८ ॥
तेन धर्म्मरथेनाथ तदा कालञ्जरे गिरौ ।
यजता सह शक्रेण सोमः पीतो महात्मना ॥ ३९ ॥
अथ चित्ररथस्यापि पुत्रो दशरथोऽभवत् ।
लोमपाद इति ख्यातो यस्य शान्ता सुताभवत् ॥ ४० ॥
तस्य दाशरथिर्वीरश्चतुरङ्गो महायशाः ।
ऋष्यशृङ्गप्रसादेन जज्ञे वंशविवर्द्धनः ॥ ४१ ॥

चतुरङ्गस्य पुत्रस्तु पृथुलाक्ष इति स्मृतः ।
पृथुलाक्षसुतो राजा चम्पो नाम महायशाः ॥ ४२ ॥
चम्पस्य तु पुरी चम्पा या मालिन्यभवत् पुरा ।
पूर्णभद्रप्रसादेन हर्य्यङ्गोऽस्य सुतोऽभवत् ॥ ४३ ॥
ततो वैभाण्डकिस्तस्य वारणं शक्रवारणम् ।
अवतारयामास महीं मन्त्रैर्वाहनमुत्तमम् ॥ ४४ ॥
हर्य्यङ्गस्य सुतस्तत्र राजा भद्ररथः स्मृतः ।
पुत्रो भद्ररथस्यासीद्बृहत्कर्म्मा प्रजेश्वरः ॥ ४५ ॥
बृहद्दर्भः सुतस्तस्य यस्माज्जज्ञे बृहन्मनाः ।
बृहन्मनास्तु राजेन्द्रो जनयामास वै सुतम् ॥ ४६ ॥
नाम्ना जयद्रथं नाम यस्माद्दृढरथो नृपः ।
आसीद्दृढरथस्यापि विश्वजिज्जनमेजयी ॥ ४७ ॥
दायादस्तस्य वैकर्णो विकर्णस्तस्य चात्मजः ।
तस्य पुत्रशतं त्वासीदङ्गानां कुलवर्द्धनम् ॥ ४८ ॥
एतेऽङ्गवंशजाः सर्व्वे राजानः कीर्त्तिता मया ।
सत्यव्रता महात्मानः प्रजावन्तो महारथाः ॥ ४९ ॥
ऋचेयोस्तु मुनिश्रेष्ठा रौद्राश्वतनयस्य वै ।
शृणुध्वं सम्प्रवक्ष्यामि वंशं राज्ञस्तु मो द्विजाः ॥ ५० ॥
ऋचेयोस्तनयो राजा मतिनारो महीपतिः ।
मतिनारसुतास्त्वासंस्त्रयः परमधार्म्मिकाः ॥ ५१ ॥
वसुरोधः प्रतिरथः सुबाहुश्चैव धार्म्मिकः ।
सर्व्वे वेदविदश्चैव ब्रह्मण्याः सत्यवादिनः ॥ ५२ ॥

इला नाम तु यस्यासीत् कन्या वै मुनिसत्तमाः।
ब्रह्मवादिन्यधिस्त्री सा तंसुस्तामभ्यगच्छत ॥ ५३ ॥
तंसोः सुतोऽथ राजर्षिर्धर्मनेत्रः प्रतापवान्।
ब्रह्मवादी पराक्रान्तस्तस्य भार्य्योपदानवी ॥ ५४ ॥
उपदानवी ततः पुत्रांश्चतुरोऽजनयच्छुभान्।
दुष्यन्तमथ सुष्मन्तं प्रवीरमनघं तथा ॥ ५५ ॥
दुष्यन्तस्य तु दायादो भरतो नाम वीर्य्यवान्।
स सर्वदमनो नाम नागायुतबलो महान् ॥ ५६ ॥
चक्रवर्त्ती सुतो जज्ञे दुष्यन्तस्य महात्मनः।
शकुन्तलायां भरतो यस्य नाम्ना तु भारताः ॥ ५७ ॥
भरतस्य विनष्टेषु तनयेषु महीपतेः।
मातॄणां तु प्रकोपेण मया तत्कथितं पुरा ॥ ५८ ॥
बृहस्पतेराङ्गिरसः पुत्रो विप्रो महामुनिः।
अयाजयद्भरद्वाजो महद्भिः क्रतुभिर्विभुः ॥ ५९ ॥
पूर्वं तु वितथे तस्य कृते वै पुत्रजन्मनि।
ततोऽथ वितथो नाम भरद्वाजसुतोऽभवत् ॥ ६० ॥
ततोऽथ वितथे जाते भरतस्तु दिवं ययौ।
वितथं चाभिषिच्याथ भरद्वाजो वनं ययौ ॥ ६१ ॥
स चापि वितथः पुत्रान् जनयामास पञ्च वै।
सुहोत्रञ्च सुहोतारं गयं गर्गं तथैव च ॥ ६२ ॥
कपिलञ्च महात्मानं सुहोत्रस्य सुतद्वयम्।
काशिकञ्च महासत्यं तथा गृत्समतिं नृपम् ॥ ६३ ॥

तथा गृत्समतेः पुत्रा ब्राह्मणाः क्षत्रिया विशः ।
काशिकस्य तु काशेयः पुत्रो दीर्घतपास्तथा ॥ ६४ ॥
बभूव दीर्घतपसो विद्वान् धन्वन्तरिः सुतः ।
धन्वन्तरेस्तु तनयः केतुमानिति विश्रुतः ॥ ६५ ॥
तथा केतुमतः पुत्रो विद्वान् भीमरथः स्मृतः ।
पुत्रो भीमरथस्यापि वाराणस्यधिपोऽभवत् ॥ ६६ ॥
दिवोदास इति ख्यातः सर्वशत्रुप्रणाशनः ।
दिवोदासस्य पुत्रस्तु वीरो राजा प्रतर्दनः ॥ ६७ ॥
प्रतर्दनस्य पुत्रौ द्वौ वत्सो भार्गव एव च ।
अलर्को राजपुत्रस्तु राजा सन्मतिमान् भुवि ॥ ६८ ॥
हैहयस्य तु दायादं हृतवान् वै महीपतिः ।
आजह्रे पितृदायादं दिवोदासहृतं बलात् ॥ ६९ ॥
भद्रश्रेण्यस्य पुत्रेण दुर्दमेन महात्मना ।
दिवोदासेन बालेति घृणयासौ विसर्जितः ॥ ७० ॥
अष्टारथो नाम नृपः सुतो भीमरथस्य वै ।
तेन पुत्रेण बालस्य प्रहृतं तस्य भो द्विजाः ॥ ७१ ॥
वैरस्यान्तं मुनिश्रेष्ठाः क्षत्रियेण विधित्सता ।
अलर्कः काशिराजस्तु ब्रह्मण्यः सत्यसङ्गरः ॥ ७२ ॥
षष्टिं वर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च ।
युवा रूपेण सम्पन्न आसीत्काशि[illegible]कः ॥ ७३ ॥
लोपामुद्राप्रसादेन परमायुरव[illegible]
वयसोऽन्ते मुनिश्रेष्ठा हत्वा [illegible]

रम्यां निवेशयामास पुरीं वाराणसीं नृपः ।
अलर्कस्य तु दायादः क्षेमको नाम पार्थिवः ॥ ७५ ॥
क्षेमकस्य तु पुत्रो वै वर्षकेतुस्ततोऽभवत् ।
वर्षकेतोश्च दायादो विभुर्नाम प्रजेश्वरः ॥ ७६ ॥
आनर्त्तस्तु विभोः पुत्रः सुकुमारस्ततोऽभवत् ।
सुकुमारस्य पुत्रस्तु सत्यकेतुर्महारथः ॥ ७७ ॥
सुतोऽभवन्महातेजा राजा परमधार्म्मिकः ।
वत्सस्य वत्सभूमिस्तु भर्गभूमिस्तु भार्गवात् ॥ ७८ ॥
एते त्वङ्गिरसः पुत्रा जाता वंशेऽथ भार्गवे ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च मुनिसत्तमाः ॥ ७९ ॥
आजमीढोऽपरो वंशः श्रूयतां द्विजसत्तमा ।
सुहोत्रस्य बृहत्पुत्रो बृहतस्तनयास्त्रयः ॥ ८० ॥
अजमीढो द्विमीढश्च पुरुमीढश्च वीर्य्यवान् ।
अजमीढस्य पत्न्यस्तु तिस्रो वै यशसान्विताः ॥ ८१ ॥
नीली च केशिनी चैव धूमिनी च वराङ्गनाः ।
अजमीढस्य केशिन्यां जज्ञे जह्नुः प्रतापवान् ॥ ८२ ॥
आजह्रे यो महासत्रं सर्व्वमेधमखं विभुम् ।
पतिलोभेन यं गङ्गा विनीतेव ससार ह ॥ ८३ ॥
नेच्छतः प्लावयामास तस्य गङ्गा च तत्सदः ।
तत्तया प्लावितं दृष्ट्वा यज्ञवाटं समन्ततः ॥ ८४ ॥
जह्नुरप्यब्रवीद्गङ्गां क्रुद्धो विप्रास्तदा नृपः ।
एष ते त्रिषु लोकेषु संक्षिप्यापः पिबाम्यहम् ॥ ८५ ॥

अस्य गङ्गाऽवलेपस्य सद्यः फलमवाप्नुहि ।
ततः पीतां महात्मानो दृष्ट्वा गङ्गां महर्षयः ॥ ८६ ॥
उपनिन्युर्महाभागा दुहितृत्वेन जाह्नवीम् ।
युवनाश्वस्य पुत्रीं तु कावेरीं जह्नुरावहत् ॥ ८७ ॥
गङ्गाशापेन देहार्द्धं यस्याः पश्चान्नदीकृतम् ॥
जह्नोस्तु दयितः पुत्रो अजको नाम वीर्यवान् ।
अजकस्य तु दायादो बलाकाश्वो महीपतिः ॥ ८८ ॥
बभूव मृगयाशीलः कुशिकस्तस्य चात्मजः ।
पह्नवैः सह संवृद्धो राजा वनचरैः सह ॥ ८९ ॥
कुशिकस्तु तपस्तेपे पुत्रमिन्द्रसमं विभुम् ।
लभेयमिति तं शक्रस्त्रासादभ्येत्य जज्ञिवान् ॥ ९० ॥
स गाधिरभवद्राजा मघवा कौशिकः स्वयम् ।
विश्वामित्रस्तु गाधेयो विश्वामित्रात्तथाष्टकः ॥ ९१ ॥
अष्टकस्य सुतो लौहिः प्रोक्तो जह्नुगणो मया ।
आजमीढोऽपरो वंशः श्रूयतां मुनिसत्तमाः ॥ ९२ ॥
अजमीढात्तु नीलिन्यां सुशान्तिरुदपद्यत ।
पुरुजातिः सुशान्तेश्च वाह्याश्वः पुरुजातितः ॥ ९३ ॥
वाह्याश्वतनयाः पञ्च स्फीता जनपदावृताः ।
मुद्गलः सृञ्जयश्चैव राजा बृहदिषुस्तथा ॥ ९४ ॥
यवीनरश्च विक्रान्तः कृमिलाश्वश्च पञ्चमः ।
पञ्चैते रक्षणायालं देशानामिति विश्रुताः ॥ ९५ ॥

पञ्चानां ते तु पञ्चालाः स्फीता जनपदावृताः ।
अलं संरक्षणे तेषां पञ्चाला इति विश्रुताः ॥ ९६ ॥
मुद्गलस्य तु दायादो मौद्गल्यः सुमहायशाः ।
इन्द्रसेना यतो गर्भं वध्र्यश्वं प्रत्यपद्यत ॥ ९७ ॥
आसीत् पञ्चजनः पुत्रः सृञ्जयस्य महात्मनः ।
सुतः पञ्चजनस्यापि सोमदत्तो महीपतिः ॥ [illegible]
सोमदत्तस्य दायादः सहदेवो महायशाः ।
सहदेवसुतश्चापि सोमको नाम विश्रुतः ॥ ९[illegible]
अजमीढसुतो जातः क्षीणे वंशे तु सोमकः ।
सोमकस्य सुतो जन्तुर्यस्य पुत्रशतं बभौ ॥ १०० ॥
तेषां यवीयान् पृषतो द्रुपदस्य पिता प्रभुः ।
आजमीढाः स्मृताश्चैते महात्मानस्तु सोमकाः ॥ १०१
महिषी त्वजमीढस्य धूमिनी पुत्रगृद्धिनी ।
पतिव्रता महाभागा कुलजा मुनिसत्तमाः ॥ १०२ ॥
सा च पुत्रार्थिनी देवी व्रतचर्य्यसमन्विता ।
ततो वर्षायुतं तप्त्वा तपः परमदुश्चरम् ॥ १०३ ॥
हुत्वाग्निं विधिवत् सा तु पवित्रा मितभोजना ।
अग्निहोत्रकुशेष्वेव सुष्वाप मुनिसत्तमाः ॥ १०४ ॥
धूमिन्यां स तया देव्या त्वजमीढः समीयिवान् ।
ऋक्षं संजनयामास धूम्रवर्णं सुदर्शनम् ॥ १०५ ॥
ऋक्षात् सम्वरणो जज्ञे कुरुः सम्वरणात्तथा ।
यः प्रयागादतिक्रम्य कुरुक्षेत्रं चकार ह ॥ १०६ ॥

पुण्यं च रमणीयं च पुण्यकृद्भिर्निषेवितम् ।
तस्यान्ववायः सुमहान् यस्य नाम्नाथ कौरवाः १०७ ॥
कुरोश्च पुत्राश्चत्वारः सुधन्वा सुधनुस्तथा ।
परीक्षिच्च महाबाहुः प्रवरश्चारिमेजयः ॥ १०८ ॥
परीक्षितस्तु दायादो धार्म्मिको जनमेजयः । *
श्रुतसेनोऽग्रसेनश्च भीमसेनश्च नामतः ॥ १०९ ॥
एते सर्व्वे महाभागा विक्रान्ता बलशालिनः ।
जनमेजयस्य पुत्रस्तु सुरथो मतिमांस्तथा ॥ ११० ॥
सुरथस्य तु विक्रान्तः पुत्रो जज्ञे विदूरथः ।
विदूरथस्य दायाद ऋक्ष एव महारथः ॥ १११ ॥
द्वितीयस्तु भरद्वाजाद्राम्ना तेनैव विश्रुतः ।
द्वावृक्षौ सोमवंशेऽस्मिन् द्वावेव च परीक्षितौ ॥ ११२ ॥
भीमसेनास्त्रयो विप्रा द्वौ चापि जनमेजयौ ।
ऋक्षस्य तु द्वितीयस्य भीमसेनोऽभवत्सुतः ॥ ११३ ॥
प्रपौपौ भीमसेनात्तु प्रतीपस्य तु शान्तनुः ।
देवापिर्बाह्लिकश्चैव त्रय एव महारथाः ॥ ११४ ॥
शान्तनोस्त्वथ वक्ष्येऽप्यस्तस्मिन् वंशे द्विजोत्तमाः ।
बाह्लिकस्य तु राजर्ष्वंशं शृणुत भो द्विजाः ॥ ११५ ॥
बाह्लिकस्य सुतश्चैव सोमदत्तो महायशाः ।
जज्ञिरे सोमदत्तात्तु भूरिर्भूरिश्रवाः शलः ॥ ११६ ॥

---

* अतः परं क्वचिदधिकाःश्लोका दृश्यन्ते न ते बहुपुस्तक सम्मता इति भोःकृताः ।

उपाध्यायस्तु देवानां देवापिरभवन्मुनिः ।
च्यवनपुत्रः कृतक इष्ट आसीन्महात्मनः ॥ ११७ ॥
शान्तनुस्त्वभवद्राजा कौरवाणां धुरन्धरः ।
शान्तनोः सम्प्रवक्ष्यामि वशं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ ११८ ॥
गाङ्ग देवव्रतं नाम पुत्रं सोऽजनयत् प्रभु ।
स तु भीष्म इति ख्यातः पाण्डवाना पितामह ॥ ११९ ।
काली विचित्रवीर्य्यं तु जनयामास भो द्विजा ।
शान्तनोर्दयितं पुत्र धर्म्मात्मानमकल्मषम् ॥ १२० ॥
कृष्णद्वैपायनाच्चैव क्षेत्रे वैचित्रवीर्य्यके ।
धृतराष्ट्रं च पाण्डुं च विदुरं चाप्यजीजनत् ॥ १२१ ॥
धृतराष्ट्रस्तु गान्धार्य्यां पुत्रानुत्पादयच्छतम् ।
तेषां दुर्य्योधनः श्रेष्ठः सर्व्वेषामपि स प्रभुः ॥ १२२ ॥
पाण्डोर्धनञ्जयः पुत्रः सौभद्रस्तस्य चात्मजः ।
अभिमन्यो परीक्षित् पिता पारीक्षितस्य ॥ ॥ १२३ ॥
पारिक्षितस्य काश्याया द्वौ पुत्रौ सम्बभूवतुः ।
चन्द्रापीडस्तु नृपतिः सूर्य्यापीडश्च मोक्षवित् ॥ १२४ ॥
चन्द्रापीडस्य पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम् ।
जानमेजयमित्येवं क्षात्रं भुवि परिश्रुतम् ॥ १२५ ॥
तेषां ज्येष्ठस्तु तत्रासीत् पुरे वारणसाह्वये ।
सत्यकर्णो महाबाहुर्यज्वा विपुलदक्षिणः ॥ १२६ ॥
सत्यकर्णस्य दायादः श्वेतकर्णः प्रतापवान् ।
अपुत्रः स तु धर्म्मात्मा प्रविवेश तपोवनम् ॥ १२७ ॥

तस्माद्वनगता गर्भं यादवी प्रत्यपद्यत ।
सुचारोर्दुहिता सुभ्रूर्मालिनी ग्राहमालिनी ॥ १२८ ॥
सम्भूते स च गर्भे च श्वेतकर्णः प्रजेश्वरः ।
अन्वगच्छन् कृतं पूर्वं महाप्रस्थानमच्युतम् ॥ १२९ ॥
सा तु दृष्ट्वा प्रियं तं च मालिनी पृष्ठतोऽन्वगात् ।
सुचारोर्दुहिता साध्वी वने राजीवलोचना ॥ १३० ॥
पथि सा सुषुवे बाला सुकुमारं कुमारकम् ।
तमपास्याथ तत्रैव राजानं साऽन्वगच्छत ॥ १३१ ॥
पतिव्रता महाभागा द्रौपदीव पुरा सती ।
कुमारः सुकुमारोऽसौ गिरिपृष्ठे रुरोद ह ॥ १३२ ॥
दयार्थं तस्य मेघास्तु प्रादुरासन्महात्मन ।
श्रविष्ठायास्तु पुत्रौ द्वौ पैप्पलादिश्च कौशिक ॥ १३३ ॥
दृष्ट्वा कृपान्वितौ गृह्य तौ प्राक्षालयतां जले ।
निघृष्टौ तस्य पार्श्वौ तु शिलायां रुधिरप्लुतौ ॥ १३४ ॥
अजश्याम स पार्श्वाभ्यां घृष्टाभ्यां सुसमाहितः ।
अजश्यामौ तु तत्र श्रीं देहेन सम्बभूवतुः ॥ १३५ ॥
अथाजपार्श्व इति वै चक्राते नाम तस्य तौ ।
स तु रेमकशालायां द्विजाभ्यामभिवर्द्धितः ॥ १३६ ॥
रेमकस्य तु भार्या तमुद्वहन् पुत्रकारणात् ।
रेमत्याः स तु पुत्रोऽभूद् ब्राह्मणौ सचिवौ तु तौ ॥ १३७ ॥
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च युगपत्तुल्यजीविनः ।
स एष पौरवो वंशः पाण्डवानां महात्मनाम् ॥ १३८ ॥

श्लोकोऽपि चात्र गीतोऽयं नाहुषेण ययातिना ।
जरासंक्रमणे पूर्वं तदा प्रीतेन धीमता ॥ १३९ ॥
अचन्द्रार्कग्रहा भूमिर्भवेदियमसंशयम् ।
अपौरवा मही नैव भविष्यति कदाचन ॥ १४० ॥
एष ते पौरवो वंशो विख्यातः कथितो मया ।
तुर्वसोस्तु प्रवक्ष्यामि द्रुह्योश्चानोर्यदोस्तथा ॥ १४१ ॥
तुर्वसोऽस्तु सुतो वह्निर्गोभानुस्तस्य चात्मजः ।
गोभानोस्तु सुतो राजा त्रैशानुरपराजितः ॥ १४२ ॥
करन्धमस्तु त्रैशानेर्मरुत्तस्तस्य चात्मजः ।
अन्यस्त्वाविक्षितो राजा मरुत्तः कथितो मया ॥ १४३ ॥
अनपत्योऽभवद्राजा यज्वा विपुलदक्षिणः ।
दुहिता सम्मता नाम तस्यासीत् पृथिवीपते ॥ १४४ ॥
दक्षिणार्थं तु सा दत्ता संवर्त्ताय महात्मने ।
दुष्यन्तं पौरवं चापि लेभे पुत्रमकल्मषम् ॥ १४५ ॥
एवं ययातिशापेन जरासंक्रमणे तदा ।
पौरवं तुर्वसोर्वंशं प्रविवेश द्विजोत्तमाः ॥ १४६ ॥
दुष्यन्तस्य तु दायादः करूरोमः प्रजेश्वरः ।
करूरोमादथाह्लीदश्चत्वारस्तस्य चात्मजाः ॥ १४७ ॥
पाण्ड्यश्च केरलश्चैव कोलश्चोलश्च पार्थिवः ।
द्रुह्योश्च तनयो राजन् बभ्रुसेतुश्च पार्थिवः ॥ १४८ ॥
अङ्गारसेतुस्तत्पुत्रो मरुतां पतिरुच्यते ।
यौवनाश्वेन समरे कृच्छ्रेण निहतो बली ॥ १४९ ॥

युद्धं सुमहदप्यासीन्मासान् परि चतुर्दश ।
अङ्गारसेतोर्दायादो गान्धारो नाम पार्थिवः ॥ १५० ॥
ख्यायते यस्य नाम्ना वै गान्धारविषयो महान् ।
गान्धारदेशजाश्चैव तुरगा वाजिनां वराः ॥ १५१ ॥
अनोस्तु पुत्रो धर्मोऽभूद्‌घृतस्तस्यात्मजोऽभवत् ।
घृताद्दुहो जज्ञे प्रचेतास्तस्य चात्मजः ॥ १५२ ॥
प्रचेतसः सुचेतास्तु कीर्त्तितास्त्वनवो मया ।
बभूवुस्ते यदोः पुत्राः पञ्च देवसुतोपमाः ॥ १५३ ॥
सहस्राद् पयोदश्च क्रोष्टा नीलोऽञ्जिकस्तथा ।
सहस्रादस्य दायादास्त्रयः परमधार्मिकाः ॥ १५४ ॥
हैहयश्च हयश्चैव राजा वेणुहयस्तथा ।
हैहयस्याभवत् पुत्रो धर्मनेत्र इति श्रुतः ॥ १५५ ॥
धर्मनेत्रस्य कार्त्तस्तु साहञ्जस्तस्य चात्मजः ।
साहञ्जनी नाम पुरी तेन राज्ञा निवेशिता ॥ १५६ ॥
आसीन्महिष्मतः पुत्रो भद्रश्रेण्यः प्रतापवान् ।
भद्रश्रेण्यस्य दायादो दुर्दमो नाम विश्रुतः ॥ १५७ ॥
दुर्दमस्य सुतो धीमान् कनको नाम नामतः ।
कनकस्य तु दायादाश्चत्वारो लोकविश्रुताः १५८ ॥
कृतवीर्यः कृतौजाश्च कृतधन्वा तथैव च ।
कृताग्निस्तु चतुर्थोऽभूत् कृतवीर्यादथार्जुनः ॥ १५९ ॥
योऽसौ बाहुसहस्रेण सप्तद्वीपेश्वरोऽभवत् ।
जिगाय पृथिवीमेको रथेनादित्यवर्चसा ॥ १६० ॥

स हि वर्षायुतं तप्त्वा तप परमदुश्चरम् ।
दत्तमाराधयामास कार्त्तवीर्य्योऽत्रिसम्भवम् ॥ १६१ ॥
तस्मै दत्तो वरान् प्रादाच्चतुरो भूरितेजस. ।
पूर्व्वं बाहुसहस्रं तु प्रार्थितं सुमहद्वरम् ॥ १६२ ॥
अधर्म्मेऽधीयमानस्य सद्भिस्तत्र निवारणम् ।
उग्रेण पृथिवीं जित्वा धर्म्मेणैवानुरञ्जनम् ॥ १६३ ॥
संग्रामान् सुबहून् जित्वा हत्वा चारीन् सहस्रशः ।
संग्रामे वर्त्तमानस्य वध चाभ्यधिकाद्रणे ॥ १६४ ॥
तस्य बाहुसहस्रं तु युध्यत किल भो द्विजाः ।
योगाद्योगीश्वरस्येव प्रादुर्भवति मायया ॥ १६५ ॥
तेनेयं पृथिवी सर्व्वा सप्तद्वीपा सपत्तना ।
ससामुद्रा सनगरा उग्रेण विधिना जिता ॥ १६६ ॥
तेन सप्तसु द्वीपेसु सप्त यज्ञशतानि वै ।
प्राप्तानि विधिना राज्ञा श्रूयन्ते मुनिसत्तमाः ॥ १६७ ॥
सर्व्वे यज्ञा मुनिश्रेष्ठाः सहस्रशतदक्षिणाः ।
सर्व्वे काञ्चनयूपाश्च सर्व्वे काञ्चनवेदयः ॥ १६८ ॥
सर्व्वे देवैर्मुनिश्रेष्ठा विमानस्थैरलङ्कृतैः ।
गन्धर्व्वैरप्सरोभिश्च नित्यमेवोपशोभिताः ॥ १६९ ॥
यस्य यज्ञे जगौ गाथां गन्धर्व्वो नारदस्तथा ।
वरीदासात्मजो विद्वान्महिम्ना तस्य विस्मितः ॥ १७० ॥

नारद उवाच ।

न नूनं कार्त्तवीर्य्यस्य गतिं यास्यन्ति पार्थिवाः ।
यज्ञैर्दानैस्तपोभिश्च विक्रमेण श्रुतेन च ॥ १७१ ॥

स हि सप्तसु द्वीपेषु धर्मी खड्गी शरासनी।
रथी द्वीपाननुचरन् योगी संदृश्यते नृभिः॥ १७२॥
अनष्टद्रव्यता चैव न शोको न च विभ्रमः।
प्रभावेण महा राज्ञ प्रजा धर्म्मेण रक्षतः॥ १७३॥
स सर्व्वरत्नभाक् सम्राट् चक्रवर्ती बभूव ह।
स एव पशुपालोऽभून् क्षेत्रपाल स एव च॥ १७४॥
स एव वृष्ट्या पर्जन्यो योगित्वादर्जुनोऽभवत्।
स वै बाहुसहस्रेण ज्याघातकठिनत्वचा॥ १७५॥
भाति रश्मिसहस्रेण शारदेन च भास्करः।
स हि नागान्मनुष्येषु माहिष्मत्यां महाद्युति॥ १७६॥
कर्कोटकसुतान् जित्वा पुर्य्यां तस्यां न्यवेशयत्।
स वै वेगं समुद्रस्य प्रावृट्कालेऽम्बुजेक्षण॥ १७७॥
क्रीडन्निव भुजोद्भिन्नं प्रतिस्रोतश्चकार ह।
लुण्ठिता क्रीडता तेन नदी तद्ग्रामममालिनी॥ १७८॥
चलदूर्मिसहस्रेण शङ्किताभ्येति नर्मदा।
तस्य बाहुसहस्रेण क्षिप्यमाणे महोदधौ॥ १७९॥
भयान्निर्लीना निश्चेष्टाः पातालस्था महासुराः।
चूर्णीकृतमहावीचि चलन्मीनमहातिमिम्॥ १८०॥
मारुताविद्धफेनौघमावर्त्तक्षोभसङ्कुलम्।
प्रावर्त्तयत्तदा राजा सहस्रेण च बाहुना॥ १८१॥
देवासुरसमाक्षिप्त क्षीरोदमिव मन्दरः।
मन्दरक्षोभचकिता अमृतोत्पादशङ्किताः॥ १८२॥

सहसोत्पतिना भ्राता भाम दृष्ट्वा नृपोत्तमम् ।
नता निश्चलमूर्द्धानो बभूवुस्ते महोरगा ॥ १८३ ॥
सायाह्ने कदलीखण्डा कम्पिता इव वायुना ।
स वै बद्ध्वा धनुर्ज्यामिरुत्सिक्त पञ्चभि शरै ॥ १८४ ॥
लङ्केश मोहयित्वा तु सबल रावण बलात् ।
निर्जित्य वशमानीय माहिष्मत्या बबन्ध तम् ॥ १८५ ॥
श्रुत्वा तु बद्ध पौलस्त्य रावण त्वर्जुनेन च ।
ततो गत्वा पुलस्त्यस्तमर्जुन ददृशे स्वयम् ॥ १८६ ॥
मुमोच रक्ष पौलस्त्य पुलस्त्येनाभियाचित ।
यस्य बाहुसहस्रस्य बभूव ज्यातलस्वन ॥ १८७ ॥
युगान्ते तोयदस्येव स्फुटतो ह्यशनेरिव ।
अहो बत मुने वीर्यं भार्गवस्य यदच्छिनत् ॥ १८८ ॥
राज्ञो बाहुसहस्रस्य हैम तालवन यथा ।
तृषितेन कदाचित् स भिक्षितश्चित्रभानुना ॥ १८९ ॥
स भिक्षामददाद्वीर सप्त द्वीपान् विभावसो ।
पुराणि ग्रामघोषाश्च विषयाश्चैव सर्वश ॥ १९० ॥
जज्वाल तस्य सर्वाणि चित्रभानुर्दिधक्षया ।
स तस्य पुरुषेन्द्रस्य प्रभावेण महात्मन ॥ १९१ ॥
ददाह कार्त्तवीर्यस्तु शैलाश्चैव वनानि च ।
सशून्यमाश्रम रम्य वरुणस्यात्मजस्य वै ॥ १९२ ॥
ददाह बलवद्भीतश्चित्रभानु सहैहय ।
य लेभे वरुण पुत्र पुरा भास्वन्तमुत्तमम् ॥ १९३ ॥

वशिष्टं नाम स मुनिः ख्यात आपव इत्युत ।
तत्रापवस्तु तं क्रोधाच्छप्तवानर्जुन विभुः ॥ १६४ ॥
यस्मान्न वर्जितमिदं वनं ते मम हैहय । --
तस्मात्ते दुष्करं कर्म्म कृतमन्यो हनिष्यति ॥ १६५ ॥
रामो नाम महाबाहुर्जामदग्न्यः प्रतापवान् ।
छित्त्वा बाहुसहस्रन्तेप्रमथ्य तरसा बली ॥ १६६ ॥
तपस्वी ब्राह्मणस्त्वां तु हनिष्यति स भार्गवः ।
अनष्टद्रव्यता यस्य बभूवामित्रकर्षिणः ॥ १६७ ॥
प्रतापेन नरेन्द्रस्य प्रजा धर्म्मेण रक्षतः ।
प्राप्तस्ततोऽस्य मृत्युर्वै तस्य शापान्महामुनेः ॥ १६८ ॥
वरस्तथैव भो विप्राः स्वयमेव वृतः पुरा ।
तस्य पुत्रशतं त्वासीत् पञ्च शेषा महात्मनः ॥ १६९ ॥
कृतास्त्रा बलिनः शूरा धर्मात्मानो यशस्विनः ।
शूरसेनश्च शूरश्च वृषणो मधुपध्वजः ॥ २०० ॥
जयध्वजश्च नाम्नासीदावन्त्यो नृपतिर्महान् ।
कार्त्तवीर्य्यस्य तनया वीर्य्यवन्तो महाबलाः ॥ २०१ ॥
जयध्वजस्य पुत्रस्तु तालजङ्घो महाबलः ।
तस्य पुत्रशतं ख्यातास्तालजङ्घा इति स्मृता. ॥ २०२ ॥
तेषां कुले मुनिश्रेष्ठा हैहयाना महात्मनाम् ।
वीतिहोत्रा सुमताश्चभोजाश्चावन्तय.स्मृता. ॥ २०३ ॥
तौण्डिकेयाश्च विख्यातास्तालजङ्घास्तथैव च ।
भरताश्च यदुः ॥ २०४ ॥

वृषप्रभृतयो विप्रा यादवाः पुण्यकर्म्मिणः ।
वृषो वंशधरस्तत्र तस्य पुत्रोऽभवन्मधुः ॥ २०५ ॥
मधोः पुत्रशतं त्वासीद्वृषणस्तस्य वंशकृत् ।
वृषणाद्वृष्णयः सर्व्वे मधोस्तु माधवाः स्मृताः ॥ २०६ ॥
यादवा यदुनाम्ना ते निरुच्यन्ते च हैहयाः ।
न तस्य वित्तनाशः स्यान्नष्टं प्रतिलभेच्च सः ॥ २०७ ॥
कार्त्तवीर्य्यस्य यो जन्म कथयेदिह नित्यशः ।
एते ययातिपुत्राणां पञ्च वंशा द्विजोत्तमाः ॥ २०८ ॥
कीर्त्तिता लोकवीराणां ये लोकान् धारयन्ति वै ।
भूतानीव मुनिश्रेष्ठाः पञ्च स्थावरजङ्गमान् ॥ २०९ ॥
श्रुत्वा पञ्च विसर्गांस्तु राजा धर्म्मार्थकोविदः ।
वशी भवति पञ्चानामात्मजानां तथेश्वरः ॥ २१० ॥
लभेत् पञ्च वरांश्चैव दुर्लभानिह लौकिकान् ।
आयुः कीर्त्तिं तथा पुत्रानैश्वर्य्यं भूमिमेव च ॥ २११ ॥
धारणाच्छ्रवणाच्चैव पञ्चवर्गस्य भो द्विजाः ।
क्रोष्टोर्व्वंशं मुनिश्रेष्ठाः शृणुध्वं वदतो मम ॥ २१२ ॥
यदोर्व्वंशधरस्याथ यज्विनः पुण्यकर्म्मिणः ।
क्रोष्टोर्व्वंशं हि श्रुत्वैव सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २१३ ॥
यस्यान्ववायजो विष्णुर्हरिर्वृष्णिकुलोद्वहः ।

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे ययतिवंशानुकीर्त्तनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

वशिष्ठो नाम स मुनिः ख्यात आपव इत्युत।
तत्रापवस्तु तं क्रोधाच्छप्तवानर्ज्जुनं विभुः ॥ १९४ ॥
यस्मान्न वर्जितमिदं वनं ते मम हैहय।
तस्मात्ते दुष्करं कर्म्म कृतमन्यो हनिष्यति ॥ १९५ ॥
रामो नाम महाबाहुर्जामदग्न्यः प्रतापवान्।
छित्त्वा बाहुसहस्रन्तेप्रमथ्य तरसा बली ॥ १९६ ॥
तपस्वी ब्राह्मणस्त्वां तु हनिष्यति स भार्गवः।
अनष्टद्रव्यता यस्य बभूवामित्रकर्षिणः ॥ १९७ ॥
प्रतापेन नरेन्द्रस्य प्रजा धर्म्मेण रक्षतः।
प्राप्तस्ततोऽस्य मृत्युर्वै तस्य शापान्महामुनेः ॥ १९८ ॥
वरस्तथैव भो विप्राः स्वयमेव वृतः पुरा।
तस्य पुत्रशतं त्वासीत् पञ्च शेषा महात्मनः ॥ १९९ ॥
कृतास्त्रा बलिनः शूरा धर्म्मात्मानो यशस्विनः।
शूरसेनश्च शूरश्च वृषणो मधुपध्वजः ॥ २०० ॥
जयध्वजश्च नाम्नासीदावन्त्यो नृपतिर्महान्।
कार्त्तवीर्य्यस्य तनया वीर्य्यवन्तो महाबलाः ॥ २०१ ॥
जयध्वजस्य पुत्रस्तु तालजङ्घो महाबलः।
तस्य पुत्रशतं ख्यातास्तालजङ्घा इति स्मृताः ॥ २०२ ॥
तेषां कुले मुनिश्रेष्ठा हैहयाना महात्मनाम्।
वीतिहोत्रा सुव्रताश्चभोजाश्चावन्तय स्मृताः ॥ २०३ ॥
तौण्डिकेयाश्च विख्यातास्तालजङ्घास्तथैव च।
भरताश्च सुजाताश्च बहुत्वान्नानुकीर्त्तिताः ॥ २०४ ॥

वृषप्रभृतयो विप्रा यादवाः पुण्यकर्म्मिणः ।
वृषो वंशधरस्तत्र तस्य पुत्रोऽभवन्मधुः ॥ २०५ ॥
मधोः पुत्रशतं त्वासीद्वृषणस्तस्य वंशकृत् ।
वृषणाद्वृष्णयः सर्व्वे मधोस्तु माधवाः स्मृताः ॥ २०६ ॥
यादवा यदुनाम्ना ते निरुच्यन्ते च हैहयाः ।
न तस्य वित्तनाशः स्यान्नष्टं प्रतिलभेच्च सः ॥ २०७ ॥
कार्त्तवीर्य्यस्य यो जन्म कथयेदिह नित्यशः ।
एते ययातिपुत्राणां पञ्च वंशा द्विजोत्तमाः ॥ २०८ ॥
कीर्तिता लोकवीराणां ये लोकान् धारयन्ति वै ।
भूतानीव मुनिश्रेष्ठाः पञ्च स्थावरजङ्गमान् ॥ २०९ ॥
श्रुत्वा पञ्च विसर्गांस्तु राजा धर्म्मार्थकोविदः ।
वशी भवति पञ्चानामात्मजानां तथेश्वरः ॥ २१० ॥
लभेत् पञ्च वरांश्चैव दुर्लभानिह लौकिकान् ।
आयुः कीर्त्तिं तथा पुत्रानैश्वर्य्यं भूमिमेव च ॥ २११ ॥
धारणाच्छ्रवणाच्चैव पञ्चवर्गस्य भो द्विजाः ।
क्रोष्टोर्व्वंशं मुनिश्रेष्ठाः शृणुध्वं गदतो मम ॥ २१२ ॥
यदोर्व्वंशधरस्याथ यज्विनः पुण्यकर्म्मिणः ।
क्रोष्टोर्व्वंशं हि श्रुत्वैव सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २१३ ॥
यस्यान्ववायजो विष्णुर्हरिर्वृष्णिकुलोद्वहः ।
इति श्रीब्राह्मे महापुराणे ययतिवंशानुकीर्त्तनं नाम
त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः ।

तत्रादौ यदुपुत्र क्रोष्टुवंशवर्णनम् ।

लोमहर्षण उवाच ।

गान्धारी चैव माद्री च क्रोष्टोर्भार्ये बभूवतुः ।
गान्धारी जनयामास अनमित्रं महाबलम् ॥ १ ॥
माद्री युधाजितं पुत्रं ततोऽन्यं देवमीढुषम् ।
तेषां वंशस्त्रिधा भूतो वृष्णीनां कुलवर्द्धनः ॥ २ ॥
माद्र्या पुत्रौ तु जज्ञाते श्रुतौ वृष्ण्यन्धकावुभे ।
जज्ञाते तनयौ वृष्णेः श्वफल्कश्चित्रकस्तथा ॥ ३ ॥
श्वफल्कस्तु मुनिश्रेष्ठा धर्मात्मा यत्र वर्तते ।
नास्ति व्याधिभयं तत्र नावर्षभयमेव च ॥ ४ ॥
कदाचित् काशिराजस्य विषये मुनिसत्तमाः ।
त्रीणि वर्षाणि पूर्णानि नावर्षत् पाकशासनः ॥ ५ ॥
स तत्र वासयामास श्वफल्कं परमार्चितम् ।
श्वफल्कपरिवर्त्तेन ववर्ष हरिवाहनः ॥ ६ ॥
श्वफल्कः काशिराजस्य सुतां भार्यामविन्दत ।
गान्दिनीं नाम गां सा च ददौ विप्राय नित्यशः ॥ ७ ॥
दाता यज्वा च वीरश्च श्रुतवानतिथिप्रियः ।
अक्रूरः सुषुवे तस्माच्छ्वफल्काद्भूरिदक्षिणः ॥ ८ ॥

उपमद्गु स्तथा मद्गुमदुरश्चारिमेजय ।
आविक्षितस्तथाक्षेप शत्रुघ्नश्चारिमर्द्दन ॥ ६ ॥
धर्मधृग् यतिधर्मा च धर्मोक्षान्धकरुस्तथा ।
आवाहप्रतिवाहो च सुन्दरी च वराङ्गना ॥ १० ॥
अक्रूरेणोग्रसेनाया सुगात्र्या द्विजसत्तमा ।
प्रसेनश्चोपदेवश्च जज्ञाते देववर्चसौ ॥ ११ ॥
चित्रकस्याभवन् पुत्रा पृथुर्विपृथुरेव च ।
अश्वग्रीवोऽश्वबाहुश्च स्वपार्श्वकगवेषणौ ॥ १२ ॥
अरिष्टनेमिरण्वश्च सुधर्मा धर्मभृत्तथा ।
सुबाहुर्बहुबाहुश्च श्रविष्ठाश्रवणे स्त्रियौ ॥ १३ ॥
असिक्न्या जनयामास शूर वै देवमीढुषम् ।
महिष्या जज्ञिरे शूरा भोज्याया पुरुषा दश ॥ १४ ॥
वसुदेवो महाबाहु पूर्वमानकदुन्दुभि ।
जज्ञे यस्य प्रसूतस्य दुन्दुभ्या प्राणदन् दिवि ॥ १५ ॥
आनकाना च सह्राद सुमहानभवद्दिवि ।
पपात पुष्पवर्षश्च शरस्य जनने महान् ॥ १६ ॥
मनुष्यलोके कृत्स्नेऽपि रूपे नास्ति समो भुवि ।
यस्यासीत्पुरुषाग्र्यस्य कान्तिश्चन्द्रमसो यथा ॥ १७ ॥
देवभागस्ततो जज्ञे तथा देवश्रवा पुन ।
अनाधृष्टि कनवको वत्सवानथ गृञ्जम ॥ १८ ॥
श्याम शमाको गण्डूष पञ्च चास्य वराङ्गना ।
पृथुकीर्त्ति पृथा चैव श्रुतदेवा श्रुतश्रवा ॥ १६ ॥

राजाधिदेवी च तथा पञ्चैता वीरमातरः ।
श्रुतश्रवायां चैद्यस्तु शिशुपालोऽभवन्नृपः ॥ २० ॥
हिरण्यकशिपुर्योऽसौ दैत्यराजोऽभवत्पुरा ।
पृथुकीर्त्यां तु सञ्जज्ञे तनयो वृद्धशर्मणः ॥ २१ ॥
करूषाधिपतिर्वीरो दन्तवक्त्रो महाबलः ।
पृथां दुहितरं चक्रे कुन्तिस्तां पाण्डुरावहत् ॥ २२ ॥
यस्यां स धर्मविद्राजा धर्माज्जज्ञे युधिष्ठिरः ।
भीमसेनस्तथा वातादिन्द्राच्चैव धनञ्जयः ॥ २३ ॥
लोकेऽप्रतिरथो वीरः शक्रतुल्यपराक्रमः ।
अनमित्राच्छिनिर्जज्ञे कनिष्ठाद्वृष्णिनन्दनात् ॥ २४ ॥
शैनेयः सत्यकस्तस्माद्युयुधानश्च सात्यकिः ।
उद्धवो देवभागस्य महाभागः सुतोऽभवत् ॥ २५ ॥

असङ्ग्रामेण यो धीरो नावर्त्तत कदाचन ।
रौक्मिणेयो महाबाहुः कनीयान् द्विजसत्तमाः ॥ ३० ॥
वायसानां सहस्राणि य यान्तु पृष्ठतोऽन्वयुः ।
चारुनयोपमोक्ष्यामश्चारुदेष्णहृतानिति ॥ ३१ ॥
तन्त्रिजस्तन्त्रिपालश्च सुतौ कनवकस्य तौ ।
वीरुश्चाश्वहनुश्चैव वीरौ तावथ गृञ्जिमौ ॥ ३२ ॥
श्यामपुत्रः शमीकस्तु शमीको राज्यमावहत् ।
जुगुप्समानो भोजत्वाद्राजसूयमवाप स ॥ ३३ ॥
अजातशत्रुः शत्रूणां जज्ञे तस्य विनाशनः ।
वसुदेवसुतान् वीरान् कीर्त्तयिष्याम्यतः परम् ॥ ३४ ॥
वृष्णेस्त्रिविधमेवन्तु बहुशाख महौजसम् ।
धारयन् विपुलं वंशं नानर्थैरिह युज्यते ॥ ३५ ॥
या पत्न्यो वसुदेवस्य चतुर्दश वराङ्गनाः ।
पौरवी रोहिणी नाम मतिरादिस्तथापरा ॥ ३६ ॥
वैशाखी च तथा भद्रा सुनाम्नी चैव पञ्चमी ।
सहदेवा शान्तिदेवा श्रीदेवी देवरक्षिता ॥ ३७ ॥
वृकदेव्युपदेवी च देवकी चैव सप्तमी ।
सुतनुर्वडवा चैव द्वे एते परिचारिके ॥ ३८ ॥
पौरवी रोहिणी नाम बाह्लिकस्यात्मजाभवत् ।
ज्येष्ठा पत्नी मुनिश्रेष्ठा दयितानकदुन्दुभेः ॥ ३९ ॥
लेभे ज्येष्ठं सुतं रामं शरण्यं शठमेव च ।
दुर्दमं दमनं शुभ्रं पिण्डारकमुशीनरम् ॥ ४० ॥

चित्रा नाम कुमारी च रोहिण्यीतनया नव।
चित्रा सुभद्रेति पुनर्विख्याता मुनिसत्तमा ॥ ४१ ॥
वसुदेवाच्च देवक्यां जज्ञे शौरिर्महायशाः ।
रामाच्च निशठो जज्ञे रेवत्यां दयितः सुतः ॥ ४२ ॥
सुभद्रायां रथी पार्थादभिमन्युरजायत ।
अक्रूरात्काशिकन्यायां सत्यकेतुरजायत ॥ ४३ ॥
वसुदेवस्य भार्यासु महाभागासु सप्तसु ।
ये पुत्रा जज्ञिरे शूराः समस्तांस्तान्निबोधत ॥ ४४ ॥
भोजश्च विजयश्चैव शान्तिदेवासुतावुभौ ।
वृकदेवः सुनामायां गदश्चास्त्वा सुतावुभौ ॥ ४५ ॥
अगावहं महात्मानं वृकदेवी व्यजायत ।
कन्या त्रिगर्त्तराजस्य भार्या वै शिशिरायणे ॥ ४६ ॥
जिज्ञासां पौरुषे चक्रे न चस्कन्दे च पौरुषम् ।
कृष्णायससमप्रख्या वर्षे द्वादशमे तथा ॥ ४७ ॥
मिथ्याभिशस्तो गार्ग्यस्तु मन्युनातिसमीरितः ।
घोषकन्यामुपादाय मैथुनायोपचक्रमे ॥ ४८ ॥
गोपाली चाप्सरास्तस्य गोपस्त्रीवेशधारिणी ।
धारयामास गार्ग्यस्य गर्भं दुर्द्धरमच्युतम् ॥ ४९ ॥
मानुष्यां गर्गभार्यायां नियोगाच्छूलपाणिनः ।
स कालयवनो नाम यज्ञे राजा महाबलः ॥ ५० ॥
वृत्तपूर्व्वार्द्धकायस्तु सिंहसंहननो युवा ।
अपुत्रस्य स राज्ञस्तु ववृधेऽन्तःपुरे शिशुः ॥ ५१ ॥

यवनस्य मुनिश्रेष्ठाः स कालयवनोऽभवत् ।
आयुध्यमानो नृपतिः पर्य्यपृच्छद्द्विजोत्तम् ॥ ५२ ॥
वृष्ण्यन्धककुलं तस्य नारदोऽकथयद्विभुः ।
अक्षौहिण्या तु सैन्यस्य मथुरामभ्ययात्तदा ॥ ५३ ॥
दूतं सम्प्रेषयामास वृष्ण्यन्धकनिवेशनम् ।
ततो वृष्ण्यन्धकाः कृष्णं पुरस्कृत्य महामतिम् ॥ ५४ ॥
समेता मन्त्रयामासुर्यवनस्य भयात्तदा ।
कृत्वा विनिश्चयं सर्व्वे पलायनमरोचयन् ॥ ५५ ॥
विहाय मथुरां रम्यां मानयन्तः पिनाकिनम् ।
कुशस्थलीं द्वारवतीं निवेशयितुमीप्सवः ॥ ५६ ॥
इति कृष्णस्य जन्मेदं यः शुचिर्नियतेन्द्रियः ।
पर्व्वसु श्रावयेद्विद्वाननृणः स सुखी भवेत् ॥ ५७ ॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे कृष्णजन्मानुकीर्त्तनं
नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः ।

वृष्णिवंशवर्णनम् ।

लोमहर्षण उवाच ।

क्रोष्टारयामभवन् पुत्रो वृजिनीवान्महायशाः ।
वार्जिनीवतमिच्छन्ति स्वाहिं स्वाहाकृता वरम् ॥ १ ॥

स्वाहिपुत्रोऽभवद्राजा उषद्गुर्वदतां वरः ।
महाक्रतुभिरीजे यो विविधैर्भूरिदक्षिणैः ॥ २ ॥
ततः प्रसूतिमिच्छन् वै उषद्गुःसोऽग्र्यमात्मजम् ।
जज्ञे चित्ररथस्तस्य पुत्रः कर्मभिरन्वितः ॥ ३ ॥
आसीच्चैत्ररथिर्वीरो यज्वा विपुलदक्षिणः ।
शशबिन्दुः परं वृत्तं राजर्षीणामनुष्ठितः ॥ ४ ॥
पृथुश्रवाः पृथुयशा राजासीच्छाशबिन्दवः ।
शंसन्ति च पुराणज्ञाः पार्थश्रवसमन्तरम् ॥ ५ ॥
अन्तरस्य सुयज्ञस्तु सुयज्ञतनयोऽभवत् ।
उषतो यज्ञमखिलं स्वधर्मे च कृतादरः ॥ ६ ॥
शिनेयुरभवत् पुत्र उषतः शत्रुतापनः ।
मरुत्तस्तस्य तनयो राजर्षिरभवन्नृपः ॥ ७ ॥
मरुतोऽलभत ज्येष्ठं सुतं कम्बलबर्हिषम् ।
चचार विपुलं धर्ममम्षात् प्रेत्यभागपि ॥ ८ ॥
स सत् प्रसूतिमिच्छन् वै सुतं कम्बलबर्हिषः ।
बभूव रुक्मकवचः शतप्रसवतः सुतः ॥ ९ ॥
निहत्य रुक्मकवचः शतं कवचिनां रणे ।
धन्विनां निशितैर्बाणैरवाप श्रियमुत्तमाम् ॥ १० ॥
जज्ञे च रुक्मकवचात् पराजित्परवीरहा ।
जज्ञिरे पञ्च पुत्रास्तु महावीर्याः पराजिताः ॥ ११ ॥
रुक्मेषुः पृथुरुक्मश्च ज्यामघः पालितो हरिः ।
पालितं च हरिं चैव विदेहेभ्यः पिता ददौ ॥ १२ ॥

रुक्मेषुरभवद्राजा पृथुरुक्मस्य संश्रयात् ।
ताभ्यां प्रव्राजितो राजा ज्यामघोऽवसदाश्रमे ॥ १३ ॥
प्रशान्तश्च तदा राजा ब्राह्मणैश्चैव बोधितः ।
जगाम धनुरादाय देशमन्यं ध्वजी रथी ॥ १४ ॥
नर्मदाकूलमेकाकी मेखलां मृत्तिकावतीम् ।
ऋक्षवन्तं गिरिं जित्वा शुक्तिमत्यामुवास सः ॥ १५ ॥
ज्यामघस्याभवद्भार्य्या शैब्या बलवती सती ।
अपुत्रोऽपि स राजा वै नान्यां भार्य्यामविन्दत ॥ १६ ॥
तस्यासीद्विजयो युद्धे तत्र कन्यामवाप सः ।
भार्य्यामुवाच सन्त्रस्तः स्नुषेति स जनेश्वर ॥ १७ ॥
एतच्छ्रुत्वाब्रवीद्देवी कस्य देव स्नुषेति वै ।
अब्रवीत्तदुपश्रुत्य ज्यामघो राजसत्तमः ॥ १८ ॥

राजोवाच ।

यस्ते जनिष्यते पुत्रस्तस्य भार्य्योपपादिता ॥ १९ ॥

लोमहर्षण उवाच ।

उग्रेण तपसा तस्याः कन्याया सा व्यजायत ।
पुत्रं विदर्भं सुभगा शैब्या परिणता सती ॥ २० ॥
राजपुत्र्यांतु विद्वांसौ स्नुषायां क्रथकैशिकौ ।
पश्चाद्विदर्भोऽजनयच्छूरौ रणविशारदौ ॥ २१ ॥
भीमो विदर्भस्य सुतः कुन्तिस्तस्यात्मजोऽभवत् ।
कुन्तेर्धृष्टः सुतो जज्ञे रणधृष्टः प्रतापवान् ॥ २२ ॥

धृष्टस्य जज्ञिरे शूरास्त्रय परमधार्मिकाः ।
आवन्तश्च दशार्हश्च बली विषहरश्च सः ॥ २३ ॥
दशार्हस्य सुतो व्योमा व्योम्नो जीमूत उच्यते ।
जीमूतपुत्रो विकृतिस्तस्य भीमरथः स्मृतः ॥ २४ ॥
अथ भीमरथस्यासीत् पुत्रो नवरथस्तथा ।
तस्य चासीद्दशरथः शकुनिस्तस्य चात्मजः ॥ २५ ॥
तस्मात्करम्भः कारम्भिर्देवरातोऽभवन्नृपः ।
देवक्षत्रोऽभवत्तस्य वृद्धक्षत्रो महायशाः ॥ २६ ॥
देवगर्भसमो जज्ञे देवक्षत्रस्य नन्दनः ।
मधूनां वंशकृद्राजा मधुर्मधुरवागपि ॥ २७ ॥
मधोर्जज्ञेऽथ वैदर्भ्यां पुरुद्वान् पुरुषोत्तमः ।
ऐक्ष्वाकी चाभवद्भार्या मधोस्तस्यां व्यजायत ॥ २८ ॥
सत्वान् सत्वगुणोपेतः सात्वतां कीर्तिवर्द्धनः ।
इमां विसृष्टिं विज्ञाय ज्यामघस्य महात्मनः ॥
युज्यते परमप्रीत्या प्रजावांश्च भवेत् सदा ॥ २९ ॥
लोमहर्षण उवाच ।
सत्वतः सत्वसम्पन्नान् कौशल्या सुषुवे सुतान् ।
भजिनं भजमानं च दिव्यं देवावृधं नृपम् ॥ ३० ॥
अन्धकं च महाबाहुं वृष्णिं च यदुनन्दनम् ।
तेषां विसर्गाश्चत्वारो विस्तरेणेह कीर्तिताः ॥ ३१ ॥
भजमानस्य सृञ्जयौ बाह्यकावोपबाह्यका ।
आस्तां भार्ये तयोस्तस्माज्जज्ञिरे बहवः सुताः ॥ ३२ ॥

क्रिमिश्च क्रमणश्चैव धृष्टः शूरः पुरञ्जयः ।
एते बाह्यकसृञ्जय्या मजमानाद्विजज्ञिरे ॥ ३३ ॥
अयुताजित् सहस्राजिच्छताजित्वथ दासकः ।
उपबाह्यकसृञ्जय्या भजमानाद्विजज्ञिरे ॥ ३४ ॥
यज्वा देवावृधो राजा चचार विपुलं तपः ।
पुत्रः सर्व्वगुणोपेतो मम स्यादिति निश्चितम् ॥ ३५ ॥
संयुज्यमानस्तपसा पर्णाशाया जलं स्पृशन् ।
सदोपस्पृशतस्तस्य चकार प्रियमापगा ॥ ३६ ॥
चिन्तयाभिपरीता सा न जगामैव निश्चयम् ।
कल्याणत्वान्नरपतेस्तस्या सा निम्नगोत्तमा ॥ ३७ ॥
नाध्यगच्छत्तु तां नारीं यस्यामेवं विधः सुतः ।
भवेत्तस्मात् स्वयं गत्वा भवाम्यस्य सहानुगा ॥ ३८ ॥
अथ भूत्वा कुमारी सा निभ्रती परमं वपुः ।
वरयामास नृपतिं तामियेष च स प्रभुः ॥ ३९ ॥
तस्यामाधत्त गर्भं स तेजस्विनमुदारधीः ।
अथ सा दशमे मासि सुषुवे सरितां वरा ॥ ४० ॥
पुत्रं सर्व्वगुणोपेतं बभ्रुं देवावृधात् द्विजाः ।
अत्र वंशे पुराणज्ञा गायन्तीति परिश्रुतम् ॥ ४१ ॥
गुणान् देवावृधस्यापि कीर्त्तयन्तो महात्मनः ।
यथैवाग्रे तथा दूरात्पश्यामस्तावदन्तिकात् ॥ ४२ ॥
बभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः ।
षष्टिश्च षट् च पुरुषाः सहस्राणि च सप्त च ॥ ४३ ॥

एतेऽमृतत्वं प्राप्ता वै बभ्रोर्देवावृधादपि ।
यज्वा दानपतिर्धीमान् ब्रह्मण्यः सुदृढायुधः ॥ ४४ ॥
तस्यान्ववायः सुमहान्भोजा ये मार्त्तिकावताः ।
अन्धकात्काश्यदुहिता चतुरोऽलभतात्मजान् ॥ ४५ ॥
कुकुरं भजमानं च समकं बलबर्हिषम् ।
कुकुरस्य सुतो वृष्णिर्वृष्णेस्तु तनयस्तथा ॥ ४६ ॥
कपोतरोमा तस्याथ तित्तिरिस्तनयोऽभवत् ।
जज्ञे पुनर्वसुस्तस्मादभिजिच्च पुनर्वसोः ॥ ४७ ॥
तथा वै पुत्रमिथुनं बभुवाभिजितः किल ।
आहुकः आहुकश्चैव ख्यातौ ख्यातिमतां वरौ ॥ ४८ ॥
इमां चोदाहरन्त्यत्र गाथां प्रति तमाहुकम् ।
श्वेतेन परिवारेण किशोरप्रतिमोमहान् ॥ ४९ ॥
अशीतिवर्मणा युक्त आहुकः प्रथमं व्रजेत् ।
नापुत्रवानशतदो नासहस्रशतायुधः ॥ ५० ॥
नाशुद्धकर्मा नायज्वा यो भोजमभितो व्रजेत् ।
पूर्वस्यां दिशि नागानां भोजस्य प्रययुः किल ॥ ५१ ॥
सोमात्सङ्गानुकर्षाणां ध्वजिनां सवरूथिनाम् ।
रथानां मेघघोषाणां सहस्राणि दशैव तु ॥ ५२ ॥
रौप्यकाञ्चनकक्षाणां सहस्राण्येकविंशतिः ।
तावत्येव सहस्राणि उत्तरस्यां तथा दिशि ॥ ५३ ॥
आभूमिपाला भोजास्तु सन्ति ज्याकिङ्किणीकिनः ।
आहुः किं चाप्यवन्तिभ्यः स्वसारं ददुरन्धकाः ॥ ५४ ॥

आहुकस्य तु काश्यायां द्वौ पुत्रौ सम्बभूवतुः।
देवकस्याभवन् पुत्राश्चत्वारस्त्रिदशोपमाः ॥ ५५ ॥
देववानुपदेवश्च सदेवो देवरक्षितः ॥ ५६ ॥
कुमार्यः सप्त चास्याथ वसुदेवाय ता ददौ।
देवकी शान्तिदेवा च सुदेवा देवरक्षिता ॥ ५७ ॥
वृकदेव्युपदेवी च सुनाम्नी चैव सप्तमी।
नवोग्रसेनस्य सुतास्तेषां कंसस्तु पूर्वजः ॥ ५८ ॥
न्यग्रोधश्च सुनामा च तथा कङ्कः सुभूषणः।
राष्ट्रपालोऽथ सुतनुरनाधृष्टिस्तु पुष्टिमान् ॥ ५९ ॥
तेषां स्वसारः पञ्चासन् कंसा कंसवती तथा।
सुतनू राष्ट्रपाली च कङ्का चैव वराङ्गना ॥ ६० ॥
उग्रसेन सहापत्यो व्याख्यातः कुकुरोद्भवः।
कुकुराणामिमं वंशं धारयन्नमितौजसाम् ॥ ६१ ॥
आत्मनो विपुलं वंशं प्रजावानाप्नुयान्नरः ॥ ६२ ॥

इति श्रीब्राह्म महापुराणे वृष्णिवंशनिरूपणं नाम
पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोड़शोऽध्यायः ।

तत्रादौ सत्राजिदुपाख्यानवर्णनम् ।

लोमहर्षण उवाच ।

भजमानस्य पुत्रोऽथ रथमुख्यो विदूरथ ।
राजाधिदेव शूरस्तु विदूरथसुतोऽभवत् ॥ १ ॥
राजाधिदेवस्य सुता जज्ञिरे वीर्य्यवत्तरा ।
दत्तातिदत्तौ बलिनौ शोणाश्व श्वेतवाहन ॥ २ ॥
शमी च दण्डशर्म्मा च दन्तशत्रुश्च शत्रुजित् ।
श्रवणा च श्रविष्ठा च स्वसारौ सम्बभूवतु ॥ ३ ॥
शमिपुत्र प्रतिक्षत्र प्रतिक्षत्रस्य चात्मज ।
स्वयम्भोज स्वयम्भोजाद्धृदिक सम्बभूव ह ॥ ४ ॥
तस्य पुत्रा बभूवुर्हि सर्व्वे भीमपराक्रमा ।
कृतवर्म्माग्रजस्तेषा शतधन्वा तु मध्यम ॥ ५ ॥
देवान्तश्च नरान्तश्च भिषग्वैतरणश्च य ।
सुदान्तश्चातिदान्तश्च निकाश्य कामदम्भक ॥ ६ ॥
देवस्तस्याभवत् पुत्रो विद्वान् कम्बलबर्हिष ।
असमौजा सुतस्तस्य नासमौजाश्च तावुभौ ॥ ७ ॥
अजातपुत्राय सुतान् प्रददावसमौजसे ।
सुदंष्ट्रश्च सुचारुश्च कृष्ण इत्यन्धका स्मृता ॥ ८ ॥
गान्धारी चैव माद्री च क्रोष्टुभार्य्ये बभूवतु ।
गान्धारी जनयामास अनमित्र महाबलम् ॥ ९ ॥

माद्री युधाजित पुत्र ततो वै देवमीढुषम् ।
अनमित्रममित्राणां जेतारमपराजितम् ॥ १० ॥
अनमित्रसुतो निघ्नो निघ्नतो द्वौ बभूवतु ।
प्रसेनश्चाथ सत्राजिच्छत्रुसेनाजितावुभौ ॥ ११ ॥
प्रसेनो द्वारवत्या तु निवसन् यै महामणिम् ।
दिव्य स्यमन्तक नाम स सूर्य्यादुपलब्धवान् ॥ १२ ॥
तस्य सत्राजित सूर्य्य यथा प्राणसमोऽभवत् ।
स कदाचिन्निशापाये रथेन रथिना वरः ॥ १३ ॥
तोयकूलमप स्रष्टुमुपस्थातु ययौ रविम् ।
तस्योपतिष्ठत सूर्य्य विवस्वानग्रत स्थित ॥ १४ ॥
विस्पष्टमूर्त्तिमगवान्स्तेजोमण्डलवान् विभु ।
अथ राजा विवस्वन्तमुवाच स्थितमग्रत ॥ १५ ॥
यथैव व्योम्नि पश्यामि सदा त्वा ज्योतिषा पते ।
तेजोमण्डलिन देव तथैव पुरत स्थितम् ॥ १६ ॥
को विशेषोऽस्ति मे त्वत्त सख्येनोपगतस्य वै ।
एतच्छ्रुत्वा तु भगवान्मणिरत्न स्यमन्तकम् ॥ १७ ॥
स्वकण्ठादवमुच्याथ एकान्ते न्यस्तवान् विभु ।
ततो विग्रहवन्त त ददर्श नृपतिस्तदा ॥ १८ ॥
प्रीतिमानथ त दृष्ट्वा मुहूर्त्त कृतवान् कथाम् ।
तमभिप्रस्थित भूयो विवस्वन्त स सत्राजित् ॥ १९ ॥
लोकान् भासयसे सर्व्वान् येन त्व सतत प्रभो ।
तदेतन्मणिरत्न मे भगवन् दातुमर्हसि ॥ २० ॥

ततः स्यमन्तकमणिं दत्तवान् भास्करस्तदा ।
स तमाबध्य नगरीं प्रविवेश महीपतिः ॥ २१ ॥
तं जनाः पर्यधावन्तः सूर्योऽयं गच्छतीति ह ।
स्वां पुरीं स विसिस्माय राजा त्वन्तःपुरं तथा ॥ २२ ॥
तं प्रसेनजितं दिव्यं मणिरत्नं स्यमन्तकम् ।
ददौ भ्रात्रे नरपतिः प्रेम्णा सत्राजिदुत्तम् ॥ २३ ॥
स मणिं स्यन्दते रुक्मं वृष्ण्यन्धकनिवेशने ।
कालवर्षी च पर्जन्यो न च व्याधिभयं ह्यभूत् ॥ २४ ॥
लिप्सां चक्रे प्रसेनस्य मणिरत्ने स्यमन्तके ।
गोविन्दो न च तं लेभे शक्तोऽपि न जहार सः ॥ २५ ॥
कदाचिन्मृगयां यातः प्रसेनस्तेन भूषितः ।
स्यमन्तककृते सिंहाद्वधं प्राप वनेचरात् ॥ २६ ॥
अथ सिंहं प्रधावन्तमृक्षराजो महाबलः ।
निहत्य मणिरत्नं तदादाय प्राविशद्गुहाम् ॥ २७ ॥
ततो वृष्ण्यन्धकाः कृष्णं प्रसेनवधकारणात् ।
प्रार्थनां तां मणेर्बुद्ध्वा सर्वे एव शशङ्किरे ॥ २८ ॥
स शङ्क्यमानो धर्मात्मा अकारी तस्य कर्मणः ।
आहरिष्ये मणिमिति प्रतिज्ञाय वनं ययौ ॥ २९ ॥
यत्र प्रसेनो मृगयां व्याचरत्तत्र चाप्यथ ।
प्रसेनस्य पदं गृह्य पुरुषैराप्तकारिभिः ॥ ३० ॥
ऋक्षवन्तं गिरिवरं विन्ध्यं च गिरिमुत्तमम् ।
अन्वेषयन् परिश्रान्तः स ददर्श महामनाः ॥ ३१ ॥

साश्वं हतं प्रसेनं तु नाविन्दत च तन्मणिम् ।
अथ सिंहः प्रसेनस्य शरीरस्याविदूरतः ॥ ३२ ॥
ऋक्षेण निहतो दृष्टः पदैरृक्षस्तु सूचितः ।
पदैस्तैरन्वियायाथ गुहामृक्षस्य माधवः ॥ ३३ ॥
स हि ऋक्षबिले वाणीं शुश्राव प्रमदेरिताम् ।
धात्र्या कुमारमादाय सुतं जाम्बवतो द्विजाः ॥ ३४ ॥
क्रीडयन्त्या च मणिना मा रोदीरित्यथेरिताम् ।

धात्र्युवाच ।

सिंहः प्रसेनमवधीत् सिंहो जाम्बवता हतः ।
सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः ॥ ३५ ॥
व्यक्तिमस्य शब्दस्य तूर्णमेव बिलं ययौ ।
प्रविश्य तत्र भगवांस्तदृक्षबिलमञ्जसा ॥ ३६ ॥
स्थापयित्वा बिलद्वारे यदूँल्लाङ्गलिना सह ।
शार्ङ्गधन्वा बिलस्थं तु जाम्बवन्तं ददर्श सः ॥ ३७ ॥
युयुधे वासुदेवस्तु बिले जाम्बवता सह ।
बाहुभ्यामेव गोविन्दो दिवसानेकविंशतिम् ॥ ३८ ॥
प्रविष्टेऽथ बिले कृष्णे बलदेवपुरःसराः ।
पुरीं द्वारवतीमेत्य हतं कृष्णं न्यवेदयन् ॥ ३९ ॥
वासुदेवोऽपि निर्जित्य जाम्बवन्तं महाबलम् ।
लेभे जाम्बवतीं कन्यामृक्षराजस्य सम्मताम् ॥ ४० ॥
मणिं स्यमन्तकं चैव जग्राहात्मविशुद्धये ।
अनुनीयर्क्षराजं तु निर्ययौ च ततो बिलात् ॥ ४१ ॥

उपायाद्द्वारकां कृष्णः सविनीतैः पुरःसरैः ।
एवं स मणिराहृत्य विशोध्यात्मानमच्युतः ॥ ४२ ॥
ददौ सत्राजिते तं वै सत्वसात्वतसंसदि ।
एवं मिथ्याभिशस्तेन कृष्णेनामित्रघातिना ॥ ४३ ॥
आत्मा विशोधितः पापाद्विनिर्जित्य स्यमन्तकम् ।
सत्राजितो दश त्वासन् भार्य्यास्तासां शतं सुताः ॥ ४४ ॥
ख्यातिमन्तस्त्रयस्तेषामङ्गकारस्तु पूर्व्वजः ।
वीरो वातपतिश्चैव वसुमेधस्तथैव च ॥ ४५ ॥
कुमार्य्यश्चापि तिस्रो वै दिक्षु ख्याता द्विजोत्तमाः ।
सत्यभामोत्तमा तासां व्रतिनी च दृढव्रता ॥ ४६ ॥
तथा प्रस्वापिनी चैव भार्य्याः कृष्णाय ता ददौ ।
सभार्य्यौ भङ्गकारिस्तु नावेयश्च नरोत्तमौ ॥ ४७ ॥
जज्ञाते गुणसम्पन्नौ विश्रुतौ रूपसम्पदा ।
माद्र्याः पुत्रोऽथ जज्ञेऽथ वृष्णिपुत्रो युधाजितः ॥ ४८ ॥
जज्ञाते तनयौ वृष्णेः श्वफल्कश्चित्रकस्तथा ।
श्वफल्कः काशिराजस्य सुतां भार्य्यामविन्दत ॥ ४९ ॥
गान्दिनीं नाम तस्याश्च गाः सदा प्रददौ पिता ।
तस्यां जज्ञे महाबाहुः श्रुतवानतिथिप्रियः ॥ ५० ॥
अक्रूरोऽथ महाभागो जज्ञे विपुलदक्षिणः ।
उपमद्गुस्तथा मद्गुर्म्मृदरश्चारिमर्द्दनः ॥ ५१ ॥
आरिक्षेपस्तथोपेक्षः शत्रुहा चारिमेजयः ।
धर्म्मभृच्चापि धर्म्मा च गृध्रमोजान्धकस्तथा ॥ ५२ ॥

आवाहप्रतिवाहौ च सुन्दरी च वराङ्गना ॥ ५३ ॥
विश्रुताश्वस्य महिषी कन्या चास्य वसुन्धरा ॥ ५४ ॥
रूपयौवनसम्पन्ना सर्व्वसत्त्वमनोहरा ।
अक्रूरेणोग्रसेनायां सुतौ वै कुलनन्दनौ ॥ ५५ ॥
वसुदेवश्चोपदेवश्च जज्ञाते देववर्च्चसौ ।
चित्रकस्याभवन् पुत्राः पृथुर्व्विपृथुरेव च ॥ ५६ ॥
अश्वग्रीवोऽश्वबाहुश्च सुपार्श्वकगवेषणौ ।
अरिष्टनेमिश्च सुता धर्म्मो धर्म्मभृदेव च ॥ ५७ ॥
सुबाहुर्बहुबाहुश्च श्रविष्ठाश्रवणे स्त्रियौ ।
इमां मिथ्याभिशस्तिं यः कृष्णस्य समुदाहृतम् ॥ ५८ ॥
वेद मिथ्याभिशापास्तं न स्पृशन्ति कदाचन ॥ ५९ ॥

इति स्यमन्तकप्रत्यानयननिरूपणं नाम
षोड़शोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः ।

स्यमन्तकोपाख्यानवर्णनम्

॥ ॰ ॥ लोमहर्षण उवाच ।

यत्तु सत्राजिते कृष्णो मणिरत्नं स्यमन्तकम् ।
ददावद्दाप्यद्बभ्रुर्भोजेन शतधन्वना ॥ १ ॥

सदा हि प्रार्थयामास सत्यभामामनिन्दिताम्।
अक्रूरोऽन्तरमन्विष्यन्मणिं चैव स्यमन्तकम्॥ २॥
सत्राजितं ततो हत्वा शतधन्वा महाबलः।
रात्रौ तं मणिमादाय ततोऽक्रूराय दत्तवान्॥ ३॥
अक्रूरस्तु तदा विप्रा रत्नमादाय चोत्तमम्।
समयं कारयाञ्चक्रे नावेद्योऽहं त्वयेत्युत॥ ४॥
वयमभ्युपपत्स्यामः कृष्णेन त्वां प्रधर्षितम्।
ममाद्य द्वारका सर्वा वशे तिष्ठत्यसंशयम्॥ ५॥
हते पितरि दुःखार्त्ता सत्यभामा मनस्विनी।
प्रययौ रथमारुह्य नगरं वारणावतम्॥ ६॥
सत्यभामा तु तद्वृत्तं भोजस्य शतधन्वनः।
भर्त्तुर्निवेद्य दुःखार्त्ता पार्श्वस्थाश्रूण्यवर्त्तयत्॥ ७॥
पाण्डवानां च दग्धानां हरिः कृत्वोदकक्रियाम्।
कुल्यार्थे चापि पाण्डूनां न्ययोजयत सात्यकिम्॥ ८॥
ततस्त्वरितमागम्य द्वारकां मधुसूदनः।
पूर्वजं हलिनं श्रीमानिदं वचनमब्रवीत्॥ ९॥

श्रीकृष्ण उवाच।

हतः प्रसेनः सिंहेन सत्राजिच्छतधन्वना।
स्यमन्तकस्तु मद्गामी तस्य प्रभुरहं विभो॥ १०॥
तदारोह रथं शीघ्रं भोजं हत्वा महारथम्।
स्यमन्तको महाबाहो ह्यस्माकं स भविष्यति॥ ११॥

लोमहर्षण उवाच।

तत प्रवृत्ते युद्ध तुमुल भोजकृष्णयो ।
शतधन्वा ततोऽक्रूर सर्वतोदिशमैक्षत ॥ १२ ॥
सरद्धौ तावुभौ तत्र दृष्ट्वा भोजजनार्दनौ ।
शक्तोऽपि शापाद्धार्दिक्यमक्रूरो नान्वपद्यत ॥ १३ ॥
अपयाने ततो बुद्धि भोजश्चक्रे भयार्दित ।
योजनाना शत साग्र हृदया प्रत्यपद्यत ॥ १४ ॥
विख्याता हृदया नाम शतयोजनगामिनी ।
भोजस्य वडवा विप्रा यया कृष्णमयोधयत् ॥ १५ ॥
क्षीणा जवेन हृदयामध्वन शतयोजने ।
दृष्ट्वा रथस्य स्वा वृद्धि शतधन्वानमर्दयत् ॥ १६ ॥
ततस्तस्या हतायास्तु श्रमाद् खेदाच्च सो द्विजा ।
समुत्पेतुरथ प्राणा कृष्णो राममथाब्रवीत् ॥ १७ ॥
तिष्ठेह त्व महाबाहो दृष्टदोषा हता मया ।
पद्भ्या गत्वा हरिष्यामि मणिरत्न स्यमन्तकम् ॥ १८ ॥
पद्भ्यामेव ततो गत्वा शतधन्वानमच्युत ।
मिथिलामभितो विप्रा जघान परमास्त्रवित् ॥ १९ ॥
स्यमन्तक च नापश्यद्धत्वा भोज महाबलम् ।
निवृत्त चाब्रवीत् कृष्ण मणि देहीति लाङ्गली ॥ २० ॥
नास्तीति कृष्णश्चोवाच ततो रामो रुषान्वित ।
धिक्शब्दपूर्वमसकृत् प्रत्युवाच जनार्दनम् ॥ २१ ॥

बलराम उवाच ।

भ्रातृत्वान्मर्षयाम्येष स्वस्ति तेऽस्तु व्रजाम्यहम् ।
कृत्यं न मे द्वारकाया न त्वया न च वृष्णिभिः ॥ २२ ॥

प्रविवेश ततो रामो मिथिलामरिमर्द्दनः ।
सर्व्वकामैरुपहृतैर्मिथिलेनाभिपूजितः ॥ २३ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु बभ्रुर्मतिमतां वरः ।
नानारूपान् क्रतून् सर्व्वानाजहार निरर्गलान् ॥ २४ ॥

दीक्षामयं स कवचं रक्षार्थं प्रविवेश ह ।
स्यमन्तककृते प्राज्ञो गान्दीपुत्रो महायशाः ॥ २५ ॥

अथ रत्नानि चान्यानि धनानि विविधानि च ।
षष्टिं वर्षाणि धर्म्मात्मा यज्ञेष्वेव न्ययोजयत् ॥ २६ ॥

अक्रूरयज्ञा इति ते ख्यातास्तस्य महात्मनः ।
बह्वन्नदक्षिणाः सर्व्वे सर्व्वकामप्रदायिनः ॥ २७ ॥

अथ दुर्योधनो राजा गत्वा स मिथिलां प्रभुः ।
गदाशिक्षां ततो दिव्यां बलदेवादवाप्तवान् ॥ २८ ॥

प्रसाद्य ततो रामो वृष्ण्यन्धकमहारथैः ।
आनीतो द्वारकामेव कृष्णेन च महात्मना ॥ २९ ॥

अक्रूरश्चान्धकैः सार्द्धमायातः पुरुषर्षभः ।
हत्वा सत्राजितं सुप्तं सहबन्धुं महाबलः ॥ ३० ॥

ज्ञातिभेदभयात्कृष्णस्तमुपेक्षितवांस्तदा ।
अपयाते तदाक्रूरे नावर्षत्पाकशासनः ॥ ३१ ॥

अष्टादशोऽध्यायः ।

तत्रादौ भुवनकोशद्वीपवर्णनम्

मुनय ऊचुः ।

अहो सुमहदाख्यानं भवता परिकीर्त्तितम् ।
भारतानां च सर्व्वेषां पार्थिवानां तथैव च ॥ १ ॥
देवानां दानवानां च गन्धर्व्वोरगरक्षसाम् ।
दैत्यानामथ सिद्धानां गुह्यकानां तथैव च ॥ २ ॥
अत्यद्भुतानि कर्म्माणि विक्रमा धर्म्मनिश्चयाः ।
विचित्राश्च कथा दिव्या जन्म चाग्र्यमनुत्तमम् ॥ ३ ॥
सृष्टिः प्रजापतेः सम्यक्त्वया प्रोक्ता महामते ।
प्रजापतीनां सर्व्वेषां गुह्यकाप्सरसांतथा ॥ ४ ॥
स्थावरं जङ्गमं सर्व्वमुत्पन्नं विविधं जगत् ।
त्वया प्रोक्तं महाभाग श्रुतं चैतन्मनोहरम् ॥ ५ ॥
कथितं पुण्यफलदं पुराणं श्लक्ष्णया गिरा ।
मनःकर्णसुखं सम्यक् प्रीणात्यमृतसम्मितम् ॥ ६ ॥
इदानीं श्रोतुमिच्छामः सकलं मण्डलं भुवः ।
वक्तुमर्हसि सर्व्वज्ञ परं कौतूहलं हि नः ॥ ७ ॥
यावन्तः सागरा द्वीपास्तथा वर्षाणि पर्व्वताः ।
वनानि सरितः पुण्यदेवादीनां महामते ॥ ८ ॥
यत्प्रमाणमिदं सर्व्वं यदाधारं यदात्मकम् ।
संस्थानमस्य जगतो यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ ९ ॥

लोमहर्षण उवाच।

मुनयः श्रूयतामेतत् संक्षेपाद्वदतो मम।
नास्य वर्षशतेनापि वक्तुं शक्योऽतिविस्तरः॥ १०॥
जम्बूप्लक्षाह्वयौ द्वीपौ शाल्मलश्चापरो द्विजाः।
कुशः क्रौञ्चस्तथा शाकः पुष्करश्चैव सप्तमः॥ ११॥
एते द्वीपाः समुद्रैस्तु सप्तसप्तभिरावृताः।
लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलैः समम्॥ १२॥
जम्बूद्वीपः समस्तानामेतेषां मध्यसंस्थितः।
तस्यापि मध्ये विप्रेन्द्रा मेरुः कनकपर्वतः॥ १३॥
चतुरशीतिसाहस्रैर्योजनैस्तस्य चोच्छ्रयः।
प्रविष्टः षोडशाधस्ताद्द्वात्रिंशन्मूर्ध्नि विस्तृतः॥ १४॥
मूले षोडशसाहस्रैर्विस्तारस्तस्य सर्वतः।
भूपद्मस्यास्य शैलोऽसौ कर्णिकाकारसंस्थितः॥ १५॥
हिमवान् हेमकूटश्च निषधस्तस्य दक्षिणे।
नीलः श्वेतश्च शृङ्गी च उत्तरे वर्षपर्वताः॥ १६॥
लक्षप्रमाणौ द्वौ मध्ये दशहीनास्तथापरे।
सहस्रद्वितयोच्छ्रायास्तावद्विस्तारिणश्च ते॥ १७॥
भारतं प्रथमं वर्षं ततः किंपुरुषं स्मृतम्।
हरिवर्षं तथैवान्यन्मेरोर्दक्षिणतो द्विजाः॥ १८॥
रम्यकं चोत्तरं वर्षं तस्यैव तु हिरण्मयम्।
उत्तराः कुरवश्चैव यथा वै भारतं तथा॥ १९॥

नवसाहस्रमेकैकमेतेषां द्विजसत्तमाः ।
इलावृतं च तन्मध्ये सौवर्णो मेरुरुच्छ्रितः ॥ २० ॥
मेरोश्चतुर्दिशं तत्र नवसाहस्रविस्तृतम् ।
इलावृतं महाभागाश्चत्वारश्चात्र पर्व्वताः ॥ २१ ॥
विष्कम्भा विततां मेरोर्योजनायुतविस्तृताः ।
पूर्व्वेण मन्दरो नाम दक्षिणे गन्धमादनः ॥ २२ ॥
विपुलः पश्चिमे पार्श्वे सुपार्श्वश्चोत्तरे स्थितः ।
कदम्बस्तेषु जम्बूश्च पिप्पलो वट एव च ॥ २३ ॥
एकादशशतायामाः पादपा गिरिकेतवः ।
जम्बूद्वीपस्य सा जम्बूर्नामहेतुर्द्विजोत्तमाः ॥ २४ ॥
महागजप्रमाणानि जम्ब्वास्तस्याः फलानि वै ।
पतन्ति भूभृतः पृष्ठे शीर्यमाणानि सर्व्वतः ॥ २५ ॥
रसेन तेषां विख्याता तत्र जम्बूनदीति वै ।
न खेदो न च दौर्गन्ध्यं न जरा नेन्द्रियक्षयः ॥ २६ ॥
तत्पानस्वस्थमनसां जनानां तत्र जायते ॥ २७ ॥
तीरमृत्तद्रसं प्राप्य सुखवायुविशोषिता ।
जाम्बूनदाख्यं भवति सुवर्णं सिद्धभूषणम् ॥ २८ ॥
भद्राश्वं पूर्व्वतो मेरोः केतुमालञ्च पश्चिमे ।
वर्षे द्वे तु मुनिश्रेष्ठास्तयोर्मध्ये त्विलावृतम् ॥ २९ ॥
वनं चैत्ररथं पूर्व्वे दक्षिणे गन्धमादनम् ।
वैभ्राजं पश्चिमे तद्वदुत्तरे नन्दनं स्मृतम् ॥ ३० ॥
अरुणोदं महाभद्रमसितोदं समानसम् ।
सरांस्येतानि चत्वारि देवभोग्यानि सर्व्वदा ॥ ३१ ॥

शीताम्भश्च कुमुन्दश्च कुररी माल्यवांस्तथा ।
वैकङ्कप्रमुखा मेरोः पूर्वतः केसराचलाः ॥ ३२ ॥
त्रिकूटः शिशिरश्चैव पतङ्गो रुचकस्तथा ।
निषधाद्या दक्षिणतस्तस्य केसरपर्वताः ॥ ३३ ॥
शिखिवासः सवैडूर्यः कपिलो गन्धमादनः ।
जारुधिप्रमुखास्तद्वत् पश्चिमे केसराचलाः ॥ ३४ ॥
मेरोरनन्तरास्ते च जठरादिष्ववस्थिताः ।
शङ्खकूटोऽथ ऋषभो हंसो नागस्तथापरः ॥ ३५ ॥
कालञ्जराद्याश्च तथा उत्तरे केसराचलाः ।
चतुर्दश सहस्राणि योजनानां महापुरी ॥ ३६ ॥
मेरोरुपरि मैत्रेय ब्रह्मणः कथिता दिवि ।
तस्याः समन्ततश्चाष्टौ दिशासु विदिशासु च ॥ ३७ ॥
इन्द्रादिलोकपालानां प्रख्याताः प्रवराः पुरः ।
विष्णुपादविनिष्क्रान्ता प्लावयन्तीन्दुमण्डलम् ॥ ३८ ॥
समन्ताद्ब्रह्मणः पुर्यां गङ्गा पतति वै दिवि ।
सा तत्र पतिता दिक्षु चतुर्धा प्रत्यपद्यत ॥ ३९ ॥
सीता चालकनन्दा च चक्षुर्भद्रा च वै क्रमात् ।
पूर्वेण सीता शैलात्तु शैलं यात्यन्तरिक्षगा ॥ ४० ॥
ततश्च पूर्ववर्षेण भद्राश्वेनैति सार्णवम् ।
तथैवालकनन्दा च दक्षिणेनैत्य भारतम् ॥ ४१ ॥
प्रयाति सागरं भूत्वा सप्तभेदा द्विजोत्तम ।
चक्षुश्च पश्चिमगिरीनतीत्य सकलांस्ततः ॥ ४२ ॥

पश्चिमं केतुमालाख्यं वर्षमन्वेति सार्णवम् ।
भद्रा तथोत्तरगिरीनुत्तरांश्च तथा कुरून् ॥ ४३ ॥
अनीत्योत्तरमम्भोधिं समभ्येति द्विजोत्तमाः ।
आनीलनिषधायामौ माल्यवद्गन्धमादनौ ॥ ४४ ॥
तयोर्मध्यगतो मेरुः कर्णिकाकारसंस्थितः ।
भारताः केतुमालाश्च भद्राश्वा कुरवस्तथा ॥ ४५ ॥
पत्राणि लोकशैलाख्य मर्य्यादाशैलबाह्यतः ।
जठरो देवकूटश्च मर्य्यादापर्व्वतावुभौ ॥ ४६ ॥
तौ दक्षिणोत्तरायामावानीलनिषधायतौ ।
गन्धमादनकैलासौ पूर्व्वपश्चात्तु तावुभौ ॥ ४७ ॥
अशीतियोजनायामावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ ।
निषधः पारियात्रश्च मर्य्यादापर्व्वतावुभौ ॥ ४८ ॥
तौ दक्षिणोत्तरायामावानीलनिषधायतौ ।
मेरोः पश्चिमदिग्भागे यथापूर्व्वौतथा स्थितौ ॥ ४९ ॥
त्रिशृङ्गो जारुधिश्चैव उत्तरौ वर्षपर्व्वतौ ।
पूर्व्वपश्चायतावेतावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ ॥ ५० ॥
इत्येते हि मया प्रोक्ता मर्य्यादापर्व्वताद्विजाः ।
जठराद्याः स्थिता मेरोर्येषां द्वौ द्वौ चतुर्दिशम् ॥ ५१ ॥
मेरोश्चतुर्दिशं ये तु प्रोक्ताः केसरपर्व्वताः ।
सीतान्ताद्या द्विजास्तेषामतीव हि मनोहराः ॥ ५२ ॥
शैलानामन्तरद्रोण्यः सिद्धचारणसेविताः ।
सुरम्याणि तथा तासु काननानि पुराणि च ॥ ५३ ॥

लक्ष्मीविष्णवग्निसूर्येन्द्रदेवानां मुनिसत्तमाः ।
तास्वायतनवर्याणि जुष्टानि नरकिन्नरैः ॥ ५४ ॥
गन्धर्व्वयक्षरक्षांसि तथा दैतेयदानवा ।
क्रीड़न्ति तासु रम्यासु शैलद्रोणीष्वहर्निशम् ॥ ५५ ॥
भौमा ह्येते स्मृता· सर्गा धर्म्मिणामालया द्विजाः ।
नैतेषु पापकर्त्तारो यान्ति जन्मशतैरपि ॥ ५६ ॥
भद्राश्वे भगवान् विष्णुरास्ते हयशिरा द्विजाः ।
वाराहः केतुमाले तु भारते कूर्म्मरूपधृक् ॥ ५७ ॥
मत्स्यरूपश्च गोविन्दः कुरुष्वास्ते सनातनः ।
विश्वरूपेण सर्व्वत्र सर्व्वः सर्व्वेश्वरो हरिः ॥ ५८ ॥
सर्व्वस्याधारभूतोऽसौ द्विजाआस्तेऽखिलात्मकः ।
यानि किम्पुरुषाद्यानि वर्षाण्यष्टौ द्विजोत्तमाः ॥ ५६ ॥
न तेषु शोकानायासोनोद्वेग क्षुद्भयादिकम् ।
सुस्था· प्रजा निरातङ्का· सर्व्वदु खविवर्जिता ॥ ६० ॥
दशद्वादशवर्षाणां सहस्राणि स्थिरायुषः ।
नैतेषु भौमान्यम्यानि क्षुत्पिपासादिनि द्विजाः ॥ ६१ ॥
कृतत्रेतादिका नैव तेषु स्थानेषु कल्पना ।
सर्व्वेष्वेतेषु वर्षेषु सप्त सप्त कुलाचलाः ॥ ६२ ॥
नद्यश्च शतशस्तेभ्यः प्रसूता या द्विजोत्तमाः ॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे भुवनकोशद्वीपवर्णनं
नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः ।

जम्बूद्वीपवर्णनम्

लोमहर्षण उवाच ।

उत्तरेण समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणे ।
वर्षं तद्भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः ॥ १ ॥
नवयोजनसाहस्रो विस्तारश्च द्विजोत्तमाः ।
कर्म्मभूमिरियं स्वर्गमपवर्गञ्च इच्छताम् ॥ २ ॥
महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षपर्वतः ।
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तात्र कुलपर्वताः ॥
अतः सम्प्राप्यते स्वर्गो मुक्तिमस्मात् प्रयान्ति वै ।
तिर्य्यक्त्वं नरकं चापि यान्त्यतः पुरुषा द्विजाः ॥
इतः स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यं चान्ते च गच्छति ।
न खल्वन्यत्र मर्त्यानां कर्म्मभूमौ विधीयते ॥ ५ ॥
भारतस्यास्य वर्षस्य नव भेदान्निशामय ।
इन्द्रद्वीपः कसेरुमांस्ताम्रपर्णो गभस्तिमान् ॥ ६ ॥
नागद्वीपस्तथा सौम्यो गन्धर्वस्त्वथ वारुणः ।
अयं तु नवमस्ते[illegible] ॥ ७ ॥
योजनानां सह[illegible] ।
पूर्व्वे किराता[illegible]

शतद्रुचन्द्रभागाद्या हिमवत्पादनिःसृता ।
वेदस्मृतिमुखाद्याश्च पारियात्रोद्भवा मुने ॥ १० ॥
नर्मदासुरसाद्याश्च नद्यो विन्ध्यविनिःसृता ।
तापीपयोष्णीनिर्विन्ध्याकावेरीप्रमुखा नदी ॥ ११ ॥
ऋक्षपादोद्भवा ह्येता श्रुता पापं हरन्ति या ।
गोदावरीभीमरथीकृष्णावेण्यादिकास्तथा ॥ १२ ॥
सह्यपादोद्भवा नद्य स्मृता पापभयापहा ।
कृतमालाताम्रपर्णीप्रमुखा मलयोद्भवा ॥ १३ ॥
त्रिसामा चार्यकुल्याद्या महेन्द्रप्रभवा स्मृता ।
ऋषिकुल्याकुमाराद्या शुक्तिमत्पादसम्भवा ॥ १४ ॥
आसां नद्युपनद्यश्च सन्त्यन्यास्तु सहस्रश ।
तास्विमे कुरुपञ्चालमध्यदेशादयो जना ॥ १५ ॥
पूर्वदेशादिकाश्चैव कामरूपनिवासिन ।
प्रोक्ता कलिङ्गा मगधा दाक्षिणात्याश्च सर्वश ॥ १६ ॥
तथापरान्त्या सौराष्ट्रा शूद्राभीरास्तथाऽर्बुदा ।
मारुका मालवाश्चैव पारियात्रनिवासिन ॥ १७ ॥
सौवीरा सैन्धवा हूणा शाल्वा शाकलवासिन ।
मद्रारामास्तथाम्बष्ठा पारसीकादयस्तथा ॥ १८ ॥
आसां पिबन्ति सलिलं वसन्ति सरितां सदा ।
समीपेता महाभागा हृष्टपुष्टजनाकुला ॥ १९ ॥
वसन्ति भारते वर्षे युगान्यत्र महामुने ।
कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चान्यत्र न क्वचित् ॥ २० ॥

एकोनविंशोऽध्यायः ।

जम्बूद्वीपवर्णनम्

लोमहर्षण उवाच ।

उत्तरेण समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणे ।
वर्षं तद्भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः ॥ १ ॥
नवयोजनसाहस्रो विस्तारश्च द्विजोत्तमाः ।
कर्म्मभूमिरियं स्वर्गमपवर्गञ्च इच्छताम् ॥ २ ॥
महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षपर्व्वतः ।
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तात्र कुलपर्व्वताः ॥ ३ ॥
अतः सम्प्राप्यते स्वर्गो मुक्तिमस्मात् प्रयान्ति वै ।
तिर्य्यक्त्वं नरकं चापि यान्त्यतः पुरुषा द्विजाः ॥ ४ ॥
इतः स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यं चान्ते च गच्छति ।
न खल्वन्यत्र मर्त्त्यानां कर्म्मभूमौ विधीयते ॥ ५ ॥
भारतस्यास्य वर्षस्य नव भेदान्निशामय ।
इन्द्रद्वीपः कसेरुमांस्ताम्रपर्णो गभस्तिमान् ॥ ६ ॥
नागद्वीपस्तथा सौम्यो गन्धर्व्वस्त्वथ वारुणः ।
अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः ॥ ७ ॥
योजनानां सहस्रं च द्वीपोऽयंदक्षिणोत्तरात् ।
पूर्व्वे किराता‌स्तिष्ठन्ति पश्चिमे यवनाः स्थिताः ॥ ८ ॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या मध्ये शूद्राश्च भागशः ।
इज्यायुद्धवणिज्याद्यवृत्तिमन्तो व्यवस्थिताः ॥ ९ ॥

शतद्रुचन्द्रभागाद्या हिमवत्पादनि सृताः ।
वेदस्मृतिमुखाश्चान्याः पारियात्रोद्भवा मुने ॥ १० ॥
नर्मदासुरसाद्याश्च नद्यो विन्ध्यविनिःसृताः ।
तापीपयोष्णीनिर्विन्ध्याकावेरीप्रमुखा नदीः ॥ ११ ॥
ऋक्षपादोद्भवा ह्येताः श्रुताः पापं हरन्ति याः ।
गोदावरीभीमरथीकृष्णावेण्यादिकास्तथा ॥ १२ ॥
सह्यपादोद्भवा नद्यः स्मृताः पापभयापहाः ।
कृतमालाताम्रपर्णीप्रमुखा मलयोद्भवाः ॥ १३ ॥
त्रिसन्ध्यऋषिकुल्याद्याः महेन्द्रप्रभवाः स्मृताः ।
ऋषिकुल्याकुमाराद्याः शुक्तिमत्पादसम्भवाः ॥ १४ ॥
आसां नद्युपनद्यश्च सन्त्यन्यास्तु सहस्रशः ।
तास्विमे कुरुपञ्चालमध्यदेशादयो जनाः ॥ १५ ॥
पूर्व्वदेशादिकाश्चैव कामरूपनिवासिनः ।
पौण्ड्राः कलिङ्गा मगधा दाक्षिणात्याश्च सर्व्वशः ॥ १६ ॥
तथापरान्त्याः सौराष्ट्राः शूद्राभीरास्तथाऽर्ब्बुदाः ।
मारुका मालवाश्चैव पारियात्रनिवासिनः ॥ १७ ॥
सौवीराः सैन्धवाहूणाः शाल्वाः शाकलवासिनः ।
मद्रारामास्तथाम्बष्ठाः पारसीकादयस्तथा ॥ १८ ॥
आसां पिबन्ति सलिलं वसन्ति सरितां सदा ।
समोपेता महाभागा हृष्टपुष्टजनाकुलाः ॥ १९ ॥
वसन्ति भारते वर्षे युगान्यत्र महामुने ।
कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चान्यत्र न क्वचित् ॥ २० ॥

तपस्तप्यन्ति यतयो जुह्वते चात्र यज्विनः ।
दानानि चात्र दीयन्ते परलोकार्थमादरात् ॥ २१ ॥
पुरुषैर्यज्ञपुरुषो जम्बूद्वीपे सदेज्यते ।
यज्ञैर्यज्ञमयो विष्णुरन्यद्वीपेषु चान्यथा ॥ २२ ॥
अत्रापि भारतं श्रेष्ठं जम्बूद्वीपे महामुने ।
यतो हि कर्मभूरेषा यतोऽन्या भोगभूमयः ॥ २३ ॥
अत्र जन्मसहस्राणां सहस्रैरपि सत्तम ।
कदाचिल्लभते जन्तुर्मानुष्यं पुण्यसंचयात् ॥ २४ ॥
गायन्ति देवाः किल गीतकानि,
धन्यास्तु ये भारतभूमिभागे ।
स्वर्गापवर्गास्पदहेतुभूते,
भवन्ति भूयः पुरुषा मनुष्याः ॥ २५ ॥
कर्माण्यसंकल्पिततत्फलानि,
संन्यस्य विष्णौ परमात्मरूपे ।
अवाप्य तां कर्ममहीमनन्ते,
तस्मिँल्लयं ये त्वमलाः प्रयान्ति ॥ २६ ॥
जानीम नो तत्क्व वयं विलीने,
स्वर्गप्रदे कर्मणि देहबन्धम् ।
प्राप्स्यन्ति धन्याः खलु ते मनुष्या,
ये भारतेनेन्द्रियविप्रहीनाः ॥ २७ ॥
नववर्षं तु भो विप्रा जम्बूद्वीपमिदं मया ।
लक्षयोजनविस्तारं संक्षेपात् कथितं द्विजाः ॥ २८ ॥

जम्बूद्वीपं समावृत्य लक्षयोजनविस्तरः ।
भो द्विजा वलयाकारः स्थितः क्षारोदधिर्बहिः ॥ १९ ॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे जम्बूद्वीपनिरूपणं
नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

विंशोऽध्यायः ।

जम्बूद्वीपवर्णनम्

लोमहर्षण उवाच ।

क्षारोदेन यथा द्वीपो जम्बूसंज्ञोऽभिवेष्टितः ।
संवेष्ट्य क्षारमुदधिं प्लक्षद्वीपस्तथा स्थितः ॥ १ ॥
जम्बूद्वीपस्य विस्तारः शतसाहस्रसम्मितः ।
स एव द्विगुणो विप्राः प्लक्षद्वीपेऽप्युदाहृतः ॥ २ ॥
सप्त मेधातिथेः पुत्राः प्लक्षद्वीपेश्वरस्य वै ।
श्रेष्ठः शान्तभयो नाम शिशिरस्तदनन्तरम् ॥ ३ ॥
सुखोदयस्तथानन्दः शिवः क्षेमक एव च ।
ध्रुवश्च सप्तमस्तेषां प्लक्षद्वीपेश्वरा हि ते ॥ ४ ॥
पूर्वं शान्तभयं वर्षं शिशिरं सुखदं तथा ।
आनन्दश्च शिवश्चैव क्षेमकं ध्रुवमेव च ॥ ५ ॥
मर्यादाकारकास्तेषां तथान्ये वर्षपर्वताः ।
सप्तैव तेषां नामानि शृणुध्वं मुनिसत्तमाः ॥ ६ ॥

गोमेदश्चैव चन्द्रश्च नारदो दुन्दुभिस्तथा।
सोमकः सुमनाः शैलो वैभ्राजश्चैव सप्तमः ॥ ७ ॥
वर्षाचलेषु रम्येषु वर्षेष्वेतेषु चानघाः।
वसन्ति देवगन्धर्व्वसहिताः सहितं प्रजाः ॥ ८ ॥
तेषु पुण्या जनपदा चीरा न म्रियते जनः।
नाधयो व्याधयो वापि सर्व्वकालसुखं हि तत् ॥ ९ ॥
तेषां नद्यश्च सप्तैव वर्षाणान्तु समुद्रगाः।
नामतस्ताः प्रवक्ष्यामि श्रुताः पापं हरन्ति याः ॥ १० ॥
अनुतप्ता शिखा चैव विप्राशा त्रिदिवा क्रमुः।
अमृता सुकृता चैव सप्तैतास्तत्र निम्नगाः ॥ ११ ॥
एते शैलास्तथा नद्यः प्रधानाः कथिता द्विजाः।
क्षुद्रनद्यस्तथा शैलास्तत्र सन्ति सहस्रशः ॥ १२ ॥
ताः पिबन्ति सदा हृष्टा नदीर्जनपदास्तु ते।
अपसर्पिणी नदी तेषां न चैवोत्सर्पिणी द्विजाः ॥ १३ ॥
न तेष्वस्ति युगावस्था तेषु स्थानेषु सप्तसु।
त्रेतायुगसमः कालः सर्व्वदैव द्विजोत्तमाः ॥ १४ ॥
प्लक्षद्वीपादिके विप्राः शाकद्वीपान्तिकेषु वै।
पञ्चवर्षसहस्राणि जना जीवन्त्यनामयाः ॥ १५ ॥
धर्मश्चतुर्व्विधस्तेषु वर्णाश्रमविभागजः।
वर्णाश्च तत्र चत्वारस्तान् बुधाः प्रवदामि वः ॥ १६ ॥
आर्य्यकाः कुरवश्चैव विविश्या भाविनश्च ये।
विप्रक्षत्रियवैश्यास्ते शूद्राश्च मुनिसत्तमाः ॥ १७ ॥

जम्बूवृक्षप्रमाणन्तु तन्मध्ये सुमहातरुः ।
प्लक्षस्तन्नामसंज्ञोऽयं प्लक्षद्वीपो द्विजोत्तमाः ॥ १८ ॥
इज्यते तत्र भगवांस्तैर्वर्णैरार्य्यकादिभिः ।
सोमरूपी जगत्स्रष्टा सर्व्वः सर्व्वेश्वरो हरिः ॥ १९ ॥
प्लक्षद्वीपप्रमाणेन प्लक्षद्वीपः समावृतः ।
तथैवेक्षुरसोदेन परिवेषानुकारिणा ॥ २० ॥
इत्येतद् वो मुनिश्रेष्ठाः प्लक्षद्वीप उदाहृतः ।
संक्षेपेण मया भूयः शाल्मलं तं निबोधत ॥ २१ ॥
शाल्मलस्येश्वरो वीरो वपुष्मांस्तत्सुता द्विजाः ।
तेषान्तु नाम सञ्ज्ञानि सप्त वर्षाणि तानि वै ॥ २२ ॥
श्वेतोऽथ हरितश्चैव जीमूतो रोहितस्तथा ।
वैद्युतो मानसश्चैव सुप्रभश्च द्विजोत्तमाः ॥ २३ ॥
शाल्मलश्च समुद्रोऽसौ द्वीपेनेक्षुरसोदकः ।
विस्ताराद्द्विगुणेनाथ सर्व्वतः संवृतः स्थितः ॥ २४ ॥
तत्रापि पर्व्वताः सप्त विज्ञेया रत्नयोनयः ।
वर्षाभिव्यञ्जकास्ते तु तथा सप्तैव निम्नगाः ॥ २५ ॥
कुमुदश्चोन्नतश्चैव तृतीयस्तु वलाहकः ।
द्रोणो यत्र महौषध्यः स चतुर्थो महीधरः ॥ २६ ॥
कङ्कस्तु पञ्चमः षष्ठो महिषः सप्तमस्तथा ।
ककुद्मान् पर्व्वतवरः सरिन्नामान्यतो द्विजाः ॥ २७ ॥
श्रोणी तोया वितृष्णा च चन्द्रा शुभ्रा विमोचनी ।
निवृत्तिः सप्तमी तासां स्मृतास्ताः पापशान्तिदाः ॥ २८ ॥

श्वेतञ्च लोहितञ्चैव जीमूतं हरितं तथा ।
वैद्युतं मानसञ्चैव सुप्रभं नाम सप्तमम् ॥ २६ ॥
सप्तैतानि तु वर्षाणि चातुर्वर्ण्ययुतानि च ।
वर्णाश्च शाल्मले ये च वसन्त्येषु द्विजोत्तमाः ॥ ३० ॥
कपिलाश्चारुणाः पीताः कृष्णाश्चैव पृथक् पृथक् ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैव यजन्ति तम् ॥ ३१ ॥
भगवन्तं समस्तस्य विष्णुमात्मानमव्ययम् ।
वायुभूतं मखश्रेष्ठैर्यज्वानो यज्ञसंस्थितम् ॥ ३२ ॥
देवानामत्र सान्निध्यमतीव सुमनोहरे ।
शाल्मलिश्च महावृक्षो नामनिवृत्तिकारकः ॥ ३३ ॥
एष द्वीपः समुद्रेण सुरोदेन समावृतः ।
विस्ताराच्छाल्मलेश्चैव समेन तु समन्ततः ॥ ३४ ॥
सुरोदकः परिवृतः कुशद्वीपेन सर्वतः ।
शाल्मलस्य तु विस्ताराद्द्विगुणेन समन्ततः ॥ ३५ ॥
ज्योतिष्मतः कुशद्वीपे शृणुध्वं तस्य पुत्रकान् ।
उद्भिदो वेणुमांश्चैव स्वैरथो लम्बनो धृतिः ॥ ३६ ॥
प्रभाकरोऽथ कपिलस्तन्नाम्ना वर्षपद्धतिः ।
तस्यां वसन्ति मनुजैः सह दैतेयदानवाः ॥ ३७ ॥
तथैव देवगन्धर्वा यक्षकिम्पुरुषादयः ।
वर्णास्तत्रापि चत्वारो निजानुष्ठानतत्पराः ॥ ३८ ॥
दमिनः शुष्मिणः स्नेहा मान्देहाश्च द्विजोत्तमाः ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चानुक्रमोदिताः ॥ ३९ ॥

यथोक्तकर्म्मकर्त्तृत्वात् स्वाधिकारक्षयाय ते ।
तत्र ते तु कुशद्वीपे ब्रह्मरूपं जनार्द्दनम् ॥ ४० ॥
यजन्तः क्षपयन्त्यग्रमधिकारफलप्रदम् ।
विद्रुमो हेमशैलश्च द्युतिमान् पुष्टिमांस्तथा ॥ ४१ ॥
कुशेशयो हरिश्चैव सप्तमो मन्दराचलः ।
वर्षाचलास्तु सप्तैते द्वीपे तत्र द्विजोत्तमाः ॥ ४२ ॥
नद्यश्च सप्त तासां तु वक्ष्ये नामान्यनुक्रमात् ।
धूतपापा शिवा चैव पवित्रा सम्मतिस्तथा ॥ ४३ ॥
विद्युदम्भो मही चान्या सर्व्वपापहरास्त्विमाः ।
अन्याः सहस्रशस्तत्र क्षुद्रनद्यस्तथाचलाः ॥ ४४ ॥
कुशद्वीपे कुशस्तम्बः संज्ञया तस्य तत्स्मृतम् ।
तत्प्रमाणेन स द्वीपो घृतोदेन समावृतः ॥ ४५ ॥
घृतोदश्च समुद्रो वै क्रौञ्चद्वीपेन संवृतः ।
क्रौञ्चद्वीपो मुनिश्रेष्ठाः श्रूयतां चापरो महान् ॥ ४६ ॥
कुशद्वीपस्य विस्ताराद्द्विगुणो यस्य विस्तरः ।
क्रौञ्चद्वीपे द्युतिमतः पुत्राः सप्त महात्मनः ॥ ४७ ॥
तन्नामानि च वर्षाणि तेषां चक्रे महामनाः ।
कुशगो मन्दगश्चोष्णः पीवरोऽथान्धकारकः ॥ ४८ ॥
मुनिश्च दुन्दुभिश्चैव सप्तैते तत्सुता द्विजाः ।
तत्रापि देवगन्धर्व्वसेविताः सुमनोरमाः ॥ ४९ ॥
वर्षाचला मुनिश्रेष्ठास्तेषां नामानि मे द्विजाः ।
क्रौञ्चश्च वामनश्चैव तृतीयश्चान्धकारकः ॥ ५० ॥

देवव्रतो धर्मश्चैव तथान्यः पुण्डरीकवान्।
दुन्दुभिश्च महाशैला द्विगुणास्ते परस्परम् ॥ ५१ ॥
द्वीपाद्द्वीपेषु ये शैलास्तथा द्वीपानि ते तथा।
वर्षेष्वेतेषु रम्येषु वर्षशैलवरेषु च ॥ ५२ ॥
निवसन्ति निरातङ्काः सह देवगणैः प्रजाः।
पुष्कलाः पुष्करा धन्यास्ते ख्याताश्च द्विजोत्तमाः ॥ ५३ ॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चानुक्रमोदिताः।
तत्र नद्यो मुनिश्रेष्ठा याः पिबन्ति तु ते सदा ॥ ५४ ॥
सप्त प्रधानाः शतशस्तथान्याः क्षुद्रनिम्नगाः।
गौरी कुमुद्वती चैव सन्ध्या रात्रिर्मनोजवा ॥ ५५ ॥
ख्यातिश्च पुण्डरीका च सप्तैता वर्षनिम्नगाः।
तत्रापि वर्णैर्भगवान् पुष्कराद्यैर्जनार्दनः ॥ ५६ ॥
ध्यानयोगै रुद्ररूप इज्यते यज्ञसंनिधौ।
क्रौञ्चद्वीपः समुद्रेण दधिमण्डोदकेन तु ॥ ५७ ॥
आवृतः सर्वतः क्रौञ्चद्वीपतुल्येन मानतः।

तत्रापि पर्व्वताः सप्त वर्षविच्छेदकारकाः ।
पूर्व्वस्तत्रोदयगिरिर्ज्जलधारस्तथापरः ॥ ६२ ॥
तथा रैवतकः श्यामस्तथैवाम्भोगिरिर्द्विजाः ।
आस्तिकेयस्तथा रम्यः केसरी पर्व्वतोत्तमः ॥ ६३ ॥
शाकश्चात्र महावृक्षः सिद्धगन्धर्व्वसेवितः ।
यत्पत्रवातसम्पर्शादाह्लादो जायते परः ॥ ६४ ॥
तत्र पुण्या जनपदाश्चातुर्वर्ण्यसमन्विताः ।
निवसन्ति महात्मानो निरातङ्का निरामयाः ॥ ६५ ॥
नद्यश्चात्र महापुण्याः सर्व्वपापभयापहाः ।
सुकुमारी कुमारी च नलिनी रेणुका च या ॥ ६६ ॥
इक्षुश्च धेनुका चैव गभस्ती सप्तमी तथा ।
अन्यास्त्वयुतशस्तत्र क्षुद्रनद्यो द्विजोत्तमाः ॥ ६७ ॥
महीधरास्तथा सन्ति शतशोऽथ सहस्रशः ।
ताः पिबन्ति मुदा युक्ता जलदादिषु ये स्थिताः ॥ ६८ ॥
वर्षेषु ये जनपदाश्चतुर्वर्गसमन्विताः ।
नद्यश्चात्र महापुण्याः स्वर्गादभ्येत्य मेदिनीम् ॥ ६९ ॥
धर्म्महानिर्न तेष्वस्ति न संहर्षो न शुक् तथा ।
मर्य्यादाव्युत्क्रमश्चापि तेषु देशेषु सप्तसु ॥ ७० ॥
मगाश्च मागधाश्चैव मानसा मन्दगास्तथा ।
मगा ब्राह्मणभूयिष्ठा मागधाः क्षत्रियास्तु ते ॥ ७१ ॥
वैश्यास्तु मानसास्तेषां शूद्रा ज्ञेयास्तु मन्दगाः ।
शाकद्वीपे स्थितैर्विष्णुः सूर्य्यरूपधरो हरिः ॥ ७२ ॥

यथोक्तैरिज्यते सम्यक्कर्मभिर्नियतात्मभिः ।
शाकद्वीपस्ततो विप्राः क्षीरोदेन समन्ततः ॥ ७३ ॥
शाकद्वीपप्रमाणेन वलयेनेव वेष्टितः ।
क्षीराब्धिः सर्वतो विप्राः पुष्कराख्येन वेष्टितः ॥ ७४ ॥
द्वीपेन शाकद्वीपात्तु द्विगुणेन समन्ततः ।
पुष्करे सवनस्यापि महावीतोऽभवत् सुतः ॥ ७५ ॥
धातकिश्च तयोस्तद्वद्द्वे वर्षे नामसंज्ञिते ।
महावीतं तथैवान्यद्धातकीखण्डसंज्ञितम् ॥ ७६ ॥
एकश्चात्र महाभागाः प्रख्यातो वर्णपर्व्वतः ।
मानसोत्तरसंज्ञो वै मध्यतो वलयाकृतिः ॥ ७७ ॥
योजनानां सहस्राणि ऊर्द्धं पञ्चाशदुच्छ्रितः ।
तावदेव च विस्तीर्णः सर्व्वतः परिमण्डलः ॥ ७८ ॥
पुष्करद्वीपवलयं मध्येन विभजन्निव ।
स्थितोऽसौ तेन विच्छिन्नंजातं वर्षद्वयं हि तत् ॥ ७९ ॥
वलयाकारमेकैकं तयोर्म्मध्ये महागिरिः ।
दशवर्षसहस्राणि तत्र जीवन्ति मानवाः ॥ ८० ॥
निरामया विशोकाश्च रागद्वेषविवर्ज्जिताः ।
अधमोत्तमो न तेष्वास्तां न वध्यवधकौ द्विजाः ॥ ८१ ॥
नेर्ष्यासूया भयं रोषोदोषोलोमादिकं न च ।
महावीतं बहिर्व्वर्षं धातकीखण्डमन्ततः ॥ ८२ ॥
मानसोत्तरशैलस्य देवदैत्यादिसेवितम् ।
सत्यानृते न तत्रास्तां द्वीपे पुष्करसंज्ञिते ॥ ८३ ॥

न तत्र नद्यः शैला वा द्वीपे वर्षद्वयान्विते ।
तुल्यवेषास्तु मनुजा देवास्तत्रैकरूपिणः ॥ ८४ ॥
वर्णाश्रमाचारहीनं धर्म्माहरणवर्जितम् ।
त्रयीवार्त्तादण्डनीतिशुश्रूषारहितं च तत् ॥ ८५ ॥
वर्षद्वयं ततो विप्रा भौमस्वर्गोऽयमुत्तमः ।
सर्व्वस्य सुखदः कालो जरारोगविवर्ज्जितः ॥ ८६ ॥
पुष्करे धातकीखण्डे महावीते च वै द्विजाः ।
न्यग्रोधः पुष्करद्वीपे ब्रह्मणः स्थानमुत्तमम् ॥ ८७ ॥
तस्मिन्निवसति ब्रह्मा पूज्यमानः सुरासुरैः ।
स्वादूदकेनोदधिना पुष्करः परिवेष्टितः ॥ ८८ ॥
समेन पुष्करस्यैव विस्तारान्मण्डलात्तथा ।
एवं द्वीपाः समुद्रैस्तु सप्त सप्तभिरावृताः ॥ ८९ ॥
द्वीपश्चैव समुद्रश्च समानौ द्विगुणौ परौ ।
पयांसि सर्व्वदा सर्व्वसमुद्रेषु समानि वै ॥ ९० ॥
न्यूनातिरिक्तता तेषां कदाचिन्नैव जायते ।
स्थालीस्थमग्निसंयोगादुद्रेकि सलिलं यथा ॥ ९१ ॥
तथेन्दुवृद्धौ सलिलमम्भोधौ मुनिसत्तमाः ।
अन्यूनानतिरिक्ताश्च वर्द्धन्त्यापो ह्रसन्ति च ॥ ९२ ॥
उदयास्तमणेः त्विन्दोः पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ।
दशोत्तराणि पञ्चैव अङ्गुलानां शतानि च ॥ ९३ ॥
अपां वृद्धिक्षयौ दृष्टौ सामुद्रीणां द्विजोत्तमाः ।
भोजनं पुष्करद्वीपे तत्र स्वयमुपस्थितम् ॥ ९४ ॥

भुञ्जन्ति षड्रसं विप्राः प्रजाः सर्व्वाः सदैव हि ।
स्वादूदकस्य परितो दृश्यते लोकसंस्थितिः ॥ ६५ ॥
द्विगुणा काञ्चनी भूमिः सर्व्वजन्तुविवर्जिता ।
लोकालोकस्ततः शैलो योजनायुतविस्तृतः ॥ ६६ ॥
उच्छ्रयेणापि तावन्ति सहस्राण्यचलोहि सः ।
ततस्तमः समावृत्य तं शैलं सर्व्वतः स्थितम् ॥ ६७ ॥
तमश्चाण्डकटाहेन समन्तात् परिवेष्टितम् ।
पञ्चाशत्कोटिविस्तारा सेयमुर्व्वी द्विजोत्तमाः ॥ ६८ ॥
सहैवाण्डकटाहेन सद्वीपा समहीधरा ।
सेयं धात्री विधात्री च सर्व्वभूतगुणाधिका ।
आधारभूता जगतां सर्व्वेषां सा द्विजोत्तमाः ॥ ६९ ॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे समुद्रद्वीपपरिमाणवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः ।

तत्रादौ पातालप्रमाणवर्णनम्

लोमहर्षण उवाच ।

विस्तारः एष कथितः पृथिव्या मुनिसत्तमाः ।
सप्ततिस्तु सहस्राणि तदुच्छ्रायोऽपि कथ्यते ॥ १ ॥
दशसाहस्रमेकैकं पातालं मुनिसत्तमाः ।
अतलं वितलञ्चैव नितलं सुतलं तथा ॥ २ ॥

तलातलं रसातलं पातालञ्चापि सप्तमम् ।
कृष्णा शुक्लारुणा पीता शर्करा शैलकाञ्चनी ॥ ३ ॥
भूमयो यत्र विप्रेन्द्रा वरप्रासादशोभिताः ।
तेषु दानवदैतेय-जातय शतशः स्थिताः ॥ ४ ॥
नागानाञ्च महाङ्गानां ज्ञातयश्च द्विजोत्तमा ।
स्वर्लोकादपि रम्याणि पातालानीति नारद ॥ ५ ॥
प्राह स्वर्गसदोमध्ये पातालेभ्यो गतो दिवम् ।
आह्लादकारिणः शुभ्रा मणयो यत्र सुप्रभाः ॥ ६ ॥
नागाभरणभूषाश्च पाताल केन तत्समम् ।
दैत्यदानवकन्याभिरितश्चेतश्च शोभिते ॥ ७ ॥
पाताले कस्य न प्रीतिर्विमुक्तस्यापि जायते ।
दिवार्करश्मयो यत्र प्रभास्तन्वन्ति नातपम् ॥ ८ ॥
शशिनश्च न शीताय निशि द्योताय केवलम् ।
भक्ष्यभोज्यमहापानमदमत्तैश्च भोगिभिः ॥ ९ ॥
यत्र न ज्ञायते कालो गतोऽपि दनुजादिभिः ।
वनानि नद्यो रम्याणि सरांसि कमलाकराः ॥ १० ॥
पुंस्कोकिलाभिलापाश्च मनोज्ञान्यम्बराणि च ।
भूषणान्यतिरम्याणि गन्धाढ्यञ्चानुलेपनम् ॥ ११ ॥
वीणावेणुमृदङ्गानां निःस्वनाश्च सदा द्विजाः ।
एतान्यन्यानि रम्याणि भाग्यभोग्यानि दानवैः ॥ १२ ॥
दैत्योरगैश्च भुज्यन्ते पातालान्तरगोचरैः ।
पातालानामधश्चास्ते विष्णोर्या तामसी तनुः ॥ १३ ॥

शेषाख्या यद्गुणान् वक्तुं न शक्ता दैत्यदानवाः ।
योऽनन्तः पठ्यते सिद्धैर्देवदेवर्षिपूजितः ॥ १४ ॥
सहस्रशिरसा व्यक्तं स्वस्तिकामलभूषणः ।
फणामणिसहस्रेण यः स विद्योतयन् दिशः ॥ १५ ॥
सर्वान् करोति निर्वीर्यान् हितायजगतोऽसुरान् ।
मदाघूर्णितनेत्रोऽसौ यः सदैवैककुण्डलः ॥ १६ ॥
किरीटी स्रग्धरो भाति साग्निश्वेत इवाचलः ।
नीलवासा मदोत्सिक्तः श्वेतहारोपशोभितः ॥ १७ ॥
साभ्रगङ्गाप्रपातोऽसौ कैलासाद्रिरिवोत्तमः ।
लांगलासक्तहस्ताग्रो बिभ्रन्मुसलमुत्तमम् ॥ १८ ॥
उपास्यते स्वयं कान्ता यो वारुण्या च मूर्त्तया ।
कल्पान्ते यस्य वक्त्रेभ्यो विषानलशिखोज्ज्वलः ॥ १९ ॥
संकर्षणात्मको रुद्रो निष्क्रम्यात्ति जगत्त्रयम् ।
स बिभ्रच्छिखरीभूतमशेषं क्षितिमण्डलम् ॥ २० ॥
आस्ते पातालमूलस्थः शेषोऽशेषसुरार्चितः ।
तस्य वीर्यं प्रभावश्च स्वरूपं रूपमेव च ॥ २१ ॥
न हि वर्णयितुं शक्यं ज्ञातुं वा त्रिदशैरपि ।
यस्यैषा सकला पृथ्वी फणामणिशिखारुणा ॥ २२ ॥
आस्ते कुसुममालेव कस्तद्वीर्यं वदिष्यति ।
यदा विजृम्भतेऽनन्तो मदाघूर्णितलोचनः ॥ २३ ॥
तदा चलति भूरेषा साद्रितोयाधिकानना ।
गन्धर्वाप्सरसः सिद्धाः किन्नरोरगचारणाः ॥ २४ ॥

नान्तं गुणानां गच्छन्ति ततोऽनन्तोऽयमव्ययः ।
यस्य नागवधूहस्तैर्लापितं हरिचन्दनम् ॥ २५ ॥
मुहुः श्वासानिलायस्तं याति दिक्पटवासताम् ।
यमाराध्य पुराणर्षिर्गर्गो ज्योतींषि तत्त्वतः ॥ २६ ॥
ज्ञातवान् सकलं चैव निमित्तपठितं फलम् ।
तेनेयं नागवर्येण शिरसा विधृता मही ।
बिभर्ति सकलाँल्लोकान् स देवासुरमानुषान् ॥ २७ ॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे पातालप्रमाण-
कीर्त्तनं नामैकविंशोऽध्याय· ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः ।

तत्रादौ नरकवर्णनम्

लोमहर्षण उवाच ।

ततश्चानन्तरं विप्रा नरका रौरवादयः ।
पापिनो येषु पात्यन्ते ताञ्छृणुध्वं द्विजोत्तमाः ॥ १ ॥
रौरवः शौकरो रोधस्तालो विशसनस्तथा ।
महाज्वालस्तप्तकुड्यो महालोभो विमोहनः ॥ २ ॥
रुधिरान्धो वसातप्तः कृमीशः कृमिभोजनः ।
असिपत्रवनं कृष्णो लालाभक्षश्च दारुणः ॥ ३ ॥

तथा पूयवहः पापो वह्निज्वालो ह्यधःशिराः ।
सन्दंशः कृष्णसूत्रश्च तमश्चावीचिरेव च ॥ ४ ॥
श्वभोजनोऽथाप्रतिष्ठोमावीचिश्च तथापरः ।
इत्येवमादयश्चान्ये नरका भृशदारुणाः ॥ ५ ॥
यमस्य विषये घोराः शस्त्राग्निविषदर्शिनं ।
पतन्ति येषु पुरुषाः पापकर्म्मरताश्च ये ॥ ६ ॥
कूटसाक्षी तथा सम्यक् पक्षपातेन यो वदेत् ।
यश्चान्यदनृतं वक्ति स नरो याति रौरवम् ॥ ७ ॥
भ्रूणहा पुरहन्ता च गोघ्नश्च मुनिसत्तमाः ।
यान्ति ते रौरवं घोरं यश्चोच्छ्वासनिरोधकः ॥ ८ ॥
सुरापो ब्रह्महा हर्त्ता सुवर्णस्य च शूकरे ।
प्रयाति नरके यश्च तैः संसर्गमुपैति वै ॥ ६ ॥
राजन्यवैश्यहा चैव तथैव गुरुतल्पगः ।
तप्तकुम्भे स्वसृगामी हन्ति राजभटश्च यः ॥ १० ॥
साध्वीविक्रयकृद्बन्ध्यपालः केसरविक्रयी ।
तप्तलोहे पतन्त्येते यश्च भक्तं परित्यजेत् ॥ ११ ॥
सुतां स्नुषाञ्चापि गत्वा महाज्वाले निपात्यते ।
अवमन्ता गुरूणां यो यश्चाक्रोष्टा नराधमः ॥ १२ ॥
वेददूषयिता यश्च वेदविक्रयकश्च यः ।
अगम्यगामी यश्च स्यात् ते यान्ति शवलं द्विजाः ॥ १३ ॥
चौरो विमोहे पतति मर्य्यादादूषकस्तथा ।
देवद्विजपितृद्वेष्टा रत्नदूषयिता च यः ॥ १४ ॥

स याति क्रमिभक्ष्ये वै कृमीशो ■ दुरिष्टिकृत् ।
पितृदेवातिथीन् यस्तु पर्यश्नाति नराधम ॥ १५ ॥
लालाभक्षे स यात्युग्रे शरकर्त्ता च वेधके ।
करोति कर्णिनो यश्च यश्च खड्गादिकृन्नर ॥ १६ ॥
प्रयान्त्येते विशसने नरके भृशदारुणे ।
असत्प्रतिग्रहीता च नरके यात्यधोमुखे ॥ १७ ॥
अयाज्ययाजकस्तत्र तथा नक्षत्रसूचक ।
कृमिपूये नरश्चैको याति मिष्टान्नभुक् सदा ॥ १८ ॥
लाक्षामांसरसानाञ्च तिलानां लवणस्य च ।
विक्रेता ब्राह्मणो याति तमेव नरकं द्विजा ॥ १६ ॥
मार्ज्जारकुक्कुटच्छागश्ववराहविहङ्गमान् ।
पोषयन्नरकं याति तमेव द्विजसत्तमाः ॥ २० ॥
रङ्गोपजीवी कैवर्त्तः कुण्डाशी गरदस्तथा ।
सूची माहिषिकश्चैव पर्वगामी च यो द्विज ॥ २१ ॥
अगारदाही मित्रघ्नः शकुनिग्रामयाजक ।
रुधिरान्धे पतन्त्येते सोमं विक्रीणते च ये ॥ २२ ॥
मधुहा ग्रामहन्ता च याति वैतरणीं नर ।
रेतःपानादिकर्त्तारो मर्य्यादाभेदिनश्च ये ॥ २३ ॥
ते कृच्छ्रे यान्त्यशौचाश्च कुहकाजीविनश्च ये ।
असिपत्रवनं याति वनच्छेदी वृथैव य ॥ २४ ॥
उरभ्रिका मृगव्याधा वह्निज्वाले पतन्ति वै ।
यान्ति तत्रैव ते विप्रा यश्चापाकेषु वह्निद ॥ २५ ॥

व्रतोपलोपको यश्च स्वाश्रमाद्विच्युतश्च यः ।
सन्दंशयातनामध्ये पततस्तावुभावपि ॥ २६ ॥
दिवा स्वप्नेषु स्कन्दन्ते ये नरा ब्रह्मचारिणः ।
पुत्रैरध्यापिता ये तु ते पतन्ति श्वभोजने ॥ २७ ॥
एते चान्ये च नरकाः शतशोऽथ सहस्रशः ।
येषु दुष्कृतकर्म्माणः पच्यन्ते यातनागताः ॥ २८ ॥
तथैव पापान्येतानि तथान्यानि सहस्रशः ।
भुज्यन्ते जातिपुरुषैर्नरकान्तरगोचरैः ॥ २९ ॥
वर्णाश्रमविरुद्धञ्च कर्म्म कुर्वन्ति ये नराः ।
कर्म्मणा मनसा वाचा निरयेषु पतन्ति ते ॥ ३० ॥
अध शिरोभिर्दृश्यन्ते नारकैर्दिवि देवताः ।
देवाश्चाधोमुखान् सर्व्वानधः पश्यन्ति नारकान् ॥ ३१ ॥
स्थावराः कृमयोऽब्जाश्च पक्षिणः पशवो नराः ।
धार्म्मिकास्त्रिदशास्तद्वन्मोक्षिणश्च यथाक्रमम् ॥ ३२ ॥
सहस्रभागः प्रथमाद्द्वितीयोऽनुक्रमात्तथा ।
सर्व्वे ह्येते महाभागा यावन्मुक्तिसमाश्रयाः ॥ ३३ ॥
यावन्तो जन्तवः स्वर्गे तावन्तो नरकौकसः ।
पापकृद्याति नरकं प्रायश्चित्तपराङ्मुखः ॥ ३४ ॥
पापानामनुरूपाणि प्रायश्चित्तानि यद्यथा ।
तथा तथैव संस्मृत्य प्रोक्तानि परमर्षिभिः ॥ ३५ ॥
पापे गुरूणि गुरुणि स्वल्पान्यल्पे च तद्विदः ।
प्रायश्चित्तानि विप्रेन्द्रा जगुः स्वायम्भुवादयः ॥ ३६ ॥

प्रायश्चित्तान्यशेषाणि तपः कर्म्मात्मकानि वै ।
यानि तेषामशेषाणां कृष्णानुस्मरणं परम् ॥ ३७ ॥
कृते पापेऽनुतापो वै यस्य पुंसः प्रजायते ।
प्रायश्चित्तन्तु तस्यैकं हरिसंस्मरणं परम् ॥ ३८ ॥
प्रातर्निशि तथा सन्ध्यामध्याह्नादिषु संस्मरन् ।
नारायणमवाप्नोति सद्यः पापक्षयान्नरः ॥ ३९ ॥
विष्णुसंस्मरणात् क्षीणसमस्तक्लेशसञ्चयः ।
मुक्तिं प्रयाति भो विप्रा विष्णोस्तस्यानुकीर्त्तनात् ॥ ४० ॥
वासुदेवे मनो यस्य जपहोमार्च्चनादिषु ।
तस्यान्तरायो विप्रेन्द्रा देवेन्द्रत्वादिकं फलम् ॥ ४१ ॥
क्व नाकपृष्ठगमनं पुनरावृत्तिलक्षणम् ।
क्व जपो वासुदेवेति मुक्तिबीजमनुत्तमम् ॥ ४२ ॥
तस्मादहर्निशं विष्णुं संस्मरन् पुरुषो द्विजः ।
न याति नरकं शुद्धः संक्षीणाखिलपातकः ॥ ४३ ॥
मनःप्रीतिकरः स्वर्गो नरकस्तद्विपर्य्ययः ।
नरकस्वर्गसंज्ञे वै पापपुण्ये द्विजोत्तमाः ॥ ४४ ॥
वस्त्वेकमेव दुःखाय सुखायेर्ष्योदयाय च ।
कोपाय च यतस्तस्माद्वस्तु दुःखात्मकं कुतः ॥ ४५ ॥
तदेव प्रीतये भूत्वा पुनर्दुःखाय जायते ।
तदेव कोपाय यतः प्रसादाय च जायते ॥ ४६ ॥
तस्माद्दुःखात्मकं नास्ति न च किञ्चित्सुखात्मकम् ।
मनसः परिणामोऽयं सुखदुःखादिलक्षणः ॥ ४७ ॥

ज्ञानमेव परं ब्रह्माज्ञानं बन्धाय चेष्यते ।
ज्ञानात्मकमिदं विश्वं न ज्ञानाद्विद्यते परम् ॥ ४८ ॥
विद्याविद्ये हि भो विप्रा ज्ञानमेवावधार्य्यताम् ।
एवमेतन्मयाख्यातं भवतां मण्डलं भुवः ॥ ४९ ॥
पातालानि च सर्व्वाणि तथैव नरका द्विजाः ।
समुद्राः पर्व्वताश्चैव द्वीपा वर्षाणि निम्नगाः ॥ ५० ॥
संक्षेपात् सर्व्वमाख्यातं किं भूयः श्रोतुमिच्छथ ।

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे पातालनरककीर्त्तनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः ।

तत्रादौ भूर्भुवःस्वरादिलोकवर्णनम्

मुनय ऊचुः ।

कथितं भवता सर्व्वमस्माकं सकलं तथा ।
भुवर्लोकादिकाँल्लोकान् श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥ १ ॥
तथैव ग्रहसंस्थानं प्रमाणानि यथा तथा ।
समाचक्ष्व महाभाग यथावल्लोमहर्षण ॥ २ ॥

लोमहर्षण उवाच ।

रविचन्द्रमसोर्यावन्मयूखैरवभास्यते ।
ससमुद्रसरिच्छैला तावती पृथिवी स्मृता ॥ ३ ॥

यावत्प्रमाणा पृथिवी विस्तारपरिमण्डला।
नभस्तावत्प्रमाणं हि विस्तारपरिमण्डलम् ॥ ४ ॥
भूमेर्योजनलक्षे तु सौरं विप्रास्तु मण्डलम्।
लक्षे दिवाकराच्चापि मण्डलं शशिनः स्थितम् ॥ ५ ॥
पूर्णे शतसहस्रे तु योजनानां निशाकरात्।
नक्षत्रमण्डलं कृत्स्नमुपरिष्टात् प्रकाशते ॥ ६ ॥
द्विलक्षे चोत्तरे विप्रा बुधो नक्षत्रमण्डलात्।
तावत् प्रमाणभागे तु बुधस्याप्युशना स्थितः ॥ ७ ॥
अङ्गारकोऽपि शुक्रस्य तत्प्रमाणे व्यवस्थितः।
लक्षद्वयेन भौमस्य स्थितो देवपुरोहितः ॥ ८ ॥
सौरिर्बृहस्पतेरूर्ध्वं द्विलक्षे समवस्थितः।
सप्तर्षिमण्डलं तस्माल्लक्षमेकं द्विजोत्तमाः ॥ ९ ॥
ऋषिभ्यस्तु सहस्राणां शतादूर्ध्वं व्यवस्थितः।
मेढीभूतः समस्तस्य ज्योतिश्चक्रस्य वै ध्रुवः ॥ १० ॥
त्रैलोक्यमेतत् कथितं संक्षेपेण द्विजोत्तमाः।
इज्याफलस्य भूरेषा इज्या चात्र प्रतिष्ठिता ॥ ११ ॥
ध्रुवादूर्ध्वं महर्लोको यत्र ते कल्पवासिनः।
एकयोजनकोटी तु महर्लोको विधीयते ॥ १२ ॥
द्वे कोट्यौ तु जनो लोको यत्र ते ब्रह्मणः सुताः।
सनन्दनाद्याः कथिता विप्राश्चामलचेतसः ॥ १३ ॥
चतुर्गुणोत्तरं चोर्ध्वं जनलोकात्तपः स्मृतम्।
वैराजा यत्र ते देवाः स्थिता देहविवर्जिताः ॥ १४ ॥

षड्गुणेन तपोलोकात् सत्यलोको विराजते ।
अपुनर्मारकं यत्र सिद्धादिमुनिसेवितम् ॥ १५ ॥
पादगम्यं तु यत् किञ्चिद्वस्त्वस्ति पृथिवीमयम् ।
स भूर्लोकः समाख्यातो विस्तारोऽस्य मयोदितः ॥ १६ ॥
भूमिसूर्य्यान्तरं यत्तु सिद्धादिमुनिसेवितम् ।
भुवर्लोकस्तु सोऽप्युक्तो द्वितीयो मुनिसत्तमाः ॥ १७ ॥
ध्रुवसूर्य्यान्तरं यत्तु नियुतानि चतुर्द्दश ।
स्वर्लोकः सोऽपि कथितो लोकसंस्थानचिन्तकैः ॥ १८ ॥
त्रैलोक्यमेतत् कृतक विप्रैश्च परिपठ्यते ।
जनस्तपस्तथा सत्यमिति चाकृतकं त्रयम् ॥ १९ ॥
कृतकाकृतको मध्ये महर्लोक इति स्मृतः ।
शून्यो भवति कल्पान्ते योऽन्तं न च विनश्यति ॥ २० ॥
एते सप्त महालोका मया वः कथिता द्विजाः ।
पातालानि च सप्तैव ब्रह्माण्डस्यैव विस्तरः ॥ २१ ॥
एतदण्डकटाहेन तिर्य्यगूर्ध्वमधस्तथा ।
कपित्थस्य यथा बीजं सर्व्वतो वै समावृतम् ॥ २२ ॥
दशोत्तरेण पयसा द्विजाश्चाण्डश्च तदावृतम् ।
स चाम्बुपरिवारोऽसौ वह्निना वेष्टितो बहिः ॥ २३ ॥
वह्निस्तु वायुना वायुर्विप्रास्तु नभसावृतः ।
आकाशोऽपि मुनिश्रेष्ठा महता परिवेष्टितः ॥ २४ ॥
दशोत्तराण्यशेषाणि विप्राश्चैतानि सप्त वै ।
महान्तञ्च समावृत्य प्रधानं समवस्थितम् ॥ २५ ॥

अनन्तस्य न तस्यान्त संख्यानं चापि विद्यते।
तदनन्तमसंख्यात प्रमाणेनापि वै यत ॥ २६ ॥
हेतुभूतमशेषस्य प्रकृति सा परा द्विजा ।
अन्तानान्तु सहस्राणा सहस्राण्ययुतानि च ॥ २७ ॥
ईदृशाना तथा तत्र कोटिकोटिशतानि च ।
दारुण्यग्निर्यथा तैल तिले तद्वत् पुमानिह ॥ २८ ॥
प्रधानेऽवस्थितो व्यापी चेतनात्मनिवेदन ।
प्रधनञ्च पुमाञ्चैव सर्वभूतानुभूतया ॥ २९ ॥
विष्णुशक्त्या द्विजश्रेष्ठा धृतौ संश्रयधर्मिणौ।
तयो सैव पृथग्भावे कारण संश्रयस्य च ॥ ३० ॥
क्षोभकारणभूता च सर्गकाले द्विजोत्तमा ।
यथा शैत्यं जले वातो बिभर्त्ति कणिकागतम् ॥ ३१ ॥
जगच्छक्तिस्तथा विष्णो प्रधानपुरुषात्मकम्।
यथा च पादपो मूलस्कन्धशाखादिसंयुत ॥ ३२ ॥
आद्यबीजात् प्रभवति बीजान्यन्यानि वै तत ।
प्रभवन्ति ततस्तेभ्यो भवन्त्यन्ये परे द्रुमा ॥ ३३ ॥
तेऽपि तल्लक्षणद्रव्यकारणानुगता द्विजा ।
एवमव्याकृतात् पूर्वं जायन्ते महदादय ॥ ३४ ॥
विशेषान्तास्ततस्तेभ्य सम्भवन्ति सुरादय ।
तेभ्यश्च पुत्रास्तेषां तु पुत्राणा परमे सुता ॥ ३५ ॥
बीजाद्वृक्षप्ररोहेण यथा नापचयस्तरो ।
भूताना भूतसर्गेण नैवास्त्यपचयस्तथा ॥ ३६ ॥

सन्निधानाद्यथाकाशकालाद्याः कारणं तरोः ।
तथैवापरिणामेन विश्वस्य भगवान् हरिः ॥ ३७ ॥
व्रीहिबीजे यथा मूलं नाल पत्राङ्कुरौ तथा ।
काण्डकोषास्तथा पुष्पं क्षीरं तद्वच्च तण्डुलः ॥ ३८ ॥
तुषाः कणाश्च सन्तो वै यान्त्याविर्भावमात्मनः ।
प्ररोहहेतुसामग्र्यमासाद्य मुनिसत्तमाः ॥ ३९ ॥
तथा कर्म्मस्वनेकेषु देवाद्यास्तनवः स्थिताः ।
विष्णुशक्तिं समासाद्य प्ररोहमुपयान्ति वै ॥ ४० ॥
स च विष्णुः परं ब्रह्म यतः सर्व्वमिदं जगत् ।
जगच्च यो यत्र चेदं यस्मिन्विलयमेष्यति ॥ ४१ ॥
तद्ब्रह्म परम धाम सदसत् परमं पदम् ।
यस्य सर्व्वमभेदेन जगदेतच्चराचरम् ॥ ४२ ॥
स एव मूलप्रकृतिर्व्यक्तरूपी जगच्च सः ।
तस्मिन्नेव लयं सर्व्वं याति तत्र च तिष्ठति ॥ ४३ ॥
कर्त्ता क्रियाणां स च इज्यते क्रतुः,
स एव तत् कर्म्मफलञ्च यस्य यत् ।
युगादि यस्माच्च भवेदशेषतो-
हरेर्न किञ्चिद्व्यतिरिक्तमस्ति तत् ॥ ४४ ॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे भूर्भुव स्वरादिकीर्त्तनं नाम
त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः ।

ध्रुवसंस्थिति निरूपणम् ।

लोमहर्षण उवाच ।

तारामय भगवत शिशुमाराकृति प्रभो ॥ १ ॥
दिवि रूप हरेर्यत्तु तस्य पुच्छे स्थितो ध्रुव ।
सैव भ्रमन् भ्रामयति चन्द्रादित्यादिकान् ग्रहान् ।
भ्रमन्तमनु त यान्ति नक्षत्राणि च चक्रवत् ॥ २ ॥
सूर्याचन्द्रमसौ तारा नक्षत्राणि ग्रहै सह ।
वातानीकमयैर्बन्धैर्ध्रुवे बद्धानि तानि वै ॥ ३ ॥
शिशुमाराकृति प्रोक्त यद्रूप ज्योतिषा दिवि ।
नारायण पर धाम तस्याधार स्वय हृदि ॥ ४ ॥
उत्तानपादतनयस्तमाराध्य प्रजापतिम् ।
स ताराशिशुमारस्य ध्रुव पुच्छे व्यवस्थित ॥ ५ ॥
आधार शिशुमारस्य सर्वाध्यक्षो जनार्दन ।
ध्रुवस्य शिशुमारश्च ध्रुवे भानुर्व्यवस्थित ॥ ६ ॥
तदाधार जगच्चेद सदेवासुरमानुषम् ।
येन विप्रा विधानेन तन्मे शृणुत साम्प्रतम् ॥ ७ ॥
विवस्वानष्टभिर्मासैर्ग्रस्त्यापो रसात्मिका ।
वर्षत्येषु ततश्चान्नमन्नादमखिल जगत् ॥ ८ ॥
विवस्वानशुभिस्तीक्ष्णैरादाय जगतो जलम् ।
सोम पुष्यत्यथेन्दुश्च वायुनाडीमयैर्दिवि ॥ ९ ॥

जलैर्विक्षिप्यतेऽभ्रेषु धूमाग्न्यनिलमूर्त्तिषु ।
न भ्रश्यन्ति यतस्तेभ्यो जलान्यभ्राणि तान् यतः ॥ १० ॥
अभ्रस्थाः प्रपतन्त्यापो वायुना समुदीरिताः ।
संस्कारं कालजनितं विप्राश्चासाद्य निर्मलाः ॥ ११ ॥
सरित्समुद्रा भौमास्तु यथापः प्राणिसम्भवाः ।
चतुष्प्रकारा भगवानादत्ते सविता द्विजाः ॥ १२ ॥
आकाशगङ्गासलिलं तथाहृत्य गभस्तिमान् ।
अनभ्रगतमेवोर्व्यां सद्यः क्षिपति रश्मिभिः ॥ १३ ॥
तस्य संस्पर्शनिर्धूतपापपङ्को द्विजोत्तमाः ।
न याति नरकं मर्त्यो दिव्यं स्नानं हि तत्स्मृतम् ॥ १४ ॥
दृष्टसूर्यं हि तद्वारि पतत्यभ्रैर्विना दिवः ।
आकाशगङ्गासलिलंतद्गोभिः क्षिप्यते रवेः ॥ १५ ॥
कृत्तिकादिषु ऋक्षेषु विषमेष्वम्बु यद्दिवः ।
दृष्ट्वार्कं पतितं ज्ञेयं तद्गाङ्गं दिग्गजोद्धृतम् ॥ १६ ॥
युग्मर्क्षेषु तु यत्तोयं पतत्यर्कोद्धृतं दिवः ।
तत्सूर्यरश्मिभिः सद्यः समादाय निरस्यते ॥ १७ ॥
उभयं पुण्यमत्यर्थं नृणां पापहरं द्विजाः ।
आकाशगङ्गासलिलं दिव्यं स्नानं द्विजोत्तमाः ॥ १८ ॥
यत्तु मेघैः समुत्सृष्टं वारि तत् प्राणिनां द्विजाः ।
पुष्णात्योषधयः सर्व्वा जीवनायामृतं हि तत् ॥ १९ ॥
तेन वृद्धिं परां नीतः सकलश्चौषधीगणः ।
साधकः फलपाकान्तः प्रजानान्तु प्रजायते ॥ २० ॥

तेन यज्ञान् यथाप्रोक्तान्मानवाः शास्त्रचक्षुषः ।
कुर्व्वतेऽहरहश्चैव देवानाप्याययन्ति ते ॥ २१ ॥
एवं यज्ञाश्च वेदाश्च वर्णाश्च द्विजपूर्वकाः ।
सर्व्वदेवनिकायाश्च पशुभूतगणाश्च ये ॥ २२ ॥
वृष्ट्या धृतमिदं सर्व्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
सापि निष्पाद्यते वृष्टिः सवित्रा मुनिसत्तमाः ॥ २३ ॥
आधारभूतः सवितुर्ध्रुवो मुनिवरोत्तमाः ।
ध्रुवस्य शिशुमारोऽसौ सोऽपि नारायणाश्रयः ॥ २४ ॥
हृदि नारायणस्तस्य शिशुमारस्य संस्थितः ।
बिभर्त्ता सर्व्वभूतानामादिभूतः सनातनः ॥ २५ ॥
एवं मया मुनिश्रेष्ठा ब्रह्माण्डं समुदाहृतम् ।
भूसमुद्रादिभिर्युक्तं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ ॥ २६ ॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे ध्रुवसंस्थितिनिरूपणं नाम चतुर्व्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशोऽध्यायः ।

तत्रादौ सर्वतीर्थमाहात्म्यवर्णनम् ।

मुनय ऊचुः ।

पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च ।
वक्तुमर्हसि धर्म्मज्ञ श्रोतुं नो वर्त्तते मनः ॥ १ ॥

लोमहर्षण उवाच।

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्।
विद्या तपश्च कीर्त्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥ २ ॥

मनो विशुद्धं पुरुषस्य तीर्थं,
वाचां तथा चेन्द्रियनिग्रहश्च।
एतानि तीर्थानि शरीरजानि,
स्वर्गस्य मार्गं प्रतिबोधयन्ति ॥ ३ ॥

चित्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थस्नानैर्न शुध्यति।
शतशोऽपि जलैर्धौतं सुराभाण्डमिवाशुचि ॥ ४ ॥

न तीर्थानि न दानानि न व्रतानि न चाश्रमाः।
दुष्टाशयं दम्भरुचिं पुनन्ति व्युत्थितेन्द्रियम् ॥ ५ ॥

इन्द्रियाणि वशे कृत्वा यत्र यत्र वसेन्नरः।
तत्र तत्र कुरुक्षेत्रं प्रयागं पुष्करं तथा ॥ ६ ॥

तस्माच्छृणुध्वं वक्ष्यामि तीर्थान्यायतनानि च।
संक्षेपेण मुनिश्रेष्ठाः पृथिव्यां यानि कानि वै ॥ ७ ॥

विस्तरेण न शक्यन्ते वक्तुं वर्षशतैरपि।
प्रथमं पुष्करं तीर्थं नैमिषारण्यमेव च ॥ ८ ॥

प्रयागञ्च प्रवक्ष्यामि धर्मारण्यं द्विजोत्तमाः।
धेनुकं चम्पकारण्यं सैन्धवारण्यमेव च ॥ ९ ॥

पुण्यञ्च मगधारण्यं दण्डकारण्यमेव च।
गया प्रभासं श्रीतीर्थं दिव्यं कनखलं तथा ॥ १० ॥

भृगुतुङ्गं हिरण्याक्षं भीमारण्यं कुशस्थलीम्।
लोहाकुलं सकेदारं मन्दरारण्यमेव च ॥ ११ ॥
महाबलं कोटितीर्थं सर्व्वपापहरं तथा।
रूपतीर्थं शूकरवं चक्रतीर्थं महाफलम् ॥ १२ ॥
योगतीर्थं सोमतीर्थं तीर्थं साहोटकं तथा।
तीर्थं कोकामुखं पुण्यं बदरीशैलमेव च ॥ १३ ॥
सोमतीर्थं तुङ्गकूटं तीर्थं स्कन्दाश्रमं तथा।
कोटितीर्थञ्चाग्निपदं तीर्थं पञ्चशिखं तथा ॥ १४ ॥
धर्म्मोद्भवं कोटितीर्थं तीर्थं बाधप्रमोचनम्।
गङ्गाद्वारं पञ्चकूटं मध्यकेसरमेव च ॥ १५ ॥
चक्रप्रभं मतङ्गञ्च कुशदत्तञ्च विश्रुतम्।
दंष्ट्राकुण्डं विष्णुतीर्थं सार्व्वकामिकमेव च ॥ १६ ॥
तीर्थं मत्स्यतिलञ्चैव बदरी सुप्रभं तथा।
ब्रह्मकुण्डं वह्निकुण्डं तीर्थं सत्यपदं तथा ॥ १७ ॥
चतुःस्रोतश्चतुःशृङ्गं शैलं द्वादशधारकम्।
मानसं स्थूलशृङ्गञ्च स्थूलदण्डं तथोर्व्वशी ॥ १८ ॥
लोकपालं मनुवरं सोमाह्वंशैलमेव च।
सदाप्रभं मेरुकुण्डं तीर्थं सोमाभिषेचनम् ॥ १९ ॥
महास्रोतं कोटरकं पञ्चधारं त्रिधारकम्।
सप्तधारैकधारञ्च तीर्थं चामरकण्टकम् ॥ २० ॥
शालग्रामं चक्रतीर्थं कोटिद्रुममनुत्तमम्।
बिल्वप्रभं देवह्रदं तीर्थं विष्णुह्रदं तथा ॥ २१ ॥

शङ्खप्रभं देवकुण्डं तीर्थं वज्रायुधं तथा।
अग्निप्रभञ्च पुन्नागं देवप्रममनुत्तमम्॥ २२॥
विद्याधरं सगान्धर्वं श्रीतीर्थं ब्रह्मणो ह्रदम्।
सातीर्थं लोकपालाख्यं मणिपूरगिरिं तथा॥ २३॥
तीर्थं पञ्चह्रदञ्चैव पुण्यं पिण्डारकं तथा।
मलयं गोप्रभावञ्च गोवरं वटमूलकम्॥ २४॥
स्नानदण्डं प्रयागञ्च गुह्यं विष्णुपदं तथा।
कन्याश्रमं वायुकुण्डं जम्बूमार्गं तथोत्तमम्॥ २५॥
गभस्तितीर्थञ्च तथा ययातिपतनं शुचि।
कोटितीर्थं भद्रवटं महाकालवनं तथा॥ २६॥
नर्म्मदातीर्थमपरं तीर्थवज्रं तथार्व्वुदम्।
पिङ्गुतीर्थं सवासिष्ठं तीर्थञ्च पृथुसङ्गमम्॥ २७॥
तीर्थं दौर्व्वासिकं नाम तथा पिञ्जरकं शुभम्।
ऋषितीर्थं ब्रह्मतुङ्गं वसुतीर्थं कुमारिकम्॥ २८॥
शक्रतीर्थं पञ्चनदं रेणुकातीर्थमेव च।
पैतामहञ्च विमलं रुद्रपादं तथोत्तमम्॥ २९॥
मणिमत्तञ्च कामाख्यं कृष्णतीर्थं कुशाविलम्।
यजनं याजनञ्चैव तथैव ब्रह्मवालुकम्॥ ३०॥
पुष्पन्यासं पुण्डरीकं मणिपूरं तथोत्तरम्।
दीर्घसत्रं हयपदं तीर्थं चानशनं तथा॥ ३१॥
गङ्गोद्भेदं शिवोद्भेदं नर्म्मदोद्भेदमेव च।
वस्त्रापदं दारुवलं छायारोहणमेव च॥ ३२॥

सिद्धेश्वरं मित्रवलं कालिकाश्रममेव च।
घटावटं भद्रवटं कौशाम्बी च दिवाकरम् ॥ ३३ ॥
द्वीपं सारस्वतञ्चैव विजयं कामदं तथा।
रुद्रकोटिं सुमनसं तीर्थं सद्रावनामितम् ॥ ३४ ॥
स्यमन्तपञ्चकं तीर्थं ब्रह्मतीर्थं सुदर्शनम्।
सततं पृथिवीसर्वं पारिप्लवपृथूदकौ ॥ ३५ ॥
दशाश्वमेधिकं तीर्थं सर्पिजं विषयान्तिकम्।
कोटितीर्थं पञ्चनदं वाराहं यक्षिणीह्रदम् ॥ ३६ ॥
पुण्डरीकं सोमतीर्थं मुञ्जवाटं तथोत्तमम्।
बदरीवनमासीनं रत्नमूलकमेव च ॥ ३७ ॥
लोकद्वारं पञ्चतीर्थं कपिलातीर्थमेव च।
सूर्यतीर्थं शङ्खिनी च गवां भवनमेव च ॥ ३८ ॥
तीर्थञ्च यक्षराजस्य ब्रह्मावर्त्तं सुतीर्थकम्।
कामेश्वरं मातृतीर्थं तीर्थं शीतवनं तथा ॥ ३९ ॥
स्नानलोमापहञ्चैव मासससरकं तथा।
दशाश्वमेधं केदारं ब्रह्मोदुम्बरमेव च ॥ ४० ॥
सप्तर्षिकुण्डञ्च तथा तीर्थं देव्याः सुजम्बुकम्।
ईहास्पदं कोटिकूटं किन्दानं किञ्जपं तथा ॥ ४१ ॥
कारण्डवं चावेध्यञ्च त्रिविष्टपमथापरम्।
पाणिखातं मिश्रकञ्च मधुवटमनोजवौ ॥ ४२ ॥
कौशिकी देवतीर्थञ्च तीर्थञ्च ऋणमोचनम्।
दिव्यञ्च नृगधूमाख्यं तीर्थं विष्णुपदं तथा ॥ ४३ ॥

अमराणां हृदं पुण्यं कोटितीर्थं तथापरम् ।
श्रीकुञ्जं शालितीर्थञ्च नैमिषीयञ्च विश्रुतम् ॥ ४४ ॥
ब्रह्मस्थानं सोमतीर्थं कन्यातीर्थं तथैव च ।
ब्रह्मतीर्थं मनस्तीर्थं तीर्थं वै कारुपावनम् ॥ ४५ ॥
सौगन्धिकवनञ्चैव मणितीर्थं सरस्वती ।
ईशानतीर्थं प्रवरं पावनं पाञ्चयज्ञिकम् ॥ ४६ ॥
त्रिशूलधारं माहेन्द्रं देवस्थानं कृतालयम् ।
शाकम्भरी देवतीर्थं सुवर्णाक्षं कलिं ह्रदम् ॥ ४७ ॥
क्षीरस्रवं विरूपाक्षं भृगुतीर्थं कुशोद्भवम् ।
ब्रह्मतीर्थं ब्रह्मयोनिं नीलपर्व्वतमेव च ॥ ४८ ॥
कुजाम्रकं भद्रवटं वसिष्ठपदमेव च ।
स्वर्गद्वारं प्रजाद्वारं कालिकाश्रममेव च ॥ ४९ ॥
रुद्रावर्त्तं सुगन्धाश्वं कपिलावनमेव च ।
भद्रकर्णह्रदञ्चैव शङ्कुकर्णह्रदं तथा ॥ ५० ॥
सप्तसारस्वतञ्चैव तीर्थमौशनसं तथा ।
कपालमोचनञ्चैव अवकीर्णञ्च काम्यकम् ॥ ५१ ॥
चतुःसामुद्रिकञ्चैव शतिकञ्च सहस्रिकम् ।
रैणुकं पञ्चवटकं विमोचनमथौजसम् ॥ ५२ ॥
स्थाणुतीर्थं कुरोस्तीर्थं स्वर्गद्वारं कुशध्वजम् ।
विश्वेश्वरं माणवकं कूपं नारायणाश्रयम् ॥ ५३ ॥
गङ्गाह्रदं वटञ्चैव बदरीपाटनं तथा ।
इन्द्रमार्गमेकरात्रं क्षीरकावासमेव च ॥ ५४ ॥

सोमतीर्थं दधीचञ्च श्रुततीर्थञ्च भो द्विजा ।
कोटितीर्थस्थलीञ्चैव भद्रकालाहदं तथा ॥ ८५ ॥
अरुन्धतीवनञ्चैव ब्रह्मावर्त्तं तथोत्तमम् ।
अश्ववेदी कुब्जावन यमुनाप्रभव तथा ॥ ८६ ॥
वीरं प्रमोक्ष सिन्धूत्थमृषिकुल्या सकृत्तिकम् ।
ऊर्मिमज्जनञ्चैव मायाविद्योद्भव तथा ॥ ८७ ॥
महाश्रमो वैतसिकाख्य सुन्दरिकाश्रमम् ।
बाहुतीर्थं चारुनदीं विमलाशोकमेव च ॥ ८८ ॥
तीर्थ पञ्चनदञ्चैव मार्कण्डेयस्य धीमतः ।
सोमतीर्थं सितोदञ्च तीर्थं मत्स्योदरी तथा ॥ ८९ ॥
सूर्यप्रभ सर्व्वतीर्थमशोकवनमेव च ।
अरणास्पद कामदञ्च शुक्रतीर्थं सवालुकम् ॥ ९० ॥
पिशाचमोचनञ्चैव सुभद्राहदमेव च ।
कुण्ड विमलदण्डस्य तीर्थं चण्डेश्वरस्य च ॥ ९१ ॥
ज्येष्ठस्थानहदञ्चैव पुण्यं ब्रह्मसर तथा ।
जैगीषव्यगुहा चैव हरिकेशवन तथा ॥ ९२ ॥
अजामुखसरञ्चैव घण्टाकर्णहृद तथा ।
पुण्डरीकहदञ्चैव वापी कर्कोटकस्य च ॥ ९३ ॥
सुवर्णास्योदपानञ्च श्वेततीर्थहद तथा ।
कुण्ड घर्घरिकायाश्च श्यामाकूपञ्च चन्द्रिका ॥ ९४ ॥
श्मशानस्तम्भकूपञ्च विनायकहद तथा ।
कूप सिन्धूद्भवञ्चैव पुण्य ब्रह्मसर तथा ॥ ९५ ॥

रुद्रावासं तथा तीर्थं नागतीर्थं पुलोमकम् ।
भक्तह्रदं क्षीरसरः प्रेताधारं कुमारकम् ॥ ६६ ॥
ब्रह्मावर्त्तं कुशावर्त्तं दधिकर्णोदपानकम् ।
शृङ्गतीर्थं महातीर्थं तीर्थश्रेष्ठा महानदी ॥ ६७ ॥
दिव्यं ब्रह्मसरं पुण्यं गयाशीर्षाक्षयं वटम् ।
दक्षिणं चोत्तरञ्चैव गोमयं रूपशीतिकम् ॥ ६८ ॥
कपिलाह्रदं गृध्रवटं सावित्रीह्रदमेव च ।
प्रभासन सीतवनं योनिद्वारञ्च धेनुकम् ॥ ६९ ॥
धन्यकं कोकिलाख्यञ्च मतङ्गह्रदमेव च ।
पतत्कूपं रुद्रतीर्थं शक्रतीर्थं सुमालिनम् ॥ ७० ॥
ब्रह्मस्थानं सप्तकुण्डं मणिरत्नह्रदं तथा ।
कौशिक्यं भरतञ्चैव तीर्थं ज्येष्ठालिका तथा ॥ ७१ ॥
विश्वेश्वरं कल्पसरः कन्यासंवेद्यमेव च ।
निश्चीराप्रभवश्चैव वसिष्ठाश्रममेव च ॥ ७२ ॥
देवकूटञ्च कूपञ्च वसिष्ठाश्रममेव च ।
वीराश्रमं ब्रह्मसरो ब्रह्मवीरावकापिली ॥ ७३ ॥
कुमारधारा श्रीधारा गौरीशिखरमेव च ।
शुनः कुण्डोऽथ तीर्थञ्च नन्दितीर्थं तथैव च ॥ ७४ ॥
कुमारवासं श्रीवासमौर्वीशीतीर्थमेव च ।
कुम्भकर्णह्रदञ्चैव कौशिकीह्रदमेव च ॥ ७५ ॥
धर्मतीर्थं कामतीर्थं तीर्थमुद्दालकं तथा ।
सन्ध्यातीर्थं कारतोयं कपिलं लोहितार्णवम् ॥ ७६ ॥

शोणोद्भवं वंशगुल्ममृषभं कलतीर्थकम् ।
पुण्यावतीहृदं तीर्थं तीर्थं बदरिकाश्रमम् ॥ ७७ ॥
रामतीर्थं पितृवन विरजातीर्थमेव च ।
मार्कण्डेयवनञ्चैव कृष्णतीर्थं तथा वटम् ॥ ७८ ॥
रोहिणीकूपप्रवरमिन्द्रद्युम्नसरञ्च यत् ।
सानुगर्त्तं समाहेन्द्र श्रीतीर्थं श्रीनदं तथा ॥ ७९ ॥
इषुतीर्थं वार्षभञ्च कावेरीहृदमेव च ।
कन्यातीर्थञ्च गोकर्णं गायत्रीस्थानमेव च ॥ ८० ॥
बदरीहृदमन्यच्च मध्यस्थानं विकर्णकम् ।
जातीहृदं देवकूपं कुशप्रवणमेव च ॥ ८१ ॥
सर्व्वदेवव्रतञ्चैव कन्याश्रमहृदं तथा ।
तथान्यद्वालखिल्यानां सपूर्व्वाणां तथापरम् ॥ ८२ ॥
तथान्यच्च महर्षीणामखण्डितहृदं तथा ।
तीर्थेष्वेतेषु विधिवत् सम्यक् श्रद्धासमन्वितः ॥ ८३ ॥
स्नानं करोति यो मर्त्यः सोपवासो जितेन्द्रियः ।
देवानृषीन्मनुष्यांश्च पितॄन् सन्तर्प्य च क्रमात् ॥ ८४ ॥
अभ्यर्च्य देवतास्तत्र स्थित्वा च रजनीत्रयम् ।
पृथक् पृथक् फलं तेषु प्रतितीर्थेषु भो द्विजाः ॥ ८५ ॥
प्राप्नोति हयमेधस्य नरो नास्त्यत्र संशयः ।
यस्त्विदं शृणुयान्नित्यं तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ॥
पठेच्च श्रावयेद्वापि सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ८६ ॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे तीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम
पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

षड्विंशोऽध्यायः ।

तत्रादौ स्वयम्भूब्रह्मर्षिसंवादवर्णनम्

मुनय ऊचुः ।

पृथिव्यामुत्तमां भूमिं धर्म्मकामार्थमोक्षदाम् ।
तीर्थानामुत्तमं तीर्थं ब्रूहि नो वदतांवर ॥ १ ॥

लोमहर्षण उवाच ।

इमं प्रश्नं मम गुरुं पप्रच्छुर्म्मुनयः पुरा ।
तमहं सम्प्रवक्ष्यामि यत्पृच्छध्वं द्विजोत्तमाः ॥ २ ॥
स्वाश्रमे सुमहापुण्ये नानापुष्पोपशोभिते ।
नानाद्रुमलताकीर्णे नानामृगगणैर्युते ॥ ३ ॥
पुन्नागैः कर्णिकारैश्च सरलैर्देवदारुभिः ।
शालैस्तालैस्तमालैश्च पनसैर्धवखादिरैः ॥ ४ ॥
पाटलाशोकबकुलैः करवीरैः सचम्पकैः ।
अन्यैश्च विविधैर्वृक्षैर्नानापुष्पोपशोभितैः ॥ ५ ॥
कुरुक्षेत्रे समासीनं व्यासं मतिमतां वरम् ।
महाभारतकर्त्तारं सर्व्वशास्त्रविशारदम् ॥ ६ ॥
अध्यात्मनिरतं सर्व्वज्ञं सर्व्वभूतहिते रतम् ।
पुराणागमवक्तारं वेदवेदाङ्गपारगम् ॥ ७ ॥
पराशरसुतं शान्तं पद्मपत्रायतेक्षणम् ।
द्रष्टुमभ्याययुः प्रीत्या मुनयः संशितव्रताः ॥ ८ ॥

कश्यपो जमदग्निश्च भरद्वाजोऽथ गौतमः ।
वसिष्ठो जैमिनिर्धौम्यो मार्कण्डेयोऽथ वाल्मिकिः ॥ ६ ॥

विश्वामित्रः शतानन्दो वात्स्यो गार्ग्योऽथ आसुरिः ।
सुमन्तुर्भार्गवो नाम कण्वो मेधातिथिर्गुरुः ॥ १० ॥
माण्डव्यश्च्यवनो धूम्रो ह्यसितो देवलस्तथा ।
मौद्गल्यस्तृणयज्ञश्च पिप्पलादोऽकृतव्रणः ॥ ११ ॥
सम्वर्त्तः कौशिको रैभ्यो मैत्रेयो हरितस्तथा ।
शाण्डिल्यश्च विभाण्डश्च दुर्व्वासा लोमशस्तथा ॥ १२ ॥
नारदः पर्व्वतश्चैव वैशम्पायनगालवौ ।
भास्करिः पूरणः सूतः पुलस्त्यः कपिलस्तथा ॥ १३ ॥
उलूकः पुलहो वायुर्देवस्थानश्चतुर्भुजः ।
सनत्कुमारः पैलश्च कृष्णः कृष्णानुभौतिकः ॥ १४ ॥
एतैर्म्मुनिवरैश्चान्यैर्वृतः सत्यवतीसुतः ।
रराज स मुनिः श्रीमान् नक्षत्रैरिव चन्द्रमाः ॥ १५ ॥
तानागतान्मुनीन् सर्व्वान् पूजयामास वेदवित् ।
तेऽपि तं प्रतिपूज्यैव कथां चक्रुः परस्परम् ॥ १६ ॥
कथान्ते ते मुनिश्रेष्ठाः कृष्णं सत्यवतीसुतम् ।
पप्रच्छुः संशयं सर्व्वे तपोवननिवासिनः ॥ १७ ॥

मुनय ऊचुः ।

मुने वेदांश्च शास्त्राणि पुराणागमभारतम् ।
भूतं भव्यं भविष्यञ्च सर्व्वं जानासि वाङ्मयम् ॥ १८ ॥

कष्टेऽस्मिन् दुःखबहुले निःसारे भवसागरे ।
रागग्राहाकुले रौद्रे विषयोदकसंप्लवे ॥ १९ ॥
इन्द्रियावर्त्तकलिले दृष्टोर्मिशतसङ्कुले ।
मोहपङ्काविले दुर्गे लोभगम्भीरदुस्तरे ॥ २० ॥
निमज्जज्जगदालोक्य निरालम्बमचेतनम् ।
पृच्छामस्त्वां महाभागं ब्रूहि नो मुनिसत्तम ? ॥ २१ ॥
श्रेयः किमत्र संसारे भैरवे लोमहर्षणे ।
उपदेशप्रदानेन लोकानुद्धर्त्तुमर्हसि ॥ २२ ॥
दुर्लभं परमं क्षेत्रं कर्त्तुमर्हसि मोक्षदम् ।
पृथिव्यां कर्म्मभूमिञ्च श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥ २३ ॥
कृत्वा किल नरः सम्यक् कर्म्म भूमौ यथोदितम् ।
प्राप्नोति परमां सिद्धिं नरकञ्च विकर्म्मतः ॥ २४ ॥
मोक्षक्षेत्रे तथा मोक्षं प्राप्नोति पुरुषः सुधीः ।
तस्माद् ब्रूहि महाप्राज्ञ यत्पृष्टोऽसि द्विजोत्तम ? ॥ २५ ॥
श्रुत्वा तु वचनं तेषां मुनीनां भावितात्मनाम् ।
व्यासः प्रोवाच भगवानभूतभव्यभविष्यवित् ॥ २६ ॥

व्यास उवाच ।

शृणुध्वं मुनयः सर्व्वं वक्ष्यामि यदि पृच्छथ ।
यः संवादोऽभवत् पूर्व्वमृषीणां ब्रह्मणा सह ॥ २७ ॥
मेरुपृष्ठे तु विस्तीर्णे नानारत्नविभूषिते ।
नानाद्रुमलताकीर्णे नानापुष्पोपशोभिते ॥ २८ ॥

नानापक्षिरुते रम्ये नानाप्रसवनाकुले ।
नानासत्त्वसमाकीर्णे नानाश्चर्य्यसमन्विते ॥ २६ ॥
नानावर्णशिलाकीर्णे नानाधातुविभूषिते ।
नानामुनिजनाकीर्णे नानाश्रमसमन्विते ॥ ३० ॥
तत्रासीनं जगन्नाथं जगद्योनिं चतुर्मुखम् ।
जगत्पतिं जगद्वन्द्यं जगदाधारमीश्वरम् ॥ ३१ ॥
देवदानवगन्धर्वैर्यक्षविद्याधरोरगैः ।
मुनिसिद्धाप्सरोभिश्च वृतमन्यैर्दिवालयैः ॥ ३२ ॥
केचित् स्तुवन्ति तं देवं केचिद्गायन्ति चाग्रतः ।
केचिद्वाद्यानि वादन्ते केचिन्नृत्यन्ति चापरे ॥ ३३ ॥
एवं प्रमुदिते काले सर्व्वभूतसमागमे ।
नानाकुसुमगन्धाढ्ये दक्षिणानिलसेविते ॥ ३४ ॥
भृग्वाद्यास्तं तदा देवं प्रणिपत्य पितामहम् ।
इममर्थमृषिवरा पप्रच्छुः पितरं द्विजाः ॥ ३५ ॥

ऋषय ऊचुः ।

भगवन्श्रोतुमिच्छामः कर्म्मभूमिं महीतले ।
वक्तुमर्हसि देवेश मोक्षश्चैवेञ्च दुर्लभम् ॥ ३६ ॥

व्यास उवाच ।

तेषां वचनमाकर्ण्य प्राह ब्रह्मा सुरेश्वरः ।
पप्रच्छुस्ते यथा प्रश्नं तत्सर्व्वं मुनिसत्तमाः ॥ ३७ ॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे स्वयम्भूब्रह्मर्षिसंवादे
प्रश्ननिरूपणं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सप्तविंशोऽध्यायः ।

तत्रादौ भारतवर्षवर्णनम् ।

ब्रह्मोवाच ।

शृणुध्व मुनय सर्व्वे यद्वो वक्ष्यामि साम्प्रतम् ।
पुराण वेदसम्बद्ध भुक्तिमुक्तिप्रद शुभम् ॥ १ ॥
पृथिव्या भारत वर्षे कर्म्मभूमिरुदाहृता ।
कर्म्मण फलभूमिश्च स्वर्गश्च नरक तथा ॥ २ ॥
तस्मिन् वर्षे नर पाप कृत्वा धर्म्मञ्च भो द्विजा ।
अवश्य फलमाप्नोति अशुभस्य शुभस्य च ॥ ३ ॥
ब्राह्मणाद्या स्वक कर्म्म कृत्वा सम्यक्सुसयता ।
प्राप्नुवन्ति परा सिद्धि तस्मिन्वर्षे न सशय ॥ ४ ॥
धर्म्मञ्चार्थञ्च कामञ्च मोक्षञ्च द्विजसत्तमा ।
प्राप्नोति पुरुष सर्व्व तस्मिन् वर्षे सुसयत ॥ ५ ॥
इन्द्राद्याश्च सुरा सर्व्वे तस्मिन् वर्षे द्विजोत्तमा ।
कृत्वा सुशोभन कर्म्म देवत्व प्रतिपेदिरे ॥ ६ ॥
अन्येऽपि लेभिरे मोक्ष पुरुषा सयतेन्द्रिया ।
तस्मिन् वर्षे बुधा शान्ता वीतरागा विमत्सरा ॥ ७ ॥
ये चापि स्वर्गे तिष्ठन्ति विमानेन गतज्वरा ।
तेऽपि कृत्वा शत कर्म्म तस्मिन् वर्षे दिव गता ॥ ८ ॥
निवास भारते वर्षे आकाङ्क्षन्ति सदा सुरा ।
स्वर्गापवर्गफलदे तत्पश्याम कदा वयम् ॥ ९ ॥

मुनय ऊचुः ।

यदेतद्भगवता प्रोक्तं कर्म्म नान्यत्र पुण्यदम् ।
पापाय वा सुरश्रेष्ठ वर्जयित्वा च भारतम् ॥ १० ॥
ततः स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यमं तच्च गम्यते ।
न खल्वन्यत्र मर्त्यानां भूमौ कर्म्म विधीयते ॥ ११ ॥
तस्माद्विस्तरतो ब्रह्मन्नस्माकं भारतं वद ।
यदि तेऽस्ति दयास्मासु यथावस्थितिरेव च ॥ १२ ॥
तस्माद्वर्षमिदं नाथ ये वास्मिन् वर्षपर्व्वताः ।
भेदाश्च तस्य वर्षस्य ब्रू हि सर्व्वानशेषतः ॥ १३ ॥

ब्रह्मोवाच ।

शृणुध्वं भारतं वर्षं नवभेदेन भो द्विजाः ।
समुद्रान्तरिता ज्ञेयास्ते समाश्च परस्परम् ॥ १४ ॥
इन्द्रद्वीपः कशेरुश्च ताम्रपर्णो गभस्तिमान् ।
नागद्वीपस्तथा सौम्या गान्धर्व्वो वारुणस्तथा ॥ १५ ॥
अयन्तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः ।
योजनानां सहस्रं वै द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरः १६ ॥
पूर्व्वे किराता यस्यासन् पश्चिमे यवनास्तथा ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चान्ते स्थिता द्विजाः ॥ १७ ॥
इज्यायुद्धवणिज्याद्यैः कर्म्मभिः कृतपावनाः ।
तेषां संव्यवहारश्च त्रिभिः कर्म्मभिरिष्यते ॥ १८ ॥
स्वर्गापवर्गहेतोश्च पुण्यं पापञ्च वै तथा ।

विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैवात्र कुलाचलाः।
तेषां सहस्रशश्चान्ये भूधरा ये समीपगाः ॥ २० ॥
विस्तारोच्छ्रयिणो रम्या विपुलाश्चित्रसानवः।
कोलाहलः स वैभ्राजो मन्दरो दर्दुराचलः ॥ २१ ॥
वातन्धयो वैद्युतश्च मैनाकः सुरसस्तथा।
तुङ्गप्रस्थो नागगिरिर्गोधनः पाण्डराचलः ॥ २२ ॥
पुष्पगिरिर्वैजयन्ती रैवतोऽर्बुद एव च।
ऋष्यमूकः स गोमन्थः कृतशैलः कृताचलः ॥ २३ ॥
श्रीपार्श्वतश्चकोरश्च शतशोऽन्ये च पर्वताः।
तैर्विमिश्रा जनपदा म्लेच्छाद्याश्चैव भागशः ॥ २४ ॥
तैः पीयन्ते सरिच्छ्रेष्ठास्ता बुध्यध्वं द्विजोत्तमाः।
गङ्गा सरस्वती सिन्धुश्चन्द्रभागा तथापरा ॥ २५ ॥
यमुना शतद्रुर्विपाशा वितस्तीरावती कुहूः।
गोमती धूतपापा च बाहुदा च दृषद्वती ॥ २६ ॥
विपाशा देविका चक्षुर्निष्ठीवा गण्डकी तथा।
कौशिकी चापगा चैव हिमवत्पादनिःसृताः ॥ २७ ॥
देवस्मृतिर्देववती वातघ्नी सिन्धुरेव च।
वेण्या तु चन्दना चैव सदानीरा मही तथा ॥ २८ ॥
चर्मण्वती वृषी चैव विदिशा वेदवत्यपि।
सिप्रा ह्यवन्ती च तथा पारियात्रानुगाः स्मृताः ॥ २९ ॥
शोणा महानदी चैव नर्मदा सुरसा क्रिया।
मन्दाकिनी दशार्णा च चित्रकूटा तथापरा ॥ ३० ॥

चित्रोत्पला वेत्रवती करमोदा पिशाचिका ।
तथान्यातिलघुश्रोणी विपापा शैवला नदी ॥ ३१ ॥
सध्वेरुजा शुक्तिमती शकुनी त्रिदिवा क्रमुः ।
ऋक्षपादप्रसूता वै तथान्या वेगवाहिनी ॥ ३२ ॥
सिप्रा पयोष्णी निर्विन्ध्या तापी चैव सरिद्वरा ।
वेणा वैतरणी चैव सिनीवाली कुमुद्वती ॥ ३३ ॥
तोया चैव महागौरी दुर्गा चान्तःशिला तथा ।
विन्ध्यपादप्रसूतास्ता नद्यः पुण्यजलाः शुभाः ॥ ३४ ॥
गोदावरी भीमरथी कृष्णावेणा तथापगा ।
तुङ्गभद्रा सुप्रयोगा तथान्या पापनाशिनी ॥ ३५ ॥
सह्यपादविनिष्क्रान्ता इत्येताः सरितां वराः ।
कृतमाला ताम्रपर्णी पुष्पजा प्रत्यलावती ॥ ३६ ॥
मलयाद्रिसमुद्भूताः पुण्याः शीतजलास्त्विमाः ।
पितृसोमर्षिकुल्या च वञ्जुला त्रिदिवा च या ॥ ३७ ॥
लाङ्गुलिनी वंशकरा महेन्द्रप्रभवाः स्मृताः ।
सुविकाला कुमारी च मनुगा मन्दगामिनी ॥ ३८ ॥
क्षयापलासिनी चैव शुक्तिमत्प्रभवाः स्मृताः ।
सर्व्वाः पुण्याः सरस्वत्यः सर्व्वा गङ्गाः समुद्रगाः ॥ ३९ ॥
विश्वस्य मातरः सर्व्वाः सर्व्वाः पापहरा स्मृताः ।
अन्याः सहस्रशः प्रोक्ताः क्षुद्रनद्यो द्विजोत्तमाः ॥ ४० ॥
प्रावृट्कालवहाः सन्ति सदाकालवहाश्च याः ।
मत्स्या मुकुटकुल्याश्च कुन्तला काशिकोशलाः ॥ ४१ ॥

अन्ध्रकाश्च कलिङ्गाश्च शमकाश्च वृकैः सह ।
मध्यदेशा जनपदाः प्रायशोऽमी प्रकीर्त्तिताः ॥ ४२ ॥
सह्यस्य चोत्तरे यस्तु यत्र गोदावरी नदी ।
पृथिव्यामपि कृत्स्नायां स प्रदेशो मनोरमः ॥ ४३ ॥
गोवर्द्धनपुरं रम्यं भार्गवस्य महात्मनः ।
वाहीका वाटधानाश्च सुतीराः कालतोयदाः ॥ ४४ ॥
अपरान्ताश्च शूद्राश्च वाह्लिकाश्च सकेरलाः ।
गान्धारा यवनाश्चैव सिन्धुसौवीरमद्रकाः ॥ ४५ ॥
शतद्रुहाः कलिङ्गाश्च पारदा हारमूषिकाः ।
माठराश्चैव कनकाः कैकेया दम्भमालिकाः ॥ ४६ ॥
क्षत्रियोपमदेशाश्च वैश्यशूद्रकुलानि च ।
काम्बोजाश्चैव विप्रेन्द्रा बर्बराश्च सलौकिकाः ॥ ४७ ॥
वीराश्चैव तुषाराश्च पह्लवाधायता नराः ।
आत्रेयाश्च भरद्वाजाः पुष्कलाश्च दशेरकाः ॥ ४८
लम्पकाः शुनःशोकाश्च कुलिका जाङ्गलैः सह ।
औषध्यश्चलचन्द्रा च किरातानाञ्च जातयः ॥ ४९ ॥
तोमरा हंसमार्गाश्च काश्मीराः करुणास्तथा ।
शूलिकाः कुहकाश्चैव मागधाश्च तथैव च ॥ ५० ॥
एते देशा उदीच्यास्तु प्राच्यान् देशान्निबोधत ।
अन्धा वामङ्कुराकाश्च वल्लकाश्च मखान्तकाः ॥ ५१ ॥
तथापरेऽङ्गा वङ्गाश्च मलदा मालवर्त्तिकाः ।
भद्रतुङ्गाः प्रतिजया मार्य्याङ्गाश्चापमर्द्दकाः ॥ ५२ ॥

प्राग्ज्योतिषाश्च मद्राश्च विदेहास्ताम्रलिप्तकाः।
मल्ला मगधका नन्दाः प्राच्या जनपदास्तथा ॥ ५३ ॥
तथापरे जनपदा दक्षिणापथवासिनः।
पूर्णाश्च केरलाश्चैव गोलाङ्गूलास्तथैव च ॥ ५४ ॥
ऋषिका मुषिकाश्चैव कुमारा रामठाः शकाः।
महाराष्ट्रा माहिषका कलिङ्गाश्चैव सर्व्वशः ॥ ५५ ॥
आभीराः सह वैशिक्या अटव्या सरवाश्च ये।
पुलिन्दाश्चैव मौलेया वैदर्भा दन्तकैः सह ॥ ५६ ॥
पौलिका मौलिकाश्चैव अश्मका भोजवर्द्धनाः।
कौलिकाः कुन्तलाश्चैव दम्भका नीलकालकाः ॥ ५७ ॥
दक्षिणात्यास्त्वमी देशा अपरान्तान्निबोधत।
शूर्पारकाः कालिवना लोलास्तालकटैः सह ॥ ५८ ॥
इत्येते ह्यपरान्ताश्च शृणुध्वं विन्ध्यवासिनः।
मलजाः कर्कशाश्चैव मेलकाश्चोलकैः सह ॥ ५९ ॥
उत्तमार्णा दशार्णाश्च भोजाः किष्किन्धकैः सह।
तोषलाः कोशलाश्चैव त्रैपुरा वैदिशास्तथा ॥ ६० ॥
तुम्बुरास्तु चराश्चैव यवनाः पवनैः सह।
अभया रुण्डिकेराश्च चर्च्चरा होत्रधर्त्तयः ॥ ६१ ॥
एते जनपदाः सर्व्वे तत्र विन्ध्यनिवासिनः।
अतो देशान् प्रवक्ष्यामि पर्व्वताश्रयिणश्च ये ॥ ६२ ॥
नीहारास्तुषमार्गाश्च कुरवस्तङ्गणा खसाः।
कर्णप्रावरणाश्चैव ऊर्णा दर्घाः सकुन्तकाः ॥ ६३ ॥

चित्रमार्गा मालवाश्च किरातास्तोमरैः सह ।
कृतत्रेतादिकश्चात्र चतुर्युगकृतो विधिः ॥ ६४ ॥
एवं तु भारतं वर्षं नवसंस्थानसंस्थितम् ।
दक्षिणे परतो यस्य पूर्व्वे चैव महोदधिः ॥ ६५ ॥
हिमवानुत्तरेणास्य कार्मुकस्य यथा गुणः ।
तदेतद्भारतं वर्षं सर्व्वबीजं द्विजोत्तमाः ॥ ६६ ॥
ब्रह्मत्वममरेशत्वं देवत्वं मरुतां तथा ।
मृगयक्षाप्सरोयोनिं तद्वत् सर्पसरीसृपाः ॥ ६७ ॥
स्थावराणाञ्च सर्व्वेषामितो विप्रा शुभाशुभैः ।
प्रयान्ति कर्म्मभूर्विप्रा नान्या लोकेषु विद्यते ॥ ६८ ॥
देवानामपि भो विप्राः सदैवैष मनोरथः ।
अपि मानुष्यमाप्स्यामो देवत्वात् प्रच्युताः क्षितौ ॥ ६६ ॥
मनुष्यः कुरुते यत्तु तन्न शक्यं सुरासुरैः ।
तत्कर्म्मनिगड़ग्रस्तैस्तत्कर्मक्षपणोन्मुखैः ॥ ७० ॥
न भारतसमं वर्षं पृथिव्यामस्ति भो द्विजाः ।
यत्र विप्रादयो वर्णाः प्राप्नुवन्त्यभिवाञ्छितम् ॥ ७१ ॥
धन्यास्ते भारते वर्षे जायन्ते ये नरोत्तमाः ।
धर्म्मार्थकाममोक्षाणां प्राप्नुवन्ति महाफलम् ॥ ७२ ॥
प्राप्यते यत्र तपसः फलं परमदुर्लभम् ।
सर्व्वदानफलञ्चैव सर्व्वयज्ञफलं तथा ॥ ७३ ॥
तीर्थयात्राफलञ्चैव गुरुसेवाफलं तथा ।
देवताराधनफलं स्वाध्यायस्य फलं द्विजाः ॥ ७४ ॥

यत्र देवाः सदा हृष्टा जन्म वाञ्छन्ति शोभनम्।
नानाव्रतफलञ्चैव नानाशास्त्रफलं तथा ॥ ७५ ॥
अहिंसादिफलं सम्यक्फल सर्व्वाभिवाञ्छितम्।
ब्रह्मचर्य्यफलञ्चैव गार्हस्थ्येन च यत्फलम् ॥ ७६ ॥
यत् फलं वनवासेन सन्न्यासेन च यत्फलम्।
इष्टापूर्त्तफलञ्चैव तथान्यच्छुभकर्म्मणाम् ॥ ७७ ॥
प्राप्यते भारते वर्षे न चान्यत्र द्विजोत्तमा ।
कः शक्नोति गुणान् वक्तुं भारतस्याखिलान्द्विजाः ॥ ७८ ॥
एवं सम्यङ्मया प्रोक्तं भारत वर्षमुत्तम्।
सर्व्वपापहरं पुण्यं धन्य बुद्धिविवर्द्धनम् ॥ ७९ ॥
य इदं शृणुयान्नित्यं पठेद्वा नियतेन्द्रिय ।
सर्व्वपापैर्विनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ ८० ॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे भारतवर्षानुकीर्त्तनं
नाम सप्तविंशोऽध्याय' ॥ २७ ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः ।

तत्रादौ कोणादित्यमाहात्म्यवर्णनम्।

ब्रह्मोवाच ।

तत्रास्ते भारते वर्षे दक्षिणोदधिसंस्थितः ।
ओण्ड्रदेश इति ख्यात' स्वर्गमोक्षप्रदायक ॥ १ ॥

समुद्रादुत्तरं तावद्यावद्विरजमण्डलम् ।
देशोऽसौ पुण्यशीलानां गुणैः सर्व्वैरलङ्कृतः ॥ २ ॥
तत्र देशप्रसूता ये ब्राह्मणाः संयतेन्द्रियाः ।
तपःस्वाध्यायनिरता वन्द्याः पूज्याश्च ते सदा ॥ ३ ॥
श्राद्धे दाने विवाहे च यज्ञे चाचार्य्यकर्म्मणि ।
प्रशस्ताः सर्व्वकार्य्येषु तत्रदेशोद्भवा द्विजाः ॥ ४ ॥
षट्कर्म्मनिरतास्तत्र ब्राह्मणा वेदपारगाः ।
इतिहासविदश्चैव पुराणार्थविशारदाः ॥ ५ ॥
सर्व्वशास्त्रार्थकुशला यज्वानो वीतमत्सराः ।
अग्निहोत्ररताः केचित् केचित् स्मार्त्ताग्नितत्पराः ॥ ६ ॥
पुत्रदारधनैर्युक्ता दातारः सत्यवादिनः ।
निवसन्त्युत्कले पुण्ये यज्ञोत्सवविभूषिते ॥ ७ ॥
इतरेऽपि त्रयो वर्णाः क्षत्रियाद्याः सुसंयताः ।
स्वधर्म्मनिरताः शान्तास्तत्र तिष्ठन्ति धार्म्मिकाः ॥ ८ ॥
कोणादित्य इति ख्यातस्तस्मिन् देशे व्यवस्थितः ।
यं दृष्ट्वा भास्करं मर्त्यः सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ९ ॥

मुनय ऊचुः ।

श्रोतुमिच्छाम तद्ब्रूहि क्षेत्रं सूर्य्यस्य साम्प्रतम् ।
तस्मिन् देशे सुरश्रेष्ठ यत्रास्ते स दिवाकरः ॥ १० ॥

ब्रह्मोवाच ।

लवणस्योदधेस्तीरे पवित्रे सुमनोहरे ।
सर्व्वत्र वालुकाकीर्णे देशे सर्व्वगुणान्विते ॥ ११ ॥

विलिख्य पद्मं मेधावी रक्तचन्दनवारिणा ।
अष्टपत्रं केसराढ्यं वर्तुलं चोर्द्धकर्णिकम् ॥ २३ ॥
तिलतण्डुलतोयञ्च रक्तचन्दनसंयुतम् ।
रक्तपुष्पं सदर्भञ्च प्रक्षिपेत्ताम्रभाजने ॥ २४ ॥
ताम्राभावेऽर्कपत्रस्य पुटैः कृत्वा तिलादिकम् ।
पिधाय तन्मुनिश्रेष्ठाः पात्रं पात्रेण विन्यसेत् ॥ २५ ॥
करन्यासाङ्गविन्यासं कृत्वाङ्गहृदयादिभिः ।
आत्मानं भास्करं ध्यात्वा सम्यक् श्रद्धासमन्वितः ॥ २६ ॥
मध्ये चाग्निदले धीमान्नैर्ऋते श्वसने दले ।
कामारिगोचरे चैव पुनर्मध्ये च पूजयेत् ॥ २७ ॥
प्रभूतं विमलं सारमाराध्यं परमं सुखम् ।
सम्पूज्य पद्ममावाह्य गगनात्तत्र भास्करम् ॥ २८ ॥
कर्णिकोपरि संस्थाप्य ततो मुद्रां प्रदर्शयेत् ।
कृत्वा स्नानादिकं सर्वं ध्यात्वा तं सुसमाहितः ॥ २९ ॥
सितपद्मोपरि रविं तेजोबिम्बे व्यवस्थितम् ।
पिङ्गाक्षं द्विभुजं रक्तं पद्मपत्रारुणाम्बरम् ॥ ३० ॥
सर्वलक्षणसंयुक्तं सर्वाभरणभूषितम् ।
सुरूपं वरदं शान्तं प्रभामण्डलमण्डितम् ॥ ३१ ॥
उद्यन्तं भास्करं दृष्ट्वा सान्द्रसिन्दूरसन्निभम् ।
ततस्तत्पात्रमादाय जानुभ्यां धरणीं गतः ॥ ३२ ॥
कृत्वा शिरसि तत्पात्रमेकचित्तस्तु वाग्यतः ।
त्र्यक्षरेण तु मन्त्रेण सूर्यायार्घ्यं निवेदयेत् ॥ ३३ ॥

अदीक्षितस्तु तस्यैव नाम्नैवार्घ्यं प्रयच्छति ।
श्रद्धया भावयुक्तेन भक्तिग्राह्यो रविर्यत ॥ ३४ ॥
अग्निनिर्ऋतिवाय्वीशमध्यपूर्वादिदिक्षु च ।
हृच्छिरश्च शिखावर्मनेत्राण्यस्त्रञ्च पूजयेत् ॥ ३५ ॥
दत्तार्घ्यं गन्धधूपञ्च दीप नैवेद्यमेव च ।
जप्त्वा स्तुत्वा नमस्कृत्वा मुद्रा बद्ध्वा विसर्जयेत् ॥ ३६ ॥
ये चार्घ्यं सम्प्रयच्छन्ति सूर्याय नियतेन्द्रिया ।
ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या स्त्रिय शूद्राश्च सयता ॥ ३७ ॥
भक्तिभावेन सतत विशुद्धेनान्तरात्मना ।
ते भुक्त्वाभिमतान् कामान् प्राप्नुवन्ति परा गतिम् ॥ ३८ ॥
त्रैलोक्यदीपक देव भास्कर गगनेरतम् ।
ये सश्रयन्ति मनुजास्ते स्यु सुखस्य भाजनम् ॥ ३९ ॥
यावन्न दीयते चार्घ्यं भास्कराय यथोदितम् ।
तावन्न पूजयेद्विष्णु शङ्कर वा सुरेश्वरम् ॥ ४० ॥
तस्मात् प्रयत्नमास्थाय दद्यादर्घ्यं दिने दिने ।
आदित्याय शुचिर्भूत्वा पुष्पैर्गन्धैर्मनोरमै ॥ ४१ ॥
एव ददाति यश्चार्घ्यं सप्तम्या सुसमाहित ।
आदित्याय शचि स्नात स लभेदीप्सित फलम् ॥ ४२ ॥
रोगाद्विमुच्यते रोगी वित्तार्थी लभते धनम् ।
विद्या प्राप्नोति विद्यार्थी सुतार्थी पुत्रवान् भवेत् ॥ ४३ ॥
य य काममभिध्यायन् सूर्यायार्घ्यं प्रयच्छति ।
तस्य तस्य फल सम्यक् प्राप्नोति पुरुष सुधी ॥ ४४ ॥

स्नात्वा वै सागरे दत्त्वा सूर्यायार्घ्यं प्रणम्य च
नरो वा यदि वा नारी सर्वकामफलं लभेत् ॥ ४५ ॥
ततः सूर्यालयं गच्छेत् पुष्पमादाय वाग्यतः ।
प्रविश्य पूजयेद्भानुं कृत्वा तु त्रिः प्रदक्षिणम् ॥ ४६ ॥
पूजयेत् परया भक्त्या कोणार्कं मुनिसत्तमाः ।
गन्धैः पुष्पैस्तथा दीपैर्धूपैर्नैवेद्यकैरपि ॥ ४७ ॥
दण्डवत् प्रणिपातैश्च जयशब्दैस्तथा स्तवैः ।
एवं सम्पूज्य तं देवं सहस्रांशुं जगत्पतिम् ॥ ४८ ॥
दशानामश्वमेधानां फलं प्राप्नोति मानवः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो युवा दिव्यवपुर्नरः ॥ ४९ ॥
सप्तावरान् सप्त परान् वंशानुद्धृत्य भो द्विजाः ।
विमानेनार्कवर्णेन कामगेन सुवर्चसा ॥ ५० ॥
उपगीयमानो गन्धर्वैः सूर्यलोकं स गच्छति ।
भुक्त्वा तत्र वरान् भोगान् यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ५१ ॥
पुण्यक्षयादिहायातः प्रवरे योगिनां कुले ।
चतुर्वेदी भवेद्विप्रः स्वधर्मनिरतः शुचिः ॥ ५२ ॥
योगं विवस्वतः प्राप्य ततो मोक्षमवाप्नुयात् ।
चैत्रे मासि सिते पक्षे यात्रां दमनभञ्जिकाम् ॥ ५३ ॥
यः करोति नरस्तत्र पूर्वोक्तं स फलं लभेत् ।
शयनोत्थापने भानोः संक्रान्त्यां विषुवायने ॥ ५४ ॥
वारे रवेस्तिथौ चैव पर्वकालेऽथवा द्विजाः ।
ये तत्र यात्रां कुर्वन्ति श्रद्धया संयतेन्द्रियाः ॥ ५५ ॥

विमानेनार्कवर्णेन सूर्य्यलोकं व्रजन्ति ते ।
आस्ते तत्र महादेवस्तीरे नदनदीपतेः ॥ ५६ ॥
रामेश्वर इति ख्यातः सर्व्वकामफलप्रदः ।
ये तं पश्यन्ति कामारिं स्नात्वा सम्यङ्महोदधौ ॥ ५७ ॥
गन्धैः पुष्पैस्तथा धूपैर्दीपैर्नैवेद्यकैर्वरैः ।
प्रणिपातैस्तथा स्तोत्रैर्गीतैर्वाद्यैर्मनोहरैः ॥ ५८ ॥
राजसूयफलं सम्यग्वाजिमेधफलं तथा ।
प्राप्नुवन्ति मद्दात्मानः संसिद्धिं परमां तथा ॥ ५९ ॥
कामगेन विमानेन किङ्किणीजालमालिना ।
उपगीयमाना गन्धर्व्वैः शिवलोकं व्रजन्ति ते ॥ ६० ॥
आभूतसंप्लवं यावद्भुक्त्वा भोगान्मनोरमान् ।
पुण्यक्षयादिहागत्य चातुर्व्वेदा भवन्ति ते ६१ ॥
शाङ्करं योगमास्थाय ततो मोक्षं व्रजन्ति ते ।
यस्तत्र सवितुः क्षेत्रे प्राणांस्त्यजति मानवः ॥ ६२ ॥
स सूर्य्यलोकमास्थाय देववन्मोदते दिवि ।
पुनर्मानुषतां प्राप्य राजा भवति धार्म्मिकः ॥ ६३ ॥
योगं रवेः समासाद्य ततो मोक्षमवाप्नुयात् ।
एवं मया मुनिश्रेष्ठाः प्रोक्तं क्षेत्रं सुदुर्लभम्
कोणार्कस्योदधेस्तीरे भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ ६४ ॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे स्वयम्भु ऋषिसंवादे कोणादित्यमाहात्म्यकीर्त्तनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशोऽध्यायः ।

तत्रादौ सूर्यपूजाप्रकरणम्

मुनय ऊचुः ।

श्रुतोऽस्माभिः सुरश्रेष्ठ भवता यदुदाहृतम् ।
भास्करस्य परं क्षेत्रं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ १ ॥
न तृप्तिमधिगच्छाम शृण्वन्तः सुखदां कथाम् ।
तव वक्त्रोद्भवां पुण्यामादित्यस्याघनाशिनीम् ॥ २ ॥
अतः परं सुरश्रेष्ठ ब्रूहि नो वदतांवर ।
देवपूजाफलं यच्च यच्च दानफलं प्रभो ॥ ३ ॥
प्रणिपाते नमस्कारे तथा चैव प्रदक्षिणे ।
दीपधूपप्रदाने च संमार्जनविधौ च यत् ॥ ४ ॥
उपवासे च यत् पुण्यं यत् पुण्यं नक्तभोजने ।
अर्घ्यश्च कीदृशः प्रोक्तः कुत्र वा संप्रदीयते ॥ ५ ॥
कथञ्च क्रियते भक्तिः कथं देवः प्रसीदति ।
एतत् सर्वं सुरश्रेष्ठ श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥ ६ ॥

ब्रह्मोवाच ।

अर्घ्यं पूजादिकं सर्वं भास्करस्य द्विजोत्तमाः ।
भक्तिं श्रद्धां समाधिञ्च कथ्यमानं निबोधत ॥ ७ ॥
मनसा भावना भक्तिरिष्टा श्रद्धा च कीर्त्यते ।
ध्यानं समाधिरित्युक्तं शृणुध्वं सुसमाहिताः ॥ ८ ॥

तत्कथां श्रावयेद् यस्तु तद्भक्तान् पूजयीत वा।
अग्निशुश्रूषकश्चैव स वै भक्तः सनातनः ॥ ९ ॥
तच्चित्तस्तन्मनाश्चैव देवपूजारतः सदा।
तत्कर्म्मकृद्भवेद् यस्तु वै भक्तः सनातनः ॥ १० ॥
देवार्थे क्रियमाणानि यः कर्म्माण्यनुमन्यते।
कीर्त्तनाद्वा परो विप्राः स वै भक्तनरो नरः ॥ ११ ॥
नाभ्यसूयेत तद्भक्तान् ननिन्द्याद्यान्यदेवताम्।
आदित्यव्रतचारी च स वै भक्ततरो नरः ॥ १२ ॥
गच्छंस्तिष्ठन् स्वपञ्जिघ्रन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि।
यः स्मरेद्भास्करं नित्यं स वै भक्तनरो नरः ॥ १३ ॥
एवंविधा त्वियं भक्तिः सदा कार्य्या विजानता।
भक्त्या समाधिना चैव स्तवेन मनसा तथा ॥ १४ ॥
क्रियते नियमो यस्तु दानं विप्राय दीयते।
प्रतिगृह्णन्ति तं देवा मनुष्याः पितरस्तथा ॥ १५ ॥
पत्रं पुष्पं फलं तोयं यद्भक्त्या समुपाहृतम्।
प्रतिगृह्णन्ति तद्देवो नास्तिकान् वर्ज्जयन्ति च ॥ १६ ॥
भावशुद्धिः प्रयोक्तव्या नियमाचारसंयुता।
भावशुद्ध्या क्रियते यत्तत् सर्व्वं सफलं भवेत् ॥ १७ ॥
स्तुतिजप्योपहारेण पूजयापि विवस्वतः।
उपवासेन भक्त्या वै सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १८ ॥
प्रणिधाय शिरो भूम्यां नमस्कारं करोति यः।
तत्क्षणात् सर्व्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ १९ ॥

भक्तियुक्तो नरो योऽसौ रवेः कुर्य्यात् प्रदक्षिणाम् ।
प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा ॥ २० ॥
सूर्य्यं मनसि यः कृत्वा कुर्य्याद्व्योमप्रदक्षिणाम् ।
प्रदक्षिणीकृतास्तेन सर्व्वे देवा भवन्ति हि ॥ २१ ॥
एकाहारो नरो भूत्वा षष्ठ्यां योऽर्च्चयते रविम् ।
नियमव्रतचारी च भवेद्भक्तिसमन्वितः ॥ २२ ॥
सप्तम्यां वा महाभागाः सोऽश्वमेधफलं लभेत् ।
अहोरात्रोपवासेन पूजयेद् यस्तु भास्करम् ॥ २३ ॥
सप्तम्यामथवा षष्ठ्यां स याति परमां गतिम् ।
कृष्णपक्षस्य सप्तम्यां सोपवासो जितेन्द्रियः ॥ २४ ॥
सर्व्वरक्तोपहारेण पूजयेद् यस्तु भास्करम् ।
पद्मप्रभेण यानेन सूर्य्यलोकं स गच्छति ॥ २५ ॥
शुक्लपक्षस्य सप्तम्यामुपवासपरो नरः ।
सर्व्वशुक्लोपहारेण पूजयेद् यस्तु भास्करम् ॥ २६ ॥
सर्व्वपापविनिर्म्मुक्तः सूर्य्यलोकं स गच्छति ।
अर्कसम्पुटसंयुक्तमुदकं प्रसृतं पिबेत् ॥ २७ ॥
क्रमवृद्ध्या चतुर्व्विंशमेकैकं क्षपयेत् पुनः ।
द्वाभ्यां संवत्सराभ्यान्तु समाप्तनियमो भवेत् ॥ २८ ॥
सर्व्वकामप्रदा ह्येषा प्रशस्ता ह्यर्कसप्तमी ।
शुक्लपक्षस्य सप्तम्यां यदादित्यदिनं भवेत् ॥ २९ ॥
सप्तमी विजया नाम तत्र दत्तं महत् फलम् ।
स्नानं दानं तपो होम उपवासस्तथैव च ॥ ३० ॥

दीपदाता स्वर्गलोके दीपमालेव राजते ।
यः समालभते नित्यं कुङ्कुमागुरुचन्दनैः ॥ ४२ ॥
सम्पद्यते नरः प्रेत्य धनेन यशसा श्रिया ।
रक्तचन्दनसमिश्रै रक्तपुष्पैः शुचिर्नरः ॥ ४३ ॥
उदयेऽर्घ्यं सदा दत्त्वा सिद्धिं संवत्सराल्लभेत् ।
उदयात् परिवर्त्तेत यावदस्तमने स्थितः ॥ ४४ ॥
जपन्नभिमुखः किञ्चिन्मन्त्रं स्तोत्रमथापि वा ।
आदित्यव्रतमेतत्तु महापातकनाशनम् ॥ ४५ ॥
अर्घ्येण सहितश्चैव सर्व्वं साङ्गं प्रदापयेत् ।
उदये श्रद्धया युक्तं सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४६ ॥
सुवर्णधेन्वनडुहवसुधावस्त्रसंयुतम् ।
अर्घ्यप्रदाता लभते सप्तजन्मानुगं फलम् ॥ ४७ ॥
अग्नौ तोयेऽन्तरिक्षे च शुचौ भूम्यां तथैव च ।
प्रतिमायां तथा पिण्ड्यां देयमर्घ्यं प्रयत्नतः ॥ ४८ ॥
नापसव्यं न सव्यञ्च दद्यादभिमुखः सदा ।
सघृतं गुग्गुलं चापि रवेर्भक्तिसमन्वितः ॥ ४९ ॥
तत्क्षणात् सर्व्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ।
श्रीवासं चतुरस्रञ्च देवदारु तथैव च ॥ ५० ॥
कर्पूरागुरुधूपानि दत्त्वा वै स्वर्गगामिनः ।
अयने तूत्तरे सूर्य्यमथवा दक्षिणायने ॥ ५१ ॥
पूजयित्वा विशेषेण सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ।
विषुवेषूपरागेषु षडशीतिमुखेषु च ॥ ५२ ॥

पूजयित्वा विशेषेण सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ।
एव वेलासु सर्व्वासु सर्व्वकालञ्च मानव ॥ ५३ ॥
भक्त्या पूजयते योऽर्कं सोऽर्कलोके महीयते ।
कृसरै. पायसे पूपै फलमूलघृतौदने ॥ ५४ ॥
वलिं कृत्वा तु सूर्य्याय सर्व्वान् कामानवाप्नुयात् ।
घृतेन तर्पणं कृत्वा सर्व्वसिद्धो भवेन्नर ॥ ५५ ॥
क्षीरेण तर्पणं कृत्वा मनस्तापैर्न युज्यते ।
दध्ना तु तर्पणं कृत्वा कार्य्यसिद्धिं लभेन्नर ॥ ५६ ॥
स्नानार्थमाहरेद्यस्तु जलं भानो समाहित ।
तीर्थेषु शुचिशतपत्र स याति परमा गतिम् ॥ ५७ ॥
छत्र ध्वजं वितानं वा पताका चामराणि च ।
श्रद्धया भानवे दत्त्वा गतिमिष्टामवाप्नुयात् ॥ ५८ ॥
यद्यद्द्रव्यं नरो भक्त्या आदित्याय प्रयच्छति ।
तत्तस्य शतसाहस्रमुत्पादयति भास्कर ॥ ५६ ॥
मानसं वाचिकं वापि कायजं यच्च दुष्कृतम् ।
सर्व्वं सूर्य्यप्रसादेन तदशेषं व्यपोहति ॥ ६० ॥
एकाहेनापि यद्भानो पूजाया प्राप्यते फलम् ।
यथोक्तदक्षिणैर्विप्रैर्न तत् क्रतुशतैरपि ॥ ६१ ॥

इति श्रीब्राह्म महापुराणे सूर्य्यपूजादि नामैकोन
त्रिंशोऽध्याय ॥ २६ ॥

त्रिंशोऽध्यायः ।

आदित्यमाहात्म्यवर्णनम्

मुनय ऊचुः ।

अहो देवस्य माहात्म्यं श्रुतमेवं जगत्पते ।
भास्करस्य सुरश्रेष्ठ यद्वस्त्वेष दुर्लभम् ॥ १ ॥
भूयः प्रब्रूहि देवेश यत् पृच्छामो जगत्पते ।
श्रोतुमिच्छामहे ब्रह्मन् परं कौतूहलं हि नः ॥ २ ॥
गृहस्थो ब्रह्मचारी च वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः ।
य इच्छेन्मोक्षमास्थ तुं देवतां कां यजेत सः ॥ ३ ॥
कुतो ह्यस्याक्षयः स्वर्गः कुतो निःश्रेयसं परम् ।
स्वर्गतश्चैव किं कुर्य्याद्येन न च्यवते पुनः ॥ ४ ॥
देवानां चात्र को देवः पितॄणाञ्चैव कः पिता ।
यस्मात् परतरं नास्ति तन्मे ब्रूहि सुरेश्वर ॥ ५ ॥
कुतः सृष्टमिदं विश्वं सर्व्वं स्थावरजङ्गमम् ।
प्रलये च कमभ्येति तद्भवान् वक्तुमर्हसि ॥ ६ ॥

ब्रह्मोवाच ।

उद्यन्नेवैष कुरुते जगद्वितिमिरं करैः ।
नातः परतरो देवः कश्चिदन्यो द्विजोत्तमाः ॥ ७ ॥
अनादिनिधनो ह्येष पुरुषः शाश्वतोऽव्ययः ।
तापयत्येष त्रीँल्लोकान् भवन्रश्मिभिरुल्बणः ॥ ८ ॥

सर्वदेवमयो ह्येष तपतां तपनो वर ।
सर्वस्य जगतो नाथ सर्वसाक्षी जगत्पति ॥ ९ ॥
संक्षिपत्येव भूतानि तथा विसृजते पुन ।
एष भाति तपत्येव वर्षत्येव गभस्तिभि ॥ १० ॥
एष धाता विधाता च भूतादिर्भूतभावन ।
न ह्येष क्षयमायाति नित्यमक्षयमण्डल ॥ ११ ॥
पितृणां च पिता ह्येष देवतानां हि देवता ।
ध्रुवस्थान स्मृत ह्येतद्यस्मान्न च्यवते पुन ॥ १२ ॥
सर्गकाले जगत् कृत्स्नमादित्यात् सम्प्रसूयते ।
प्रलये च तमभ्येति भास्कर दीप्ततेजसम् ॥ १३ ॥
योगिनश्चाप्यसंख्याताम् त्यक्त्वा गृहकलेवरम् ।
वायुभूत्वा विशन्तीह तेजोराशौ दिवाकरे ॥ १४ ॥
अस्य रश्मिसहस्राणि शाखा इव विहङ्गमा ।
वसन्त्याश्रित्य मुनय ससिद्धा दैवतै सह ॥ १५ ॥
गृहस्था जनकाद्याश्च राजानो योगधर्मिण ।
वालखिल्यादयश्चैव ऋषयो ब्रह्मवादिन ॥ १६ ॥
वानप्रस्थाश्च ये चान्ये व्यासाद्या भिक्षवस्तथा ।
योगमास्थाय सर्वे ते प्रविष्टा सूर्यमण्डलम् ॥ १७ ॥
शुको व्याससुत श्रीमान्योगमभ्यमवाप्य स ।
आदित्यकिरणान् गत्वा ह्यपुनर्भावमास्थित ॥ १८ ॥
शब्दमात्रश्रुतिमुखा ब्रह्मविष्णुशिवादय ।
प्रत्यक्षोऽय परो देव सूर्यस्तिमिरनाशन ॥ १९ ॥

चतुर्थी तस्य या मूर्त्तिर्नाम्ना त्वष्टेति विश्रुता ।
स्थिता वनस्पतौ सा तु ओषधीषु च सर्व्वतः ॥ ३१ ॥
पञ्चमी तस्य या मूर्त्तिर्नाम्ना पूषेति विश्रुता ।
अन्ने व्यवस्थिता सा तु प्रजा पुष्णाति नित्यश ॥ ३२ ॥
मूर्त्तिः षष्ठी रवेर्या तु अर्य्यमा इति विश्रुता ।
वायो संसरणा सा तु देवेष्वेव समाश्रिता ॥ ३३ ॥
भानोर्या सप्तमी मूर्त्तिर्नाम्ना भगेति विश्रुता ।
भूतिष्ववस्थिता सा तु शरीरेषु च देहिनाम् ॥ ३४ ॥
मूर्त्तिर्या त्वष्टमी तस्य विवस्वानिति विश्रुता ।
अग्नौ प्रतिष्ठिता सा तु पचत्यन्नं शरीरिणाम् ॥ ३५ ॥
नवमी चित्रभानोर्या मूर्त्तिर्विष्णुश्च नामत ।
प्रादुर्भवति सा नित्य देवानामरिसूदनी ॥ ३६ ॥
दशमी तस्य या मूर्त्तिरंशुमानिति विश्रुता ।
वायौ प्रतिष्ठिता सा तु प्रह्लादयति वै प्रजाः ॥ ३७ ॥
मूर्त्तिस्त्वेकादशी भानोर्नाम्ना वरुणसंज्ञिता ।
जलेष्ववस्थिता सा तु प्रजां पुष्णाति नित्यशः ॥ ३८ ॥
मूर्त्तिर्या द्वादशी भानोर्नाम्ना मित्रेति संज्ञिता ।
लोकाना सा हितार्थाय स्थिता चन्द्रसरित्तटे ॥ ३९ ॥
वायुभक्षस्तपस्तेपे स्थित्वा मैत्रेण चक्षुषा ।
अनुगृह्णन् सदा भक्तान् वरैर्नानाविधैस्तु सः ॥ ४०
एवं सा जगता मूर्त्तिर्हिताय विहिता पुरा ।
तत्र मित्र स्थितो यस्मात्तस्मान्मित्र परं स्मृतम् ॥ ४१ ॥

तस्मादन्यत्र भक्तिर्हि न कार्य्या शुभमिच्छता ।
यस्माद्दृष्टेरगम्यास्ते देवा विष्णुपुरोगमाः ॥ २० ॥
अतो भवद्भिः सततमभ्यर्च्यो भगवान् रविः ।
स हि माता पिता चैव कृत्स्नस्य जगतो गुरु ॥ २१ ॥
अनाद्यो लोकनाथोऽसौ रश्मिमाली जगत्पतिः ।
मित्रत्वे च स्थितो यस्मात्तपस्तेपे द्विजोत्तमा ॥ २२ ॥
अनादिनिधनो ब्रह्मा नित्यश्चाक्षय एव च ।
सृष्ट्वा ससागरान् द्वीपान् भुवनानि चतुर्दश ॥ २३ ॥
लोकानां स हितार्थाय स्थितचन्द्रसरित्तटे ।
सृष्ट्वा प्रजापतीन् सर्व्वानसृष्ट्वा च विविधा प्रजाः ॥ २४
तत शतसहस्रांशुरव्यक्तश्च पुन. स्वयम् ।
कृत्वा द्वादशधात्मानमादित्यमुपपद्यते ॥ २५ ॥
इन्द्रो धाताथ पर्जन्यस्त्वष्टा पूषार्य्यमा भगः ।
विवस्वान् विष्णुरंशश्च वरुणो मित्र एव च ॥ २६ ॥
आभिर्द्वादशभिस्तेन सूर्य्येण परमात्मना ।
कृत्स्नं जगदिदं व्याप्त मूर्त्तिभिश्च द्विजोत्तमाः ॥ २७ ॥
तस्य या प्रथमा मूर्त्तिरादित्यस्येन्द्रसंज्ञिता ।
स्थिता सा देवराजत्वे देवानां रिपुनाशिनी ॥ २८ ॥
द्वितीया तस्य या मूर्त्तिर्नाम्ना धातेति कीर्त्तिता ।
स्थिता प्रजापतित्वेन विविधा सृजते प्रजाः ॥ २९ ॥
तृतीयार्कस्य या मूर्त्ति पर्जन्य इति विश्रुता ।
मेघेष्वेव स्थिता सा तु वर्षते च गभस्तिभिः ॥ ३० ॥

चतुर्थी तस्य या मूर्त्तिर्नाम्ना त्वष्टेति विश्रुता ।
स्थिता वनस्पतौ सा तु औषधीषु च सर्व्वतः ॥ ३१ ॥
पञ्चमी तस्य या मूर्त्तिर्नाम्ना पूषेति विश्रुता ।
अन्ने व्यवस्थिता सा तु प्रजां पुष्णाति नित्यशः ॥ ३२ ॥
मूर्त्तिः षष्ठी रवेर्या तु अर्य्यमा इति विश्रुता ।
वायोः संसरणा सा तु देवेष्वेव समाश्रिता ॥ ३३ ॥
भानोर्या सप्तमी मूर्त्तिर्नाम्ना भगेति विश्रुता ।
भूतिष्ववस्थिता सा तु शरीरेषु च देहिनाम् ॥ ३४ ॥
मूर्त्तिर्या त्वष्टमी तस्य विवस्वानिति विश्रुता ।
अग्नौ प्रतिष्ठिता सा तु पचत्यन्नं शरीरिणाम् ॥ ३५ ॥
नवमी चित्रभानोर्या मूर्त्तिर्विष्णुश्च नामतः ।
प्रादुर्भवति सा नित्य देवानामरिसूदनी ॥ ३६ ॥
दशमी तस्य या मूर्त्तिरंशुमानिति विश्रुता ।
वायौ प्रतिष्ठिता सा तु प्रह्लादयति वै प्रजाः ॥ ३७ ॥
मूर्त्तिस्त्वेकादशी भानोर्नाम्ना वरुणसंज्ञिता ।
जलेष्ववस्थिता सा तु प्रजां पुष्णाति नित्यशः ॥ ३८ ॥
मूर्त्तिर्या द्वादशी भानोर्नाम्ना मित्रेति संज्ञिता ।
लोकानां सा हितार्थाय स्थिता चन्द्रसरित्तटे ॥ ३९ ॥
वायुभक्षस्तपस्तेपे स्थित्वा मैत्रेण चक्षुषा ।
अनुगृह्णन् सदा भक्तान् वरैर्नानाविधैस्तु सः ॥ ४०
एवं सा जगतां मूर्त्तिर्हिताय विहिता पुरा ।
तत्र मित्रः स्थितो यस्मात्तस्मान्मित्रं परं स्मृतम् ॥ ४१ ॥

आभिर्द्वादशभिस्तेन सवित्रा परमात्मना ।
कृत्स्नं जगदिदं व्याप्तं मूर्तिभिश्च द्विजोत्तमाः ॥ ४२ ॥
तस्मादुभ्येयो नमस्यश्च द्वादशस्वासु मूर्तिषु ।
भक्तिमद्भिर्नरैर्नित्यं तद्गतेनान्तरात्मना ॥ ४३ ॥
इत्येवं द्वादशादित्यान्नमस्कृत्वा तु मानवः ।
नित्यं श्रुत्वा पठित्वा च सूर्यलोके महीयते ॥ ४४ ॥

मुनय ऊचुः ।

यदि तावदयं सूर्यश्चादिदेवः सनातनः ।
ततः कस्मात्तपस्तेपे वरेप्सुः प्राकृतो यथा ॥ ४५ ॥
एतद्वः सम्प्रवक्ष्यामि परं गुह्यं विभावसोः ।
पृष्टं मित्रेण यत् पूर्वं नारदाय महात्मने ॥ ४६ ॥
प्राङ्मयोक्तास्तु युष्माकं रवेर्द्वादश मूर्तयः ।
मित्रश्च वरुणश्चाभौ तासां तपसि संस्थितौ ॥ ४७ ॥
अम्भक्षो वरुणस्तासां तस्थौ पश्चिमसागरे ।
मित्रो मित्रवने चास्मिन् वायुभक्षोऽभवत्तदा ॥ ४८ ॥
अथ मेरुगिरेः शृङ्गात् प्रच्युतो गन्धमादनात् ।
नारदस्तु महायोगी सर्वांल्लोकाञ्चरन् वशी ॥ ४९ ॥
आजगामाथ तत्रैव यत्र मित्रोऽचरत्तपः ।
तं दृष्ट्वा तु तपस्यन्तं तस्य कौतूहलं ह्यभूत् ॥ ५० ॥
योऽक्षयश्चाव्ययश्चैव व्यक्ताव्यक्तः सनातनः ।
धृतमेकात्मकं येन त्रैलोक्यं सुमहात्मना ॥ ५१ ॥

य पिता सर्व्वदेवानां पराणामपि यः परः ।
अयजद्देवताः कास्तु पितॄन् वा कानसौ यजेत् ॥ ५२ ॥
इति सञ्चिन्त्य मनसा त देवं नारदोऽब्रवीत् ।

नारद उवाच ।

वेदेषु स पुराणेषु साङ्गोपाङ्गेषु गीयसे ।
त्वमज शाश्वतो धाता त्वं निधानमनुत्तमम् ॥ ५३ ॥
भूतं भव्य भवच्चैव त्वयि सर्व्वं प्रतिष्ठितम् ।
चत्वारश्चाश्रमा देव गृहस्थाद्यास्तथैव हि ॥ ५४ ॥
यजन्ति त्वामहरहस्त्वां मूर्त्तिं त्व समाश्रितम् ।
पिता माता च सर्व्वस्य दैवतं त्वं हि शाश्वतम् ॥ ५५ ॥
यजसे पितरं कं त्वं देवं वापि न विद्महे ॥ ५६ ॥

मित्र उवाच ।

अवाच्यमेतद्वक्तव्यं परं गुह्यं सनातनम् ।
त्वयि भक्तिमति ब्रह्मन् प्रवक्ष्यामि यथातथम् ॥ ५७ ॥
यत्तत् सूक्ष्ममविज्ञेयमव्यक्तमचलं ध्रुवम् ।
इन्द्रियैरिन्द्रियार्थैश्च सर्व्वभूतैर्विवर्ज्जितम् ॥ ५८ ॥
स ह्यन्तरात्मा भूतानां क्षेत्रज्ञश्चैव कथ्यते ।
त्रिगुणाद्व्यतिरिक्तोऽसौ पुरुषश्चैव कल्पित ॥ ५९ ॥
हिरण्यगर्भो भगवान् सैव बुद्धिरिति स्मृत ।
महानिति च योगेषु प्रधानमिति कथ्यते ॥ ६० ॥
सांख्यश्च कथ्यते योगे नामभिर्बहुधात्मक ।
स च त्रिरूपो विश्वात्मा शर्वोऽक्षर इति स्मृतः ॥ ६१ ॥

धृतमेकात्मकं तेन त्रैलोक्यमिदमात्मना ।
अशरीरः शरीरेषु सर्व्वेषु निवसत्यसौ ॥ ६२ ॥
वसन्नपि शरीरेषु न स लिप्येत कर्म्मभिः ।
ममान्तरात्मा तव च ये चान्ये देहसंस्थिताः ॥ ६३ ॥
सर्व्वेषां साक्षिभूतोऽसौ न ग्राह्यः केनचित् क्वचित् ।
सगुणो निर्गुणो विश्वो ज्ञानगम्यो ह्यसौ स्मृतः ॥ ६४ ॥
सर्व्वतः पाणिपादान्तः सर्व्वतोऽक्षिशिरोमुखः ।
सर्व्वतः श्रुतिमँल्लोके सर्व्वमावृत्य तिष्ठति ॥ ६५ ॥
विश्वमूर्द्धा विश्वभुजो विश्वपादाक्षिनासिकः ।
एकश्चरति वै क्षेत्रे स्वैरचारी यथासुखम् ॥ ६६ ॥
क्षेत्राणीह शरीराणि तेषाञ्चैव यथासुखम् ।
तानि वेत्ति स योगात्मा ततः क्षेत्रज्ञ उच्यते ॥ ६७ ॥
अव्यक्ते च पुरे शेते पुरुषस्तेन चोच्यते ।
विश्वं बहुविधं ज्ञेयं स च सर्व्वत्र उच्यते ॥ ६८ ॥
तस्मात् स बहुरूपत्वाद्विश्वरूप इति स्मृतः ।
तस्यैकस्य महत्त्वं हि स चैकः पुरुषः स्मृतः ॥ ६९ ॥
महापुरुषशब्दं हि बिभर्त्त्येकः सनातनः ।
स तु विधिक्रियायत्तः सृजत्यात्मानमात्मना ॥ ७० ॥
शतधा सहस्रधा चैव तथा शतसहस्रधा ।
कोटिशश्च करोत्येव प्रत्यगात्मानमात्मना ॥ ७१ ॥
आकाशात् पतितं तोयं याति स्वाद्वन्तरं यथा ।
भूमे रसविशेषेण तथा गुणरसात्तु सः ॥ ७२ ॥

एक एव यथा वायुर्देहेष्वेव हि पञ्चधा ।
एकत्वञ्च पृथक्त्वञ्च तथा तस्य न संशयः ॥ ७३ ॥
स्थानान्तरविशेषाच्च यथाग्निर्लभते पराम् ।
संज्ञां तथा मुने सोऽप ब्रह्मादिषु तथाप्नुयात् ॥ ७४ ॥
यथा दीपसहस्राणि दीप एकः प्रसूयते ।
तथा रूपसहस्राणि स एकः सम्प्रसूयते ॥ ७५ ॥
यदा स बुध्यत्यात्मानं तदा भवति केवलः ।
एकत्वप्रलये चास्य बहुत्वञ्च प्रवर्त्तते ॥ ७६ ॥
नित्यं हि नास्ति जगति भूतं स्थावरजङ्गमम् ।
अक्षयश्चाप्रमेयश्च सर्व्वगश्च स उच्यते ॥ ७७ ॥
तस्माद्व्यक्तमुत्पन्नं त्रिगुणं द्विजसत्तमाः ।
अव्यक्ताव्यक्तभावस्था या सा प्रकृतिरुच्यते ॥ ७८ ॥
तां योनिं ब्रह्मणो विद्धि योऽसौ सदसदात्मकः ।
लोके स पूज्यते योऽसौ दैवे पित्र्ये च कर्म्मणि ॥ ७९ ॥
नास्ति तस्मात् परो ह्यन्यः पिता देवोऽपि वा द्विजाः ।
आत्मना स तु विज्ञेयस्ततस्तं पूजयाम्यहम् ॥ ८० ॥
स्वर्गेष्वपि हि ये केचित्तं नमस्यन्ति देहिनः ।
तेन गच्छन्ति देवर्षे तेनोद्दिष्टफलां गतिम् ॥ ८१ ॥
तं देवाः स्वाश्रमस्थाश्च नानामूर्त्तिसमाश्रिताः ।
भक्त्या सम्पूजयन्त्याद्यं गतिश्चैषां ददाति सः ॥ ८२ ॥
स हि सर्व्वगतश्चैव निर्गुणश्चैव कथ्यते ।
एवं मत्वा यथाज्ञानं पूजयामि दिवाकरम् ॥ ८३ ॥

ये च तद्भाविता लोक एकतत्त्व समाश्रिताः।
एतदप्यधिकं तेषां यदेकं प्रविशन्त्युत ॥ ८४ ॥
इति गुह्यसमुद्देशस्तव नारद कीर्तित।
अस्मद्भक्त्यापि देवर्षे त्वयापि परमं स्मृतम ॥ ८५ ॥
सुरैर्वा मुनिभिर्वापि पुराणैर्वरद स्मृतम्।
सर्वे च परमात्मानं पूजयन्ति दिवाकरम् ॥ ८६ ॥

ब्रह्मोवाच।

एवमेतत् पुराख्यातं नारदाय तु भानुना।
मयापि च समाख्याता कथा भानोर्द्विजोत्तमाः ॥ ८७ ॥
इदमाख्यानमार्येयं मयाख्यातं द्विजोत्तमाः।
न ह्यनादित्यभक्ताय इदं देय कदाचन ॥ ८८ ॥
यश्चैतच्छ्रावयेन्नित्यं यश्चैव शृणुयान्नरः।
स सहस्रार्चिषं देवं प्रविशेन्नात्र संशयः ॥ ८९ ॥
मुच्येतार्तास्तथा रोगाच्छ्रुत्वेमामादित कथाम्।
जिज्ञासुर्लभते ज्ञानं गतिमिष्टां तथैव च ॥ ९० ॥
क्षणेन लभतेऽध्यानमिदं यः पठते मुने।
यो यं कामयते कामं स तं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥ ९१ ॥
तस्माद्भवद्भिः सततं स्मर्तव्यो भगवान् रविः।
स च धाता विधाता च सर्वस्य जगतः प्रभु ॥ ९२ ।

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे आदित्यमहात्म्यवर्णनं
नाम त्रिंशोऽध्याय. ॥ ३० ॥

एकत्रिंशोऽध्यायः ।

आदित्यमाहात्म्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच ।

आदित्यमूलमखिलं त्रैलोक्यं मुनिसत्तमाः ।
भवत्यस्माज्जगत् सर्व्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ १ ॥
रुद्रोपेन्द्रमहेन्द्राणां विप्रेन्द्र त्रिदिवौकसाम् ।
महाद्युतिमताञ्चैव तेजोऽयं सार्व्वलौकिकम् ॥ २ ॥
सर्व्वात्मा सर्व्वलोकेशो देवदेवः प्रजापतिः ।
सूर्य्य एव त्रिलोकस्य मूलं परमदैवतम् ॥ ३ ॥
अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥ ४ ॥
सूर्य्यात् प्रसूयते सर्व्वं तत्र चैव प्रलीयते ।
भावाभावौ हि लोकानामादित्यान्नि सृतौ पुरा ॥ ५ ॥
एतत्तु ध्यानिनां ध्यानं मोक्षश्चाप्येष मोक्षिणाम् ।
तत्र गच्छन्ति निर्व्वाणं जायन्तेऽस्मात् पुनः पुनः ॥ ६ ॥
क्षणा मुहूर्त्ता दिवसा निशा पक्षाश्च नित्यशः ।
मासाः सम्वत्सराश्चैव ऋतवश्च युगानि च ॥ ७ ॥
अथादित्यादृते ह्येषां कालसंख्या न विद्यते ।
कालादृते न नियमो नाग्नौ विहरणक्रिया ॥ ८ ॥
ऋतूनामविभागश्च ततः पुष्पफलं कुतः ।
कुतो वै शस्यनिष्पत्तिस्तृणौषधिगणः कुतः ॥ ९ ॥

अभावो व्यवहाराणां जन्तूनां दिवि चेह च ।
जगत्प्रभावाद्विशते भास्कराद्वारितस्करात् ॥ १० ॥
नावृष्ट्या तपते सूर्य्यो नावृष्ट्या परिशुष्यति ।
नावृष्ट्या परिधिं धत्ते वारिणा दीप्यते रविः ॥ ११ ॥
वसन्ते कपिलः सूर्य्यो ग्रीष्मे काञ्चनसन्निभः ।
श्वेतो वर्षासु वर्णेन पाण्डुः शरदि भास्करः ॥ १२ ॥
हेमन्ते ताम्रवर्णाभः शिशिरे लोहितो रविः ।
इति वर्णाः समाख्याताः सूर्य्यस्य ऋतुसम्भवाः ॥ १३ ॥
ऋतुस्वभाववर्णैश्च सूर्य्यः क्षेमसुभिक्षकृत् ।
अथादित्यस्य नामानि सामान्यानि द्विजोत्तमाः ॥ १४ ॥
द्वादशैव पृथक्त्वेन तानि वक्ष्याम्यशेषतः ।
आदित्यः सविता सूर्य्यो मिहिरोऽर्कः प्रभाकरः ॥ १५ ॥
मार्त्तण्डो भास्करो भानुश्चित्रभानुर्दिवाकरः ।
रविर्द्वादशभिस्तेषां ज्ञेयः सामान्यनामभिः ॥ १६ ॥
विष्णुर्धाता भगः पूषा मित्रेन्द्रो वरुणोऽर्य्यमा ।
विवस्वानंशुमांस्त्वष्टा पर्जन्यो द्वादशः स्मृतः ॥ १७ ॥
इत्येते द्वादशादित्याः पृथक्त्वेन व्यवस्थिताः ।
उत्तिष्ठन्ति सदा ह्येते मासैर्द्वादशभिः क्रमात् ॥ १८ ॥
विष्णुस्तपति चैत्रे तु वैशाखे चार्य्यमा तथा ।
विवस्वान् ज्येष्ठमासे तु आषाढे चांशुमान् स्मृतः ॥ १९ ॥
पर्जन्यः श्रावणे मासि वरुणः प्रौष्ठसंज्ञके ।
इन्द्र आश्वयुजे मासि धाता तपति कार्त्तिके ॥ २० ॥

मार्गशीर्षे तथा मित्र पौषे पूषा दिवाकर ।
माघे भगस्तु विज्ञेयस्त्वष्टा तपति फाल्गुने ॥ २१ ॥
शतैर्द्वादशभिर्विष्णु रश्मिभिर्दीप्यते सदा ।
दीप्यते गोसहस्रेण शतैश्च त्रिभिरर्य्यमा ॥ २२ ॥
द्वि सप्तकै र्विवस्वास्तु अंशुमान् पञ्चभिस्त्रिभि ।
विवस्वानिव पर्ज्जन्यो वरुणश्चार्य्यमा तथा ॥ २३ ॥
मित्रवद्भगवास्त्वष्टा सहस्रेण शतेन च ।
इन्द्रस्तु द्विगुणै षड्भिर्धातैकादशभि शतै ॥ २४ ॥
सहस्रेण तु मित्रो वै पूषा तु नवभि शतै ।
उत्तरोपक्रमेऽर्कस्य वर्द्धन्ते रश्मयस्तथा ॥ २५ ॥
दक्षिणोपक्रमे भूयो ह्रसन्ते सूर्य्यरश्मय ।
एव रश्मिसहस्रन्तु सूर्य्यलोकादनुग्रहम् ॥ २६ ॥
एव नाम्ना चतुर्विंशदेक एषा प्रकीर्त्तित ।
विस्तरेण सहस्रन्तु पुनरन्यत् प्रकार्त्तितम् ॥ २७ ॥

मुनय ऊचु ।

ये तन्नामसहस्रेण स्तुवन्त्यर्कं प्रजापते ।
तेषा भवति किं पुण्य गतिश्च परमेश्वर ॥ २८ ॥

ब्रह्मोवाच ।

शृणुध्व मुनिशार्दूला सारभूत सनातनम् ।
अल नामसहस्रेण पठ्यतेन स्तव शुभम् ॥ २९ ॥
यानि नामानि गुह्यानि पवित्राणि शुभानि च ।
तानि व कीर्त्तयिष्यामि शृणुध्व भास्करस्य वै ॥ ३० ॥

विकर्त्तनो विवस्वांश्च मार्त्तण्डो भास्करो रविः ।
लोकप्रकाशकः श्रीमाँल्लोकचक्षुर्महेश्वरः ॥ ३१ ॥
लोकसाक्षी त्रिलोकेशः कर्त्ता हर्त्ता तमिस्रहा ।
तपनस्तापनश्चैव शुचिः सप्ताश्ववाहनः ॥ ३२ ॥
गभस्तिहस्तो ब्रह्मा च सर्व्वदेवनमस्कृतः ।
एकविंशतिरित्येष स्तव इष्टः सदा रवेः ॥ ३३ ॥
शरीरारोग्यदश्चैव धनवृद्धियशस्करः ।
स्तवराज इति ख्यातस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥ ३४ ॥
य एतेन द्विजश्रेष्ठा द्विसन्ध्येऽस्तमनोदये ।
स्तौति सूर्य्यं शुचिर्भूत्वा सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ३५ ॥
मानसं वाचिकं वापि देहजं कर्म्मजं तथा ।
एकजप्येन तत्सर्व्वं नश्यत्यर्कस्य सन्निधौ ॥ ३६ ॥
एकजप्यश्च होमश्च सन्ध्योपासनमेव च ।
धूपमन्त्रार्घ्यमन्त्रश्च बलिमन्त्रस्तथैव च ॥ ३७ ॥
अन्नप्रदाने स्नाने च प्रणिपाते प्रदक्षिणे ।
पूजितोऽयं महामन्त्रः सर्व्वपापहरः शुभः ॥ ३८ ॥
तस्माद्यूयं प्रयत्नेन स्तवेनानेन वै द्विजाः ।
स्तुवीध्वं वरदं देवं सर्व्वकामफलप्रदम् ॥ ३९ ॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे मार्त्तण्डस्यैकविंशतिनामानुकीर्त्तनं नाम एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः ।

मार्तण्डजन्ममाहात्म्यवर्णनम्

मुनय ऊचुः ।

निर्गुणः शाश्वतो देवस्त्वया प्रोक्तो दिवाकरः ।
पुनर्द्वादशधा जातः श्रुतोऽस्माभिस्त्वयोदितः ॥ १ ॥
स कथं तेजसो रश्मिः स्त्रिया गर्भे महाद्युतिः ।
सम्भूतो भास्करो जातस्तत्र नः संशयो महान् ॥ २ ॥

ब्रह्मोवाच ।

दक्षस्य हि सुताः श्रेष्ठा बभूवुः षष्टि शोभनाः ।
अदितिर्दितिर्दनुश्चैव विनताद्यास्तथैव च ॥ ३ ॥
दक्षस्ताः प्रददौ कन्याः कश्यपाय त्रयोदश ।
अदितिर्जनयामास देवांस्त्रिभुवनेश्वरान् ॥ ४ ॥
दैत्यान्दितिर्दनुश्चोग्रान्दानवान् बलदर्पितान् ।
विनताद्यास्तथा चान्याः सुषुवुः स्थाणुजङ्गमान् ॥ ५ ॥
तस्याथ पुत्रदौहित्रैः पौत्रदौहित्रकादिभिः ।
व्याप्तमेतज्जगत् सर्वं तेषां तासां च वै मुने ॥ ६ ॥
तेषां कश्यपपुत्राणां प्रधाना देवतागणाः ।
सात्त्विका राजसाश्चान्ये तामसाश्च गणाः स्मृताः ॥ ७ ॥
देवान्यज्ञभुजश्चक्रे तथा त्रिभुवनेश्वरान् ।
स्रष्टा ब्रह्मविदां श्रेष्ठः परमेष्ठी प्रजापतिः ॥ ८ ॥

दानवाश्च सहिताः सापत्न्याद् त्यदानवाः।
ततो निराकृतान् पुत्रान्दैतेयैर्दानवैस्तथा॥ ९॥
हतं त्रिभुवनं दृष्ट्वा अदितिर्मुनिसत्तमाः।
आच्छिन्नयज्ञभागांश्च क्षुधासम्पीडितान् भृशम्॥ १०॥
आराधनाय सवितुः परं यत्नं प्रचक्रमे।
एकाग्रा नियताहारा परं नियममास्थिता॥ ११॥
तुष्टाव तेजसां राशिं गगनस्थं दिवाकरम्॥

अदितिरुवाच।

नमस्तुभ्यं परं सूक्ष्म सुपुण्यं बिभ्रतेऽतुलम्।
धाम धामवतामीशं धामाधारं [illegible]शाश्वतम्॥ १२॥
जगतामुपकाराय त्वामहं स्तौ
आददानस्य यद्रूपं तीव्रं तस्मै
ग्रहीतुमष्टमासेन
बिभ्रतस्तव यद्रूपमतितीव्रं
समेतमग्निषोमाभ्यां
यद्रूपमृग् यजुः साम्नामैक्येन
बिश्वमेतत्त्रयीसंज्ञं
यत्तु तस्मात्परं रूपम्
अस्थूलं स्थूलममलं

ततः कालेन महता भगवांस्तपनो द्विजाः ।
प्रत्यक्षतामगात्तस्या दाक्षायण्या द्विजोत्तमाः ॥ १८ ॥
सा ददर्श महाकूटतेजसोऽम्बरसंवृतम् ।
भूमौ च संस्थितं भास्वज्ज्वालाभिरतिदुर्दृशम् ॥ १९ ॥
तं दृष्ट्वा च ततो देवी साध्वसं परमं गता ॥ २० ॥

अदितिरुवाच ।

जगदाद्य प्रसीदेति न त्वा पश्यामि गोपते ।
प्रसादं कुरु पश्येयं यद्रूपं ते दिवाकर ॥ २१ ॥
भक्तानुकम्पक विभो त्वद्भक्तान् पाहि मे सुतान् ।

ब्रह्मोवाच ।

ततः स तेजसस्तस्मादाविर्भूतो विभावसुः ।
अदृश्यत तदादित्यस्तप्तताम्रोपमः प्रभुः ॥ २२ ॥
ततस्तां प्रणतां देवीं तस्यासन्दर्शने द्विजाः ।
प्राह भास्वान् वृणुष्वैकं वरं मत्तो यमिच्छसि ॥ २३ ॥
प्रणता शिरसा सा तु जानुपीडितमेदिनी ।
प्रत्युवाच विवस्वन्तं वरदं समुपस्थितम् ॥ २४ ॥

अदितिरुवाच ।

देव प्रसीद पुत्राणां हृतं त्रिभुवनं मम ।
यज्ञभोगाश्च दैतेयैर्दानवैश्च बलाधिकैः ॥ २५ ॥
तन्निमित्तं प्रसादं त्वं कुरुष्व मम गोपते ।
अंशेन तेषां भ्रातृत्वं गत्वा तान्नाशये रिपून् ॥ २६ ॥

तानबाधन्त सहिताः सापत्न्याद्दैत्यदानवाः ।
ततो निराकृतान् पुत्रान्दैतेयैर्दानवैस्तथा ॥ ९ ॥
हृतं त्रिभुवनं दृष्ट्वा अदितिर्मुनिसत्तमाः ।
आच्छिन्नदुयज्ञभागांश्च क्षुधासम्पीडितान् भृशम् ॥ १० ॥
आराधनाय सवितुः परं यत्नं प्रचक्रमे ।
एकाग्रा नियताहारा परं नियममास्थिता ॥ ११ ॥
तुष्टाव तेजसां राशिं गगनस्थं दिवाकरम् ॥

अदितिरुवाच ।

नमस्तुभ्यं परं सूक्ष्मं सुपुण्यं बिभ्रतेऽतुलम् ।
धाम धामवतामीशं धामाधारं च शाश्वतम् ॥ १२ ॥
जगतामुपकाराय त्वामहं स्तौमि गोपते ।
आददानस्य यद्रूपं तीव्रं तस्मै नमाम्यहम् ॥ १३ ॥
ग्रहीतुमष्टमासेन कालेनाम्बुमयं रसम् ।
बिभ्रतस्तव यद्रूपमतितीव्रं नतास्मि तत् ॥ १४ ॥
समेतमग्निषोमाभ्यां नमस्तस्मै गुणात्मने ।
यद्रूपमृग् यजुः साम्नामैक्येन तपते तव ॥ १५ ॥
विश्वमेतत्त्रयीसंज्ञं नमस्तस्मै विभावसो ।
यत्तु तस्मात्परं रूपमोमित्युक्त्वाभिसंहितम् ॥
अस्थूलं स्थूलममलं नमस्तस्मै सनातन ॥ १६ ॥

ब्रह्मोवाच ।

एवं सा नियता देवी चक्रे स्तोत्रमहर्निशम् ।
निराहारा विवस्वन्तमारिराधयिषुर्द्विजाः ॥ १७ ॥

ततः कालेन ममता भगवांस्तपनो द्विजाः।
प्रत्यक्षतामगात्तस्या दाक्षायण्या द्विजोत्तमाः॥ १८॥
सा ददर्श महाकूटतेजसोऽम्बरसंवृतम्।
भूमौ च संस्थितं भास्वज्ज्वालाभिरतिदुर्दृशम्॥ १९॥
तं दृष्ट्वा च ततो देवी साध्वसं परमं गता॥ २०॥

अदितिरुवाच।

जगदाद्य प्रसीदेति न त्वां पश्यामि गोपते।
प्रसादं कुरु पश्येयं यद्रूपं ते दिवाकर॥ २१॥
भक्तानुकम्पक विभो त्वद्भक्तान् पाहि मे सुतान्।

ब्रह्मोवाच।

ततः स तेजसस्तस्मादाविर्भूतो विभावसुः।
अदृश्यत तदादित्यस्तप्तताम्रोपमः प्रभुः॥ २२॥
ततस्तां प्रणतां देवीं तस्यासन्दर्शने द्विजाः।
प्राह भास्वान् वृणुष्वैकं वरं मत्तो यमिच्छसि॥ २३॥
प्रणता शिरसा सा तु जानुपीडितमेदिनी।
प्रत्युवाच विवस्वन्तं वरदं समुपस्थितम्॥ २४॥

अदितिरुवाच।

देव प्रसीद पुत्राणां हृतं त्रिभुवनं मम।
यज्ञभोगाश्च दैतेयैर्दानवैश्च बलाधिकैः॥ २५॥
तन्निमित्तं प्रसादं त्वं कुरुष्व मम गोपते।
अंशेन तेषां भ्रातृत्वं गत्वा तान्नाशये रिपून्॥ २६॥

यथा मे तनया भूयो यज्ञभागभुजः प्रभो ।
भवेयुरधिपाश्चैव त्रैलोक्यस्य दिवाकर ॥ २७ ॥
तथानुकल्पं पुत्राणां सुप्रसन्नो रवे मम ।
कुरु प्रसन्नार्तिहर कार्य्यं कर्त्ता त्वमुच्यते ॥ २८ ॥

ब्रह्मोवाच ।

ततस्तामाह भगवान् भास्करो वारितस्करः ।
प्रणतामदितिं विप्राः प्रसादसुमुखो विभुः ॥ २९ ॥

सूर्य्य उवाच ।

सहस्रांशेन ते गर्भः सम्भूयाहमशेषतः ।
त्वत्पुत्रशत्रून् दक्षोऽहं नाशयाम्याशु निर्वृतः ॥ ३० ॥

ब्रह्मोवाच ।

सा च तं प्राह गर्भान्तमेतत्पश्येति कोपना ।
न मारितं विपक्षाणां मृत्युरेव भविष्यति ॥ ३५ ॥
इत्युक्त्वा तं तदा गर्भमुत्ससर्ज सुरारणिः ।
जाज्वल्यमानं तेजोभिः पत्युर्वचनकोपिता ॥ ३६ ॥
तं दृष्ट्वा कश्यपो गर्भमुद्यद्भास्करवर्चसम् ।
तुष्टाव प्रणतो भूत्वा वाग्भिराद्याभिरादरात् ॥ ३७ ॥
संस्तूयमानः स तदा गर्भाण्डात् प्रकटोऽभवत् ।
पद्मपत्रसवर्णाभस्तेजसा व्याप्तदिङ्मुखः ॥ ३८ ॥
अथान्तरिक्षादाभाष्य कश्यपं मुनिसत्तमम् ।
सतोयमेघगम्भीरा वागुवाचाशरीरिणी ॥ ३९ ॥

वागुवाच ।

मारितमिति यत् प्रोक्तमेतदण्डं त्वयादिते ।
तस्मान्मुने सुतस्तेऽयं मार्त्तण्डाख्यो भविष्यति ॥ ४० ॥
हनिष्यत्यसुरांश्चायं यज्ञभागहरानरीन् ।
देवा निशम्येति वचो गगनात् समुपागतम् ॥ ४१ ॥
प्रहर्षमतुलं याता दानवाश्च हतौजसः ।
ततो युद्धाय दैतेयानाजुहाव शतक्रतुः ॥ ४२ ॥
सह देवैर्मुदा युक्तो दानवाश्च तमभ्ययुः ।
तेषां युद्धमभूद्घोरं देवानामसुरैः सह ॥ ४३ ॥
शस्त्रास्त्रवृष्टिसन्दीप्तसमस्तभुवनान्तरम् ।
तस्मिन् युद्धे भगवता मार्त्तण्डेन निरीक्षिताः ॥ ४४ ॥

यथा मे तनया भूयो यज्ञभागभुजः प्रभो ।
भवेयुरधिपाश्चैव त्रैलोक्यस्य दिवाकर ॥ २७ ॥
तथानुकम्प पुत्राणां सुप्रसन्नो रवे मम ।
कुरु प्रसन्नार्तिहर कार्य्यं कर्त्ता त्वमुच्यते ॥ २८ ॥

ब्रह्मोवाच ।

ततस्तामाह भगवान् भास्करो वारितस्करः ।
प्रणतामदितिं विप्राः प्रसादसुमुखो विभुः ॥ २९ ॥

सूर्य्य उवाच ।

सहस्रांशेन ते गर्भे सम्भूयाहमशेषतः ।
त्वत्पुत्रशत्रून् दक्षोऽहं नाशयाम्याशु निर्वृतः ॥ ३० ॥

ब्रह्मोवाच ।

ब्रह्मोवाच ।

सा च तं प्राह गर्भान्तमेतत्पश्येति कोपना ।
न मारित विपक्षाणां मृत्युरेव भविष्यति ॥ ३५ ॥
इत्युक्त्वा तं तदा गर्भमुत्ससर्ज सुरारणिः ।
जाज्वल्यमानं तेजोभिः पत्युर्वचनकोपिता ॥ ३६ ॥
तं दृष्ट्वा कश्यपो गर्भमुद्यद्भास्करवर्चसम् ।
तुष्टाव प्रणतो भूत्वा वाग्भिराद्याभिरादरात् ॥ ३७ ॥
संस्तूयमानः स तदा गर्भाण्डात् प्रकटोऽभवत् ।
पद्मपत्रसवर्णाभस्तेजसा व्याप्तदिङ्मुखः ॥ ३८ ॥
अथान्तरिक्षादाभाष्य कश्यपं मुनिसत्तमम् ।
सतोयमेघगम्भीरा वागुवाचाशरीरिणी ॥ ३९ ॥

वागुवाच ।

मारितमितियत् प्रोक्तमेतदण्डं त्वयादितेः ।
तस्मान्मुने सुतस्तेऽयं मार्त्तण्डाख्यो भविष्यति ॥ ४० ॥
हनिष्यत्यसुरांश्चायं यज्ञभागहरानरीन् ।
देवा निशम्येति वचो गगनात् समुपागतम् ॥ ४१ ॥
प्रहर्षमतुलं याता दानवाश्च हतौजसः ।
ततो युद्धाय दैतेयानाजुहाव शतक्रतुः ॥ ४२ ॥
सह देवैर्मुदा युक्तो दानवाश्च तमभ्ययुः ।
तेषां युद्धमभूद्घोरं देवानामसुरैः सह ॥ ४३ ॥
शस्त्रास्त्रवृष्टिसन्दीप्तसमस्तभुवनान्तरम् ।
तस्मिन् युद्धे भगवता मार्त्तण्डेन निरीक्षिताः ॥ ४४ ॥

तेजसा दह्यमानास्ते भस्मीभूता महासुराः ।
ततः प्रहर्षमतुलं प्राप्ताः सर्व्वे दिवौकसः ॥ ४५ ॥
तुष्टुवुस्तेजसां योनिं मार्त्तण्डमदितिं तथा ।
स्वाधिकारांस्ततः प्राप्ता यज्ञभागांश्च पूर्व्वत् ॥ ४६ ॥
भगवानपि मार्त्तण्डः स्वाधिकारमथाकरोत् ।
कदम्बपुष्पवद्भास्वानधश्चोर्द्ध्वञ्च रश्मिभिः ।
वृतोऽग्निपिण्डसदृशो दध्रे नातिस्फुटं वपुः ॥ ४७ ॥

मुनय ऊचुः ।

कथं कान्ततरं पश्चाद्रूपं संलब्धवान् रविः ।
कदम्बगोलकाकारं तन्मे ब्रूहि जगत्पते ॥ ४८ ॥

ब्रह्मोवाच ।

त्वष्टा तस्मै ददौ कन्यां संज्ञां नाम विवस्वते ।
प्रसाद्य प्रणतो भूत्वा विश्वकर्म्मा प्रजापतिः ॥ ४६ ॥
त्रीण्यपत्यान्यसौ तस्यां जनयामास गोपतिः ।
द्वौ पुत्रौ सुमहाभागौ कन्याञ्च यमुनां तथा ॥ ५० ॥
यत्तेजोऽभ्यधिकं तस्य मार्त्तण्डस्य विवस्वतः ।
तेनाति तापयामास त्रीँल्लोकान् सचराचरान् ॥ ५१ ॥
तद्रूपं गोलकाकारं दृष्ट्वा संज्ञा विवस्वतः ।
असहन्ती महत्तेजः स्वां छायां वाक्यमब्रवीत् ॥ ५२ ॥

संज्ञोवाच ।

अहं यास्यामि भद्रं ते स्वमेव भवनं पितुः ।
निर्व्विकारं त्वयात्रैव स्थेयं मच्छासनाच्छुभे ॥ ५३ ॥

इमौ च बालकौ मह्य कन्या च वरवर्णिनी।
सम्भाव्या नैव चाख्येयमिदं भगवते त्वया ॥ ५४ ॥

छायोवाच।

आ कचग्रहणाद्देवि आशापान्नैव कर्हिचित्।
आख्यास्यामि मतं तुभ्यं गम्यतां यत्र वाञ्छितम् ॥ ५५ ॥
इत्युक्त्वा व्रीडिता संज्ञा जगाम पितृमन्दिरम्।
वत्सराणां सहस्रन्तु वसमाना पितुर्गृहे ॥ ५६ ॥
भर्त्तुः समीपे याहीति पित्रोक्ता सा पुनः पुनः।
आगच्छद्वडवा भूत्वा कुरूनथोत्तरांस्ततः ॥ ५७ ॥
तत्र तेपे तपः साध्वी निराहारा द्विजोत्तमा।
पितुः समीपं यातायां संज्ञायां वाक्यतत्परा ॥ ५८ ॥
तद्रूपधारिणी छाया भास्करं समुपस्थिता।
तस्याञ्च भगवान् सूर्य्यः संज्ञेयमिति चिन्तयन् ॥ ५९ ॥
तथैव जनयामास द्वौ पुत्रौ कन्यकां तथा।
संज्ञा तु पार्थिवी तेषामात्मजानां तथाकरोत् ॥ ६० ॥
स्नेहं न पूर्व्वजातानां तथा कृतवती तु सा।
मनुस्तत्क्षान्तवांस्तस्या यमस्तस्या न चक्षमे ॥ ६१ ॥
बहुधा पीड्यमानस्तु पितुः पत्न्या सुदुःखितः।
स वै कोपाच्च बाल्याच्च भाविनोऽर्थस्य वै बलात्।
पदा सन्तर्ज्जयामास न तु देहे न्यपातयत् ॥ ६२ ॥

छायोवाच।

पदा तर्जयसे यस्मात्पितुर्भार्य्यां गरीयसीम्।
तस्मात्तवैष चरणः पतिष्यति न संशयः॥ ६३॥
यमस्तु तेन शापेन भृशं पीडितमानसः।
मनुना सह धर्म्मात्मा पित्रे सर्व्वं न्यवेदयत्॥ ६४॥

यम उवाच।

स्नेहेन तुल्यमस्मासु माता देव न वर्त्तते।
विसृज्य ज्यायसं भक्त्या कनीयांसं बुभूषति॥ ६५॥
तस्या मयोद्यतः पादो न तु देहे निपातितः।
बाल्याद्वा यदि वा मोहात्तद्भवान् क्षन्तुमर्हसि॥ ६६॥
शप्तोऽहं तात कोपेन जनन्या तनयो यतः।
ततो मन्ये न जननीमिमां वै तपतांवर॥ ६७॥
तव प्रसादाच्चरणो भगवन् न पतेद्यथा।
मातृशापादयं मेऽद्य तथा चिन्तय गोपते॥ ६८॥

रविरुवाच।

असंशयं महत्पुत्र भविष्यत्यत्र कारणम्।
येन त्वामाविशत्क्रोधो धर्म्मज्ञं धर्म्मशालिनम्॥ ६९॥
सर्व्वेषामेव शापानां प्रतिघातो हि विद्यते।
न तु मात्राभिशप्तानां क्वचिच्छापनिवर्त्तनम्॥ ७०॥
न शक्यमेतन्मिथ्या तु कर्त्तुं मातुर्वचस्तव।
किञ्चित्तेऽहं विधास्यामि पुत्रस्नेहादनुग्रहम्॥ ७१॥

इमयो मासमादाय प्रयास्यन्ति महीतलम्।
इत्थं तस्या वच सन्य त्वञ्च त्राता भविष्यसि ॥ ७२ ॥
ब्रह्मोवाच।
आदित्यस्त्वब्रवीच्छाया किमर्थं तनयेषु वै।
तुल्येष्वप्यधिक स्नेह एक प्रति कृतस्त्वया ॥ ७३ ॥
नूनं नैषा त्वं जननी सञ्ज्ञा कापि त्वमागता।
निर्गुणेष्वप्यपत्येषु माता शाप न दास्यति ॥ ७४ ॥
सा तत्परिहरन्ती च शापाद्भाता तदा रवे।
कथयामास वृत्तान्त स श्रुत्वा श्वशुरं ययौ ॥ ७५ ॥
स चापि त यथान्यायमर्चयित्वा तदा रविम्।
निर्दग्धुकाम रोषेण सान्त्वयानस्तमब्रवीत् ॥ ७६ ॥
विश्वकर्मोवाच।
तवातितेजसा व्याप्तमिदं रूप सुदु सहम्।
असहन्ता तु तत्संज्ञा वने चरति वै तप ॥ ७७ ॥
द्रक्ष्यते ता भवानद्य स्वा भार्य्यां शुभचारिणीम्।
रूपार्थं भवतोऽरण्ये चरन्ती सुमहत्तप ॥ ७८ ॥
श्रुत मे ब्रह्मणो वाक्यं तव तेजोऽपरोधने।
रूपं निवर्त्तयाम्यद्य तव कान्त दिवस्पते ॥ ७९ ॥
ब्रह्मोवाच।
ततस्तथेति त प्राह त्वष्टार भगवान् रवि।
ततो विवस्वतो रूप प्रागासीत्परिमण्डलम् ॥ ८० ॥
विश्वकर्म्मा त्वनुज्ञात शाकद्वीपे विवस्वता।
भ्रमिमारोप्य तत्तेज शातनायोपचक्रमे ॥ ८१ ॥

भ्रमताशेषजगतां नाभिभूतेन भास्वता ।
समुद्राद्रिवनोपेता त्वारुरोह मही नभः ॥ ८२ ॥
गगनञ्चाखिलं विप्राः सचन्द्रग्रहतारकम् ।
अधो गतं महाभागा बभूवाक्षिप्तमाकुलम् ॥ ८३ ॥
विक्षिप्तसलिलाः सर्व्वे बभूवुश्च तथार्णवाः ।
व्यभिद्यन्त महाशैलाः शीर्णसानुनिबन्धनाः ॥ ८४ ॥
ध्रुवाधाराण्यशेषाणि धिष्ण्यानि मुनिसत्तमाः ।
त्रुट्यद्रश्मिनिबन्धीनि बन्धनानि अधो ययुः ॥ ८५ ॥
वेगभ्रमणसम्पातवायुक्षिप्ताः सहस्रशः ।
व्यशीर्य्यन्त महामेघा घोराराववराविणः ॥ ८६ ॥
भास्वद्भ्रमणविभ्रान्तभूम्याकाशरसातलम् ।
जगदाकुलमत्यर्थं तदासीन्मुनिसत्तमाः ॥ ८७ ॥
त्रैलोक्यमाकुलं वीक्ष्य भ्रममाणं सुरर्षयः ।
देवाश्च ब्रह्मणा सार्द्धं भास्वन्तमभितुष्टुवुः ॥ ८८ ॥
आदिदेवोऽसि देवानां जातस्त्वंभूतये भुवः ।
स्वर्गस्थित्यन्तकालेषु त्रिधा भेदेन तिष्ठसि ॥ ८९ ॥
स्वस्ति तेऽस्तु जगन्नाथ घर्म्मवर्ष दिवाकर ।
इन्द्रादयस्तदा देवा लिखमानमथास्तुवन् ॥ ९० ॥
जय देव जगत्स्वामिन् जयाशेष जगत्पते ।
ऋषयश्च ततः सप्त वसिष्ठात्रिपुरोगमाः ॥ ९१ ॥
तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रैः स्वस्ति स्वस्तीतिवादिनः ।
वेदोक्तिभिरथाग्र्याभिर्वालखिल्याश्च तुष्टुवुः ॥ ९२ ॥

अग्निराद्याश्च भास्वन्तं लिख्यमानं मुदा युताः।
त्वं नाथ मोक्षिणां मोक्षो ध्येयस्त्वं ध्यानिनां परः॥ ९३॥
त्वं गतिः सर्व्वभूतानां कर्म्मकाण्डविवर्त्तिनाम्।
सम्पूज्यस्त्वं तु देवेश शं नोऽस्तु जगतां पते॥ ९४॥
शं नोऽस्तु द्विपदे नित्यं शं नश्चास्तु चतुष्पदे।
ततो विद्याधरगणा यक्षराक्षसपन्नगाः॥ ९५॥
कृताञ्जलिपुटाः सर्व्वे शिरोभिः प्रणता रविम्।
ऊचुस्ते विविधा वाचो मनःश्रोत्रसुखावहाः॥ ९६॥
सह्यं भवतु तेजस्ते भूतानां भूतभावन।
ततो हाहाहूहूश्चैव नारदस्तुम्बुरुस्तथा॥ ९७॥
उपगायितुमारब्धा गान्धर्व्वकुशला रविम्।
षड्जमध्यमगान्धारगानत्रयविशारदाः॥ ९८॥
मूर्च्छनाभिश्च तालैश्च सम्प्रयोगैः सुखप्रदम्।
विश्वाची च घृताची च उर्व्वश्यथ तिलोत्तमा॥ ९९॥
मेनका सहजन्या च रम्भा चाप्सरसांवरा।
ननृतुर्जगतामीशे लिख्यमाने विभावसौ॥ १००॥
भावहासविलासाद्यान् कुर्व्वत्योऽभिनयान्बहून्।
प्रावाद्यन्त ततस्तत्र वीणा वेण्वादिझर्झराः॥ १०१॥
पणवाः पुष्कराश्चैव मृदङ्गाः पटहानकाः।
देवदुन्दुभयः शङ्खाः शतशोऽथ सहस्रशः॥ १०२॥
गायद्भिश्चैव नृत्यद्भिर्गन्धर्व्वैरप्सरोगणैः।
तूर्य्यवादित्रघोषैश्च सर्व्वं कोलाहलीकृतम्॥ १०३॥

ततः कृताञ्जलिपुटा भक्तिनम्रात्ममूर्त्तयः ।
लिख्यमानं सहस्रांशुं प्रणेमुः सर्व्वदेवताः ॥ १०४ ॥
ततः कोलाहले तस्मिन् सर्व्वदेवसमागमे ।
तेजसः शातनं चक्रे विश्वकर्म्मा शनैः शनैः ॥ १०५ ॥
आजानुलिखितश्चासौ निपुणं विश्वकर्म्मणा ।
नाभ्यनन्दत्तु लिखनं ततस्तेनावतारितः ॥ १०६ ॥
न तु निर्भर्त्सितं रूपं तेजसो हननेन तु ।
कान्तात्कान्ततरं रूपमधिकं शुशुभे ततः ॥ १०७ ॥
इति हिमजलघर्म्मकालहेतोर्हरकमलासनविष्णुसंस्तुतस्य ।
तदुपरि लिखनं निशम्य भानो
र्व्रजति,दिवाकरलोकमायुषोऽन्ते ॥ १०८ ॥
एवं जन्म रवेः पूर्व्वं बभूव मुनिसत्तमाः ।
रूपञ्च परमं तस्य मया सम्परिकीर्त्तितम् ॥ १०९ ॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे मार्त्तण्डजन्मशरीरलिखनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ।

मार्त्तण्डमाहात्म्यवर्णनम्

मुनय ऊचुः ।

भूयोऽपि कथयास्माकं कथा सूर्य्यसमाश्रिताम् ।
न तृप्तिमधिगच्छामः शृण्वन्तस्तां कथां शुभाम् ॥ १ ॥

योऽयं दीप्तो महातेजा वह्निराशिसमप्रभः ।
एतद्वेदितुमिच्छाम प्रभावोऽस्य कुतः प्रभो ॥ २ ॥

ब्रह्मोवाच ।

तमोभूतेषु लोकेषु नष्टे स्थावरजङ्गमे ।
प्रकृतेर्गुणहेतुस्तु पूर्व्वं बुद्धिरजायत ॥ ३ ॥
अहङ्कारस्ततो जातो महाभूतप्रवर्त्तकः ।
वाय्वग्निरापः खं भूमिस्ततस्त्वण्डमजायत ॥ ४ ॥
तस्मिन्नण्डे त्विमे लोकाः सप्त चैव प्रतिष्ठिताः ।
पृथिवी सप्तभिर्द्वीपैः समुद्रैश्चैव सप्तभिः ॥ ५ ॥
तत्रैवावस्थितो ह्यासीदहं विष्णुर्महेश्वरः ।
विमूढास्तामसाः सर्व्वे प्रध्यायन्ति तमीश्वरम् ॥ ६ ॥
ततो वै सुमहातेजाः प्रादुर्भूतस्तमोनुदः ।
ध्यानयोगेन चास्माभिर्विज्ञात सविता तदा ॥ ७ ॥
ज्ञात्वा च परमात्मानं सर्व्वं एव पृथक् पृथक् ।
दिव्याभिस्तुतिभिर्देवः स्तुतोऽऽस्माभिस्तदेश्वरः ॥ ८ ॥
आदिदेवोऽसि देवानामैश्वर्य्याच्च त्वमीश्वरः ।
आदिकर्त्ताऽसि भूतानां देवदेवो दिवाकरः ॥ ९ ॥
जीवनः सर्व्वभूतानां देवगन्धर्व्वरक्षसाम् ।
मुनिकिन्नरसिद्धानां तथैवोरगपक्षिणाम् ॥ १० ॥
त्वं ब्रह्मा त्वं महादेवस्त्वं विष्णुस्त्वं प्रजापतिः ।
वायुरिन्द्रश्च सोमश्च विवस्वान्वरुणस्तथा ॥ ११ ॥

त्वं कालः सृष्टिकर्त्ता च हर्त्ता भर्त्ता तथा प्रभुः।
सरितः सागराः शैला विद्युदिन्द्रधनूंषि च ॥ १२ ॥
प्रलयः प्रभवश्चैव व्यक्ताव्यक्तः सनातनः।
ईश्वरात्परतो विद्या विद्यायाः परतः शिवः ॥ १३ ॥
शिवात्परतरो देवस्त्वमेव परमेश्वरः।
सर्व्वतः पाणिपादान्तः सर्व्वतोक्षिशिरोमुखः ॥ १४ ॥
सहस्रांशुः सहस्रास्यः सहस्रचरणेक्षणः।
भूतादिर्भूर्भुवः स्वश्च महः सत्यं तपो जनः ॥ १५ ॥
प्रदीप्तं दीपनं दिव्यं सर्वलोकप्रकाशकम्।
दुर्निरीक्ष्यं सुरेन्द्राणां यद्रूपं तस्य ते नमः ॥ १६ ॥
सुरसिद्धगणैर्जुष्टं भृग्वत्रिपुलहादिभिः।
स्तुतं परममव्यक्तं यद्रूपं तस्य ते नमः ॥ १७ ॥
वेद्यं वेदविदां नित्यं सर्वज्ञानसमन्वितम्।
सर्वदेवातिदेवस्य यद्रूपं तस्य ते नमः ॥ १८ ॥
विश्वकृद्विश्वभूतं च वैश्वानरसुरार्च्चितम्।
विश्वस्थितमचिन्त्यं च यद्रूपं तस्य ते नमः ॥ १९ ॥
परं यज्ञात् परं वेदात् परं लोकात् परं दिवः।
परमात्मेत्यभिख्यातं यद्रूपं तस्य ते नमः ॥ २० ॥
अविधेयमनालक्ष्यमध्यानगतमव्ययम्।
अनादिनिधनं चैव यद्रूपं तस्य ते नमः ॥ २१ ॥
नमो नमः कारणकारणाय,
नमो नमः पापविमोचनाय।

नमो नमस्ते दितिजार्दनाय,
नमो नमो रोगविमोचनाय ॥ २२ ॥
नमो नमः सर्व्ववरप्रदाय,
नमो नमः सर्व्वसुखप्रदाय ।
नमो नमः सर्वधनप्रदाय,
नमो नमः सर्व्वमतिप्रदाय ॥ २३ ॥
स्तुतः स भगवानेवं तैजसं रूपमास्थितः ।
उवाच वाचा कल्याण्या को वरो वः प्रदीयताम् ॥ २४ ॥

देवा ऊचुः ।

तवातितैजसं रूपं न कश्चित्तुसोढ़ुमुत्सहेत् ।
सहनीयं तद्भवतु हिताय जगतः प्रभो ॥ २५ ॥
एवमस्त्विति सोऽप्युक्त्वा भगवानादिकृत् प्रभुः ।
लोकानां कार्यसिद्ध्यर्थं घर्म्मवर्षहिमप्रदः ॥ २६ ॥
तत. सांख्याश्च योगाश्च ये चान्ये मोक्षकाङ्क्षिणः ।
ध्यायन्ति ध्यायिनो देवं हृदयस्थं दिवाकरम् ॥ २७ ॥
सर्वलक्षणहीनोऽपि युक्तो वा सर्व्वपातकैः ।
सर्व्वञ्च तरते पापं देवमर्कं समाश्रितः ॥ २८ ॥
अग्निहोत्रञ्च वेदाश्च यज्ञाश्च वहुदक्षिणाः ।
भानोर्भक्तिनमस्कारकला नार्हन्ति षोड़शीम् ॥ २९ ॥
तीर्थानां परमं तीर्थं मङ्गलानाञ्च मंगलम् ।
पवित्रञ्च पवित्राणाम् प्रपद्यन्ते दिवाकरम् ॥ ३० ॥

भूताश्रयो भूतपति सर्व्वलोकनमस्कृतः।
स्रष्टा सम्वर्त्तको वह्निः सर्व्वस्याऽऽदिरलोलुपः॥ ४१॥
अनन्तः कपिलो भानुः कामदः सर्वतोमुखः।
जयो विशालो वरदः सर्व्वभूतनिषेवितः॥ ४२॥
मनः सुपर्णो भूतादिः शीघ्रग प्राणधारणः।
धन्वन्तरिर्धूमकेतुरादिदेवोऽदितेः सुतः॥ ४३॥
द्वादशात्मा रविर्दक्ष पिता माता पितामहः।
स्वर्गद्वार प्रजाद्वारं मोक्षद्वारं त्रिविष्टपम्॥ ४४॥
देहकर्त्ता प्रशान्तात्मा विश्वात्मा विश्वतोमुखः।
चराचरात्मा सूक्ष्मात्मा मैत्रेयः करुणान्वितः॥ ४५॥
एतद्वै कीर्त्तनीयस्य सूर्य्यस्यामिततेजसः।
नाम्नामष्टशत रम्य मया प्रोक्तं द्विजोत्तमाः॥ ४६॥

सुरगणपितृयक्षसेवितं,
असुरनिशाकरसिद्धवन्दितम्।
वरकनकहुताशनप्रभं,
प्रणिपतितोऽस्मि हिताय भास्करम्॥ ४७॥

सूर्य्योदये यः सुसमाहितः पठेत्,
स पुत्रदारान् धनरत्नसञ्चयान्।
लभेत जातिस्मरतां नरः स तु,
स्मृतिञ्च मेधाञ्च स विन्दते पराम्॥ ४८॥

इमं स्तवं देववरस्य यो नरः,
प्रकीर्त्तयेच्छुद्धमनाः समाहितः।

मुनय ऊचुः ।

किमर्थं स भवो देवः सर्वभूतहिते रतः ।
जघान यज्ञं दक्षस्य देवैः सर्वैरलङ्कृतम् ॥ ७ ॥
न ह्यल्पं कारणं तत्र प्रभो मन्यामहे वयम् ।
श्रोतुमिच्छामहे ब्रूहि परं कौतूहलं हि नः ॥ ८ ॥

ब्रह्मोवाच ।

दक्षस्याऽऽसन्नष्ट कन्या याश्चेवं पतिसङ्गताः ।
स्वेभ्यो गृहेभ्यश्चाऽऽनीय ताः पिताऽभ्यर्च्चयद्गृहे ॥ ९ ॥
ततस्त्वभ्यर्च्चिता विप्रा न्यवसंस्ताः पितुर्गृहे ।
तासां ज्येष्ठा सती नाम पत्नी या त्र्यम्बकस्य वै ॥ १० ॥
नाऽऽजुहावाऽऽत्मजां तां वै दक्षो रुद्रमभिद्विषन् ।
अकरोत्सन्नतिं दक्षे न च काञ्चिन्महेश्वरः ॥ ११ ॥
जामाता श्वशुरे तस्मिन् स्वभावात्तेजसि स्थितः ।
ततो ज्ञात्वा सती सर्वास्तास्तु प्राप्ताः पितुर्गृहम् ॥ १२ ।
जगाम साऽप्यनाहूता सती तु स्वपितुर्गृहम् ।
ताभ्यो हीनां पिता चक्रे सत्याः पूजामसम्मताम् ॥
ततोऽब्रवीत्सा पितरं देवी क्रोधसमाकुला ॥ १३ ॥

सत्युवाच ।

यवीयसीभ्यः श्रेष्ठाऽहं किं न पूजसि मां प्रभो ।
असत्कृतामवस्थां यः कृतवानसि गर्हिताम् ॥
अहं ज्येष्ठा वरिष्ठा च मां त्वं सत्कर्तुमर्हसि ॥ १४ ॥

ब्रह्मोवाच ।

एवमुक्तोऽब्रवीदेनां दक्षः संरक्तलोचनः ॥ १५ ॥

दक्ष उवाच ।

त्वत्तः श्रेष्ठा वरिष्ठाश्च पूज्या बालाः सुता मम।
तासां ये चैव भर्त्तारस्ते मे बहुमताः सति ॥ १६ ॥
ब्रह्मिष्ठाश्च व्रतस्थाश्च महायोगाः सुधार्म्मिकाः ।
गुणैश्चैवाधिकाः श्लाघ्याः सर्व्वे ते त्र्यम्बकात् सति ॥ १७ ।
वसिष्ठोऽत्रिः पुलस्त्यश्च अङ्गिराः पुलहः क्रतुः ।
भृगुर्मरीचिश्च तथा श्रेष्ठा जामातरो मम ॥ १८ ॥
तैश्चापि स्पर्द्धते शर्व्वः सर्व्वे ते चैव तंप्रति ।
तेन त्वां न बुभूषामि प्रतिकूलो हि मे भवः ॥ १९ ॥
इत्युक्तवांस्तदा दक्षः सम्प्रमूढ़ेन चेतसा ।
शापार्थमात्मनश्चैव येनोक्ता वै महर्षयः ।
तथोक्ता पितरं सा वै क्रुद्धा देवी तमब्रवीत् ॥ २० ॥

सत्युवाच ।

वाङ्मनःकर्म्मभिर्यस्माददुष्टां मां विगर्हसि ।
तस्मात्त्यजाम्यहं देहमिमं तात तवाऽऽत्मजम् ॥ २१ ॥

ब्रह्मोवाच ।

ततस्तेनापमानेन सती दुःखादमर्षिता ।
अब्रवीद्वचनं देवी नमस्कृत्य स्वयम्भुवे ॥ २२ ॥

सत्युवाच ।

येनाहमपदेहा वै पुनर्देहेन भास्वता ।
तत्राप्यहमसम्मूढा सम्भूता धार्म्मिकी पुन ।
गच्छेय धर्मपत्नीत्व त्र्यम्बकस्यैव धीमत ॥ २३ ॥

ब्रह्मोवाच ।

तत्रैवाथ समासीना रुष्टाऽऽत्मान समादधे ।
धारयामास चाऽऽग्नेयीं धारणामात्मनाऽऽत्मनि ॥ २४ ॥
तत स्वात्मानमुत्थाप्य वायुना समुदीरित ।
सर्वाङ्गेभ्यो विनिश्चक्रम्य वह्निर्भस्म चकार ताम् ॥ २५ ॥
तदुपश्रुत्य निधन सत्या देव्या स शूलधृक् ।
सवादञ्च तयोर्बुद्ध्वा यथातथ्येन शङ्कर ।
दक्षस्य च विनाशाय चुकोप भगवान् प्रभु ॥ २६ ॥

श्रीशङ्कर उवाच ।

यस्मादवमता दक्ष सहसैवाऽऽगता सती ।
प्रशस्तास्त्वितरा सर्व्वास्त्वत्सुता भर्त्तृभि सह ॥ २७ ॥
तस्माद्वैवस्वते प्राप्ते पुनरेते महर्षय ।
उत्पत्स्यन्ति द्वितीये वै तव यज्ञे ह्ययोनिजा ॥ २८ ॥
हुते वै ब्रह्मण सत्रे चाक्षुषस्यान्तरे मनो ।
अभिव्याहृत्य सप्तर्षीन् दक्ष सोऽभ्यशपत् पुन ॥ २९ ॥
भविता मानुषो राजा चाक्षुषस्यान्तरे मनो ।
प्राचीनबर्हिष पौत्र पुत्रश्चापि प्रचेतस ॥ ३० ॥

दक्ष इत्येव नाम्ना त्वं मारिषायां जनिष्यसि ।
कन्यायां शाखिनाञ्चैव प्राप्ते वै चाक्षुषान्तरे ॥ ३१ ॥
अहं तत्रापि ते विघ्नमाचरिष्यामि दुर्मते ।
धर्मकामार्थयुक्तेषु कर्मस्विह पुनः पुनः ॥ ३२ ॥
ततो वै व्याहृतो दक्षो रुद्रं सोऽभ्यशपत् पुनः ॥ ३३ ॥

दक्ष उवाच ।

यस्मात्त्वं मत्कृते क्रूर ऋषीन् व्याहृतवानसि ।
तस्मात् सार्द्धं सुरैर्यज्ञे न त्वां यक्ष्यन्ति वै द्विजाः ॥ ३४ ॥
हुत्वाऽऽहुतिं तव क्रूर अपः स्पृशन्ति कर्मसु ।
इहैव वत्स्यसे लोके दिवं हित्वाऽऽ युगक्षयात् ।
ततो देवैस्तु ते सार्द्धं न तु पूजा भविष्यति ॥ ३५ ॥

रुद्र उवाच ।

चातुर्व्वर्ण्यन्तु देवानां ते चाप्येकत्र भुञ्जते ।
न भोक्ष्ये सहितस्तैस्तु ततो भोक्ष्याम्यहं पृथक् ॥ ३६ ॥
सर्व्वेषाञ्चैव लोकानामादिर्भूर्लोक उच्यते ।
तमहं धारयाम्येकः स्वेच्छया न तवाऽऽज्ञया ॥ ३७ ॥
तस्मिन् धृते सर्व्वे (स्वर्ग) लोकाः सर्व्वे तिष्ठन्ति शाश्वताः ।
तस्मादहं वसामीह सततं न तवाज्ञया ॥ ३८ ॥

ब्रह्मोवाच ।

ततोऽभिव्याहृतो दक्षो रुद्रेणामिततेजसा ।
स्वायम्भुवीं तनुं त्यक्त्वा उत्पन्नो मानुषेष्विह ॥ ३९ ॥

यदा गृहपतिर्दक्षो यज्ञानामीश्वरः प्रभुः ।
समस्तेनेह यज्ञेन सोऽयजद् दैवतैः सह ॥ ४० ॥
अथ देवी सती (यत्ते) जज्ञे प्राप्ते वैवस्वतेऽन्तरे ।
मेनायां तामुमां देवी जनयामास शैलराट् ॥ ४१ ॥
सा तु देवी सती पूर्व्वमासीत् पश्चादुमाऽभवत् ।
सहव्रता भवस्यैषा नैतया मुच्यते भवः ॥ ४२ ॥
यावदिच्छति संस्थानं प्रभुर्मन्वन्तरेष्विह ।
मारीचं कश्यपं देवी यथाऽदितिरनुव्रता ॥ ४३ ॥
साऽद्दं नारायणं श्रीस्तु मघवन्तं शची यथा ।
विष्णुं कीर्त्तिरुषा सूर्य्यं वसिष्ठं चाप्यरुन्धती ॥ ४४ ॥
नैतांस्तु विजहत्येता भर्त्तॄन् देव्यः कथञ्चन ।
एवं प्राचेतसो दक्षो जज्ञे वै चाक्षुषेऽन्तरे ॥ ४५ ॥
प्राचीनबर्हिषः पौत्रः पुत्रश्चापि प्रचेतसाम् ।
दशभ्यस्तु प्रचेतोभ्यो मारिषायां पुनर्नृप ॥ ४६ ॥
जज्ञे रुद्राभिशापेन द्वितीयमिति नः श्रुतम् ।
भृग्वादयस्तु ते सर्व्वे जज्ञिरे वै महर्षयः ॥ ४७ ॥
आद्ये त्रेतायुगे पूर्व्वं मनोर्वैवस्वतस्य ह ।
देवस्य महतो यज्ञे वारुणीं बिभ्रतस्तनुम् ॥ ४८ ॥
इत्येषोऽनुशयो ह्यासीत्तयोर्जात्यन्तरे गतः ।
प्रजापतेश्च दक्षस्य त्र्यम्बकस्य च धीमतः ॥ ४९ ॥
तस्मान्नानुशयः कार्य्यो वरेष्विह कदाचन ।

जात्यन्तरगतस्यापि भावितस्य शुभाशुभैः ।
जन्तोर्न भूतये ख्यातिस्तन्न कार्य्यं विजानता ॥ ५० ॥

मुनय ऊचुः ।

कथं रोपेण सा पूर्व्वं दक्षस्य दुहिता सती ।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जाता गिरिराजगृहे प्रभो ॥ ५१ ॥
देहान्तरे कथं तस्या पूर्वदेहो बभूव ह ।
भवेन सह संयोगः संवादश्च तयोः कथम् ॥ ५२ ॥
स्वयम्वरः कथं वृत्तस्तस्मिन् महति जन्मनि ।
विवाहश्च जगन्नाथ सर्व्वाश्चर्य्यसमन्वितः ॥ ५३ ॥
तत्सर्व्वं विस्तराद्ब्रह्मन् वक्तुमर्हसि साम्प्रतम् ।
श्रोतुमिच्छामहे पुण्यां कथां चातिमनोहराम् ॥ ५४ ॥

ब्रह्मोवाच ।

शृणुध्वं मुनिशार्द्दूलाः कथां पापप्रणाशिनीम् ।
उमाशङ्करयोः पुण्यां सर्व्वकामफलप्रदाम् ॥ ५५ ॥
कदाचित् स्वगृहात् प्राप्तं कश्यपं द्विपदां वरम् ।
अपृच्छद्धिमवान् वृत्तं लोके ख्यातिकरं हितम् ॥ ५६ ॥
केनाक्षयाश्च लोकाः स्युः ख्यातिश्च परमा मुने ।
तथैव चार्च्चनीयत्वं सत्सु तत्कथयस्व मे ॥ ५७ ॥

कश्यप उवाच ।

अपत्येन महाबाहो सर्व्वमेतदवाप्यते ।
ममाऽऽख्यातिरपत्येन ब्रह्मणा ऋषिभिः सह ॥ ५८ ॥

किं न पश्यसि शैलेन्द्र यतो मा परिपृच्छसि ।
वर्त्तयिष्यामि यच्चापि यथादृष्टं पुराऽचल ॥ ५६ ॥
वाराणसीमहं गच्छन्नपश्यं संस्थितं दिवि ।
विमानं सुनग दिव्यमनौपम्यं महर्द्धिमत् ॥ ६० ॥
तस्याधस्तादार्त्तनादं गर्त्तस्थाने शृणोम्यहम् ।
तमहं तपसा ज्ञात्वा तत्रैवान्तर्हितः स्थितः ॥ ६१ ॥
अथागात्तत्र शैलेन्द्र विप्रो नियमवान् शुचिः ।
तीर्थाभिषेकपूतात्मा परं तपसि संस्थितः ॥ ६२ ॥
अथ स मज्जमानस्तु व्याघ्रेणाऽभीषितो द्विजः ।
विवेश तं तदा देशं स गर्तो यत्र भूधर ॥ ६३ ॥
गर्त्तायां वीरणस्तम्बे लम्बमानास्तदा मुनीन् ।
अपश्यदार्त्तोदु खात्तां स्तानपृच्छच्च स द्विजः ॥ ६४ ॥

द्विज उवाच ।

के यूयं वीरणस्तम्बे लम्बमाना ह्यधोमुखाः ।
दु खिताः केन मोक्षश्च युष्माकं भविताऽनघाः ॥ ६५ ॥

पितर ऊचुः ।

वयं ते कृतपुण्यस्य पितरः सपितामहाः ।
प्रपितामहाश्च क्लिश्यामस्तव दुष्टेन कर्मणा ॥ ६६ ॥
नरकोऽयं महाभाग गर्त्तारूपेण संस्थितः ।
त्वं चापि वीरणस्तम्बस्त्वयि लम्बामहे वयम् ॥ ६७ ॥
यावत्त्वं जीवसे विप्र तावदेव वयं स्थिताः ।
मृते त्वयि गमिष्यामो नरकं पापचेतसः ॥ ६८ ॥

यदि त्वं दारसंयोगं कृत्वापत्यं गुणोत्तरम् ।
उत्पादयसि तेनास्मान् मुच्येम वयमेनसः ॥ ६६ ॥
नान्येन तपसा पुत्र तीर्थानाञ्च फलेन च ।
एतत् कुरु महाबुद्धे तारयस्व पितॄन् भयात् ॥ ७० ॥

कश्यप उवाच ।

स तथेति प्रतिज्ञाय आराध्य वृषभध्वजम् ।
पितॄन् गर्त्तात्समुद्धृत्य गणपान् प्रचकार ह ॥ ७१ ॥
स्वयं रुद्रस्य दयितः सुवेशो नाम नामतः ।
सम्मतो बलवांश्चैव रुद्रस्य गणपोऽभवत् ॥ ७२ ॥
तस्मात् कृत्वा तपो घोरमपत्यं गुणवद्भृशम् ।
उत्पादयस्व शैलेन्द्र सुतां त्वं वरवर्णिनीम् ॥ ७३ ॥

ब्रह्मोवाच ।

स एवमुक्त्वा ऋषिणा शैलेन्द्रो नियमस्थितः ।
तपश्चकाराप्यतुलं येन तुष्टिरभून्मम ॥ ७४ ॥
तदा तमुत्पपाताहं वरदोऽस्मीति चाब्रवम् ।
ब्रूहि तुष्टोऽसि शैलेन्द्र तपसानेन सुव्रत ॥ ७५ ॥

हिमवानुवाच ।

भगवन् पुत्रमिच्छामि गुणैः सर्व्वैरलङ्कृतम् ।
एवं वरं प्रयच्छस्व यदि तुष्टोऽसि मे प्रभो ॥ ७६ ॥

ब्रह्मोवाच ।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा गिरिराजस्य भो द्विजाः ।
तदा तस्मै वरं चाहं दत्तवान्मनसेप्सितम् ॥ ७७ ॥

कन्या भविनी शैलेन्द्र तपसाऽनेन सुव्रत ।
यस्याः प्रभावात्सर्व्वत्र कीर्त्तिमाप्स्यसि शोभनाम् ॥ ७८ ॥
अर्चितः सर्व्वदेवानां तीर्थकोटिसमावृतः ।
पावनश्चैव पुण्येन देवानामपि सर्व्वतः ॥ ७९ ॥
ज्येष्ठा च सा भविनी ते अन्ये चात्र ततः शुभे ॥ ८० ॥
सोऽपि कालेन शैलेन्द्रो मेनायामुत्पादयत् ।
अपर्णामेकपर्णाञ्च तथा चैवैकपाटलाम् ॥ ८१ ॥
न्यग्रोधमेकपर्णन्तु पाटलञ्चैकपाटलाम् ।
अशित्या त्वेकपर्णान्तु अनिकेतस्तपोऽचरत् ॥ ८२ ॥
शतं वर्षसहस्राणां दुश्चरं देवदानवैः ।
आहारमेकपर्णं तु एकपर्णा समाचरत् ॥ ८३ ॥
पाटलेन तथैकेन विदधे चैकपाटला ।
पूर्णे वर्षसहस्रे तु आहारं ता प्रचक्रतुः ॥ ८४ ॥
अपर्णा तु निराहारा ता माता प्रत्यभाषत ।
निषेधयन्ती योमेति मातृस्नेहेन दुःखिता ॥ ८५ ॥
सा तथोक्ता तया मात्रा देवी दुश्चरचारिणी ।
तेनैव नाम्ना लोकेषु विख्याता सुरपूजिता ॥ ८६ ॥
एतत्तु त्रिकुमारीकं जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
एतासां तपसां वृत्तं यावद्भूमिर्धरिष्यति ॥ ८७ ॥
तपःशरीरास्ताः सर्व्वास्तिस्रो योगं समाश्रिताः ।
सर्व्वाश्चैव महाभागास्तथा च स्थिरयौवनाः ॥ ८८ ॥

ता लोकमातरश्चैव ब्रह्मचारिण्य एव च ।
अनुगृह्णन्ति लोकांश्च तपसा स्वेन सर्व्वदा ॥ ८९ ॥
उमा तासां वरिष्ठा च ज्येष्ठा च वरवर्णिनी ।
महायोगबलोपेता महादेवमुपस्थिता ॥ ९० ॥
दत्तकश्चोशना तस्य पुत्रः स भृगुनन्दन ।
आसीत्तस्यैकपर्णा तु देवलं सुषुवे सुतम् ॥ ९१ ॥
या तु तासां कुमारीणां तृतीया ह्येकपाटला ।
पुत्रं सा शतलकस्य जैगीषव्यमुपस्थिता ॥ ९२ ॥
तस्याश्च शङ्खलिखितौ स्मृतौ पुत्रावयोनिजौ ।
उमा तु या मया तुभ्यं कीर्त्तिता वरवर्णिनी ॥ ९३ ॥
अथ तस्यास्तपोयोगात्त्रैलोक्यमखिलं तदा ।
प्रधूपितमिहाऽऽलक्ष्य वचस्तामहमब्रवम् ॥ ९४ ॥
देवि किं तपसा लोकांस्तापयिष्यसि शोभने ।
त्वया सृष्टमिदं सर्व्वं मा कृत्वा तद्विनाशय ॥ ९५ ॥
त्वं हि धारयसे लोकानिमान् सर्व्वान् स्वतेजसा ।
ब्रूहि किं ते जगन्मातः प्रार्थितं सम्प्रतीह नः ॥ ९६ ॥

देव्युवाच ।

यदर्थं तपसो ह्यस्य चरणं मे पितामह ।
त्वमेव तद्विजानीषे ततः पृच्छसि किं पुनः ॥ ९७ ॥

ब्रह्मोवाच ।

ततस्तामब्रवं चाहं यदर्थं तप्यसे शुभे ।
स त्वां स्वयमुपागम्य इहैव वरयिष्यति ॥ ९८ ॥

शर्व्व एव पति श्रेष्ठः सर्व्वलोकेश्वरेश्वरः ।
वयं सदैव यस्येमे वश्या वै किङ्कराः शुभे ॥ ९९ ॥

स देवदेवः परमेश्वरः स्वयं,
स्वयम्भुरायास्यति देवि तेऽन्तिकम् ।
उदाररूपो विकृतादिरूप',
समानरूपोऽपि न यस्य कस्यचित् ॥ १०० ॥

महेश्वरः पर्व्वतलोकवासी,
चराचरेशः प्रथमोऽप्रमेयः ।
विनेन्दुना हीन्द्रसमानवर्च्चसा,
विभीषणं रूपमिवास्थिता य. ॥ १०१ ॥

इति श्री आदि ब्राह्मे महापुराणे स्वयम्भु-ऋषि
संवादे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः—२३८०

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ।

पार्वत्युपाख्यानवर्णनम्

ब्रह्मोवाच ।

ततस्तामब्रुवन् देवास्तदा गत्वा तु सुन्दरीम् ।
देवी शीघ्रेण कालेन धूर्ज्जटिर्नीललोहितः ॥ १ ॥
स भर्त्ता तव देवेशो भविता मा तपः कृथा. ।
ततः प्रदक्षिणीकृत्य देवा विप्रा गिरे. सुताम् ॥ २ ॥

जग्मुश्चादर्शनं तस्याः सा चापि विरराम ह।
सा देवी सूक्तमित्येवमुक्त्वा स्वस्याश्रमे शुभे ॥ ३ ॥
द्वारि जातमशोकस्य समुपाश्रित्य चास्थिता।
अथागाच्चन्द्रतिलकस्त्रिदशार्त्तिहरो हरः ॥ ४ ॥
विकृतं रूपमास्थाय ह्रस्वो.बाहुक एव च।
विभग्ननासिको भूत्वा कुब्जः केशान्तपिङ्गलः ॥ ५ ॥
उवाच विकृतास्यश्च देवि त्वां वरयाम्यहम्।
अथोमा योगसंसिद्धा ज्ञात्वा शङ्करमागतम् ॥ ६ ॥
अन्तर्भावविशुद्धात्मा कृपानुग्रहलिप्सया।
तमुवाचार्घ्यपाद्याभ्यां मधुपर्केण चैव ह ॥ ७ ॥
सम्पूज्य सुमनोभिस्तं ब्राह्मणं ब्राह्मणप्रिया ॥ ८ ॥

देव्युवाच।

भगवन्न स्वतन्त्राहं पिता मे त्वग्रणीर्गृहे।
स प्रभुर्मम दाने वै कन्याहं द्विजपुङ्गव ॥ ९ ॥
गत्वा याचस्व पितरं मम शैलेन्द्रमव्ययम्।
स चेद्ददाति मां विप्र तुभ्यं तदुचितं मम ॥ १० ॥

ब्रह्मोवाच।

ततः स भगवान् देवस्तथैव विकृतः प्रभुः।
उवाच शैलराजानं सुतां मे यच्छ शैलराट् ॥ ११ ॥
स तं विकृतरूपेण ज्ञात्वा रुद्रमथाव्ययम्।
भीतः शापाच्च विमना इदं वचनमब्रवीत् ॥ १२ ॥

शैलेन्द्र उवाच।

भगवन्नावमन्येऽहं ब्राह्मणान् भुवि देवताः।
मनीषितन्तु यत् पूर्वं तच्छृणुष्व महामते ॥ १३ ॥
स्वयम्बरो मे दुहितुर्भविता विप्रपूजितः।
वरयेद्यं स्वयं तत्र स भर्तास्या भविष्यति ॥ १४ ॥
तच्छ्रुत्वा शैलवचनं भगवान् वृषभध्वजः।
देव्याः समीपमागत्य इदमाह महामनाः ॥ १५ ॥

शिव उवाच।

देवि पित्रा त्वनुज्ञातः स्वयम्वर इति श्रुतिः।
तत्र त्वं वरयित्री यं स ते भर्ता भवेदिति ॥ १६ ॥
तदापृच्छ्य गमिष्यामि दुर्लभां त्वां वरानने।
रूपवन्त समुत्सृज्य वृणोष्यसदृशं कथम् ॥ १७ ॥

ब्रह्मोवाच।

तेनोक्ता सा तदा तत्र भावयन्ती तदीरितम्।
भारञ्च रुद्रनिहितं प्रसादं मनसस्तथा ॥ १८ ॥
सम्प्राप्योवाच देवेश मा तेऽभूद्बुद्धिरन्यथा।
अहं त्वां वरयिष्यामि नाद्भुतन्तु कथञ्चन ॥ १९ ॥
अथवा तेऽस्ति सन्देहो मयि विप्र कथञ्चन।
इहैव त्वां महाभाग वरयामि मनोगतम् ॥ २० ॥

ब्रह्मोवाच।

गृहीत्वा स्तवकं सा तु हस्ताभ्यां तत्र संस्थिता।
स्कन्धे शम्भोः समाधाय देवी प्राह वृतोऽसि मे ॥ २१ ॥

ततः स भगवान् देवस्तया देव्या वृतस्तदा।
उवाच तमशोकं वै वाचा सञ्जीवयन्निव ॥ २२ ॥

शिव उवाच।

यस्मात्तव सुपुण्येन स्तवकेन वृतोऽस्म्यहम्।
तस्मात्त्वं जरया त्यक्तस्त्वमरः सम्भविष्यसि ॥ २३ ॥
कामरूपी कामपुष्पः कामदो दयितो मम।
सर्व्वाभरणपुष्पाढ्यः सर्व्वपुष्पफलोपगः ॥ २४ ॥
सर्व्वान्नभक्षकश्चैव अमृतस्वाद एव च।
सर्व्वगन्धश्च देवानां भविष्यसि दृढ़प्रियः ॥ २५ ॥
निर्भयः सर्व्वलोकेषु भविष्यसि सुनिर्वृ तः।
आश्रमं वेदमत्यर्थं चित्रकूटेति विश्रुतम् ॥ २६ ॥
यो हि यास्यति पुण्यार्थी सोऽश्वमेधमवाप्स्यति।
यस्तु तत्र मृतश्चापि ब्रह्मलोकं स गच्छति ॥ २७ ॥
यश्चात्र नियमैर्युक्तः प्राणान् सम्यक् परित्यजेत्।
स देव्यास्तपसा युक्तो महागणपतिर्भवेत् ॥ २८ ॥

ब्रह्मोवाच।

एवमुक्त्वा तदा देव आपृच्छ्य हिमवत्सुताम्।
अन्तर्द्धे जगत्स्रष्टा सर्व्वभूतप ईश्वरः ॥ २९ ॥
सापि देवी गते तस्मिन् भगवत्यमितात्मनि।
तत एवोन्मुखी भूत्वा शिलायां सम्बभूव ह ॥ ३० ॥
उन्मुखी सा भवे तस्मिन् महेशे जगतांप्रभौ।
निशेव चन्द्ररहिता न बभौ विमनास्तदा ॥ ३१ ॥

अथ शुश्राव शब्दञ्च बालस्यार्त्तस्य शैलजा ।
सरस्युदकसम्पूर्णे समीपे चाश्रमस्य च ॥ ३२ ॥
स कृत्वा बालरूपन्तु देवदेवः स्वयं शिवः ।
क्रीड़ाहेतोः सरोमध्ये ग्राहग्रस्तोऽभवत्तदा ॥ ३३ ॥
योगमायां समास्थाय प्रपञ्चोद्भवकारणम् ।
तद्रूपं सरसो मध्ये कृत्वैवं सममापत ॥ ३४ ॥

बाल उवाच ।

त्रातु मां कश्चिदित्याह ग्राहेण हृतचेतसम् ।
धिक्‌कष्टं बाल एवाहमप्राप्तार्थमनोरथः ॥ ३५ ॥
प्रयामि निधनं वक्रे ग्राहस्यास्य दुरात्मनः ।
शोचामि न स्वकं देहं ग्राहग्रस्तः सुदुःखितः ॥ ३६ ॥
यथा शोचामि पितरं मातरञ्च तपस्विनीं ।
ग्राहगृहीतं मां श्रुत्वा प्राप्तं निधनमुत्सुकौ ॥ ३७ ॥
प्रियपुत्रावेकपुत्रौ प्राणान् न्यूनं त्यजिष्यतः ।
अहो बत सुकष्टं वै योऽहंबालोऽकृताश्रमः
अन्तर्ग्राहेण ग्रस्तस्तु यास्यामि निधनं किल ॥ ३८ ॥

ब्रह्मोवाच ।

श्रुत्वा तु देवी तं नादं विप्रस्याऽऽर्त्तस्य शोभना ।
उत्थाय प्रस्थिता तत्र यत्र तिष्ठन्यसौ द्विजः ॥ ३९ ॥
सापश्यदिन्दुवदना बालकं चारुरूपिणम् ।
ग्राहस्य मुखमापन्नं वेपमानमवस्थितम् ॥ ४० ॥

सोऽपि ग्राहवरः श्रीमान् दृष्ट्वा देवीमुपागताम् ।
तं गृहीत्वा द्रुतं यातो मध्यं सरस एव हि ॥ ४१ ॥
स कृष्यमाणस्तेजस्वी नादमार्त्तं तदाकरोत् ।
अथाह देवि दुःखार्त्ता बालं दृष्ट्वा ग्रहावृतम् ॥ ४२ ॥

पार्वत्युवाच ।

ग्राहराज महासत्त्व बालकं ह्येकपुत्रकम् ।
विमुञ्चेमं महादंष्ट्र क्षिप्रं भीमपराक्रम ॥ ४३ ॥

ग्राह उवाच ।

यो देवि दिवसे षष्ठे प्रथमं समुपैति माम् ।
स आहारो मम पुरा विहितो लोककर्त्तृभिः ॥ ४४ ॥
सोऽयं मम महाभागे षष्ठेऽहनि गिरीन्द्रजे ।
ब्रह्मणा प्रेरितो नूनं नैनं मोक्ष्ये कथञ्चन ॥ ४५ ॥

देव्युवाच ।

यन्मया हिमवच्छृङ्गे चरितं तप उत्तमम् ।
तेन बालमिमं मुञ्च ग्राहराज नमोऽस्तु ते ॥ ४६ ॥

ग्राह उवाच ।

मा व्ययस्तपसो देवि भृशं बाले शुभानने ।
यद्ब्रवीमि सुरश्रेष्ठे तथा मोक्षमवाप्स्यति ॥ ४७ ॥

देव्युवाच ।

ग्राहाधिप वदस्वाशु यत् सतामविगर्हितम् ।
तत् कर्तास्मि न सन्देहो यतो मे ब्राह्मणाः प्रियाः ॥ ४८ ॥

ग्राह उवाच।

यत् कृतं वै तपः किञ्चिद्भवत्या स्वल्पमुत्तमम्।
तत् सर्वं मे प्रयच्छाऽऽशु ततो मोक्षमवाप्स्यति ॥ ४९ ॥

देव्युवाच।

जन्मप्रभृति यत् पुण्यं महाग्राह कृतं मया।
तत्ते सर्वं मया दत्तं बालं मुञ्च महाग्रह ॥ ५० ॥

ब्रह्मोवाच।

प्रजज्वाल ततो ग्राहस्तपसा तेन भूषितः।
आदित्य इव मध्याह्ने दुर्निरीक्ष्यस्तदाभवत् ॥ ५१ ॥
उवाच चेदं तुष्टात्मा देवीं लोकस्य धारिणीम् ॥ ५२ ॥

ग्राह उवाच।

देवि किं कृत्यमेतत्ते सुनिश्चित्य महाव्रते।
तपसोऽप्यर्ज्जनं दुःखं तस्य त्यागो न शस्यते।
गृहाण तपः एव त्वं बालं चेमं सुमध्यमे।
तुष्टोऽस्मि ते विप्रभक्त्या वरं तस्माद्ददामि ते ॥
सा त्वेवमुक्ता ग्राहेण उवाचेदं महाव्रता ॥ ५३ ॥

देव्युवाच।

देहेनापि मया ग्राह रक्ष्यो विप्रः प्रयत्नतः।
तपः पुनर्मया प्राप्यं न प्राप्यो ब्राह्मणः पुनः ॥ ५४ ॥
सुनिश्चित्य महाग्राह कृतं बालस्य मोक्षणम्।
न विप्रेभ्यस्तपः श्रेष्ठं श्रेष्ठा मे ब्राह्मणा मताः ॥ ५५ ॥
दत्त्वा चाहं न गृह्णामि ग्राहेन्द्र विहितं हि ते।
न हि कश्चिन्नरो ग्राह प्रदत्तं पुनराहरेत् ॥ ५६ ॥

दत्तमेतन्मया तुभ्यं नाऽऽददानि हि तत् पुनः ।
त्वय्येव रमतामेतद्बालग्राहं विमुच्यताम् ॥ ५७ ॥

ब्रह्मोवाच ।

तथोक्तस्तां प्रशस्याथ मुक्त्वा बालं नमस्य च ।
देवीमादित्यवर्णाभस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ५८
बालोऽपि सरसस्तीरे मुक्तो ग्राहेण वै तदा ।
स्वप्नलब्ध इवार्थौघस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ५९ ॥
तपसोऽपचयं मत्वा देवी हिमगिरीन्द्रजा ।
भूय एव तपः कर्तुमारेभे नियमस्थिता ॥ ६० ॥
कर्तुकामां तपो भूयो ज्ञात्वा तां शङ्करः स्वयम् ।
प्रोवाच वचनं विप्रा मा कृथास्तप इत्युत ॥ ६१ ॥
मह्यमेतत्तपो देवी त्वया दत्तं महाव्रते ।
तत्तेनैवाक्षयं तुभ्यं भविष्यति सहस्रधा ॥ ६२ ॥
इति लब्ध्वा वरं देवी तपसोऽक्षयमुत्तमम् ।
स्वयम्वरमुदीक्षन्ती तस्थौ प्रीता मुदा युता ॥ ६३ ॥
इदं पठेद्यो हि नरः सदैव, बालानुभावाचरणं हि शम्भोः
स देहभेदं समवाप्य पूतो भवेद्गणेशस्तु कुमारतुल्यः ॥ ६४

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे स्वयम्भु ऋषि-
संवादे पार्वत्याः सत्वदर्शनं नाम
पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥
आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः—२४४३

षट्त्रिंशोऽध्यायः ।

पार्वतीस्वयम्वरवर्णनम्

ब्रह्मोवाच ।

विस्तृते हिमवत्पृष्ठे विमानशतसङ्कुले ।
अभवत् स तु कालेन शैलपुत्र्याः स्वयम्वरः ॥ १ ॥
अथ पर्व्वतराजोऽसौ हिमवान् ध्यानकोविदः ।
दुहितुर्देवदेवेन ज्ञात्वा तदभिमन्त्रितम् ॥ २ ॥
जानन्नपि महाशैलः समयारक्षणेप्सया ।
स्वयम्वरं ततो देव्याः सर्व्वलोकेष्वघोषयत् ॥ ३ ॥
देवदानवसिद्धानां सर्व्वलोकनिवासिनाम् ।
वृणुयात् परमेशानं समक्षं यदि मे सुता ॥ ४ ॥
तदेव सुकृतं श्लाघ्यं ममाभ्युदयसम्मतम् ।
इति सञ्चिन्त्य शैलेन्द्रः कृत्वा हृदि महेश्वरम् ॥ ५ ॥
आब्रह्मकेषु देवेषु देव्याः शैलेन्द्रसत्तम ।
कृत्वा रत्नाकुलं देशं स्वयम्वरमथाकरत् ॥ ६ ॥

अथैवमाघोषितमात्र एव,
स्वयम्वरे तत्र नगेन्द्रपुत्र्याः ।
देवादयः सर्वजगन्निवासा,
समाययुस्तत्र गृहीतवेशाः ॥ ७ ॥
प्रफुल्लपद्मासनसन्निविष्टः,
सिद्धैर्वृतो योगिभिरप्रमेयैः ।

विज्ञापितस्तेन महीधराद्याऽऽऽ-

गतस्तदाऽहं त्रिदिवैरुपेतः ॥ ८ ॥

अक्ष्णां सहस्रं सुरराट् स बिभ्रद्-

दिव्याङ्गहारस्रगुदाररूपः ।

ऐरावतं सर्व्वगजेन्द्रमुख्यं,

स्रवन्मदासारकृतप्रवाहम् ॥ ९ ॥

आरुह्य सर्व्वामरराट् स वज्रं,

बिभ्रत् समागात् पुरतः सुराणाम् ।

तेजःप्रभावाधिकतुल्यरूपी,

प्रोल्लासयन् सर्व्वदिशो विवस्वान् ॥ १० ॥

हैमं विमानं स चलत्पताक-

मारूढ़ आगाच्चरितं जवेन ।

मणिप्रदीप्तोज्ज्वलकुण्डलश्च

ग्रहयर्कतेजःप्रतिमे विमाने ॥ ११ ॥

समभ्यगात् कश्यपसूनुरेकः

आदित्यमध्याद्भगनामधारी ।

पीनाङ्गयष्टिः सुकृताङ्गहार-

तेजोवलाज्ञासदृशप्रभावः ॥ १२ ॥

दण्डं समागृह्य कृतान्त आगा-

दारुह्य भीमं महिषं जवेन ।

महामहीध्रोच्छ्रयपीनगात्र-

स्वर्णादिरत्नाञ्चितचारुवेशः ॥ १३ ॥

समीरण सर्व्वजगद्विभर्त्ता,
विमानमारुह्य समभ्यगाद्धि ।
संतापयन् सर्व्वसुरासुरेशा-
स्तेजोधिकस्तेजसि सन्निविष्ट ॥ १४ ॥
वह्नि· समभ्येत्य सुरेन्द्रमध्ये,
ज्वलन् प्रतस्थौ वरवेशधारी ।
नानामणिप्रज्वलिताङ्गयष्टि
र्जगद्वरं दिव्यविमानमग्र्यम् ॥ १५ ॥
आरुह्य सर्व्वेद्रविणाधिपेश,
स राजराजस्त्वरितोऽभ्यगाच्च ।
आप्यायवन् सर्व्वसुरासुरेशान्,
कान्त्या च वेशेन च चारुरूप ॥ १६ ॥
ज्वलन्महारक्षविचित्ररूप,
विमानमारुह्य शशी समायात् ।
श्यामाङ्गयष्टि सुविचित्रवेश,
सर्व्वाङ्ग आबद्धसुगन्धिमाल्य ॥ १७ ॥
तार्क्ष्यं समारुह्य महीध्रकल्प,
गदाधरोऽसौ त्वरित समेत ।
अथाश्विनौ चापि भिषग्वरौ द्वा
वेक विमान त्वरयाऽधिरुह्य ॥ १८ ॥
मनोहरौ प्रज्वलचारुवेशौ,
आजग्मतुर्देववरौ सुवीरौ ।

सहस्रनागः स्फुरदग्निवर्णं,
चित्रस्तदानीं ज्वलनार्कतेजाः ॥ १६ ॥
साद्धं च नागैरपरैर्महात्मा,
विमानमारुह्य समभ्यगाच्च ।
दितेः सुतानाञ्च महासुराणां,
बहुप्रकाराग्निलतुल्यभासाम् ॥ २० ॥
वरानुरूपं प्रविधाय वेशं,
वृन्दं समागात् पुरतः सुराणाम् ।
गन्धर्व्वराजः स च चारुरूपी,
दिव्याङ्गदो दिव्यविमानचारी ॥ २१ ॥
गन्धर्व्वसङ्घैः सहितोऽप्सरोभिः,
शक्राज्ञया तत्र समाजगाम ।
अन्ये च देवास्त्रिदिवात्तदानीं,
पृथक् पृथक् चारुगृहीतवेशाः ॥ २२ ॥
आजग्मुरारुह्य विमानपृष्ठं,
गन्धर्व्वयक्षोरगकिन्नराश्च ।
शचीपतिस्तत्र सुरेन्द्रमध्ये,
रराज राजाऽधिकलक्ष्यमूर्त्तिः ॥ २३ ॥
आज्ञावलैश्वर्य्यकृतप्रमोदः,
स्वयम्वरं तं समलञ्चकार ।
हेतुस्त्रिलोकस्य जगत्प्रसूते-,
र्माता च तेषां स सुरासुराणाम् ॥ २४ ॥

पत्नी च शम्भो पुरुषस्य धीमतो,
गीता पुराणे प्रकृति परा या ।
दक्षस्य कोपाद्धिमवद्गृहं सा
कार्यार्थमायात्त्रिदिवौकसा हि ॥ २५ ॥
विमानपृष्ठे मणिहेमजुष्टे
स्थिता वरन्चामरवीजिताङ्गी ।
सर्व्वर्त्तुपुष्पां सुसुगन्धमाला
प्रगृह्य देवी प्रसभं प्रतस्थे ॥ २६ ॥

ब्रह्मोवाच ।

माला प्रगृह्य देव्यान्तु स्थितायां देवसंसदि ।
शक्राद्यैरागतैर्देवैः स्वयम्वर उपागते ॥ २७ ॥
देव्या जिज्ञासया शम्भूर्भूत्वा पञ्चशिखः शिशुः ।
उत्सङ्गन्तलसंसुप्तो बभूव सहसा विभुः ॥ २८ ॥
ततो ददर्श तं देवी शिशुं पञ्चशिखं स्थितम् ।
ज्ञात्वा तं समयध्यानाज्जगृहे प्रीतिसंयुता ॥ २९ ॥
अथ सा शुद्धसङ्कल्पा काङ्क्षिनं प्राप्य सत्पतिम् ।
निवृत्ता च तदा तस्थौ कृत्वा सा हृदि तं विभुम् ॥ ३० ॥
ततो दृष्ट्वा शिशुं देवा देव्या उत्सङ्गवर्त्तिनम् ।
कोऽयमत्रेति सम्मन्त्र्य चुक्रुशुर्भृशमोहिता ॥ ३१ ॥
वज्रमाहारयत्तस्य बाहुमुत्क्षिप्य वृत्रहा ।
स बाहुरुत्थितस्तस्य तथैव समतिष्ठत ॥ ३२ ॥

स्तम्भितः शिशुरूपेण देवदेवेन शम्भुना ।
वज्रं क्षेप्तुं न शशाक वृत्रहा चलितुं न च ॥ ३३ ॥
भगो नाम ततो देव आदित्यः काश्यपो बली ।
उत्क्षिप्य (चिक्षेप) आयुधं दीप्तं छेत्तुमिच्छन् विमोहितः॥३४
तस्यापि भगवान् बाहुं तथैवास्तम्भयत्तदा ।
बलं तेजश्च योगश्च तथैवास्तम्भयद्विभुः ॥ ३५ ॥
शिरः प्रकम्पयन् विष्णुः शङ्करं समवैक्षत ।
अथ तेषु स्थितेष्वेवं मन्युमत्सु सुरेषु च ॥ ३६ ॥
अहं परमसंविग्नो ध्यानमास्थाय सादरम् ।
बुद्धवान् देवदेवेशमुमोत्सङ्गे समास्थितम् ॥ ३७ ॥
ज्ञात्वाऽहं परमेशानं शीघ्रमुत्थाय सादरम् ।
ववन्दे चरणं शम्भोः स्तुतवांस्तमहं द्विजाः ॥ ३८ ॥
पुराणैः सामसङ्गीतैः पुण्याख्यैर्गुह्यनामभिः ।
अजस्त्वमजरो देवः स्रष्टा विभुः परापरम् ॥ ३९ ॥
प्रधानं पुरुषो यस्त्वं ब्रह्म ध्येयं तदक्षरम् ।
अमृतं परमात्मा च ईश्वरः कारणं महत् ॥ ४० ॥
ब्रह्मसृक् प्रकृतेः स्रष्टा सर्वकृत्प्रकृतेः परः ।
इयञ्च प्रकृतिर्देवी सदा ते सृष्टिकारणम् ॥ ४१ ॥
पत्नीरूपं समास्थाय जगत्कारणमागता ।
नमस्तुभ्यं महादेव महादेव्या च सहिताय च ॥ ४२ ॥
प्रसादात्तव देवेश नियोगाच्च मया प्रजाः ।
देवाद्यास्तु इमाः सृष्टा मूढास्त्वद्योगमायया ॥ ४३ ॥

कुरु प्रसादमेतेषा यथापूर्वं भवन्त्विमे ।
तत एवमहं विप्रा विज्ञाप्य परमेश्वरम् ॥ ४४ ॥
स्तम्भितान् सर्व्वदेवास्तानिदं चाह तदोक्तवान् ।
मूढाश्च देवता सर्व्वा नैन बुध्यत शङ्करम् ॥ ४५ ॥
गच्छध्वं शरणं शीघ्रमेनमेव महेश्वरम् ।
सार्धं मयैव देवेशं परमात्मानमव्ययम् ॥ ४६ ॥
ततस्ते स्तम्भिता सर्व्वे तथैव त्रिदिवौकस ।
प्रणेमुर्मनसा सर्व्वं भावशुद्धेन चेतसा ॥ ४७ ॥
अथ तेषा प्रसन्नोऽभूद् देवदेवो महेश्वर ।
यथापूर्वं चकाराऽऽशु देवताना तनूस्तदा ॥ ४८ ॥
तत एव प्रवृत्ते तु सर्व्वदेवनिवारणे ।
वपुश्चकार देवेशस्त्र्यक्ष परममद्भुतम् ॥ ४९ ॥
तेजसा तस्य ते ध्वस्ताश्चक्षु सर्व्वे न्यमीलयन् ।
तेभ्य स परमं चक्षु स्ववपुर्द्रष्टिशक्तिमत् ॥ ५० ॥
प्रादात् परमदेवेशमपश्यस्ते तदा विभुम् ।
ते दृष्ट्वा परमेशानं तृतीयेक्षणधारिणम् ॥ ५१ ॥
शक्राद्या मेनिरे देवा सर्व्वे एव सुरेश्वरा ।
तस्य देवो तदा दृष्टा समक्ष त्रिदिवौकसाम् ॥ ५२ ॥
पादयो स्थापयामास स्रङ्मालाममितद्युति ।
साधु साध्विति ते होचु सर्व्वे देवा पुनर्विभुम् ॥ ५३ ॥
सह देव्या नमश्चक्रु शिरोभिर्भूतलाश्रितै ।
अथास्मिन्नन्तरे विप्रास्तमह दैवतै सह ॥ ५४ ॥

हिमवन्तं महाशैलमुक्तवांश्च महाद्युतिम् ।
श्लाघ्यः पूज्यश्च वन्द्यश्च सर्व्वेषां त्वं महानसि ॥ ५५ ॥
शर्व्वेण सह सम्बन्धो यस्य तेऽभ्युदयो महान् ।
क्रियतां चारुरुद्वाहः किमर्थं स्थीयते परम् ॥
ततः प्रणम्य हिमवांस्तदा मां प्रत्यभाषत ॥ ५६ ॥

हिमवानुवाच

त्वमेव कारणं देव यस्य सर्व्वोदये मम ।
प्रसादः सहसोत्पन्नो हेतुश्चापि त्वमेव हि ॥
उद्वाहस्तु यदा यादृक् तद्धि (कं वि) धत्स्व पितामह ॥ ५७ ॥

ब्रह्मोवाच ।

ततः एवं वचः श्रुत्वा गिरिराजस्य भो द्विजाः ।
उद्वाहः क्रियतां देव इत्यहं चोक्तवान् विभुम् ॥ ५८ ॥
मामाह शङ्करो देवो यथेष्टमिति लोकपः ।
तत्क्षणाच्च ततो विप्रा अस्माभिर्निर्मितं पुरम् ॥ ५९ ॥
उद्वाहार्थं महेशस्य नानारत्नोपशोभितम् ।
रत्नानि मणयश्चित्रा हेममौक्तिकमेव च ॥ ६० ॥
मूर्त्तिमन्त उपागम्य अलञ्चक्रुः पुरोत्तमम् ।
चित्रा मारकती भूमिः सुवर्णस्तम्भशोभिता ॥ ६१ ॥
भास्वत्स्फटिकभित्तिश्च मुक्ताहारप्रलम्बिता ।
तस्मिन् द्वारि पुरे रम्य उद्वाहार्थं विनिर्म्मिता ॥ ६२ ॥
शुशुभे देवदेवस्य महेशस्य महात्मनः ।
सोमादित्यौ समं तत्र तापयन्तौ महामणी ॥ ६३ ॥

सौरभेयं मनोरम्यं गन्धमादाय मारुतः ।
प्रववौ सुखसंस्पर्शो भवभक्तिं प्रदर्शयन् ॥ ६४ ॥
समुद्रास्तत्र चत्वारः शक्राद्याश्च सुरोत्तमाः ।
देवनद्यो महानद्यः सिद्धा मुनय एव च ॥ ६५ ॥
गन्धर्वाप्सरसः सर्वे नागा यक्षाः सराक्षसाः ।
औदका खेचराश्चान्ये किन्नरा देवचारणाः ॥ ६६ ॥
तुम्बुरुर्नारदो हाहा हूहूश्चैव तु सामगाः ।
रम्याण्यादाय वाद्यानि तत्राऽऽजग्मुस्तदा पुरम् ॥ ६७ ॥
ऋषयस्तु कथास्तत्र वेदगीतास्तपोधनाः ।
पुण्यान् वैवाहिकान्मन्त्राञ्जेपुः संहृष्टमानसाः ॥ ६८ ॥
जगतो मातरः सर्वा देवकन्याश्च कृत्स्नशः ।
गायन्ति हर्षिताः सर्वा उद्वाहे परमेष्ठिनः ॥ ६९ ॥
ऋतवः षट् समं तत्र नानागन्धसुखावहाः ।
उद्वाहः शङ्करस्येति मूर्तिमन्त उपस्थिताः ॥ ७० ॥
नीलजीमूतसङ्काशैर्मन्द्रध्वनिप्रहर्षिभिः ।
केकायमानैः शिखिभिर्नृत्यमानैश्च सर्वशः ॥ ७१ ॥
विलोलपिङ्गलस्पष्टविद्युल्लेखाविहासिता ।
कुमुदापीडशुक्लाभिर्बलाकाभिश्च शोभिता ॥ ७२ ॥

प्रत्यग्रसञ्जातशिलीन्ध्रकन्दली-
लताद्रुमाद्युद्गतपल्लवा शुभा ।
शुभाम्बुधाराप्रणयप्रबोधितै-
र्महालसैर्भेकगणैश्च नादिता ॥ ७३ ॥

प्रियेषु मानोद्धतमानसानां,
मनस्विनीनामपि कामिनीनाम् ।
मयूरकेकाभिरुतैः क्षणेन,
मनोहरैर्मानविभङ्गहेतुभिः ॥ ७४ ॥
तथा विवर्णोज्ज्वलचारुमूर्त्तिना,
शशाङ्कलेखाकुटिलेन सर्वतः ।
पयोदसङ्घातसमीपवर्त्तिना,
महेन्द्रचापेन भृशं विराजिता ॥ ७५ ॥
विचित्रपुष्पाम्बुभवैः सुगन्धिभि-
र्घनाम्बुसम्पर्कतया सुशीतलैः ।
विकम्पयन्ती पवनैर्मनोहरैः,
सुराङ्गनानामलकावलीः शुभाः ॥ ७६ ॥
गर्जत्पयोदस्थगितेन्दुबिम्बा,
नवाम्बुसिक्तोदकचारुदूर्वा ।
निरीक्षिता सादरमुत्सुकाभि-
र्निश्वासधूम्रं पथिकाङ्गनाभिः ॥ ७७ ॥
हंसनूपुरशब्दाढ्या समुन्नतपयोधरा ।
चलद्विद्युल्लताहारा स्पष्टपद्मविलोचना ॥ ७८ ॥
शंसितजलदधीरध्वानवित्रस्तहंसा,
विमलसलिलधारोत्पातनप्रोत्पलाग्रा ।
सुरभिकुसुमरेणुक्लृप्तसर्वाङ्गशोभा,
गिरिदुहितृविवाहे प्रावृडाविर्बभूव ॥ ७९ ॥

मेघकञ्चुकनिर्मुक्ता पद्मकोशोद्भवस्तनी ।
हंसनूपुरनिह्लादा सर्वशस्यदिगन्तरा ॥ ८० ॥
विस्तीर्णपुलिनश्रोणी कूजत्सारसमेखला ।
प्रफुल्लेन्दीवरश्यामविलोचनमनोहरा ॥ ८१ ॥
पक्वबिम्बाधरपुटा कुन्ददन्तप्रहासिनी ।
नवश्यामलताश्यामरोमराजिपुरस्कृता ॥ ८२ ॥
चन्द्रांशुहारवर्गेण कण्ठोरस्थलगामिना ।
प्रह्लादयन्ती चेतांसि सर्वेषां त्रिदिवौकसाम् ॥ ८३ ॥
समदालिकुलोद्गीतमधुरस्वरभाषिणी ।
चलत्कुमुदसंघातचारुकुण्डलशोभिनी ॥ ८४ ॥
रक्ताशोकप्रशाखोत्थपल्लवाङ्गुलिधारिणी ।
तत्पुष्पसञ्चयमयैर्वासोभिः समलङ्कृता ॥ ८५ ॥
रक्तोत्पलाग्रचरणा जातीपुष्पनखावली ।
कदलीस्तम्भवामोरूः शशाङ्कवदना तथा ॥ ८६ ॥
सर्वलक्षणसम्पन्ना सर्वालङ्कारभूषिता ।
प्रेम्णा स्पृशति कान्तेव सानुरागा मनोरमा ॥ ८७ ॥
निर्मुक्तासितमेघकञ्चुकपटा पूर्णेन्दुबिम्बानना ।
नीलाम्भोजविलोचना रविकरप्रोद्भिन्नपद्मस्तनी ॥
नानापुष्परजःसुगन्धिपवनप्रह्लादनी चेतसां ।
तत्राऽऽसीत् कलहंसनूपुररवा देव्या विवाहे शरत् ॥ ८८ ॥
अत्यर्थशीतलाम्भोभिः प्लावयन्तौ दिशः सदा ।
ऋतू हेमन्तशिशिरौ आजग्मतुरतिद्युती ॥ ८९ ॥

ताभ्यामृतुभ्या सम्प्राप्तो हिमवान् स नगोत्तम
प्रालेयचूर्णवर्षिभ्या क्षिप्र रौप्यहरो वभौ ॥ ६० ॥
तेन प्रालेयवर्षेण घनेनैव हिमालय ।
अगाधेन तदा रेजे क्षीरोद इव सागर ॥ ६१ ॥
ऋतुपर्य्यायसम्प्राप्तो वभूव स महागिरि ।
साधूपचारात् सहसा कृतार्थ इव दुर्जन ॥ ६२ ॥
प्रालेयपटलच्छन्नै शृङ्गैस्तु शुशुभे नग ।
छत्रैरिव महाभागै पाण्डरै पृथिवीपति ॥ ६३ ॥

मनोभवोद्रेककरा सुराणा,
सुराङ्गनानाञ्च मुहु समीरा ।
स्वच्छाम्बुपूर्णाश्च तथा नलिन्य ,
पद्मोत्पलाना कुसुमैरुपेता ॥ ६४ ॥

विवाहे गुरुकन्याया वसन्त समगादृतु ॥ ६५ ॥

इषत्समुद्भिन्नपयोधराग्रा,
नार्य्यो यथा रम्यतरा वभूवु ।
नात्युष्णशीतानि पय सरासि,
किञ्जल्कचूर्णै कपिलीकृतानि ॥
चक्राह्वयुग्मैरुपनादितानि,
ययु प्रहृष्टा सुरदन्तिमुख्या ॥ ६६ ॥

प्रियङ्गुं स्तूततरवश्चूताश्चापि प्रियङ्गव ।
तर्ज्जयन्त इवान्योन्य मञ्जरीभिश्चकाशिरे ॥ ६७ ॥

हिमर्तुषु शुक्लेषु तिलकाः कुसुमोत्कराः ।
शुशुभुः कार्यमुद्दिश्य वृद्धा इव समागताः ॥ ९८ ॥
फुल्लाशोकलतास्तत्र रेजिरे सालसंश्रिताः ।
कामिन्य इव कान्तानां कण्ठालम्बितबाहवः ॥ ९९ ॥

तस्मिन्नृतौ शुभ्रकदम्बनीपा-
स्तालाः तमालाः सरलाः कपित्थाः ॥ १०० ॥

अशोकसर्जार्जुनकोविदाराः,
पुन्नागनागेश्वरकर्णिकाराः ।
लवङ्गतालागुरुसप्तपर्णा,
न्यग्रोधशोभाञ्जननारिकेलाः ॥ १०१ ॥

वृक्षास्तथाऽन्ये फलपुष्पवन्तो,
दृश्या बभूवुः सुमनोहराङ्गाः ।
जलाशयाश्चैव सुवर्णतोयाः
श्चक्राङ्गकारण्डवहंसजुष्टाः ॥ १०२ ॥

कोयष्टिदात्यूहबलाकयुक्ता,
दृश्यास्तु पद्मोत्पलमीनपूर्णाः ।
खगाश्च नानाविधभूषिताङ्गा,
दृश्यास्तु वृक्षेषु सुचित्रपक्षाः ॥ १०३ ॥

क्रीडासु युक्तानथ तर्जयन्तः,
कुर्वन्ति शब्दं मदनेरिताङ्गाः ।
तस्मिन् गिरावद्रिसुताविवाहे
ववुश्च वाताः सुस्पर्शनलाङ्गाः ॥ १०४ ॥

पुष्पाणि शुभ्राण्यपि पातयन्तः,
शनैर्नगेभ्यो मलयाद्रिजाताः ।
तथैव सर्वे ऋतवश्च पुण्या-
श्चकाशिरेऽन्योन्यविमिश्रिताङ्गाः ॥ १०५ ॥
येषां सुलिङ्गानि च कीर्त्तितानि,
ते तत्र आसन् सुमनोज्ञरूपाः ॥ १०६ ॥
समदालिकुलोद्गीतशिलाकुसुमसञ्चयैः ।
परस्परं हि मालत्यो भावयन्त्यो विरेजिरे ॥१०७॥
नीलानि नीलाम्बुरुहैः पयांसि,
गौराणि गौरैश्च मृणालदण्डैः ।
रक्तैश्च रक्तानि भृशं कृतानि,
मत्तद्विरेफावलिजुष्टपत्रैः ॥ १०८ ॥
हैमानि विस्तीर्णजलेषु केषुचि-
न्निरन्तरं चारुतराणि केषुचित् ।
वैदूर्यमालानि सरःसु केषुचित्-
प्रजज्ञिरे पद्मवनानि सर्वतः ॥ १०९ ॥
वाप्यस्तत्राभवन्रम्याः कमलोत्पलपुष्पिताः ।
नानाविहङ्गसंजुष्टा हैमसोपानपङ्क्तयः ॥ ११० ॥
शृङ्गाणि तस्य तु गिरेः कर्णिकारैः सुपुष्पितैः ।
समुच्छ्रितान्यविरलैर्हेमानीव बभुर्द्विजाः ॥ १११ ॥
ईषद्विभिन्नकुसुमैः पाटलैश्चापि पाटलाः ।
संबभूवुर्दिशः सर्वाः पवनाकम्पिमूर्त्तिभिः ॥ ११२ ॥

कृष्णार्जुना दशगुणा नीलाशोकमहीरुहाः ।
गिरौ ववृधिरे फुल्लाः स्पर्धयन्तः परस्परम् ॥ ११३ ॥
चारुरावविजुष्टानि किंशुकानां वनानि च ।
पर्वतस्य नितम्बेषु सर्वेषु च विरेजिरे ॥ ११४॥
तमालगुल्मैस्तस्यासीऽऽच्छोभा हिमवतस्तदा ।
नीलजीमूतसङ्घातैर्निलीनैरिव सन्धिषु ॥ ११५ ॥
निकामपुष्पैः सुविशालशाखैः,
समुच्छ्रितैश्चन्दनचम्पकैश्च ।
प्रमत्तपुंस्कोकिलसम्प्रलापै-
र्हिमाचलोऽतीव तदा रराज ॥ ११६ ॥
श्रुत्वा शब्दं मृदुमदकलं सर्वतः कोकिलानां,
चञ्चत्पक्षाः समधुरतरं नीलकण्ठा विनेदुः ।
तेषां शब्दैरुपचितबलः पुष्पचापेषुहस्तः,
सञ्जीमूतत्रिदशवनिता वेद्धुमङ्गे प्यनङ्गः ॥ ११७ ॥
पटुः सूर्यातपश्चापि प्रायशोऽल्प(ल्पो)जलाशयः ।
देवीविवाहसमये ग्रीष्म आगाद्धिमाचलम् ॥ ११८ ॥
स चापि तरुभिस्तत्र बहुभिः कुसुमोत्करैः ।
शोभयामास शृङ्गाणि प्रालेयाद्रेः समन्ततः ॥ ११९ ॥
तथाऽपि च गिरौ तत्र वायवः सुमनोहराः ।
ववुः पाटलविस्तीर्णकदम्बार्जुनगन्धिनः ॥ १२० ॥
वाप्यः प्रफुल्लपद्मौघकेसरारुणमूर्त्तयः ।
अभवंस्तटसंघु(जु)ष्टकलहंसकदम्बकाः ॥ १२१ ॥

तथा कुरवकाश्चापि कुसुमापाण्डुमूर्त्तयः ।
सर्वेषु नगशृङ्गेषु भ्रमरावलिसेविताः ॥ १२२ ॥
वकुलाश्च नितम्बेषु विशालेषु महीभृतः ।
उत्ससर्ज मनोज्ञानि कुसुमानि समन्ततः ॥ १२३ ॥

इति कुसुमविचित्रसर्ववृक्षा,
विविधविहङ्गमनादरम्यदेशाः ।
हिमगिरितनयाविवाहभूम्यै,
बहुपययुक्ततवो मुनिप्रवीराः ॥ १२४ ॥

तत एवं प्रवृत्ते तु सर्वभूतसमागमे ।
नानावाद्यसमाकीर्णे अहं तत्र द्विजातयः ॥ १२५ ॥
शैलपुत्रीमलंकृत्य योग्याभरणसम्पदा ।
पुरं प्रवेशितवांस्तां स्वयमादाय भोद्विजाः ॥ १२६ ॥
ततस्तु पुनरेवेशमहं चैवोक्तवान् विभुम् ।
हविर्जुहोमि वह्नौ ते उपाध्यायपदे स्थितः ॥ १२७ ॥
ददासि मह्यं यद्याज्ञां कर्त्तव्योऽयं क्रियाविधिः ।
मामाह शङ्करश्चैवं देवदेवो जगत्पतिः ॥ १२८ ॥

शिव उवाच ।

यदुद्दिष्टं सुरेशान तत्कुरुष्व यथेप्सितम् ।
कर्त्ताऽसि वचनं सर्वं ब्रह्मंस्तव जगद्विभो ॥ १२९ ॥

ब्रह्मोवाच ।

ततश्चाहं प्रहृष्टात्मा कुशानादाय सत्वरम् ।
हस्तं देवस्य देव्याश्च योगवन्धेन युक्तवान् ॥ १३० ॥

ज्वलनश्च स्वयं तत्र कृताञ्जलिपुटः स्थितः ।
श्रुतिगीतैर्महामन्त्रैर्मूर्तिमद्भिरुपस्थितैः ॥ १३१ ॥
यथोक्तविधिना हुत्वा सर्पिस्तदमृतं हविः ।
ततस्तं ज्वलनं सर्वे कारयित्वा प्रदक्षिणम् ॥ १३२ ॥
मुक्त्वा हस्तसमायोगं सहितः सर्वदैवतैः ।
पुनश्च मानसे सिद्धे प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ १३३ ॥
वृत्ते उद्वाहकाले तु प्रणम्य च वृषध्वजम् ।
योगेनैव तयोर्विप्रास्तदुमापरमेशयोः ॥ १३४ ॥
उद्वाहः स परो दृष्टो य देवा न पितुः क्वचित् ।
इति वः सर्वमाख्यातं स्वयम्वरमिदं शुभम् ॥ १३५ ॥
इति श्रीआदिब्राह्मे महापुराणे स्वयंभु ऋषिसंवादे उमामहेश्वर
योर्विवाहनिरूपणं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥
श्लोकानामादितः समष्ट्यङ्काः—८७३८

सप्तत्रिंशोऽध्यायः ।

शिवस्तुतिवर्णनम् ।

ब्रह्मोवाच ।

अथ वृत्ते विवाहे तु भवस्यामिततेजसः ।
प्रहर्षमतुलं गत्वा देवाः शक्रपुरोगमाः ॥
तुष्टुवुर्वाग्भिराद्याभिः प्रणेमुस्ते महेश्वरम् ॥ १ ॥

देवा ऊचुः।

नमः पर्वतलिङ्गाय पर्वतेशाय वै नमः।
नमः पवनवेगाय विरूपायाजिताय च ॥
नमः क्लेशविनाशाय दात्रे च शुभसम्पदाम् ॥ २ ॥
नमो नीलशिखण्डाय अम्बिकापतये नमः।
नमः पवनरूपाय शतरूपाय वै नमः ॥ ३ ॥
नमो भैरवरूपाय विरूपनयनाय च।
नमः सहस्रनेत्राय सहस्रचरणाय च ॥ ४ ॥
नमो देवयस्याय वेदाङ्गाय नमो नमः।
विष्टम्भनाय शक्रस्य बाह्वोर्वेदाङ्कुराय च ॥ ५ ॥
चराचराधिपतये शमनाय नमो नमः।
सलिलाशयलिङ्गाय युगान्ताय नमो नमः ॥ ६ ॥
नमः कपालमालाय कपालसूत्रधारिणे।
नमः कपालहस्ताय दण्डिने गदिने नमः ॥ ७ ॥
नमस्त्रैलोक्यनाथाय पशुलोकरताय च।
नमः खट्वाङ्गहस्ताय प्रमथार्तिहराय च ॥ ८ ॥
नमो यज्ञशिरोहन्त्रे कृष्णकेशापहारिणे।
भगनेत्रनिपाताय पूष्णो दन्तहराय च ॥ ९ ॥
नमः पिनाकशूलासिखड्गमुद्गरधारिणे।
नमोऽस्तु कालकालाय तृतीयनयनाय च ॥ १० ॥
अन्तकान्तकृते चैव नमः पर्वतवासिने।
सुवर्णरेतसे चैव नमः कुण्डलधारिणे ॥ ११ ॥

दैत्यानां योगनाशाय योगिनां गुरवे नमः ।
शशाङ्कादित्यनेत्राय ललाटनयनाय च ॥ १२ ॥
नमः श्मशानरतये श्मशानवरदाय च ।
नमो दैवतनाथाय त्र्यम्बकाय नमो नमः ॥ १३ ॥
गृहस्थसाधवे नित्यं जटिले ब्रह्मचारिणे ।
नमो मुण्डार्धमुण्डाय पशूनां पतये नमः ॥ १४ ॥
सलिले तप्यमानाय योगैश्वर्यप्रदाय च ।
नमः शान्ताय दान्ताय प्रलयोत्पत्तिकारिणे ॥ १५ ॥
नमोऽनुग्रहकर्त्रे च स्थितिकर्त्रे नमो नमः ।
नमो रुद्राय वसव आदित्यायाश्विने नमः ॥ १६ ॥
नमः पित्रेऽथ साङ्ख्याय विश्वेदेवाय वै नमः ।
नमः शर्वाय उग्राय शिवाय वरदाय च ॥ १७ ॥
नमो भीमाय सेनान्ये पशूनां पतये नमः ।
शुचये वैरिहानाय सद्योजाताय वै नमः ॥ १८ ॥
महादेवाय चित्राय विचित्राय च वै नमः ।
प्रधानायाप्रमेयाय कार्याय कारणाय च ॥ १९ ॥
पुरुषाय नमस्तेऽस्तु पुरुषेच्छाकराय च ।
नमः पुरुषसंयोगप्रधानगुणकारिणे ॥ २० ॥
प्रवर्त्तकाय प्रकृतेः पुरुषस्य च सर्वशः ।
कृताकृतस्य सत्कर्तृ फलसंयोगदाय च ॥ २१ ॥
कालज्ञाय च सर्वेषां नमो नियमकारिणे ।
नमो वैषम्यकर्त्रे च गुणानां वृत्तिदाय च ॥ २२ ॥

नमस्ते देवदेवेश नमस्ते भूतभावन ।
शिव सौम्यमुखो द्रष्टुं भव सौम्यो हि नः प्रभो ॥ २३ ॥

ब्रह्मोवाच ।

एवं स भगवान् देवो जगत्पतिरुमापतिः ।
स्तूयमानः सुरैः सर्वैरमरानिदमब्रवीत् ॥ २४ ॥

श्रीशङ्कर उवाच ।

द्रष्टुं सुखश्च सौम्यश्च देवानामस्मि भोः सुराः ।
वरं वरयत क्षिप्रं दाताऽस्मि तमसंशयम् ॥ २५ ॥

ब्रह्मोवाच ।

ततस्ते प्रणताः सर्वे सुरा ऊचुस्त्रिलोचनम् ॥ २६ ॥

देवा ऊचुः ।

तवैव भगवन् हस्ते वर एषोऽवतिष्ठताम् ।
यदा कार्यं तदा नस्त्वं दास्यसे वरमीप्सितम् ॥ २७ ॥

ब्रह्मोवाच ।

एवमस्त्विति तानुक्त्वा विसृज्य च सुरान् हरः ।
लोकांश्च प्रमथैः सार्धं विवेश भवनं स्वकम् ॥ २८ ॥

यस्तु हरोत्सवमद्भुतमेनं,
गायति दैवतविप्रसमक्षम् ।
सोऽप्रतिरूपगणेशसमानो,
देहविपर्ययमेत्य सुखी स्यात् ॥ २९ ॥

ब्रह्मोवाच ।

विप्रवर्याः स्तवं ह्रीमं शृणुयाद्वा पठेच्च यः ।
स सर्वलोकगो देवैः पूज्यतेऽमरराडिव ॥ ३० ॥

इति श्रीआदिब्राह्मे महापुराणे स्वयम्भु ऋषिसंवादे शिवस्तुति-
निरूपणं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

श्लोकानामादितः समष्ट्यङ्का.—२६२६

अथाष्टात्रिंशोऽध्यायः ।

मदनदहनवर्णनम् ।

ब्रह्मोवाच ।

प्रविष्टे भवनं देवे सुपविष्टे वरासने ।
स वक्रो मन्मथः क्रूरो देवं वेद्धुमना भवत् ॥ १ ॥
तमनाचारसंयुक्तं दुरात्मानं कुलाधमम् ।
लोकान् सर्व्वान् पीडयन्तं सर्वाङ्गावरणात्मकम् ॥ २ ॥
ऋषीणां विघ्नकर्त्तारं नियमानां व्रतैः सह ।
चक्राह्वयस्य रूपेण रत्या सह समागतम् ॥ ३ ॥
अथाऽऽततायिनं विप्रा वेद्धुकामं सुरेश्वरः ।
नयनेन तृतीयेन सावज्ञं समवेक्षत ॥ ४ ॥
ततोऽस्य नेत्रजो वह्निर्ज्वालामालासहस्रवान् ।
सहसा रतिभर्त्तारमदहत् सपरिच्छदम् ॥ ५ ॥

स दह्यमानः करुणमार्त्तोऽक्रोशत विस्वरम् ।
प्रसादयंश्च तं देवं पपात धरणीतले ॥ ६ ॥
अथ सोऽग्निपरीताङ्गो मन्मथो लोकतापनः ।
पपात सहसा मूर्च्छां क्षणेन समपद्यत ॥ ७ ॥
पत्नी तु करुणं तस्य विललाप सुदुःखिता ।
देवीं देवश्च दुःखार्त्ता अयाचत् करुणावती ॥ ८ ॥
तस्याश्च करुणं ज्ञात्वा देवौ तौ करुणात्मकौ ।
ऊचतुस्तां समालोक्य समाश्वास्य च दुःखिताम् ॥ ९ ॥

उमामहेश्वरावूचतुः ।

दग्ध एव ध्रुवं भद्रे नास्योत्पत्तिरिहेष्यते ।
अशरीरोऽपि ते भद्रे कार्यं सर्वं करिष्यति ॥ १० ॥
यदा तु विष्णुर्भगवान् वसुदेवसुतः शुभे ।
तदा तस्य सुतो यश्च पतिस्ते सम्भविष्यति ॥ ११ ॥

ब्रह्मोवाच ॥

ततः सा तु वरं लब्ध्वा कामपत्नी शुभानना ।
जगामेष्टं तदा देशं प्रीतियुक्ता गतक्लमा ॥ १२ ॥
दग्ध्वा कामं ततो विप्राः स तु देवो वृषध्वजः ।
रेमे तत्रोमया सार्द्धं प्रहृष्टस्तु हिमाचले ॥ १३ ॥
कन्दरेषु च रम्येषु पद्मिनीषु गुहासु च ॥
निर्झरेषु च रम्येषु कर्णिकारवनेषु च ॥ १४ ॥
नदीतीरेषु कान्तेषु किन्नराचरितेषु च ।
शृङ्गेषु शैलराजस्य तडागेषु सरःसु च ॥ १५ ॥

घनराजिषु रम्यासु नानापक्षिरुतेषु च ।
तीर्थेषु पुण्यतोयेषु मुनीनामाश्रमेषु च ॥ १६ ॥

एतेषु पुण्येषु मनोहरेषु,
देशेषु विद्याधरभूषितेषु ।
गन्धर्वयक्षामरसेवितेषु,
रेमे स देव्या सहितस्त्रिनेत्रः ॥ १७ ॥

देवैः सहेन्द्रैर्मुनियक्षसिद्धै-
र्गन्धर्वविद्याधरदैत्यमुख्यैः ।
अन्यैश्च सर्वैर्विविधैर्वृतोऽसौ,
तस्मिन्नगे हर्षमवाप शम्भुः ॥ १८ ॥

नृत्यन्ति तत्राप्सरसः सुरेशा,
गायन्ति गन्धर्वगणाः प्रहृष्टाः ।
दिव्यानि वाद्यान्यथ वादयन्ति,
केचिद्द्रुतं देववरं स्तुवन्ति ॥ १९ ॥

एवं स देवः स्वगणैरुपेतो,
महाबलैः शक्रयमाग्नितुल्यैः ।
देव्याः प्रियार्थं भगनेत्रहन्ता,
गिरिं न तत्याज तदा महात्मा ॥ २० ॥

ऋषय ऊचुः ।

देव्या समं तु भगवांस्तिष्ठंस्तत्र स कामहा ।
अकरोत् किं महादेव एतदिच्छाम वेदितुम् ॥ २१ ॥

देव्युवाच ।

न मेऽस्ति बन्धुभिः किञ्चित् कृत्य सुरवरेश्वर ।
तथा कुरु महादेव यथाऽहं सुखमाप्नुयाम् ॥ ३९ ॥

ब्रह्मोवाच ।

श्रुत्वा स देव्या वचनं सुरेश-
स्तस्याः प्रियार्थं श्वगिरिं विहाय ।
जगाम मेरुं सुरसिद्धसेवितं,
भार्यासहायः स्वगणैश्च युक्तः ॥ ४० ॥

इति श्री आदिब्राह्मे महापुराणे स्वयम्भुऋषिसंवाद उमा महेश्वरयोर्हिमवत्परित्यागनिरूपणं नामाष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

श्लोकानामादितः समष्ट्यङ्काः—२६४६

अथै को ऊनचत्वारिंशोऽध्यायः ।

दक्षयज्ञविध्वंसनम्

ऋषय ऊचुः ।

प्राचेतस्य दक्षस्य कथं वैवस्वतेऽन्तरे ।
विनाशमगमद् ब्रह्मन् हयमेधः प्रजापतेः ॥ १ ॥
देव्या मन्युकृतं बुद्ध्वा क्रुद्धः सर्वात्मकः प्रभुः ।
कथं विनाशितो यज्ञो दक्षस्यामिततेजसः ॥
महादेवेन रोषाद्वै तन्नः प्रब्रूहि विस्तरात् ॥ २ ॥

ब्रह्मोवाच ।

वर्णयिष्यामि वो विप्रा महादेवेन वै यथा ।
क्रोधाद्विध्वसितो यज्ञोदेव्याः प्रियचिकीर्षया ॥ ३ ॥
पुरा मेरोर्द्विजश्रेष्ठाः शृङ्गं त्रैलोक्यपूजितम् ।
ज्योतिःस्थलं नाम चित्रं सर्वरत्नविभूषितम् ॥ ४ ॥
अप्रमेयमनाधृष्यं सर्वलोकनमस्कृतम् ।
तत्र देवो गिरितटे सर्वधातुविचित्रिते ॥ ५ ॥
पर्य्यङ्क इव विस्तीर्ण उपविष्टो बभूव ह ।
शैलराजसुता चास्य नित्यं पार्श्वस्थिताऽभवत् ॥ ६ ॥
आदित्याश्च महात्मानो वसवश्च महौजसः ।
तथैव च महात्मानावश्विनौ भिषजां वरौ ॥ ७ ॥
तथा वैश्रवणो राजा गुह्यकैः परिवारितः ।
यक्षाणामीश्वरः श्रीमान् कैलासनिलयः प्रभुः ॥ ८ ॥
उपासते महात्मानमुशना च महामुनिः ।
सनत्कुमारप्रमुखास्तथैव परमर्षयः ॥ ९ ॥
अङ्गिरःप्रमुखाश्चैव तथा देवर्षयोऽपि च ।
विश्वावसुश्च गन्धर्वस्तथा नारदपर्वतौ ॥ १० ॥
अप्सरोगणसङ्घाश्च समाजग्मुरनेकशः ।
ववौ सुखशिवो वायुर्नानागन्धवहः शुचिः ॥ ११ ॥
सर्वर्तुकुसुमोपेताः पुष्पवन्तोऽभवन्द्रुमाः ।
तथा विद्याधराः साध्याः सिद्धाश्चैव तपोधनाः ॥ १२ ॥

महादेवं पशुपतिं पर्य्युपासत तत्र वै ।
भूतानि च तथाऽन्यानि नानारूपधराण्यथ ॥ १३ ॥
राक्षसाश्च महारौद्राः पिशाचाश्च महाबलाः ।
बहुरूपधरा धृष्टा नानाप्रहरणायुधाः ॥ १४ ॥
देवस्यानुचरास्तत्र तस्थुर्वैश्वानरोपमाः ।
नन्दीश्वरश्च भगवान् देवस्यानुमते स्थितः ॥ १५ ॥
प्रगृह्य ज्वलितं शूलं दीप्यमानं स्वतेजसा ।
गङ्गा च सरितां श्रेष्ठा सर्वतीर्थजलोद्भवा ॥ १६ ॥
पर्युपासत तं देवं रूपिणी द्विजसत्तमाः ।
एवं स भगवांस्तत्र पूज्यमानः सुरर्षिभिः ॥ १७ ॥
देवैश्च सुमहाभागैर्महादेवो व्यतिष्ठत ।
कस्यचित्त्वथ कालस्य दक्षो नाम प्रजापतिः ॥ १८ ॥
पूर्वोक्तेन विधानेन यक्ष्यमाणोऽभ्यपद्यत ।
ततस्तस्य मखे देवाः सर्वे शक्रपुरोगमाः ॥ १९ ॥
स्वर्गस्थानादथाऽऽगम्य दक्षमापेदिरे तथा ।
ते विमानैर्महात्मानो ज्वलद्भिर्ज्वलनप्रभाः ॥ २० ॥
देवस्यानुमतेऽगच्छन् गङ्गाद्वारमिति श्रुतिः ।
गन्धर्वाप्सरसाकीर्णं नानाद्रुमलतावृतम् ॥ २१ ॥
ऋषिसिद्धैः परिवृतं दक्षं धर्मभृतां वरम् ।
पृथिव्यामन्तरिक्षे च ये च स्वर्लोकवासिनः ॥ २२ ॥
सर्वे प्राञ्जलयो भूत्वा उपतस्थुः प्रजापतिम् ।
आदित्या वसवो रुद्राः साध्याः सर्वे मरुद्गणाः ॥ २३ ॥

विष्णुना सहिता: सर्वे आगता यज्ञभागिनः ।
ऊष्मपा धूमपाश्चैव आज्यपाः सोमपास्तथा ॥ २४ ॥
अश्विनौ मरुतश्चैव नानादेवगणैः सह ।
एते चान्ये च बहवो भूतग्रामास्तथैव च ॥ २५ ॥
जरायुजाण्डजाश्चैव तथैव स्वेदजोद्भिद ।
आगताः सत्रिणः सर्वे देवाश्चर्षिभिः सहर्षिभिः ॥ २६ ॥
विराजन्ते विमानस्था दीप्यमाना इवाग्नयः ।
तान् दृष्ट्वा मन्युनाऽऽविष्टो दधीचिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ २७ ॥

दधीचिरुवाच ।

अपूज्यपूजने चैव पूज्यानां चाप्यपूजने ।
नरः पापमवाप्नोति महद्वै नात्र संशयः ॥ २८ ॥

ब्रह्मोवाच ।

एवमुक्त्वा तु विप्रर्षिः पुनर्दक्षमभाषत ॥ २९ ॥

दधीचिरुवाच ।

पूज्यश्च पशुभर्तारं कस्मानार्चयसे प्रभुम् ॥ ३० ॥

दक्ष उवाच ।

सन्ति मे बहवो रुद्रा शूलहस्ता कपर्दिनः ।
एकादशस्थानगता नान्यं विद्मो महेश्वरम् ॥ ३१ ॥

दधीचिरुवाच ।

सर्वेषामेकमन्त्रोऽयं ममेशो न निमन्त्रितः ।
यथाऽहं शङ्कराद्र्ध्वं नान्यं पश्यामि दैवतम् ।
तथा दक्षस्य विपुलो यज्ञोऽयं न भविष्यति ॥ ३२ ॥

दक्ष उवाच।

धिष्णोश्च भागा विविधाः प्रदत्ता-
स्तथा च रुद्रेभ्य उत प्रदत्ताः।
अन्येऽपि देवा निजभागयुक्ता,
ददामि भागं न तु शङ्कराय ॥ ३३ ॥

ब्रह्मोवाच।

गतास्तु देवता ज्ञात्वा शैलराजसुता तदा।
उवाच वचनं शर्वं देवं पशुपतिं पतिम् ॥ ३४ ॥

उमोवाच।

भगवन् कुत्र यान्त्येते देवाः शक्रपुरोगमाः।
ब्रूहि तत्त्वेन तत्त्वज्ञ संशयो मे महानयम् ॥ ३५ ॥

महेश्वर उवाच।

दक्षो नाम महाभागो प्रजानां पतिरुत्तमः।
हयमेधेन यजते तत्र यान्ति दिवौकसः ॥ ३६ ॥

देव्युवाच।

यज्ञमेतं महाभाग किमर्थं नानुगच्छसि।
केन वा प्रतिषेधेन गमनं ते न विद्यते ॥ ३७ ॥

महेश्वर उवाच।

सुरैरेव महाभागे सर्वमेतदनुष्ठितम्।
यज्ञेषु मम सर्वेषु न भाग उपकल्पितः ॥ ३८ ॥
पूर्वागतेन गन्तव्यं मार्गेण वरवर्णिनि।
न मे सुराः प्रयच्छन्ति भागं यज्ञस्य धर्म्मतः ॥ ३९ ॥

उमोवाच ।

भगवन् सर्वदेवेषु प्रभावाभ्यधिको गुणे ।
अजेयश्चाप्यधृष्यश्च तेजसा यशसा श्रिया ॥ ४० ॥
अनेन तु महाभाग प्रतिषेधेन मागत ।
अतीव दु खमापन्ना वेपथुश्च महानयम् ॥ ४१ ॥
किं नाम दान नियम तपो वा,
कुर्यामह येन पतिर्ममाद्य ।
लभेत भाग भगवानचिन्त्यो,
यज्ञस्य चेन्द्राद्यमरैर्विचित्र (भक्त)म् ॥ ४२ ॥

ब्रह्मोवाच ।

एव ब्रुवाणा भगवान् विचिन्त्य,
पत्नीं प्रहृष्ट क्षुभितामुवाच ।

महेश्वर उवाच ।

न वेत्सि मा देवि कृशोदराङ्गि,
किं नाम युक्त वचन तवेदम् ॥ ४३ ॥
अह विजानामि विशालनेत्रे,
ध्यानेन सर्वे न विदन्ति सन्त ।
तवाद्य मोहेन सहेन्द्रदेवा,
लोकत्रय सर्वमथो विनष्टम् ॥ ४४ ॥
तावध्वरेश नितरा स्तुवन्ति,
रथन्तर साम गायन्ति मह्यम् ।

मां ब्राह्मणा ब्रह्ममन्त्रैर्यजन्ति,
ममाध्वर्य्यवः कल्पयन्ते च भागम् ॥ ४५ ॥

देव्युवाच ।

विकत्थसे प्राकृतवत् सर्वस्त्रीजनसंसदि ।
स्तौषि गर्वायसे चापि स्वमात्मानं न संशयः ॥ ४६ ॥

भगवानुवाच ।

नाऽऽत्मानं स्तौमि देवेशि यथा त्वमनुगच्छसि ।
स्रक्ष्यामि वरारोहे भागार्थं वरवर्णिनि ॥ ४७ ॥

ब्रह्मोवाच ।

इत्युक्त्वा भगवान् पत्नीमुमां प्राणैरपि प्रियाम् ।
सोऽसृजद्भगवान् वक्त्राद्भूतं क्रोधाग्निसम्भवम् ॥ ४८ ॥
तमुवाच मख गच्छ दक्षस्य त्वं महेश्वर ।
नाशयाऽऽशु क्रतुं तस्य दक्षस्य मदनुज्ञया ॥ ४९ ॥

ब्रह्मोवाच ।

ततो रुद्रप्रयुक्तेन सिंहरूपेण लीलया ।
देव्या मन्युकृतं ज्ञात्वा हतो दक्षस्य स क्रतुः ॥ ५० ॥
मन्युना च महाभीमा भद्रकाली महेश्वरी ।
आत्मनः कर्मसाक्षित्वे तेन सार्द्धं सहानुगा ॥ ५१ ॥
स एव भगवान् क्रोधः प्रेतावासकृतालयः ।
वीरभद्रेति विख्यातो देव्या मन्युप्रमार्जकः ॥ ५२ ॥
सोऽसृजद्रोमकूपेभ्य आत्मनैव गणेश्वरान् ।
रुद्रानुगान्गणान्रौद्रान्रुद्रवीर्यपराक्रमान् ॥ ५३ ॥

रुद्रस्यानुचराः सर्वे सर्वे रुद्रपराक्रमाः ।
ते निपेतुस्ततस्तूर्णं शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ५४ ॥
ततः किलकिलाशब्द आकाशं पूरयन्निव ।
समभूत् सुमहान् विप्राः सर्वरुद्रगणैः कृतः ॥ ५५ ॥
तेन शब्देन महता त्रस्ताः सर्वे दिवौकसः ।
पर्वताश्च व्यशीर्य्यन्त चकम्पे च वसुन्धरा ॥ ५६ ॥
मरुतश्च ववुः क्रूराश्चुक्षुभे वरुणालयः ।
अग्नयो वै न दीप्यन्ते न चादीप्यत भास्करः ॥ ५७ ॥
ग्रहा नैव प्रकाशन्ते नक्षत्राणि न तारकाः ।
ऋषयो न प्रभासन्ते न देवा न च दानवाः ॥ ५८ ॥
एवं हि तिमिरीभूते निर्दहन्ति गणेश्वराः ।
प्रभञ्जन्त्यपरे यूपान् घोरानुत्पाटयन्ति च ॥ ५९ ॥
प्रणदन्ति तथा चान्ये विकुर्वन्ति तथा परे ।
त्वरितं वै प्रधावन्ति वायुवेगा मनोजवाः ॥ ६० ॥
चूर्ण्यन्ते यज्ञपात्राणि यज्ञस्यायतनानि च ।
शीर्यमाणान्यदृश्यन्त तारा इव नभस्तलात् ॥ ६१ ॥
दिव्यान्नपानभक्ष्याणां राशयः पर्वतोपमाः ।
क्षीरनद्यस्तथा चान्या घृतपायसकर्दमाः ॥ ६२ ॥
मधुमण्डोदका दिव्या खण्डशर्करवालुकाः ।
षड् रसान्निवहन्त्यन्या गुडकुल्या मनोरमाः ॥ ६३ ॥
उच्चावचानि मांसानि भक्ष्याणि विविधानि च ।
यानि कानि च दिव्यानि लेह्यचोष्याणि यानि च ॥ ६४ ॥

भुञ्जन्ति विविधैर्वक्त्रैर्विलुम्पन्ति क्षिपन्ति च ।
रुद्रकोपा महाकोपाः कालाग्निसदृशोपमाः ॥ ६५ ॥
भक्षयन्तोऽथ शैलाभा भीषयन्तश्च सर्वतः ।
क्रीडन्ति विविधाकाराश्चिक्षिपुः सुरयोषितः ॥ ६६ ॥
एवं गणाश्च तैर्युक्तो वीरभद्रः प्रतापवान् ।
रुद्रकोपप्रयुक्तश्च सर्वदेवैः सुरक्षितम् ॥ ६७ ॥
तं यज्ञमदहच्छीघ्रं भद्रकाल्याः समीपतः ।
चक्रुरन्ये तथा नादान् सर्वभूतभयङ्करान् ॥ ६८ ॥
छित्वा शिरोऽन्ये यज्ञस्य व्यनदन्त भयङ्करम् ।
ततः शक्रादयो देवा दक्षश्चैव प्रजापतिः ।
ऊचुः प्राञ्जलयो भूत्वा कथ्यतां को भवानिति ॥ ६९ ॥

वीरभद्र उवाच ।

नाहं देवो न दैत्यो वा [illegible] च भोक्तुमिहागतः ।
नैव द्रष्टुञ्च देवेन्द्रा न च कौतूहलान्वितः ॥ ७० ॥
दक्षयज्ञविनाशार्थं सम्प्राप्तोऽहं सुरोत्तमाः ।
वीरभद्रेति विख्यातो रुद्रकोपाद्विनिःसृतः ॥ ७१ ॥
भद्रकाली च विख्याता देव्याः क्रोधाद्विनिर्गता ।
प्रेषिता देवदेवेन यज्ञान्तिकमुपागता ॥ ७२ ॥
शरणं गच्छ राजेन्द्र देवदेवमुमापतिम् ।
वरं क्रोधोऽपि देवस्य न वरः परिचारकैः ॥ ७३ ॥

ब्रह्मोवाच ।

निखातोत्पाटितैर्यूपैरपविद्धैस्ततस्ततः ।
उत्पतद्भिः पतद्भिश्च गृध्रैरामिषगृध्नुभिः ॥ ७४ ॥
पक्षवातविनिर्धूतैः शिवारुतविनादितैः ।
स तस्य यज्ञो नततैर्बाध्यमानस्तदा गणैः ॥ ७५ ॥
आस्थाय मृगरूपं वै खमेवाभ्यपतत्तदा ।
तन्तु यज्ञं तथारूपं गच्छन्तमुपलभ्य सः ॥ ७६ ॥
धनुरादाय बाणञ्च तदर्थमगमत् प्रभुः ।
ततस्तस्य गणेशस्य क्रोधादमिततेजसः ॥ ७७ ॥
ललाटात्प्रसृतो घोरः स्वेदबिन्दुर्बभूव ह ।
तस्मिन्पतितमात्रे च स्वेदबिन्दौ तदा भुवि ॥ ७८ ॥
प्रादुर्भूतो महानग्निर्ज्वलत्कालानलोपमः ।
तत्रोदपद्यत तदा पुरुषो द्विजसत्तमाः ॥ ७९ ॥
ह्रस्वोऽतिमात्रो रक्ताक्षो हरिच्छ्मश्रुर्विभीषणः ।
ऊर्ध्वकेशोऽतिरोमाङ्गः शोणकर्णस्तथैव च ॥ ८० ॥
करालकृष्णवर्णश्च रक्तवासास्तथैव च ।
तं यज्ञं स महासत्त्वोऽदहत्कक्षमिवानलः ॥ ८१ ॥
देवाश्च प्रद्रुताः सर्वे गता भीता दिशो दश ।
तेन तस्मिन्विचरता विक्रमेण तदा तु वै ॥ ८२ ॥
पृथिवी व्यचलत्सर्वा सप्तद्वीपा समन्ततः ।
महाभूते प्रवृत्ते तु देवलोकभयंकरे ॥ ८३ ॥

तदा चाह महादेवमत्रैव प्रतिपूजयन् ।
भवतेऽपि सुराः सर्वे भागं दास्यन्ति वै प्रभो ॥ ८४ ॥
क्रियतां प्रतिसंहारः सर्वदेवेश्वर त्वया ।
इमाश्च देवताः सर्वा ऋषयश्च सहस्रशः ॥ ८५ ॥
तव क्रोधान्महादेव न शान्तिमुपलेभिरे ।
यश्चैष पुरुषो जातः स्वेदजस्ते सुरर्षभ ॥ ८६ ॥
ज्वरो नामैष धर्मज्ञ लोकेषु प्रचरिष्यति ।
एकीभूतस्य न ह्यस्य धारणे तेजसः प्रभो ॥ ८७ ॥
समर्था सकला पृथ्वी बहुधा सृज्यतामयम् ।
इत्युक्तः स मया देवो भागे चापि प्रकल्पिते ॥ ८८ ॥
भगवान्मां तथेत्याह देवदेवः पिनाकधृक् ।
परां च प्रीतिमगमत्स स्वयं च पिनाकधृक् ॥ ८९ ॥
दक्षोऽपि मनसा देवं भवं शरणमन्वगात् ।
प्राणापानौ समारुध्य चक्षुः स्थाने प्रयत्नतः ॥ ९० ॥
विधार्य सर्वतो दृष्टिं बहुदृष्टिरमित्रजित् ।
स्मितं कृत्वाऽब्रवीद्वाक्यं ब्रूहि किं करवाणि ते ॥ ९१ ॥
श्राविते च महाख्याने देवानां पितृभिः सह ।
समुद्याचाञ्जलिं कृत्वा दक्षो देवं प्रजापतिः ॥
भीतः शङ्कितचित्तस्तु सवाष्पवदनेक्षणः ॥ ९२ ॥

दक्ष उवाच ।

यदि प्रसन्नो भगवान्यदि वाऽहं तव प्रियः ।
यदि चाहमनुग्राह्यो यदि देयो वरो मम ॥ ९३ ॥

यद्भक्ष्यं भक्षितं पीतं त्रासित यच्च नाशितम्।
चूर्णीकृतापविद्धं च यज्ञसंभारमीदृशम् ॥ ६४ ॥
दीर्घकालेन महता प्रयत्नेन च संचितम्।
न च मिथ्या भवेन्मह्यं त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥ ६५ ॥

ब्रह्मोवाच।

तथाऽस्त्वित्याह भगवान्भगनेत्रहरो हरः।
धर्माध्यक्षं महादेवं त्र्यम्बकं च प्रजापतिः ॥ ६६ ॥
जानुभ्यामवनीं गत्वा दक्षो लब्ध्वा भयाद्धरम्।
नाम्नां चाष्टसहस्रेण स्तुतवान्वृषभध्वजम् ॥ ६७ ॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसंवादे
दक्षयज्ञविध्वंसन नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥
आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः—२७४६

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः।

दक्षकृतिशिवस्तुतिवर्णनम्

ब्रह्मोवाच।

एवं दृष्ट्वा तदा दक्ष· शम्भोर्वीर्यं द्विजोत्तमाः।
प्राञ्जलिः प्रणतो भूत्वा संस्तोतुमुपचक्रमे ॥ १ ॥

दक्ष उवाच

नमस्ते देवदेवेश नमस्तेऽन्धकसूदन ।
देवेन्द्र त्व बलश्रेष्ठ देवदानवपूजित ॥ २ ॥
सहस्राक्ष विरूपाक्ष त्र्यक्ष यक्षाधिपप्रिय ।
सर्वतः पाणिपादस्त्व सर्वतोक्षिशिरोमुख ॥ ३ ॥
सर्वत श्रुतिमाँल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठसि ।
शङ्कुकर्णो महाकर्ण कुम्भकर्णोऽर्णवालय ॥ ४ ॥
गजेन्द्रकर्णो गोकर्ण शतकर्णो नमोऽस्तु ते ।
शतोदर शतावर्त शतजिह्व सनातन ॥ ५ ॥
गायन्ति त्वा गायत्रिणो अर्चयन्त्यर्कमर्किण ।
देवदानवगोप्ता च ब्रह्मा च त्व शतक्रतु ॥ ६ ॥
मूर्तिमास्त्व महामूर्ति समुद्र सरसा निधि ।
त्वयि सर्वा देवता हि गावो गोष्ठ इवाऽऽसते ॥ ७ ॥
त्वत्त शरीरे पश्यामि सोममग्निजलेश्वरम् ।
आदित्यमथ विष्णु च ब्रह्माण सबृहस्पतिम् ॥ ८ ॥
क्रिया करणकार्ये च कर्ता कारणमेव च ।
असच्च सदसच्चैव तथैव प्रभवाप्य (प्य)यौ ॥ ९ ॥
नमो भवाय शर्वाय रुद्राय वरदाय च ।
पशूना पतये चैव नमोऽस्त्वन्धकघातिने ॥ १० ॥
त्रिजटाय त्रिशीर्षाय त्रिशूलवरधारिणे ।
त्र्यम्बकाय त्रिनेत्राय त्रिपुरघ्नाय वै नम ॥ ११ ॥

नमश्चण्डाय मुण्डाय विश्वचण्डधराय च ।
दण्डिने शङ्कुकर्णाय दण्डिदण्डाय वै नमः ॥ १२ ॥
नमोऽर्धदण्डिकेशाय शुष्काय विकृताय च ।
विलोहिताय धूम्राय नीलग्रीवाय वै नमः ॥ १३ ॥
नमोऽस्त्वप्रतिरूपाय विरूपाय शिवाय च ।
सूर्याय सूर्यपतयेसूर्यध्वजपताकिने ॥ १४ ॥
नमः प्रमथनाथाय वृषस्कन्धाय वै नम. ।
नमो हिरण्यगर्भाय हिरण्यकवचाय च ॥ १५ ॥
हिरण्यकृतचूडाय हिरण्यपतये नम ।
शत्रुघाताय चण्डाय पर्णसंघशयाय च ॥ १६ ॥
नमः स्तुताय स्तुतये स्तूयमानाय वै नम' ।
सर्वाय सर्वभक्षाय सर्वभूतान्तरात्मने ॥ १७ ॥
नमो होमाय मन्त्राय शुक्लध्वजपताकिने ।
नमोऽनम्याय नम्याय नम. किलकिलाय च ॥ १८ ॥
नमस्त्वां शयमानाय शयितायोत्थिताय च ।
स्थिताय धावमानाय कुब्जाय कुटिलाय च ॥ १९ ॥
नमो नर्तनशीलाय मुखवादित्रकारिणे ।
बाधापहाय लुब्धाय गीतवादित्रकारिणे ॥ २० ॥
नमो ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय बलप्रमथनाय च ।
उग्राय च नमो नित्यं नमश्च दशबाहवे ॥ २१
नमः कपालहस्ताय सितभस्मप्रियाय च ।
विभीषणाय भीमाय भीष्मव्रतधराय च ॥ २२ ॥

नानाविकृतवक्त्राय खड्गजिह्वोग्रदंष्ट्रिणे।
पक्षमासलवार्धाय तुम्बीवीणाप्रियाय च ॥ २३ ॥
अघोरघोररूपाय घोराघोरतराय च।
नमः शिवाय शान्ताय नमः शान्ततमाय च ॥ २४ ॥
नमो बुद्धाय शुद्धाय संविभागप्रियाय च।
पवनाय पतङ्गाय नमः सांख्यपराय च ॥ २५ ॥
नमश्चण्डैकघण्टाय घण्टाजल्पाय घण्टिने।
सहस्रशतघण्टाय घण्टामालाप्रियाय च ॥ २६ ॥
प्राणदण्डाय नित्याय नमस्ते लोहिताय च।
हूंहूंकाराय रुद्राय भगाकारप्रियाय च ॥ २७ ॥
नमोऽपारवते नित्यं गिरिवृक्षप्रियाय च।
नमो यज्ञाधिपतये भूताय प्रस्तुताय च ॥ २८ ॥
यज्ञपादाय दान्ताय तप्याय च भगाय च।
नमस्तटाय तट्याय तटिनीपतये नमः ॥ २९ ॥
अन्नदायान्नपतये [illegible] च।
नमः सहस्रशीर्षाय [illegible] च ॥

वर्णाश्रमाणां विधिवत्पृथग्धर्मप्रवर्तिने ।
नमः श्रेष्ठाय ज्येष्ठाय नमः कलकलाय च ॥ ३४ ॥
श्वेतपिङ्गलनेत्राय कृष्णरक्तेक्षणाय च ।
धर्मकामार्थमोक्षाय क्रथाय कथनाय च ॥ ३५ ॥
सांख्याय सांख्यमुख्याय योगाधिपतये नमः ।
नमो रथ्याधिरथ्याय चतुष्पथपथाय च ॥ ३६ ॥
कृष्णाजिनोत्तरीयाय व्यालयज्ञोपवीतिने ।
ईशान रुद्रसंघात हरिकेश नमोऽस्तु ते ॥ ३७ ॥
त्र्यम्बकायाम्बिकानाथ व्यक्ताव्यक्त नमोऽस्तु ते ।
कालकामदकामघ्न दुष्टोद्वृत्तनिषूदन ॥ ३८ ॥
सर्वगर्हितसर्वघ्न सद्योजात नमोऽस्तु ते ।
उन्मादनशतावर्त गङ्गातोयार्द्रमूर्धज ॥ ३९ ॥
चन्द्रार्धसंयुगावर्त मेघावर्त नमोऽस्तु ते ।
नमोऽन्नदानकर्त्रे च अन्नदप्रभवे नमः ॥ ४० ॥
अन्नभोक्त्रे च गोप्त्रे च त्वमेव प्रलयानल ।
जरायुजाण्डजाश्चैव स्वेदजोद्भिज्ज एव च ॥ ४१ ॥
त्वमेव देवदेवेश भूतग्रामश्चतुर्विधः ।
चराचरस्य स्रष्टा त्वं प्रतिहर्ता त्वमेव ॥ ४२ ॥
त्वमेव ब्रह्म विश्वेश अप्सु ब्रह्म वदन्ति ते ।
सर्वस्य परमा योनिः सुधांशो ज्योतिषां निधिः ॥ ४३ ॥
ऋक्सामानि तथोंकारमाहुस्त्वां ब्रह्मवादिनः ।
हायि हायि हरे हायि हुवाहावेति वाऽसकृत् ॥ ४४ ॥

नानाविकृतवक्त्राय खड्गजिह्वोग्रदंष्ट्रिणे ।
पक्षमासलवार्धाय तुम्बीवीणाप्रियाय च ॥ २३ ॥
अघोरघोररूपाय घोराघोरतराय च ।
नमः शिवाय शान्ताय नमः शान्ततमाय च ॥ २४ ॥
नमो बुद्धाय शुद्धाय संविभागप्रियाय च ।
पवनाय पतङ्गाय नमः सांख्यपराय च ॥ २५ ॥
नमश्चण्डैकघण्टाय घण्टाजल्पाय घण्टिने ।
सहस्रशतघण्टाय घण्टामालाप्रियाय च ॥ २६ ॥
प्राणदण्डाय नित्याय नमस्ते लोहिताय च ।
हूंहूंकाराय रुद्राय भगाकारप्रियाय च ॥ २७ ॥
नमोऽपारवते नित्यं गिरिवृक्षप्रियाय च ।
नमो यज्ञाधिपतये भूताय प्रस्तुताय च ॥ २८ ॥
यज्ञवाहाय दान्ताय तप्याय च भगाय च ।
नमस्तटाय तट्याय तटिनीपतये नमः ॥ २९ ॥
अन्नदायान्नपतये नमस्त्वन्नभुजाय च ।
नमः सहस्रशीर्षाय सहस्रचरणाय च ॥ ३० ॥
सहस्रोद्धतशूलाय सहस्रनयनाय च ।
नमो बालार्कवर्णाय बालरूपधराय च ॥ ३१ ॥
नमो बालार्करूपाय बालक्रीडनकाय च ।
नमः शुद्धाय बुद्धाय क्षोभणाय क्षयाय च ॥ ३२ ॥
तरङ्गाङ्कितकेशाय मुक्तकेशाय वै नमः ।
नमः षट्कर्मनिष्ठाय त्रिकर्मनिरताय च ॥ ३३ ॥

वर्णाश्रमाणां विधिवत्पृथग्धर्मप्रवर्तिने ।
नमः श्रेष्ठाय ज्येष्ठाय नमः कलकलाय च ॥ ३४ ॥
श्वेतपिङ्गलनेत्राय कृष्णरक्तेक्षणाय च ।
धर्मकामार्थमोक्षाय क्रथाय क्रथनाय च ॥ ३५ ॥
सांख्याय सांख्यमुख्याय योगाधिपतये नमः ।
नमो रथ्याधिरथ्याय चतुष्पथपथाय च ॥ ३६ ॥
कृष्णाजिनोत्तरीयाय व्यालयज्ञोपवीतिने ।
ईशान रुद्रसंघात हरिकेश नमोऽस्तु ते ॥ ३७ ॥
त्र्यम्बकायाम्बिकानाथ व्यक्ताव्यक्त नमोऽस्तु ते ।
कालकामद कामघ्न दुष्टोद्वृत्तनिषूदन ॥ ३८ ॥
सर्वगर्हितसर्वघ्न सद्योजात नमोऽस्तु ते ।
उन्मादनशतावर्त गङ्गातोयार्द्रमूर्धज ॥ ३९ ॥
चन्द्रार्धसंयुगावर्त मेघावर्त नमोऽस्तु ते ।
नमोऽन्नदानकर्त्रे च अन्नदप्रभवे नमः ॥ ४० ॥
अन्नभोक्त्रे च गोप्त्रे च त्वमेव प्रलयानल ।
जरायुजाण्डजाश्चैव स्वेदजोद्भिज्ज एव च ॥ ४१ ॥
त्वमेव देवदेवेश भूतग्रामश्चतुर्विधः ।
चराचरस्य स्रष्टा त्वं प्रतिहर्ता त्वमेव ॥ ४२ ॥
त्वमेव ब्रह्म विश्वेश अप्सु ब्रह्म वदन्ति ते ।
सर्वस्य परमा योनिः सुधांशो ज्योतिषां निधिः ॥ ४३ ॥
ऋक्सामानि तथोंकारमाहुस्त्वां ब्रह्मवादिन ।
हायि हायि हरे हायि हुवाहावेति वाऽसकृत् ॥ ४४ ॥

गायन्ति त्वां सुरश्रेष्ठाः सामगा ब्रह्मवादिनः ।
यजुर्मय ऋङ्मयश्च सामाथर्वयुतस्तथा ॥ ४५ ॥
पठ्यसे ब्रह्मविद्भिस्त्वं कल्पोपनिषदां गणैः ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा वर्णाश्रमाश्च ये ॥ ४६ ॥
त्वमेवाऽऽश्रमसघाश्च विद्युत्स्तनितमेव च ।
संवत्सरस्त्वमृतवो मासा मासार्धमेव च ॥ ४७ ॥
कला काष्ठा निमेषाश्च नक्षत्राणि युगानि च ।
वृषाणां ककुदं त्व हि गिरीणां शिखराणि च ॥ ४८ ॥
सिंहो मृगाणां पतयस्तक्षकानन्तभोगिनाम् ।
क्षीरोदो ह्युदधीनां च मन्त्राणां प्रणवस्तथा ॥ ४९ ॥
वज्रं प्रहरणानां च व्रतानां सत्यमेव च ।
त्वमेवेच्छा च द्वेषश्च रागो मोह शमः क्षमा ॥ ५० ॥
व्यवसायो धृतिर्लोभः कामक्रोधौ जयाजयौ ।
त्वं गदी त्वं शरी चापी खट्वाङ्गी मुद्गरी तथा ॥ ५१
छेत्ता भेत्ता प्रहर्ता च नेता मन्ताऽसि नो मतः ।
दशलक्षणसंयुक्तो धर्मोऽर्थ काम एव च ॥ ५२ ॥
इन्दुः समुद्रः सरितः पल्वलानि सरांसि च ।
लतावल्ल्यस्तृणौषध्यः पशवो मृगपक्षिणः ॥ ५३ ॥
द्रव्यकर्मगुणारम्भः कालपुष्पफलप्रदः ।
आदिश्चान्तश्च मध्यश्च गायत्र्योंकार एव च ॥ ५४ ॥
हरितो लोहितः कृष्णो नीलः पीतस्तथा क्षणः ।
कद्रुश्च कपिलो बभ्रुः कपोतो मचछ (त्स्य) कस्तथा ।

सुवर्णरेता विख्यातः सुवर्णश्चाप्यथो मतः ।
सुवर्णनाम च तथा सुवर्णप्रिय एव च ॥ ५६ ॥
त्वमिन्द्रश्च यमश्चैव वरुणो धनदोऽनलः ।
उत्फुल्लश्चित्रभानुश्च स्वर्भानुर्भानुरेव च ॥ ५७ ॥
होत्रं होता च होम्यं च हुतं चैव तथा प्रभुः ।
त्रिसौपर्णस्तथा ब्रह्मन्यजुषां शतरुद्रियम् ॥ ५८ ॥
पवित्रं च पवित्राणां मङ्गलानां च मङ्गलम् ।
प्राणश्च त्वं रजश्च त्वं तमः सत्त्वयुतस्तथा ॥ ५९ ॥
प्राणोऽपानः समानश्च उदानो व्यान एव च ।
उन्मेषश्च निमेषश्च क्षुत्तृड्जृम्भा तथैव च ॥ ६० ॥
लोहिताङ्गश्च दंष्ट्री च महावक्त्रो महोदरः ।
शुचिरोमा हरिच्छ्मश्रुरूर्ध्वकेशश्चलाचलः ॥ ६१ ॥
गीतवादित्रनृत्याङ्गो गीतवादनकप्रियः ।
मत्स्यो जालो जलोऽजय्यो जलव्यालः कुटीचरः ॥ ६२ ॥
विकालश्च सुकालश्च दुष्कालः कालनाशनः ।
मृत्युश्चैवाक्षयोऽन्तश्च क्षमामायाकरोत्करः ॥ ६३ ॥
संवर्तो वर्तकश्चैव संवर्तकबलाहकौ ।
घण्टाकी घण्टकी घण्टी चूडालो लवणोदधिः ॥ ६४ ॥
ब्रह्मा कालाग्निवक्त्रश्च दण्डी मुण्डस्त्रिदण्डधृक् ।
चतुर्युगश्चतुर्वेदश्चतुर्होत्रश्चतुष्पथः ॥ ६५ ॥
चातुराश्रम्यनेता च चातुर्वर्ण्यकरश्च ह ।
क्षराक्षरः प्रियो धूर्तो गणैर्गण्यो गणाधिपः ॥ ६६ ॥

रक्तमाल्याम्बरधरो गिरीशो गिरिजाप्रियः ।
शिल्पीशः शिल्पिनः श्रेष्ठः सर्वशिल्पप्रवर्तकः ॥ ६७ ॥
भगनेत्रान्तकश्चण्डः पूष्णो दन्तविनाशनः ।
स्वाहा स्वधा वषट्कारो नमस्कार नमोऽस्तु ते ॥ ६८ ॥
गूढव्रतश्च गूढश्च गूढव्रतनिषेवितः ।
तरणस्तारणश्चैव सर्वभूतेषु तारणः ॥ ६९ ॥
धाता विधाता संधाता निधाता धारणो धरः ।
तपो ब्रह्म च सत्यं च ब्रह्मचर्यं तथाऽऽर्जवम् ॥ ७० ॥
भूतात्मा भूतकृद्भूतो भूतभव्यभवोद्भवः ।
भूर्भुवः स्वरितश्चैव भूतो ह्यग्निर्महेश्वरः ॥ ७१ ॥
ब्रह्मावर्तः सुरावर्तः कामावर्त नमोऽस्तु ते ।
कामबिम्बविनिर्हन्ता कर्णिकारस्रजप्रियः ॥ ७२ ॥
गोनेता गोप्रचारश्च गोवृषेश्वरवाहनः ।
त्रैलोक्यगोप्ता गोविन्दो गोप्ता गोगर्भ (?) एव च ॥ ७३ ॥
अखण्डचन्द्राभिमुखः सुमुखो दुर्मुखोऽमुखः ।
चतुर्मुखो बहुमुखो रणेष्वभिमुखः सदा ॥ ७४ ॥
हिरण्यगर्भः शकुनिर्धनदोऽर्थपतिर्विराट् ।
अधर्महा महादक्षो दण्डधारो रणप्रियः ॥ ७५ ॥
तिष्ठन्स्थिरश्च स्थाणुश्च निष्कम्पश्च सुनिश्चलः ।
दुर्वारणो दुर्विषहो दुःसहो दुरतिक्रमः ॥ ७६ ॥
दुर्धरो दुर्वशो नित्यो दुर्दर्पो विजयो जयः ।
शशः शशाङ्कनयनशातोष्णः क्षुत्तृषा जरा ॥ ७७ ॥

आधरो व्याघ्र रश्चैव व्याविहा व्याधिपश्च यः ।
मयो यज्ञमृगव्याधो व्याधिनामाकरोऽकरः ॥ ७८ ॥
शिखण्डी पुण्डरीकश्च पुण्डरीकावलोकनः ।
दण्डधृक्चक्रदण्डश्च रौद्रभागविनाशनः ॥ ७९ ॥
विषपोऽमृतपश्चैव सुरापः क्षीरसोमपः ।
मधुपश्चाऽऽपपश्चैव सर्वपश्च बलाबलः ॥ ८० ॥
वृषाङ्कारम्भो(?) वृषभस्तथा वृषभलोचनः ।
वृषभश्चैव विख्यातो लोकानां लोकसंस्तृतः ॥ ८१ ॥
चन्द्रादित्यौ चक्षुषी ते हृदयं च पितामहः ।
अग्निष्टोमस्तथा देहो धर्मकर्मप्रसाधितः ॥ ८२ ॥
न ब्रह्मा न च गोविन्दः पुराणऋषयो न च ।
माहात्म्यं वेदितुं शक्ता याथातथ्येन ते शिवः ॥ ८३ ॥
शिवा या मूर्तयः सूक्ष्मास्ते मह्यं यान्तु दर्शनम् ।
ताभिर्मां सर्वतो रक्ष पिता पुत्रमिवौरसम् ॥ ८४ ॥
रक्ष मां रक्षणीयोऽहं तवानघ नमोऽस्तु ते ।
भक्तानुकम्पी भगवान्भक्तश्चाहं सदा त्वयि ॥ ८५ ॥
यः सहस्राण्यनेकानि पुंसामावृत्य दुर्दृशाम् ।
तिष्ठत्येकः समुद्रान्ते स मे गोप्ताऽस्तु नित्यशः ॥ ८६ ॥
यं विनिद्रा जितश्वासाः सत्त्वस्थाः समदर्शिनः ।
ज्योतिः पश्यन्ति युञ्जानास्तस्मै योगात्मने नमः ॥ ८७ ॥
संभक्ष्य सर्वभूतानि युगान्ते समुपस्थिते ।
यः शेते जलमध्यस्थस्तं प्रपद्येऽप्सुशायिनम् ॥ ८८ ॥

प्रविश्य वदनं राहोर्यः सोमं पिबते निशि ।
ग्रसत्यर्कं च स्वर्भानुर्भूत्वा सोमाग्निरेव च ॥ ८९ ॥
अङ्गुष्ठमात्राः पुरुषा देहस्थाः सर्वदेहिनाम् ।
रक्षन्तु ते च मां नित्यं नित्यं चाऽऽप्याययन्तु माम् ॥ ९० ॥
येनाप्युत्पादिता गर्भा अपो भागगताश्च ये ।
तेषां स्वाहा स्वधा चैव आप्नुवन्ति स्वदन्ति च ॥ ९१ ॥
येन रोहन्ति देहस्थाः प्राणिनो रोदयन्ति च ।
हर्षयन्ति न कुप्यन्ति नमस्तेभ्यस्तु नित्यशः ॥ ९२ ॥
ये समुद्रे नदीदुर्गे पर्वतेषु गुहासु च ।
वृक्षमूलेषु गोष्ठेषु कान्तारगहनेषु च ॥ ९३ ॥
चतुष्पथेषु रथ्यासु चत्वरेषु सभासु च ।
हस्त्यश्वरथशालासु जीर्णोद्यानालयेषु च ॥ ९४ ॥
येषु पञ्चसु भूतेषु दिशासु विदिशासु च ।
इन्द्वार्कयोर्मध्यगता ये च चन्द्रार्करश्मिषु ॥ ९५ ॥
रसातलगता ये च येच तस्मात्परं गताः ।
नमस्तेभ्यो नमस्तेभ्यो नमस्तेभ्यस्तु सर्वशः ॥ ९६ ॥
सर्वस्त्वं सर्वगो देवः सर्वभूतपतिर्भवः ।
सर्वभूतान्तरात्मा च तेन त्वं न निमन्त्रितः ॥ ९७ ॥
त्वमेव चेज्यसे देव यज्ञैर्विविधदक्षिणैः ।
त्वमेव कर्ता सर्वस्य तेन त्वं न निमन्त्रितः ॥ ९८ ॥
अथवा मायया देव मोहितः सूक्ष्मया तव ।
तस्मात्तु कारणाद्वाऽपि त्वं मया न निमन्त्रितः ॥ ९९ ॥

प्रसीद मम देवेश त्वमेव शरणं मम ।
त्वं गतिस्त्वं प्रतिष्ठा च न चान्योऽस्तीति मे मतिः ॥ १०० ॥

ब्रह्मोवाच ।

स्तुत्वैवं स महादेवं विरराम प्रजापतिः ।
भगवानपि सुप्रीतः पुनर्दक्षमभाषत ॥ १०१ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

परितुष्टोऽस्मि ते दक्ष स्तवेनानेन सुव्रत ।
बहुना तु किमुक्तेन मत्समीपं गमिष्यसि ॥ १०२ ॥

ब्रह्मोवाच ।

तथैवमब्रवीद्वाक्यं त्रैलोक्याधिपतिर्भवः ।
कृत्वाऽऽश्वासकरं वाक्यं सर्वज्ञो वाक्यसंहितम् ॥ १०३ ॥

श्रीशिव उवाच ।

दक्ष दुःखं न कर्तव्यं यज्ञविध्वंसनं प्रति ।
अहं यज्ञहनस्तुभ्यं दृष्टमेतत्पुराऽनघ ॥ १०४ ॥
भूयश्च त्वं वरमिमं मत्तो गृह्णीष्व सुव्रत ।
प्रसन्नसुमुखो भूत्वा ममैकाग्रमना शृणु ॥ १०५ ॥
अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य वै ।
प्रजापते मत्प्रसादात्फलभागी भविष्यसि ॥ १०६ ॥
वेदान्षडङ्गान्बुध्यस्व सांख्ययोगांश्च कृत्स्नशः ।
तपश्च विपुलं तप्त्वा दुश्चरं देवदानवैः ॥ १०७ ॥
अब्दैर्द्वादशभिर्युक्तं गूढमप्राज्ञनिन्दितम् ।
वर्णाश्रमकृतैर्धर्मैर्विनीतं न क्वचित्क्वचित् ॥ १०८ ॥

समागतं व्यवसितं पशुपाशविमोक्षणम् ।
सर्वेषामाश्रमाणां च मया पाशुपतं व्रतम् ॥ १०६ ॥
उत्पादितं दक्ष शुभं सर्वपापविमोचनम् ।
अस्य चीर्णस्य यत्सम्यक्फलं भवति पुष्कलम् ॥
तथाऽस्तु सुमहाभाग मानसस्त्यज्यतां ज्वरः ॥ ११० ॥

ब्रह्मोवाच ।

एवमुक्त्वा तु देवेशः सपत्नीकः सहानुगः ।
अदर्शनमनुप्राप्तो दक्षस्यामिततेजसः ॥ १११ ॥
अवाप्य च तथा भागं यथोक्तं चोमया भवः ।
ज्वरं च सर्वधर्मज्ञो बहुधा व्यभजत्तदा ॥ ११२ ॥
शान्त्यर्थं सर्वभूतानां शृणुध्वमथ वै द्विजाः ।
शिखाभितापो नागानां पर्वतानां शिलाजतु ॥ ११३ ॥
अपां तु नीलिकां विद्यान्निर्मोको भुजगेषु च ।
खोरकः सौरभेयाणामूखरः पृथिवीतले ॥ ११४ ॥
शुनामपि च धर्मज्ञा दृष्टिप्रत्यवरोधनम् ।
रन्ध्रागतमथाश्वानां शिखोद्भेदश्च बर्हिणाम् ॥ ११५ ॥
नेत्ररागः कोकिलानां द्वेषः प्रोक्तो महात्मनाम् ।
जनानामपि भेदश्च सर्वेषामिति नः श्रुतम् ॥ ११६ ॥
शुकानामपि सर्वेषां हिक्किका प्रोच्यते ज्वरः ।
शार्दूलेष्वथ वै विप्राः श्रमो ज्वर इहोच्यते ॥ ११७ ॥
मानुषेषु च सर्वज्ञा ज्वरो नामैष कीर्तितः ।
मरणे जन्मनि तथा मध्ये चापि निवेशितः ॥ ११८ ॥

एतन्माहेश्वरं तेजो ज्वरो नाम सुदारुणः ।
नमस्यश्चैव मान्यश्च सर्वप्राणिभिरीश्वरः ॥ ११९ ॥
इमां ज्वरोत्पत्तिमदीनमानसः,
पठेत्सदा यः सुसमाहितो नरः ।
विमुक्तरोगः स नरो मुदायुतो,
लभेत कामांश्च यथामनीषितान् ॥ १२० ॥
दक्षप्रोक्तं स्तवं चापि कीर्तयेद्यः शृणोति वा ।
नाशुभं प्राप्नुयात्किंचिद्दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥ १२१ ॥
यथा सर्वेषु देवेषु वरिष्ठो भगवान्भवः ।
तथा स्तवो वरिष्ठोऽयं स्तवानां दक्षनिर्मितः ॥ १२२ ॥
यशः स्वर्गसुरैश्वर्यवित्तादिजयकाङ्क्षिभिः ।
स्तोतव्यो भक्तिमास्थाय विद्याकामैश्च यत्नतः ॥ १२३ ॥
व्याधितो दुःखितो दीनो नरो ग्रस्तो भयादिभिः ।
राजकार्यनियुक्तो वा मुच्यते महतो भयात् ॥ १२४ ॥
अनेनैव च देहेन गणानां च महेश्वरात् ।
इह लोके सुखं प्राप्य गणराडुपजायते ॥ १२५ ॥
न यक्षा न पिशाचा वा न नागा न विनायकाः ।
कुर्युर्विघ्नं गृहे तस्य यत्र संस्तूयते भवः ॥ १२६ ॥
शृणुयाद्वा इदं नारी भक्त्याऽथ भवभाविता ।
पितृपक्षे भर्तृपक्षे पूज्या भवति चैव ह ॥ १२७ ॥
शृणुयाद्वा इदं सर्वं कीर्तयेद्वाऽप्यभीक्ष्णशः ।
तस्य सर्वाणि कार्याणि सिद्धिं गच्छन्त्यविघ्नतः ॥ १२८ ॥

मनसा चिन्तितं यच्च यच्च वाचाऽप्युदाहृतम् ।
सर्वं संपद्यते तस्य स्तवस्यास्यानुकीर्तनात् ॥ १२६ ॥
देवस्य सगुहस्याथ देव्या नदीश्वरस्य च ।
बलिं विभज(भाग)तः कृत्वा दमेन नियमेन च ॥ १३० ॥
ततः प्रयुक्तो गृह्णीयान्नामान्याशु यथाक्रमम् ।
ईप्सितांल्लँभतेऽप्यर्थान्कामान्भोगांश्च मानवः ॥ १३१ ॥
मृतश्च स्वर्गमाप्नोति स्त्रीसहस्रसमावृतः ।
सर्वकामसुयुक्तो वा युक्तो वा सर्वपातकैः ॥ १३२ ॥
पठन्दक्षकृतं स्तोत्रं सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
मृतश्च गणसायुज्यं पूज्यमानः सुरासुरैः ॥ १३३ ॥
वृषेण विनियुक्तेन विमानेन विराजते ।
आभूतसंप्लवस्थायी रुद्रस्यानुचरो भवेत् ॥ १३४ ॥
इत्याह भगवान्व्यासः पराशरसुतः प्रभुः ।
नैतद्वेदयते कश्चिन्नैतच्छ्राव्यं च कस्यचित् ॥ १३५ ॥
श्रुत्वेमं परमं गुह्यं येऽपि स्युः पापयोनयः ।
वैश्याः स्त्रियश्च शूद्राश्च रुद्रलोकमवाप्नुयुः ॥ १३६ ॥
श्रावयेद्यश्च विप्रेभ्यः सदा पर्वसु पर्वसु ।
रुद्रलोकमवाप्नोति द्विजो वै नात्र संशयः ॥ १३७ ॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंम्भृषिसंवादे दक्षस्तवनिरूपणं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः—२८८२

अथैकचत्वारिंशोऽध्यायः ।

एकाम्रकक्षेत्रमाहात्म्यकथनम्

लोमहर्षण उवाच ।

श्रुत्वैवं वै मुनिश्रेष्ठाः कथां पापप्रणाशिनीम् ।
रुद्रक्रोधोद्भवां पुण्यां व्यासस्य वदतो द्विजाः ॥ १ ॥
पार्वत्याश्च तथा रोषं क्रोधं शंभोश्च दुःसहम् ।
उत्पत्तिं वीरभद्रस्य भद्रकाल्याश्च संभवम् ॥ २ ॥
दक्षयज्ञविनाशं च घोरं शंभोस्तथाऽद्भुतम् ।
पुनः प्रसादं देवस्य दक्षस्य सुमहात्मनः ॥ ३ ॥
यज्ञभागं च रुद्रस्य दक्षस्य च फलं क्रतोः ।
दृष्ट्वा बभूवुः संप्रीता विस्मिताश्च पुनः पुनः ॥ ४ ॥
पप्रच्छुश्च पुनर्व्यासं कथाशेषं तथा द्विजाः ।
पृष्टः प्रोवाच तान्व्यासः क्षेत्रमेकाम्रकं पुनः ॥ ५ ॥

व्यास उवाच ।

ब्रह्मप्रोक्तां कथां पुण्यां श्रुत्वा तु ऋषिपुंगवाः ।
प्रशशंसुस्तदा हृष्टा रोमाञ्चिततनूरुहाः ॥ ६ ॥

ऋषय ऊचुः ।

अहो देवस्य माहात्म्यं त्वया शंभोः प्रकीर्तितम् ।
दक्षस्य च सुरश्रेष्ठ यज्ञविध्वंसनं तथा ॥ ७ ॥
एकाम्रकं क्षेत्रवरं वक्तुमर्हसि सांप्रतम् ।
श्रोतुमिच्छामहे ब्रह्मन्परं कौतूहलं हि नः ॥ ८ ॥

व्यास उवाच ।

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा लोकनाथश्चतुर्मुखः ।
प्रोवाच शमोस्तत्क्षेत्रं भूतले दुष्कृतच्छदम् ॥ ९ ॥

ब्रह्मोवाच ।

शृणुध्वं मुनिशार्दूला प्रवक्ष्यामि समासतः ।
सर्वपापहरं पुण्यं क्षेत्रं परमदुर्लभम् ॥ १० ॥
लिङ्गकोटिसमायुक्तं वाराणसीसमं शुभम् ।
एकाम्रकेति विख्यातं तीर्थाष्टकसमन्वितम् ॥ ११ ॥
एकाम्रवृक्षस्तत्राऽऽसीत्पुरा कल्पे द्विजोत्तमाः ।
नाम्ना तस्यैव तत्क्षेत्रमेकाम्रकमिति श्रुतम् ॥ १२ ॥
हृष्टपुष्टजनाकीर्णं नरनारीसमन्वितम् ।
विद्वज्जन(द्यावद्ग)णभूयिष्ठं धनधान्यादिसंयुतम् ॥ १३ ॥
गृहगोपुरसंबाधं त्रिकचाद्वारभूषितम् ।
नानावणिक्समाकीर्णं नानारत्नोपशोभितम् ॥ १४ ॥
पुराट्टालकसंयुक्तं रथिभिः समलङ्कृतम् ।
राजहंसनिभैः शुभ्रैः प्रासादैरुपशोभितम् ॥ १५ ॥
मार्गगद्वारसंयुक्तं सितप्राकारशोभितम् ।
रक्षितं शस्त्रसंघैश्च परिखाभिरलंकृतम् ॥ १६ ॥
सितरक्तैस्तथा पीतैः कृष्णश्यामैश्च वर्णकैः ।
समीरणोद्धताभिश्च पताकाभिरलङ्कृतम् ॥ १७ ॥
नित्योत्सवप्रमुदितं नानावादित्रनिस्वनैः ।
वीणावेणुमृदङ्गैश्च क्षेपणीभिरलङ्कृतम् ॥ १८ ॥

देवनायतनैर्दिव्यैः प्राकारोद्यानमण्डितैः ।
पूजाविचित्ररचितैः सर्वत्र समलंकृतम् ॥ १९ ॥
स्त्रियः प्रमुदितास्तत्र दृश्यन्ते तनुमध्यमाः ।
हारैरलंकृतग्रीवाः पद्मपत्रायतेक्षणाः ॥ २० ॥
पीनोन्नतकुचाः श्यामाः पूर्णचन्द्रनिभाननाः ।
स्थिरालका सुकपोला काञ्चीनूपुरनादिताः ॥ २१ ॥
सुकेशपश्चारुजघनाः कर्णान्तायतलोचनाः ।
सर्वलक्षणसंपन्नाः सर्वाभरणभूषिताः ॥ २२ ॥
दिव्यवस्त्रधराः शुभ्राः काञ्चनकाञ्चनसंनिभाः ।
हंसवारणगामिन्यः कुचभारावनामिताः ॥ २३ ॥
दिव्यगन्धानुलिप्ताङ्गाः कर्णाभरणभूषिताः ।
मदालसाश्च सुश्रोण्यो नित्यं प्रहसिताननाः ॥ २४ ॥
ईषद्विस्पष्टदशना बिम्बोष्ठा मधुरस्वराः ।
ताम्बूलरञ्जितमुखा विदग्धाः प्रियदर्शनाः ॥ २५ ॥
सुभगाः प्रियवादिन्यो नित्यं यौवनगर्विताः ।
दिव्यवस्त्रधराः सर्वाः सदा चारित्रमण्डिताः ॥ २६ ॥
क्रीडन्ति ताः सदा तत्र स्त्रियश्चाप्सरसोपमाः ।
स्वे स्वे गृहे प्रमुदिता दिवा रात्रौ वराननाः ॥ २७ ॥
पुरुषास्तत्र दृश्यन्ते रूपयौवनगर्विताः ।
सर्वलक्षणसंपन्नाः सुमृष्टमणिकुण्डलाः ॥ २८ ॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च मुनिसत्तमाः ।
स्वधर्मनिरतास्तत्र निवसन्ति सुधार्मिकाः ॥ २९ ॥

अन्याश्च तत्र तिष्ठन्ति वारमुख्या सुलोचना ।
घृताचीमेनकातुल्यास्तथा समतिलोत्तमा ॥ ३० ॥
उर्वशीसदृशाश्चैव विप्रचित्तिमास्तथा ।
विश्वाचीसहजन्याभा प्रम्लोचासदृशास्तथा ॥ ३१ ॥
सर्वास्ता प्रियवादिन्य सर्वा विहसिताननाः ।
कलाकौशलसयुक्ता सर्वास्ता गुणसयुता ॥ ३२ ॥
एव पण्यस्त्रियस्तत्र नृत्यगीतविशारदा ।
निवसन्ति मुनिश्रेष्ठा सर्वस्त्रीगुणगर्विता ॥ ३३ ॥
प्रेक्षणालापकुशला सुन्दर्य प्रियदर्शना ।
न रूपहीना दुर्वृत्ता न परद्रोहकारिका ॥ ३४ ॥
यासा कटाक्षपातेन मोह गच्छन्ति मानवा ।
न तत्र निर्धना सन्ति न मूर्खा न परस्त्रिय ॥ ३५ ॥
न रोगिणो न मलिना न कदर्या न मायिन ।
न रूपहीना दुर्वृत्ता न परद्रोहकारिण ॥ ३६ ॥
तिष्ठन्ति मानवास्तत्र क्षेत्रे जगति विश्रुते ।
सर्वत्र सुखसचार सर्वसत्त्वसुखावहम् ॥ ३७ ॥
नानाजनसमाकीर्णं सर्वसस्यसमन्वितम् ।
कर्णिकारैश्च पनसैश्चम्पकैर्नागकेसरे ॥ ३८ ॥
पाटलाशोकबकुलै कपित्थैर्बहुलैर्धवै ।
चूतनिम्बकदम्बैश्च तथाऽन्ये पुष्पजातिभि ॥ ३९ ॥
नीपकैर्धवखदिरैर्लताभिश्च विराजितम् ।
शालैस्तालैस्तमालैश्च नारिकेलै शुभाञ्जनै ॥ ४० ॥

अर्जुनैः सप्तपर्णैश्च कोविदारैः सपिप्पलैः ।
लकुचैः सरलैर्लोध्रैर्हिन्तालैर्देवदारुभिः ॥ ४१ ॥
पलाशैर्मुचुकुन्दैश्च पारिजातैः सकुब्जकैः ।
कदलीवनखण्डैश्च जम्बूपूगफलैस्तथा ॥ ४२ ॥
केतकीकरवीरैश्च अतिमुक्तैश्च किंशुकैः ।
मन्दारकुन्दपुष्पैश्च तथाऽन्यैः पुष्पजातिभिः ॥ ४३ ॥
नानापक्षिरुतैः सेव्यैरुद्यानैर्नन्दनोपमैः ।
फलभारानतैर्वृक्षैः सर्वर्तुकुसुमोत्करैः ॥ ४४ ॥
चकोरैः शतपत्रैश्च भृङ्गराजैश्च कोकिलैः ।
कलविङ्कैर्मयूरैश्च प्रियपुत्रैः शुकैस्तथा ॥ ४५ ॥
जीवंजीवकहारीतैश्चातकैर्वनवेष्टितैः ।
नानापक्षिगणैश्चान्यैः कूजद्भिर्मधुरस्वरैः ॥ ४६ ॥
दीर्घिकाभिस्तडागैश्च पुष्करिणीभिश्च वापिभिः ।
नानाजलाशयैश्चान्यैः पद्मिनीखण्डमण्डितैः ॥ ४७ ॥
कुमुदैः पुण्डरीकैश्च तथा नीलोत्पलैः शुभैः ।
कादम्बैश्चक्रवाकैश्च तथैव जलकुक्कुटैः ॥ ४८ ॥
कारण्डवैः प्लवैर्हंसैस्तथाऽन्यैर्जलचारिभिः ।
एवं नानाविधैर्वृक्षैः पुष्पैर्नानाविधैर्वरैः ॥ ४९ ॥
नानाजलाशयैः पुण्यैः शोभितं तत्समन्ततः ।
आस्ते तत्र स्वयं देव कृत्तिवासा वृषध्वजः ॥ ५० ॥
हिताय सर्वलोकस्य भुक्तिमुक्तिप्रदः शिवः ।
पृथिव्यां यानि तीर्थानि सरितश्च सरांसि च ॥ ५१ ॥

पुष्करिण्यस्तडागानि वाप्यः कूपाश्च सागराः ।
तेभ्यः पूर्वं समाहृत्य जलबिन्दून्पृथक्पृथक् ॥ ५२ ॥
सर्वलोकहितार्थाय रुद्रः सर्वसुरैः सह ।
तीर्थं बिन्दुसरो नाम तस्मिन्क्षेत्रे द्विजोत्तमाः ॥ ५३ ॥
चकार ऋषिभिः सार्धं तेन बिन्दुसरः स्मृतम् ।
अष्टम्यां बहुले पक्षे मार्गशीर्षे द्विजोत्तमाः ॥ ५४ ॥
यस्तत्र यात्रां कुरुते विषुवे विजितेन्द्रियः ।
विधिवद्बिन्दुसरसि स्नात्वा श्रद्धासमन्वितः ॥ ५५ ॥
देवानृषीन्मनुष्यांश्च पितॄन्संतर्प्य वाग्यतः ।
तिलोदकेन विधिना नामगोत्रविधानवित् ॥ ५६ ॥
स्नात्वैवं विधिवत्तत्र सोऽश्वमेधफलं लभेत् ।
ग्रहोपरागे विषुवे संक्रान्त्यामयने तथा ॥ ५७ ॥
युगादिषु षडशीत्यां तथाऽन्यत्र शुभे तिथौ ।
ये तत्र दानं विप्रेभ्यः प्रयच्छन्ति धनादिकम् ॥ ५८ ॥
अन्यतीर्थाच्छतगुणं फलं ते प्राप्नुवन्ति वै ।
पिण्डं ये संप्रयच्छन्ति पितृभ्यः सरसस्तटे ॥ ५९ ॥
पितॄणामक्षयां तृप्तिं ते कुर्वन्ति न संशयः ।
ततः शंभोर्गृहं गत्वा वाग्यतः संयतेन्द्रियः ॥ ६० ॥
प्रविश्य पूजयेच्छर्वं कृत्वा तं त्रिः प्रदक्षिणम् ।
घृतक्षीरादिभिः स्नानं कारयित्वा भवं शुचिः ॥ ६१ ॥
चन्दनेन सुगन्धेन विलिप्य कुङ्कुमेन च ।
ततः संपूजयेद्देवं चन्द्रमौलिमुमापतिम् ॥ ६२ ॥

पुष्पैर्नानाविधैर्मेध्यैर्विल्वार्ककमलादिभि ।
आगमोक्तेन मन्त्रेण वेदोक्तेन च शंकरम् ॥ ६३ ॥
अदीक्षितस्तु नाम्नैव मूलमन्त्रेण चार्चयेत् ।
एव संपूज्य तं देवं गन्धपुष्पानुरागिभि ॥ ६४ ॥
धूपदीपैश्च नैवेद्यैरुपहारैस्तथा स्तवै ।
दण्डवत्प्रणिपातैश्च गीतैर्वाद्यैर्मनोहरैः ६५ ॥
नृत्यजप्यनमस्कारैर्जयशब्दै प्रदक्षिणै ।
एवं संपूज्य विधिवद्देवदेवमुमापतिम् ॥ ६६ ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो रूपयौवनगर्वित ।
कुलैकविंशमुद्धृत्य दिव्याभरणभूषित ॥ ६७ ॥
सौवर्णेन विमानेन किङ्किणीजालमालिना ।
उपगीयमानो गन्धर्वैरप्सरोभिरलंकृतः ॥ ६८ ॥
उद्योतयन्दिश सर्वाः शिवलोक स गच्छति ।
भुक्त्वा तत्र सुख विप्रा मनस प्रीतिदायकम् ॥ ६९ ॥
तल्लोकवासिभि सार्धं यावदाभूतसंप्लवम् ।
ततस्तस्मादिहाऽऽयात पृथिव्या पुण्यसक्षये ॥ ७० ॥
जायते योगिना गेहे चतुर्वेदी द्विजोत्तमाः ।
योगं पाशुपतं प्राप्य ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥ ७१ ॥
शयनोत्थापने चैव संक्रान्त्यामयने तथा ।
अशोकाख्यां तथाऽष्टम्या पवित्रारोपणे तथा ॥ ७२ ॥
ये च पश्यन्ति तं देवं कृत्तिवासमनुत्तमम् ।
विमानेनार्कवर्णेन शिवलोकं व्रजन्ति ते ॥ ७३ ॥

सर्वकालेऽपि तं देवं ये पश्यन्ति सुमेधसः ।
तेऽपि पापविनिर्मुक्ताः शिवलोकं व्रजन्ति वै ॥ ८३ ॥
देवस्य पश्चिमे पूर्वे दक्षिणे चोत्तरे तथा ।
योजनद्वितयं साधं क्षेत्रं तद्भुक्तिमुक्तिदम् ॥ ८५ ॥
तस्मिन्क्षेत्रवरे लिङ्गं भास्करेश्वरसंज्ञितम् ।
पश्यन्ति ये तु तं देवं स्नात्वा कुण्डे महेश्वरम् ॥ ८६ ॥
आदित्येनार्चितं पूर्वं देवदेवं त्रिलोचनम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्ता विमानवरमास्थिताः ॥ ८७ ॥
उपगीयमाना गन्धर्वैः शिवलोकं व्रजन्ति ते ।
तिष्ठन्ति तत्र मुदिताः कल्पमेकं द्विजोत्तमाः ॥ ८८ ॥
भुक्त्वा तु विपुलान्भोगाञ्छिवलोके मनोरमान् ।
पुण्यक्षयादिहाऽऽयाता जायन्ते प्रवरे कुले ॥ ८९ ॥
अथवा योगिनां गेहे वेदवेदाङ्गपारगाः ।
उत्पद्यन्ते द्विजवराः सर्वभूतहिते रताः ॥ ९० ॥

दण्डवत्प्रणिपातैश्च नृत्यगीतादिभिस्तथा ।
संपूज्यैवं विधानेन शिवलोकं व्रजेन्नरः ॥ ८५ ॥
नारी वा द्विजशार्दूलाः संपूज्य श्रद्धयाऽन्विता ।
पूर्वोक्तं फलमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥ ८६ ॥
कः शक्नोति गुणान्वक्तुं समग्रान्मुनिसत्तमाः ।
तस्य क्षेत्रवरस्याथ ऋते देवान्महेश्वरात् ॥ ८७ ॥
तस्मिन्क्षेत्रोत्तमे गत्वा श्रद्धयाऽश्रद्धयाऽपि वा ।
माधवादिषु मासेषु नरो वा यदिवाऽङ्गना ॥ ८८ ॥
यस्मिन्यस्मिंस्तिथौ विप्राः स्नात्वा बिन्दुसरोम्भसि ।
पश्येद्देवं विरूपाक्षं देवीं च वरदां शिवाम् ॥ ८९ ॥
गणं चण्डं कार्त्तिकेयं गणेशं वृषभं तथा ।
कल्पद्रुमं च सावित्रीं शिवलोकं स गच्छति ॥ ९० ॥
स्नात्वा च कापिले तीर्थे विधिवत्पापनाशने ।
प्राप्नोत्यभिमतान्कामाञ्छिवलोकं स गच्छति ॥ ९१ ॥
यः स्तम्भं तत्र विधिवत्करोति नियतेन्द्रियः ।
कुलैकविंशमुद्धृत्य शिवलोकं स गच्छति ॥ ९२ ॥
एकाम्रके शिवक्षेत्रे वाराणसीसमे शुभे ।
स्नानं करोति यस्तत्र मोक्षं स लभते ध्रुवम् ॥ ९३ ॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभ्वृषिसंवादे एकाम्रक्षेत्र-माहात्म्यवर्णनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः —२१७६

अथ द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ।

उत्कलक्षेत्रवर्णनम्

ब्रह्मोवाच ।

विरजे विरजा माता ब्रह्माणी संप्रतिष्ठिता ।
यस्याः संदर्शनान्मर्त्यः पुनात्यासप्तमं कुलम् ॥ १ ॥
सकृद्दृष्ट्वा तु तां देवीं भक्त्याऽऽपूज्य प्रणम्य च ।
नरः स्ववंशमुद्धृत्य मम लोकं स गच्छति ॥ २ ॥
अन्याश्च तत्र तिष्ठन्ति विरजे लोकमातरः ।
सर्वपापहरा देव्यो वरदा भक्तिवत्सलाः ॥ ३ ॥
आस्ते वैतरणी तत्र सर्वपापहरा नदी ।
यस्यां स्नात्वा नरश्रेष्ठः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४ ॥
आस्ते स्वयंभूस्तत्रैव क्रोडरूपी हरिः स्वयम् ।
दृष्ट्वा प्रणम्य तं भक्त्या परं विष्णुं व्रजन्ति ते ॥ ५ ॥
कापिले गोग्रहे सोमे तीर्थे चालाबुसंज्ञिते ।
मृत्युंजये क्रोडतीर्थे वासुके सिद्धकेश्वरे ॥ ६ ॥
तीर्थेष्वेतेषु मतिमान्विरजे संयतेन्द्रियः ।
गत्वाऽष्टतीर्थं विधिवत्स्नात्वा देवान्प्रणम्य च ॥ ७ ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो विमानवरमास्थितः ।
उपगीयमानो गन्धर्वैर्मम लोके महीयते ॥ ८ ॥
विरजे यो मम क्षेत्रे पिण्डदानं करोति वै ।
स करोत्यक्षयां तृप्तिं पितॄणां नात्र संशयः ॥ ९ ॥

मम क्षेत्रे मुनिश्रेष्ठा विरजे ये कलेवरम् ।
परित्यजन्ति पुरुषास्ते मोक्षं प्राप्नुवन्ति वै ॥ १० ॥
स्नात्वा यः सागरे मर्त्यो दृष्ट्वा च कपिलं हरिम् ।
पश्येद्देवीं च वाराहीं स याति त्रिदशालयम् ॥ ११ ॥
सन्ति चान्यानि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च ।
तत्काले तु मुनिश्रेष्ठा वेदितव्यानि तानि वै ॥ १२ ॥
समुद्रस्योत्तरे तीरे तस्मिन्देशे द्विजोत्तमाः ।
आस्ते गुह्यं परं क्षेत्रं मुक्तिदं पापनाशनम् ॥ १३ ॥
सर्वत्र वालुकाकीर्णं पवित्रं सर्वकामदम् ।
दशयोजनविस्तीर्णं क्षेत्रं परमदुर्लभम् ॥ १४ ॥
अशोकार्जुनपुंनागैर्वकुलैः सरलद्रुमैः ।
पनसैर्नारिकेलैश्च शालैस्तालैः कपित्थकैः ॥ १५ ॥
चम्पकैःकर्णिकारैश्च चूतबिल्वैः सपाटलैः ।
कदम्बैः कोविदारैश्च लकुचैर्नागकेसरैः ॥ १६ ॥
प्राचीनामलकैर्लोध्रैर्नारङ्गैर्धवखादिरैः ।
सर्जभूर्जाश्वकर्णैश्च तमालैर्देवदारुभिः ॥ १७ ॥
मन्दारैः पारिजातैश्च न्यग्रोधागुरुचन्दनैः ।
खर्जूराम्रातकैः सिद्धैर्मुचुकुन्दैः सकिंशुकैः ॥ १८ ॥
अश्वत्थैः सप्तपर्णैश्च मधुवारशुभाञ्जनैः ।
शिंशपामलकैर्नीपैर्निम्बतिन्दुविभीतकैः ॥ १९ ॥
सर्वर्तुफलगन्धाढ्यैः सर्वर्तुकुसुमोज्ज्वलैः ।
मनोह्लादकरैः शुभ्रैर्नानाविहगनादितैः ॥ २० ॥

श्रोत्ररम्यैः सुमधुरैर्वल्लनिर्मदनोन्मिनैः ।
मनसः प्रीतिजनकैः शब्दैः खगमुखेरितैः ॥ २१ ॥
चकोरैः शतपत्रैश्च भृङ्गराजैस्तथा शुकैः ।
कोकिलैः कलविङ्कैश्च हारीतैर्जीवजीवकैः ॥ २२ ॥
प्रियपुत्रैश्चातकैश्च तथाऽन्यैर्मधुरस्वरैः ।
श्रोत्ररम्यैः प्रियकरैः कूजद्भिश्चापि विष्टितैः ॥ २३ ॥
केतकीवनखण्डैश्च अतिमुक्तैः सकुब्जकैः ।
मालतीकुन्दबाणैश्च करवीरैः सितेतरैः ॥ २४ ॥
जम्बीरकरुणाङ्कोलैर्दाडिमैर्बीजपूरकैः ।
मातुलुङ्गैः पूगफलैर्हिन्तालैः कदलीवनैः ॥ २५ ॥
अन्यैश्च विविधैर्वृक्षैः पुष्पैश्चान्यैर्मनोहरैः ।
लतावितानगुल्मैश्च विविधैश्च जलाशयैः ॥ २६ ॥
दीर्घिकाभिस्तडागैश्च पुष्करिणीभिश्च वापिभिः ।
नानाजलाशयैः पुण्यैः पद्मिनीखण्डमण्डितैः ॥ २७ ॥
सरांसि च मनोज्ञानि प्रसन्नसलिलानि च ।
कुमुदैः पुण्डरीकैश्च तथा नीलोत्पलैः शुभैः ॥ २८ ॥
कह्लारैः कमलैश्चापि आचितानि समन्ततः ।
कादम्बैश्चक्रवाकैश्च तथैव जलकुक्कुटैः ॥ २९ ॥
कारण्डवैः प्लवैर्हंसैः कूर्मैर्मत्स्यैश्च मद्गुभिः ।
दात्यूहसारसाकीर्णैः कोयष्टिकशोभितैः ॥ ३० ॥
एतैश्चान्यैश्च कूजद्भिः समन्ताज्जलचारिभिः ।
खगैर्जलचरैश्चान्यैः कुसुमैश्च जलोद्भवैः ॥ ३१ ॥

एव नानाविधैर्वृक्षै पुष्पै स्थलजलोद्भवै ।
ब्रह्मचारिगृहस्थैश्च वानप्रस्थैश्च भिक्षुभि ॥ ३२ ॥
स्वधर्मनिरतैर्वर्णैस्तथाऽन्यै समलङ्कृतम् ।
हृष्टपुष्टजनाकीर्णं नरनारीसमाकुलम् ॥ ३३ ॥
अशेषविद्यानिलय सर्वधर्मगुणाकरम् ।
एव सर्वगुणोपेत क्षेत्र परमदुर्लभम् ॥ ३४ ॥
आस्ते तत्र मुनिश्रेष्ठा विख्यात पुरुषोत्तम ।
याव दुत्कलमर्यादा दिक्क्रमेण प्रकाशिता ॥ ३५ ॥
तावत्कृष्णप्रसादेन देश पुण्यतमो हि स ।
यत्र तिष्ठति विश्वात्मा देवो स पुरुषोत्तम ॥ ३६ ॥
जगद्व्यापी जगन्नाथस्तत्र सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
अह रुद्रश्च शक्रश्च देवाश्चाग्निपुरोगमा ॥ ३७ ॥
निवसामो मुनिश्रेष्ठास्तस्मिन्देशे सदा वयम् ।
गन्धर्वाप्सरस सर्वा पितरो देवमानुषा ॥ ३८ ॥
यक्षा विद्याधरा सिद्धा मुनय संशितव्रता ।
ऋषयो वालखिल्याश्च कश्यपाद्या प्रजेश्वरा ॥ ३९ ॥
सुपर्णा किंनरा नागास्तथाऽन्ये स्वर्गवासिन ।
साङ्गाश्च चतुरो वेदा शास्त्राणि विविधानि च ॥ ४० ॥
इतिहासपुराणानि यज्ञाश्चवरदक्षिणा ।
नद्यश्च विविधा पुण्यास्तीर्थान्यायतनानि च ॥ ४१ ॥
सागराश्च तथा शैलास्तस्मिन्देशे व्यवस्थिता ।
एव पुण्यतमे देशे देवर्षिपितृसेविते ॥ ४२ ॥

सर्वोपभोगसहिते वासः कस्य न रोचते ।
श्रेष्ठत्वं कस्य देशस्य किं चान्यदधिकं ततः ॥ ४३ ॥
आस्ते यत्र स्वयं देवो मुक्तिदः पुरुषोत्तमः ।
धन्यास्ते विबुधप्रख्या ये वसन्त्युत्कले नराः ॥ ४४ ॥
तीर्थराजजले स्नात्वा पश्यन्ति पुरुषोत्तमं ।
स्वर्गे वसन्ति ते मर्त्या न ते यान्ति यमालये ॥ ४५ ॥
ये वसन्त्युत्कले क्षेत्रे पुण्ये श्रीपुरुषोत्तमे ।
सफलं जीवितं तेषामुत्कलानां सुमेधसाम् ॥ ४६ ॥
ये पश्यन्ति सुरश्रेष्ठं प्रसन्नायतलोचनम् ।
चारुभ्रूकेशमुकुटं चारुकर्णावतंसकम् ॥ ४७ ॥
चारुस्मितं चारुदन्तं चारुकुण्डलमण्डितम् ।
सुनासं सुकपोलं च सुललाटं सुलक्षणम् ॥ ४८ ॥
त्रैलोक्यानन्दजननं कृष्णस्य मुखपङ्कजम् ॥ ४९ ॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसंवादे उत्कल-
क्षेत्रवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥
आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः—३०२४

अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ।

अवन्तिकावर्णनम्

ब्रह्मोवाच ।

पुरा कृतयुगे विप्राः शक्रतुल्यपराक्रमः ।
बभूव नृपतिः श्रीमानिन्द्रद्युम्न इति श्रुतः ॥ १ ॥
सत्यवादी शुचिर्दक्षः सर्वशास्त्रविशारदः ।
रूपवान्सुभगः शूरो दाता भोक्ता प्रियंवदः ॥ २ ॥
यष्टा समस्तयज्ञानां ब्रह्मण्यः सत्यसंगरः ।
धनुर्वेदे च वेदे च शास्त्रे च निपुणः कृती ॥ ३ ॥
वल्लभो नरनारीणां पौर्णमास्यां यथा शशी ।
आदित्य इव दुष्प्रेक्ष्यः शत्रुपक्षभयंकरः ॥ ४ ॥
वैष्णवः सत्त्वसंपन्नो जितक्रोधो जितेन्द्रियः ।
अध्येता योगसांख्यानां मुमुक्षुर्धर्मतत्परः ॥ ५ ॥
एवं स पालयन्पृथ्वीं राजा सर्वगुणाकरः ।
तस्य बुद्धिः समुत्पन्ना हरेराराधनं प्रति ॥ ६ ॥
कथमाराधयिष्यामि देवदेवं जनार्दनम् ।
कस्मिन्क्षेत्रेऽथवा तीर्थे नदीतीरे तथाऽऽश्रमे ॥ ७ ॥
एवं चिन्तापरः सोऽथ निरीक्ष्य मनसा महीम् ।
आलोक्य सर्वतीर्थानि क्षेत्राण्यथ पुराण्यपि ॥ ८ ॥
तानि सर्वाणि संत्यज्य जगामाऽऽयतनं पुनः ।
विख्यातं परमं क्षेत्रं मुक्तिदं पुरुषोत्तमम् ॥ ९ ॥

स गत्वा तत्क्षेत्रवरं समृद्धयल्पवाहनः ।
अयजच्चाश्वमेधेन विधिवद्भूरिदक्षिणः ॥ १० ॥
कारयित्वा महोत्सेधं प्रासादं चैव विश्रुतम् ।
तत्र संकर्षणं कृष्णं सुभद्रां स्थाप्य वीर्यवान् ॥ ११ ॥
पञ्चतीर्थं च विधिवत्कृत्वा तत्र महीपतिः ।
स्नानं दानं तपो होमं देवताप्रेक्षणं तथा ॥ १२ ॥
भक्त्या चाऽऽराध्य विधिवत्प्रत्यहं पुरुषोत्तमम् ।
प्रसादाद्देवदेवस्य ततोमोक्षमवाप्तवान् ॥ १३ ॥
मार्कण्डेयं च कृष्णं च दृष्ट्वा रामं च भो द्विजाः ।
सागरे चेन्द्रद्युम्नाख्ये स्नात्वा मोक्षं लभेद्ध्रुवम् ॥ १४ ॥

मुनय ऊचुः ।

कस्मात्स नृपतिः पूर्वमिन्द्रद्युम्नो जगत्पतिः ।
जगाम परमं क्षेत्रं मुक्तिदं पुरुषोत्तमम् ॥ १५ ॥
गत्वा तत्र सुरश्रेष्ठ कथं स नृपसत्तमः ।
वाजिमेधेन विधिवदिष्टवान्पुरुषोत्तमम् ॥ १६ ॥
कथं स सर्वफलदे क्षेत्रे परमदुर्लभे ।
प्रासादं कारयामास चेष्टं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ १७ ॥
कथं स कृष्णं रामं च सुभद्रां च प्रजापते ।
निर्ममे राजशार्दूल क्षेत्रं रक्षितवान्कथम् ॥ १८ ॥
कथं तत्र महीपाल प्रासादे भुवनोत्तमे ।
स्थापयामास मतिमान्कृष्णादींस्त्रिदशार्चितान् ॥ १९ ॥

एतत्सर्वं सुरश्रेष्ठ विस्तरेण यथातथम् ।
वक्तुमर्हस्यशेषेण चरितं तस्य धीमतः ॥ २० ॥
न तृप्तिमधिगच्छामस्तव वाक्यामृतेन वै ।
श्रोतुमिच्छामहे ब्रह्मन्परं कौतूहलं हि नः ॥ २१ ॥

ब्रह्मोवाच ।

साधु साधु द्विजश्रेष्ठा यत्पृच्छध्वं पुरातनम् ।
सर्वपापहरं पुण्यं भुक्तिमुक्तिप्रदं शुभम् ॥ २२ ॥
वक्ष्यामि तस्य चरितं यथावृत्तं कृते युगे ।
शृणुध्वं मुनिशार्दूलाः प्रयताः संयतेन्द्रियाः ॥ २३ ॥
अवन्ती नाम नगरी मालवे भुवि विश्रुता ।
बभूव तस्य नृपतेः पृथिवी ककुदोपमा ॥ २४ ॥
हृष्टपुष्टजनाकीर्णा दृढप्राकारतोरणा ।
दृढयन्त्रार्गलद्वारा परिखाभिरलंकृता ॥ २५ ॥
नानावणिक्समाकीर्णा नानाभाण्डसुविक्रिया ।
रथ्यापणवती रम्या सुविभक्तचतुष्पथा ॥ २६ ॥
गृहगोपुरसंबाधा वीथीभिः समलंकृता ।
राजहंसनिभैः शुभ्रैश्चित्रग्रीवैर्मनोहरैः ॥ २७ ॥
अनेकशतसाहस्रैः प्रासादैः समलंकृता ।
यज्ञोत्सवप्रमुदिता गीतवादित्रनिस्वना ॥ २८ ॥
नानावर्णपताकाभिर्ध्वजैश्च समलंकृता ।
हस्त्यश्वरथसंकीर्णा पदातिगणसंकुला ॥ २९ ॥

नानायोधसमाकीर्णा नानाजनपदैर्युता ।
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्चैव द्विजातिभिः ॥ ३० ॥
समृद्धा सा मुनिश्रेष्ठा विद्वद्भिः समलंकृता ।
न तत्र मलिनाः सन्ति न मूर्खा नापि निर्धनाः ॥ ३१ ॥
न रोगिणो न हीनाङ्गा न द्यूतव्यसनान्विताः ।
सदा हृष्टाः सुमनसो दृश्यन्ते पुरुषाः स्त्रियः ॥ ३२ ॥
क्रीडन्ति स्म दिवा रात्रौ हृष्टास्तत्र पृथक्पृथक् ।
सुवेषाः पुरुषास्तत्र दृश्यन्ते मृष्टकुण्डलाः ॥ ३३ ॥
सुरूपाः सुगुणाश्चैव दिव्यालंकारभूषिताः ।
कामदेवप्रतीकाशाः सर्वलक्षणलक्षिताः ॥ ३४ ॥
सुकेशाः सुकपोलाश्च सुमुखाः श्मश्रुधारिणः ।
ज्ञातारः सर्वशास्त्राणां भेत्तारः शत्रुवाहिनीम् ॥ ३५ ॥
दातारः सर्वरत्नानां भोक्तारः सर्वसंपदाम् ।
स्त्रियस्तत्र मुनिश्रेष्ठा दृश्यन्ते सुमनोहराः ॥ ३६ ॥
हंसवारणगामिन्यः प्रफुल्लाम्भोजलोचनाः ।
सुमध्यमाः सुजघनाः पीनोन्नतपयोधराः ॥ ३७ ॥
सुकेशाश्चारुवदनाः सुकपोलाः स्थिरालकाः ।
हावभावानतग्रीवाः कर्णाभरणभूषिताः ॥ ३८ ॥
बिम्बोष्ठ्यो रञ्जितमुखास्ताम्बूलेन विराजिताः ।
सुवर्णाभरणोपेताः सर्वालंकारभूषिताः ॥ ३९ ॥
श्यामावदाताः सुश्रोण्यः काञ्चीनूपुरनादिताः ।
दिव्यमाल्याम्बरधरा दिव्यगन्धानुलेपनाः ॥ ४० ॥

विदग्धाः सुभगाः कान्ताश्चार्वङ्ग्य. प्रियदर्शनाः ।
रूपलावण्यसंयुक्ताः सर्वाः प्रहसिताननाः ॥ ४१ ॥
क्रीडन्त्यश्च मदोन्मत्ताः सभासु चत्वरेषु च ।
गीतावाद्यकथालापै रमयन्त्यश्च ता. स्त्रिय' ॥ ४२ ॥
वारमुख्याश्च दृश्यन्ते नृत्यगीतविशारदा' ।
प्रेक्षणालापकुशला. सर्वयोषिद्गुणान्विताः ॥ ४३ ॥
अन्याश्च तत्र दृश्यन्ते गुणाचार्या कुलस्त्रियः ।
पतिव्रताश्च सुभगा गुणै सर्वैरलंकृताः ॥ ४४ ॥
वनैश्चोपवनैः पुण्यैरुद्यानैश्च मनोरमैः ।
देवतायतनैर्दिव्यैर्नानाकुसुमशोभितैः ॥ ४५ ॥
शालैस्तालैस्तमालैश्च बकुलैर्नागकेसरैः ।
पिप्पलैः कर्णिकारैश्च चन्दनागुरुचम्पकैः ॥ ४६ ॥
पुंनागैर्नारिकेलैश्च पनसै. सरलद्रुमैः ।
नारङ्गैर्लकुचैर्लोध्रैः सप्तपर्णैः शुभाञ्जनैः ॥ ४७ ॥
चूतबिल्वकदम्बैश्च शिंशपैर्धवखादिरैः ।
पाटलाशोकतगरैः करवीरैः सितेतरैः ॥ ४८ ॥
पीतार्जुनकभल्लातै. सिद्धैराम्रातकैस्तथा ।
न्यग्रोधाश्वत्थकाश्मर्यै. पलाशैर्देवदारुभिः ॥ ४९ ॥
मन्दारैः पारिजातैश्च तिन्तिडीकविभीतकैः ।
प्राचीनामलकै. प्लक्षैर्जम्बूशिरीषपादपै. ॥ ५० ॥
कालेयै. काञ्चनारैश्च मधुजम्बीरतिन्दुकैः ।
खर्जूरागस्त्यमधुकैः शाखोटकदलीतकैः ॥ ५१ ॥

कङ्कोलैर्मुचुकुन्दैश्च हिन्तालैर्बीजपूरकै ।
केतकीवनखण्डैश्च अतिमुक्तै सकुब्जकै ॥ ५२ ॥
मल्लिकाकुन्दबाणैश्च कदलीखण्डमण्डिते ।
मातुलुङ्गै पूगफलै करुणै सिन्धुवारकै ॥ ५३ ॥
बहुवारै कोविदारैर्बदरै सकरञ्जकै ।
अन्यैश्च विविधै पुष्पवृक्षैश्चान्यैर्मनोहरै ॥ ५४ ॥
लतागुल्मैर्वितानैश्च उद्यानैर्नन्दनोपमे ।
सदा कुसुमगन्धाढ्यै सदा फलभरानतै ॥ ५५ ॥
नानापक्षिरुतै रम्यैर्नानामृगगणावृते ।
चकोरै शतपत्रैश्च भृङ्गारै प्रियपुत्रकै ॥ ५६ ॥
कलविङ्कैर्मयूरैश्च शुकै कोकिलकैस्तथा ।
कपोतै खञ्जरीटैश्च श्येनै पारावतैस्तथा ॥ ५७ ॥
खगैश्चान्यैर्बहुविधै श्रोत्ररम्यैर्मनोरमै ।
सरित पुष्करिण्यश्च सरासि सुबहूनि च ॥ ५८ ॥
अन्यैर्जलाशयै पुण्यै कुमुदोत्पलमण्डितै ।
पद्मै सितेतरै शुभ्रै कह्लारैश्च सुगन्धिभि ॥ ५९ ॥
अन्यैर्बहुविधै पुष्पैर्जलजै सुमनोहरै ।
गन्धामोदकरैर्दिव्यै सर्वर्तुकुसुमोज्ज्वलै ॥ ६० ॥
हंसकारण्डवाकीर्णैश्चक्रवाकोपशोभितै ।
सारसैश्च बलाकैश्च कूर्मैर्मत्स्यै सनक्रकै ॥ ६१ ॥
जलपादै कदम्बैश्च प्लवैश्च जलकुक्कुटै ।
खगैर्जलचरैश्चान्यैर्नानारवविभूषितै ॥ ६२ ॥

नानावर्णैः सदा हृष्टैरञ्चितानि समन्ततः ।
एवं नानाविधैः पुष्पैर्विविधैश्च जलाशयैः ॥ ६३ ॥
विविधैः पादपैः पुण्यैरुद्यानैर्विविधैस्तथा ।
जलस्थलचरैश्चैव विहगैश्चाप्यधिष्ठितैः ॥ ६४ ॥
देवतायतनैर्दिव्यैः शोभिता सा महापुरी ।
तत्राऽऽस्ते भगवान्देवस्त्रिपुरारिस्त्रिलोचनः ॥ ६५ ॥
महाकालेति विख्यातः सर्वकामप्रदः शिवः ।
शिवकुण्डे नरः स्नात्वा विधिवत्पापनाशने ॥ ६६ ॥
देवान्पितॄन्नृपांश्चैव संतर्प्य विधिवद्बुधः ।
गत्वा शिवालयं पश्चात्कृत्वा तं त्रिः प्रदक्षिणम् ॥ ६७ ॥
प्रविश्य संयतो भूत्वा धौतवासा जितेन्द्रियः ।
स्नानैः पुष्पैस्तथा गन्धैर्धूपैर्दीपैश्च भक्तितः ॥ ६८ ॥
नैवेद्यैरुपहारैश्च गीतवाद्यैः प्रदक्षिणैः ।
दण्डवत्प्रणिपातैश्च नृत्यैः स्तोत्रैश्च शंकरम् ॥ ६९ ॥
संपूज्य विधिवद्भक्त्या महाकालं सकृच्छिवम् ।
अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ ७० ॥
पापैः सर्वैर्विनिर्मुक्तो विमानैः सर्वकामिकैः ।
आरुह्य त्रिदिवं याति यत्र शंभोर्निकेतनम् ॥ ७१ ॥
दिव्यरूपधरः श्रीमान्दिव्यालंकारभूषितः ।
भुङ्क्ते तत्र वरान्भोगान्यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ७२ ॥
शिवलोके मुनिश्रेष्ठा जरामरणवर्जितः ।
पुण्यक्षयादिहाऽऽयातः प्रवरे ब्राह्मणे कुले ॥ ७३ ॥

चतुर्वेदी भवेद्विप्रः सर्वशास्त्रविशारदः ।
योगं पाशुपतं प्राप्य ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥ ७४ ॥
आस्ते तत्र नदी पुण्या शिप्रा नामेति विश्रुता ।
तस्यां स्नातस्तु विधिवत्संतर्प्य पितृदेवताः ॥ ७५ ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो विमानवरमास्थितः ।
भुङ्क्ते बहुविधान्भोगान्स्वर्गलोके नरोत्तमः ॥ ७६ ॥
आस्ते तत्रैव भगवान्देवदेवो जनार्दनः ।
गोविन्दस्वामिनामाऽसौ भुक्तिमुक्तिप्रदो हरिः ॥ ७७ ॥
तं दृष्ट्वा मुक्तिमाप्नोति त्रिसप्तकुलसंयुतः ।
विमानेनार्कवर्णेन किङ्किणीजालमालिना ॥ ७८ ॥
सर्वकामसमृद्धेन कामगेनास्थिरेण च ।
उपगीयमानो गन्धर्वैर्विष्णुलोके महीयते ॥ ७९ ॥
भुङ्क्ते च विविधान्कामान्निरातङ्को गतज्वरः ।
आभूतसंप्लवं यावत्सुरूपः सुभगः सुखी ॥ ८० ॥
कालेनाऽऽगत्य मतिमान्ब्राह्मणः स्यान्महीतले ।
प्रवरे योगिनां गेहे वेदशास्त्रार्थतत्त्ववित् ॥ ८१ ॥
वैष्णवं योगमास्थाय ततो मोक्षमवाप्नुयात् ।
विक्रमस्वामिनामानं विष्णुं तत्रैव भो द्विजाः ॥ ८२ ॥
दृष्ट्वा नरो वा नारी वा फलं पूर्वोदितं लभेत् ।
अन्येऽपि तत्र तिष्ठन्ति देवाः शक्रपुरोगमाः ॥ ८३ ॥
मातरश्च मुनिश्रेष्ठाः सर्वकामफलप्रदा. ।
दृष्ट्वा तान्विधिवद्भक्त्या संपूज्य प्रणिपत्य च ॥ ८४ ॥

सर्वपापविनिर्मुक्तो नरो याति त्रिविष्टपम् ।
एवं सा नगरी रम्या राजसिंहेन पालिता ॥ ८५ ॥
नित्योत्सवप्रमुदिता यथेन्द्रस्यामरावती ।
पुराष्टादशसंयुक्ता सुविस्तीर्णचतुष्पथा ॥ ८६ ॥
धनुर्ज्याघोषनिनदा सिद्धसंगमभूषिता ।
विद्यावद्गणभूयिष्ठा वेदनिर्घोषनादिता ॥ ८७ ॥
इतिहासपुराणानि शास्त्राणि विविधानि च ।
काव्यालापकथाश्चैव श्रूयन्तेऽहर्निशं द्विजाः ॥ ८८ ॥
एवं मया गुणाढ्या सा तदु(सोज्ज)यिनी समुदाहृता ।
यस्यां राजाऽभवत्पूर्वमिन्द्रद्युम्नो महामतिः ॥ ८९ ॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसंवादेऽवन्तिकावर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥
आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः—३११३

अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ।

इन्द्रद्युम्नस्यदक्षिणोदधितटगमनम्

ब्रह्मोवाच ।

तस्यां स नृपतिः पूर्वं कुर्वन्राज्यमनुत्तमम् ।
पालयामास मतिमान्प्रजाः पुत्रानिवौरसान् ॥ १ ॥
सत्यवादी महाप्राज्ञः शूरः सर्वगुणाकरः ।
मतिमान्धर्मसंपन्नः सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ २ ॥

सत्यवाक्छीलवान्दान्तः श्रीमान्परपुरंजयः ।
आदित्य इव तेजोभी रूपैराश्विनयोरिव ॥ ३ ॥
धर्मेमानसुराश्वर्यः शक्रतुल्यपराक्रमः ।
शारदेन्दुरिवाऽऽभाति लक्षणैः समलंकृतः ॥ ४ ॥
आहर्ता सर्वयज्ञानां हयमेधादिकृत्तथा ।
दानैर्यज्ञैस्तपोभिश्च तत्तुल्यो नास्ति भूपतिः ॥ ५ ॥
सुवर्णमणिमुक्तानां गजाश्वानां च भूपतिः ।
प्रददौ विप्रमुख्येभ्यो यागे यागे महाधनम् ॥ ६ ॥
हस्त्यश्वरथमुख्यानां कम्बलाजिनवाससाम् ।
रत्नानां धनधान्यानामन्तस्तस्य न विद्यते ॥ ७ ॥
एव सर्वधनैर्युक्तो गुणैः सर्वैरलंकृतः ।
सर्वकामसमृद्धात्मा कुर्वन्राज्यमकण्टकम् ॥ ८ ॥
तस्येयं मतिरुत्पन्ना सर्वयोगेश्वरं हरिम् ।
कथमाराधयिष्यामि भुक्तिमुक्तिप्रदं प्रभुम् ।
विचार्य सर्वशास्त्राणि तन्त्राण्यागमविस्तरम् ।
इतिहासपुराणानि वेदाङ्गानि च सर्वशः ॥ १० ॥
धर्मशास्त्राणि सर्वाणि नियमानृषिभाषितान् ।
वेदाङ्गानि च शास्त्राणि विद्यास्थानानि यानि च ॥ ११ ॥
गुरुं संसेव्य यत्नेन ब्राह्मणान्वेदपारगान् ।
आधाय परमां काष्ठां कृतकृत्योऽभवत्तदा ॥ १२ ॥
संप्राप्य परमं तत्त्वं वासुदेवाख्यमव्ययम् ।
भ्रान्तिज्ञानादतीतस्तु मुमुक्षुः संयतेन्द्रियः ॥ १३ ॥

कथमाराधयिष्यामि देवदेवं सनातनम् ।
पीतवस्त्रं चतुर्बाहुं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ १४ ॥
वनमालावृतोरस्कं पद्मपत्रायतेक्षणम् ।
श्रीवत्सोरःसमायुक्तं मुकुटाङ्गदशोभितम् ॥ १५ ॥
स्वपुरात्स तु निष्क्रान्त उज्जयिन्याः प्रजापतिः ।
बलेन महता युक्तः सभृत्यः सपुरोहितः ॥ १६ ॥
अनुजग्मुस्तु तं सर्वे रथिनः शस्त्रपाणयः ।
रथैर्विमानसंकाशैः पताकाध्वजसेवितैः ॥ १७ ॥
सादिनश्च तथा सर्वे प्रासतोमरपाणयः ।
अश्वैः पवनसंकाशैरनुजग्मुस्तु तं नृपम् ॥ १८ ॥
हिमवत्संभवैर्मत्तैर्वारणैः पर्वतोपमैः ।
ईषादन्तैः सदा मत्तैः प्रचण्डैः षष्टिहायनैः ॥ १९ ॥
हेमकक्षैः सपताकैर्घण्टारवविभूषितैः ।
अनुजग्मुश्च तं सर्वे गजयुद्धविशारदाः ॥ २० ॥
असंख्येयाश्च पादाता धनुःप्रासासिपाणयः ।
दिव्यमाल्याम्बरधरा दिव्यगन्धानुलेपना ॥ २१ ॥
अनुजग्मुश्च तं सर्वे युवानो मृष्टकुण्डलाः ।
सर्वास्त्रकुशलाः शूराः सदा सङ्ग्रामलालसाः ॥ २२ ॥
अन्तःपुरनिवासिन्यः स्त्रियः सर्वाः स्वलंकृताः ।
बिम्बोष्ठचारुदशनाः सर्वाभरणभूषिताः ॥ २३ ॥
दिव्यवस्त्रधराः सर्वा दिव्यमाल्यविभूषिताः ।
दिव्यगन्धानुलिप्ताङ्गाः शरच्चन्द्रनिभाननाः ॥ २४ ॥

सुमध्यमाश्चारुवेषाश्चारुकर्णालकाञ्चिताः ।
ताम्बूलरञ्जितमुखा रक्षिभिश्च सुरक्षिताः ॥ २५ ॥
यानैरुच्चावचैः शुभ्रैर्मणिकाञ्चनभूषितैः ।
उपगीयमानास्ताः सर्वा गायनैः स्तुतिपाठकैः ॥ २६ ॥
वेष्टिताः शस्त्रहस्तैश्च पद्मपत्रायतेक्षणाः ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या अनुजग्मुश्च तं नृपम् ॥ २७ ॥
वणिग्ग्रामगणाः सर्वे नानापुरनिवासिनः ।
धनै रत्नैः सुवर्णैश्च सदाराः सपरिच्छदाः ॥ २८ ॥
वस्त्रविक्रयकाश्चैव ताम्बूलपण्यजीविनः ।
तृणविक्रयकाश्चैव काष्ठविक्रयकारकाः ॥ २९ ॥
रङ्गोपजीविनः सर्वे मांसविक्रयिणस्तथा ।
तैलविक्रयकाश्चैव वस्त्रविक्रयकास्तथा ॥ ३० ॥
फलविक्रयिणश्चैव पत्रविक्रयिणस्तथा ।
तथा जयसहायाश्च रजकाश्च सहस्रशः ॥ ३१ ॥
गोपाला नापिताश्चैव तथाऽन्ये वस्त्रसूचकाः ।
मेषपालाश्चाजपाला मृगपालाश्च हंसकाः ॥ ३२ ॥
धान्यविक्रयिणश्चैव सक्तुविक्रयिणश्च ये ।
गुडविक्रयिकाश्चैव तथा लवणजीविनः ॥ ३३ ॥
गायना नर्तकाश्चैव तथा मङ्गलपाठकाः ।
शैलूषाः कथकाश्चैव पुराणार्थविशारदाः ॥ ३४ ॥
कवयः काव्यकर्तारो नानाकाव्यविशारदाः ।
विषघ्ना गारुडाश्चैव नानारत्नपरीक्षकाः ॥ ३५ ॥

ग्योकारान्ताम्रकाराश्च कांस्यकाराश्च रुक्मकाः ।
कापकाराश्चित्रकाराः कुन्दकाराश्च पावकाः ॥ ३६ ॥
दण्डकाराश्चासिकाराः सुराधूनोपजीविनः ।
मल्ला दूताश्च कायस्था ये चान्ये कर्मकारिणः ॥ ३७ ॥
तन्तुवाया रूपकारा वार्तिकास्तैलपाटका ।
लावजीवास्तैत्तिरिका मृगपक्ष्युपजीविनः ॥ ३८ ॥
गजवैद्याश्च वैद्याश्च नरवैद्याश्च ये नरा ।
वृक्षवैद्याश्च गोवैद्या ये चान्ये छेददाहकाः ॥ ३९ ॥
एते नागरका. सर्वे ये चान्ये नानुकीर्तिता ।
अनुजग्मुस्तु राजानं समन्तपुरवासिन ॥ ४० ॥
यथा व्रजन्तं पितरं ग्रामान्तरं समुत्सुकाः ।
अनुयान्ति यथा पुत्रास्तथा त तेऽपि नागराः ॥ ४१ ॥
एवं स नृपतिः श्रीमान्वृतः सर्वैर्महाजनैः ।
हस्त्यश्वरथपादातैर्जगाम च शनैः शनैः ॥ ४२ ॥
एवं गत्वा स नृपतिर्दक्षिणस्योदधेस्तटम् ।
सर्वैस्तैर्दीर्घकालेन वलैरनुगत. प्रभुः ॥ ४३ ॥
ददर्श सागरं रम्यं नृत्यन्तमिव च स्थितम् ।
अनेकशतसाहस्रैरूर्मिभिश्च समाकुलम् ॥ ४४ ॥
नानारत्नालय पूर्णं नानाप्राणिसमाकुलम् ।
वीचीतरङ्गबहुलं महाश्चर्यसमन्वितम् ॥ ४५ ॥
तीर्थराजं महाशब्दमपारं सुभयंकरम् ।
मेघवृन्दप्रतीकाशमगाधं मकरालयम् ॥ ४६ ॥

मत्स्यैः कूर्मैश्च शङ्खैश्च शुक्तिकामकरादिभिः ।
शिंशुमारैः कर्कटैश्च वृतं नक्रमहादिभिः ॥ ४७ ॥
लवणोदं हरेः स्थानं भगवतश्च महीपतिम् ।
सर्वपापहरं पुण्यं सर्वकामफलप्रदम् ॥ ४८ ॥
अनेकरत्नगम्भीरं रत्नानां च समाश्रयम् ।
अमृतस्यारणिं दिव्यं देवयोनिमपां पतिम् ॥ ४९ ॥
विशिष्टं सर्वभूतानां प्राणिनां जीवधारणम् ।
सुपवित्रं पवित्राणां मङ्गलानां च मङ्गलम् ॥ ५० ॥
तीर्थानामुत्तमं तीर्थमव्ययं यादसां पतिम् ।
चन्द्रवृद्धिक्षयश्चैव यस्य मानं प्रतिष्ठितम् ॥ ५१ ॥
अभेद्यं सर्वभूतानां देवानाममृतालयम् ।
उत्पत्तिस्थितिसंहारहेतुभूतं सनातनम् ॥ ५२ ॥
उपजीव्यं च सर्वेषां पुण्यं नदनदीपतिम् ।
दृष्ट्वा तं नृपतिश्रेष्ठो विस्मयं परमं गतः ॥ ५३ ॥
निवासमकरोत्तत्र वेलामाश्रित्य सागरीम् ।
पुण्ये मनोहरे देशे सर्वभूमिगुणैर्युते ॥ ५४ ॥
वृतं शालैः कदम्बैश्च पुंनागैः सरलद्रुमैः ।
पनसैर्नारिकेलैश्च बकुलैर्नागकेसरैः ॥ ५५ ॥
तालैः पिप्पलैः खर्जूरैर्नारङ्गैर्बीजपूरकैः ।
शालैराम्रातकैर्लोध्रैर्बकुलैर्वटपारकैः ॥ ५६ ॥
कपित्थैः कर्णिकारैश्च पाटलाशोकचम्पकैः ।
दाडिमैश्च तमालैश्च पारिजातैस्तथाऽर्जुनैः ॥ ५७ ॥

प्राचीनामलकैर्बिल्वैः प्रियङ्गुवटखादिरैः ।
इङ्गुदीसप्तपर्णैश्च अश्वत्थागस्त्यजम्बुकैः ॥ ५८ ॥
मधुकैः कर्णिकारैश्च बदुचारैः सतिन्दुकैः ।
पलाशपद्रैर्नीपैः सिद्धनिम्बशुमाञ्चनैः ॥ ५९ ॥
धारकैः कोविदारैश्च भल्लातामलकैस्तथा ।
इति हिन्तालकाङ्कोलैः करञ्जैः सचिभातकैः ॥ ६० ॥
ससर्जमधुकाश्मर्यैः शाल्मलीदेवदारुभिः ।
शाखोटकैर्निम्बचरैः सुरभीकोष्ठहरातकैः ॥ ६१ ॥
गुग्गुलैश्चन्दनैर्वृक्षैस्तथैवागुरुपाटलैः ।
जम्बीरकरुणैर्वृक्षैस्तिन्तिडारक्तचन्दनैः ॥ ६२ ॥
एवं नानाविधैर्वृक्षैस्तथाऽन्यैर्द्रुपादपैः ।
कल्पद्रुमैर्नित्यफलैः सर्वर्तुकुसुमोत्करैः ॥ ६३ ॥
नानापक्षिरुतैर्दिव्यैर्मत्तकोकिलनादितैः ।
मयूरवरसंघुष्टैः शुकसारिकसंकुलैः ॥ ६४ ॥
हारीतैर्भृङ्गराजैश्च चातकैर्हेदुपुत्रकैः ।
जीवजीवककाकोलैः कलविङ्कैः कपोतकैः ॥ ६५ ॥
खगैर्नानाविधैश्चान्यैः श्रोत्ररम्यैर्मनोहरैः ।
पुष्पिताग्रेषु वृक्षेषु कूजद्भिश्चाधिष्ठितैः ॥ ६६ ॥
केतकीवनखण्डैश्च सदा पुष्पधरैः सितैः ।
मल्लिकाकुन्दकुसुमैर्यूथिकातगरैस्तथा ॥ ६७ ॥
कुटजैर्बाणपुष्पैश्चअतिमुक्तैः सकुब्जकैः ।
मालतीकरवीरैश्च तथा कदम्बकाञ्चनैः ॥ ६८ ॥

अन्यैर्नानाविधैः पुष्पैः सुगन्धैश्चारुदर्शनैः ।
घनोद्यानोपवनजैर्नानावर्णैः सुगन्धिभिः ॥ ६९ ॥
विद्याधरगणाकीर्णे सिद्धचारणसेविते ।
गन्धर्वोरगरक्षोभिर्भूताप्सरसकिंनरैः ॥ ७० ॥
मुनियक्षगणाकीर्णैर्नानामरधनिषेविते ।
मृगैः शाखामृगैः सिंहैर्वराहमहिषाकुलैः ॥ ७१ ॥
तथाऽन्यैः कृष्णसाराद्यैर्मृगैः सर्वत्र शोभिते ।
शार्दूलैर्दीप्तमातङ्गैस्तथाऽन्यैर्वनचारिभिः ॥ ७२ ॥
एवं नानाविधैर्वृक्षैरुद्यानैर्नन्दनोपमैः ।
लतागृहवितानैश्च विविधैश्च जलाशयैः ॥ ७३ ॥
हंसकारण्डवाकीर्णैः पद्मिनीखण्डमण्डितैः ।
कादम्बैश्च प्लवैर्हंसैश्चक्रवाकोपशोभितैः ॥ ७४ ॥
कमलैः शतपत्रैश्च कह्लारैः कुमुदोत्पलैः ।
खगैर्जलचरैश्चान्यैः पुष्पैर्जलसमुद्भवैः ॥ ७५ ॥
पर्वतैर्दीप्तशिखरैश्चारुकन्दरमण्डितैः ।
नानावृक्षसमाकीर्णैर्नानाधातुविभूषितैः ॥ ७६ ॥
सर्वाश्चर्यमयैः शृङ्गैः सर्वभूतालयैः शुभैः ।
सर्वौषधिसमायुक्तैर्विपुलैश्चित्रसानुभिः ॥ ७७ ॥
एवं सर्वैः समुदितैः शोभितं सुमनोहरैः ।
ददर्श स महीपालः स्थानं त्रैलोक्यपूजितम् ॥ ७८ ॥
दशयोजनविस्तीर्णं पञ्चयोजनमायतम् ।
नानाश्चर्यसमायुक्तं क्षेत्रं परमदुर्लभम् ॥ ७९ ॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भूऋषिसंवादे क्षेत्रदर्शनं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥
आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः—३१६२

अथ पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ।

पुरुषोत्तमक्षेत्रवर्णनम्

मुनय ऊचुः ।

तस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये वैष्णवे पुरुषोत्तमे ।
किं तत्र प्रतिमा पूर्वं न स्थिता वैष्णवी प्रभो ॥ १ ॥
येनासौ नृपतिस्तत्र गत्वा सबलवाहनः ।
स्थापयामास कृष्णं च रामं भद्रां शुभप्रदाम् ॥ २ ॥
संशयो नो महानत्र विस्मयश्च जगत्पते ।
श्रोतुमिच्छामहे सर्वं ब्रूहि तत्कारणं च नः ॥ ३ ॥

ब्रह्मोवाच ।

शृणुध्वं पूर्ववृत्तां कथां पापप्रणाशिनीम् ।
प्रवक्ष्यामि समासेन श्रिया पृष्टः पुरा हरिः ॥ ४ ॥
सुमेरोः काञ्चने शृङ्गे सर्वाश्चर्यसमन्विते ।
सिद्धविद्याधरैर्यक्षैः किंनरैरुपशोभिते ॥ ५ ॥
देवदानवगन्धर्वैर्नागैरप्सरसां गणैः ।
मुनिभिर्गुह्यकैः सिद्धैः सौपर्णैः समरुद्गणैः ॥ ६ ॥

अन्यैर्देवालयैः साध्यैः कश्यपाद्यैः प्रजेश्वरैः ।
वालखिल्यादिभिश्चैव शोभिते सुमनोहरे ॥ ७ ॥
कर्णिकारवनैर्दिव्यैः सर्वर्तुकुसुमोत्करैः ।
जातरूपप्रतीकाशैर्भूषिते सूर्यसंनिभैः ॥ ८ ॥
अन्यैश्च बहुभिर्वृक्षैः शालतालादिभिर्वनैः ।
पुंनागाशोकसरलन्यग्रोधाम्रातकार्जुनैः ॥ ९ ॥
पारिजाताम्रखदिरनीपबिल्वकदम्बकैः ।
धवखादिरपालाशशीर्षामलकतिन्दुकैः ॥ १० ॥
नारिङ्गकोलवकुललोध्रदाडिमदारुकैः ।
सर्जैश्च कर्णैस्तगरैः शिशिभूर्जवनिम्बकैः ॥ ११ ॥
अन्यैश्चकाञ्चनैश्चैव फलभारैश्चनामितैः ।
नानाकुसुमगन्धाढ्यैर्भूषिते पुष्पपादपैः ॥ १२ ॥
मालतीयूथिकामल्लीकुन्दबाणकुरुण्टकैः ।
पाटलागस्त्यपुंनागमन्दारकुसुमादिभिः ॥ १३ ॥
अन्यैश्च विविधैः पुष्पैर्मनसः प्रीतिदायकैः ।
नानाविहगसंघैश्च कूजद्भिर्मधुरस्वरैः ॥ १४ ॥
पुंस्कोकिलरुतैर्दिव्यैर्मत्तबर्हिणनादितैः ।
एवं नानाविधैर्वृक्षैः पुष्पैर्नानाविधैस्तथा ॥ १५ ॥
खगैर्नानाविधैश्चैव शोभिते सुरसेविते ।
तत्र स्थितं जगन्नाथं जगत्स्रष्टारमव्ययम् ॥ १६ ॥
सर्वलोकविधातारं वासुदेवाख्यमव्ययम् ।
प्रणम्य शिरसा देवी लोकानां हितकाम्यया ॥
पप्रच्छेमं महाप्रश्नं पद्मजा समनुत्तमम् ॥ १७ ॥

श्रीरुवाच ।

ब्रूहि त्वं सर्वलोकेश संशयं मे हृदि स्थितम ।
मर्त्यलोके महाश्चर्ये कर्मभूमौ सुदुर्लभे ॥ १८ ॥
लोभमोहग्रहग्रस्ते कामक्रोधमहार्णवे ।
येन मुच्येत देवेश अस्मात्संसारसागरात् ॥ १९ ॥
आचक्ष्व सर्वदेवेश प्रणतां यदि मन्यसे ।
त्वद्दृते नास्ति लोकेऽस्मिन्वक्ता संशयनिर्णये ॥ २० ॥

ब्रह्मोवाच ।

श्रुत्वैवं वचनं तस्या देवदेवो जनार्दन ।
प्रोवाच परया प्रीत्या परं सारामृतोपमम् ॥ २१ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

सुखोपास्य सुसाध्यश्चाभिरामश्च सुसत्फल ।
आस्ते तीर्थवरे देवि विख्यात पुरुषोत्तम ॥ २२ ॥
न तेन सदृश कश्चिन्त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
कीर्तनादस्य देवेशि मुच्यते सर्वपातकै ॥ २३ ॥
न विज्ञातोऽमरैः सर्वैर्न दैत्यैर्न च दानवै ।
मरीच्याद्यैर्मुनिवरैर्गोपितं मे वरानने ॥ २४ ॥
तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि तीर्थराज च सांप्रतम् ।
भावेनैकेन सुश्रोणि शृणुष्व वरवर्णिनि ॥ २५ ॥
आसीत्कल्पे समुत्पन्ने नष्टे स्थावरजङ्गमे ।
प्रलीना देवगन्धर्वदैत्यविद्याधरोरगाः ॥ २६ ॥

तमोभूतमिदं सर्वं न प्राज्ञायत किंचन ।
तस्मिञ्जागर्ति भूतात्मा परमात्मा जगद्गुरुः ॥ २७ ॥
श्रीमांस्त्रिमूर्तिरुद्देशो जगत्कर्ता महेश्वरः ।
वासुदेवेति विख्यातो योगात्मा हरिरीश्वरः ॥ २८ ॥
सोऽसृजद्योगनिद्रान्ते नाभ्यम्भोरुहमध्यगम् ।
पद्मकेसरसंकाशं ब्रह्माणं भूतमव्ययम् ॥ २९ ॥
तादृग्भूतस्ततो ब्रह्मा सर्वलोकमहेश्वरः ।
पञ्चभूतसमायुक्तं सृजते च शनैः शनैः ॥ ३० ॥
मात्रायोनीनि भूतानि स्थूलसूक्ष्माणि यानि च ।
चतुर्विधानि सर्वाणि स्थावराणि चराणि च ॥ ३१ ॥
ततः प्रजापतिर्ब्रह्मा चक्रे सर्वं चराचरम् ।
संचिन्त्य मनसाऽऽत्मानं ससर्ज विविधाः प्रजाः ॥ ३२ ॥
मरीच्यादीन्मुनीन्सर्वान्देवासुरपितॄनपि ।
यक्षविद्याधरांश्चान्यान्गङ्गाद्याः सरितस्तथा ॥ ३३ ॥
नरवानरसिंहांश्च विविधांश्च विहंगमान् ।
जरायूतण्डजान्देवि स्वेदजोद्भिदजांस्तथा ॥ ३४ ॥
ब्रह्मक्षत्रं तथा वैश्यं शूद्रं चैव चतुष्टयम् ।
अन्त्यजातांश्च म्लेच्छांश्च ससर्ज विविधान्पृथक् ॥ ३५ ॥
यत्किंचिज्जीवसंज्ञं तु तृणगुल्मपिपीलिकम् ।
ब्रह्मा भूत्वा जगत्सर्वं निर्ममे स चराचरम् ॥ ३६ ॥
दक्षिणाङ्गे तथाऽऽत्मानं संचिन्त्य पुरुषं स्वयम् ।
वामे चैव तु नारीं स द्विधा भूतमकल्पयत् ॥ ३७ ॥

ततः प्रभृति लोकेऽस्मिन्प्रजा मैथुनसंभवाः।
अधमोत्तममध्यास्तु मम क्षेत्राणि यानि च ॥ ३८ ॥
एवं संचिन्त्य देवोऽसौ पुरा सलिलयोनिजः।
जगाम ध्यानमास्थाय वासुदेवात्मिकां तनुम् ॥ ३९ ॥
ध्यानमात्रेण देवेन स्वयमेव जनार्दनः।
तस्मिन्क्षणे समुत्पन्नः सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥ ४० ॥
सहस्रशीर्षा पुरुषः पुण्डरीकनिभेक्षणः।
सलिलध्वान्तमेघाभः श्रीमाञ्श्रीवत्सलक्षणः ॥ ४१ ॥
अपश्यत्सहसा तं तु ब्रह्मा लोकपितामहः।
आसनैरर्घ्यपाद्यैश्च अक्षतैरभिनन्द्य च ॥ ४२ ॥
तुष्टाव परमैः स्तोत्रैर्विरिञ्चिः सुसमाहितः।
ततोऽहमुक्तवान्देवं ब्रह्माणं कमलोद्भवम् ॥
कारणं वद मां तात मम ध्यानस्य सांप्रतम् ॥ ४३ ॥

ब्रह्मोवाच।

जगद्धिताय देवेश मर्त्यलोकेऽथ दुर्लभम्।
स्वर्गद्वारस्य मार्गाणि यज्ञदानव्रतानि च ॥ ४४ ॥
योगः सत्यं तपः श्रद्धा तीर्थानि विविधानि च।
विहाय सर्वमेतेषां सुगं तत्साधनं वद ॥ ४५ ॥
स्थानं जगत्पते महासुत्कृष्टं च यदुच्यते।
सर्वेषामुत्तमं स्थानं ब्रूहि मे पुरुषोत्तम ॥ ४६ ॥
विधातुर्वचनं श्रुत्वा ततोऽहं प्रोक्तवान्प्रिये।
शृणु ब्रह्मन्प्रवक्ष्यामि निर्मलं भुवि दुर्लभम् ॥ ४७ ॥

उत्तमं सर्वक्षेत्राणां धन्यं संसारतारणम्।
गोब्राह्मणहितं पुण्यं चातुर्वर्ण्यसुखोदयम्॥ ४८॥
भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणां क्षेत्रं परमदुर्लभम्।
महापुण्यं तु सर्वेषां सिद्धिदं वै पितामह॥ ४९॥
तस्मादासीत्समुत्पन्नं तीर्थराजं सनातनम्।
विख्यातं परमं क्षेत्रं चतुर्युगनिषेवितम्॥ ५०॥
सर्वेषामेव देवानामृषीणां ब्रह्मचारिणाम्।
दैत्यदानवसिद्धानां गन्धर्वोरगरक्षसाम्॥ ५१॥
नानाविद्याधराणां च स्थावरस्य चरस्य च।
उत्तमः पुरुषो यस्मात्तस्मात्स पुरुषोत्तमः॥ ५२॥
दक्षिणस्योदधेस्तीरे न्यग्रोधो यत्र तिष्ठति।
दशयोजनविस्तीर्णं क्षेत्रं परमदुर्लभम्॥ ५३॥
यस्तु कल्पे समुत्पन्ने महदु(त्यु)ल्कानिवर्हणे।
विनाशं नैवमभ्येति स्वयं तत्रैवमास्थितः॥ ५४॥
दृष्टमात्रे वटे तस्मिंश्छायामाक्रम्य वासरम्।
ब्रह्महत्यात्प्रमुच्येत पापेष्वन्येषु का कथा॥ ५५॥
प्रदक्षिणा कृता यैस्तु नमस्कारश्च जन्तुभिः।
सर्वे विधूतपाप्मानस्ते गताः केशवालयम्॥ ५६॥
न्यग्रोधस्योत्तरे किंचिद्दक्षिणे केशवस्य तु।
प्रासादस्तत्र तिष्ठेत्तु पदं धर्ममयं हि तत्॥ ५७॥
प्रतिमां तत्र वै दृष्ट्वा स्वयं देवेन निर्मिताम्।
अनायासेन वै यान्ति भुवनं मे ततो नराः॥ ५८॥

गच्छमानांस्तु तान्प्रेक्ष्य एकदा धर्मराट्प्रिये ।
मदन्तिकमनुप्राप्य प्रणम्य शिरसाऽब्रवीत् ॥ ५९ ॥

यम उवाच ।

नमस्ते भगवन्देव लोकनाथ जगत्पते ।
क्षीरोदवासिनं देवं शेषभोगानुशायिनम् ॥ ६० ॥
वरं वरेण्यं वरदं कर्तारमकृतं प्रभुम् ।
विश्वेश्वरमजं विष्णुं सर्वज्ञमपराजितम् ॥ ६१ ॥
नीलोत्पलदलश्यामं पुण्डरीकनिभेक्षणम् ।
सर्वज्ञं निर्गुणं शान्तं जगद्धातारमव्ययम् ॥ ६२ ॥
सर्वलोकविधातारं सर्वलोकसुखावहम् ।
पुराणं पुरुषं वेद्यं व्यक्ताव्यक्तं सनातनम् ॥ ६३ ॥
परावराणां स्रष्टारं लोकनाथं जगद्गुरुम् ।
श्रीवत्सोरस्कसंयुक्तं वनमालाविभूषितम् ॥ ६४ ॥
पीतवस्त्रं चतुर्बाहुं शङ्खचक्रगदाधरम् ।
हारकेयूरसंयुक्तं मुकुटाङ्गदधारिणम् ॥ ६५ ॥
सर्वलक्षणसंपूर्णं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
कूटस्थमचलं सूक्ष्मं ज्योतिरूपं सनातनम् ॥ ६६ ॥
भावाभावविनिर्मुक्तं व्यापिनं प्रकृतेः परम् ।
नमस्यामि जगन्नाथमीश्वरं सुखदं प्रभुम् ॥ ६७ ॥
इत्येवं धर्मराजस्तु पुरा न्यग्रोधसंनिधौ ।
स्तुत्वा नानाविधैः स्तोत्रैः प्रणाममकरोत्तदा ॥ ६८ ॥

तं दृष्ट्वा तु महाभागे प्रणतं प्राञ्जलिस्थितम्।
स्तोत्रस्य कारणं देवि पृष्टवानहमन्तकम् ॥ ६६ ॥
वैवस्वत महाबाहो सर्वदेवोत्तमो ह्यसि।
किमर्थं स्तुतवान्मां त्वं तत्सर्वं तत्त्वतो ब्रवीहि मे ॥ ७० ॥

धर्मराज उवाच।

अस्मिन्नायतने पुण्ये विख्याते पुरुषोत्तमे।
इन्द्रनीलमयी श्रेष्ठा प्रतिमा सार्वकामिकी ॥ ७१ ॥
तां दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्ष भावेनैकेन श्रद्धया।
श्वेताख्यं भवनं यान्ति निष्कामाश्चैव मानवाः ॥ ७२ ॥
अतः कर्तुं न शक्नोमि व्यापारमरिसूदन।
प्रसीद सुमहादेव संहर प्रतिमां विभो ॥ ७३ ॥
श्रुत्वा वैवस्वतस्यैतद्वाक्यमेतदुवाच ह।
यम तां गोपयिष्यामि सिकताभिः समन्ततः ॥ ७४ ॥
ततः सा प्रतिमा देवि वल्लिभिर्गोपिता मया।
यथा तत्र न पश्यन्ति मनुजाः स्वर्गकाङ्क्षिणः ॥ ७५ ॥
प्रच्छाद्य वल्लिकैर्देवि जातरूपपरिच्छदे।
यमं प्रस्थापयामास स्वां पुरीं दक्षिणां दिशम् ॥ ७६ ॥

ब्रह्मोवाच।

लुप्तायां प्रतिमायां तु इन्द्रनीलस्य भो द्विजाः।
तस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये विख्याते पुरुषोत्तमे ॥ ७७ ॥
यो भूतस्तत्र वृत्तान्तो देवदेवो जनार्दनः।
तं सर्वं कथयामास स तस्यै भगवान्पुरा ॥ ७८ ॥

इन्द्रद्युम्नस्य गमन क्षेत्रसदर्शन तथा।
क्षेत्रस्य वर्णन चैव प्रासादकरण तथा ॥ ७६ ॥
हयमेधस्य यजन स्वप्नदर्शनमेव च।
लवणस्योदधेस्तीरे काष्ठस्य दर्शन तथा ॥ ८० ॥
दर्शन वासुदेवस्य शिल्पिराजस्य च द्विजा ।
निर्माण प्रतिमायास्तु यथावर्णं विशेषत ॥ ८१ ॥
स्थापन चैव सर्वेषा प्रासादे भुवनोत्तमे।
यात्राकाले च विप्रेन्द्रा कल्पसकीर्तन तथा ॥ ८२ ॥
मार्कण्डेयस्य चरित स्थापन शकरस्य च।
पञ्चतीर्थस्य माहात्म्य दर्शन शूलपाणिन ॥ ८३ ॥
वटस्य दर्शन चैव स्तुति तस्य च भो द्विजा ।
दर्शन रामदेवस्य कृष्णस्य च विशेषत ॥ ८४ ॥
सुभद्रायाश्च तत्रैव माहात्म्य चैव सर्वश ।
दर्शन नरसिंहस्य स्तुतिसकीर्तन तथा ॥ ८५ ॥
अनन्तवासुदेवस्य दर्शन गुणकीर्तनम्।
श्वेतमाधवमाहात्म्य स्वर्गद्वारस्य दर्शनम् ॥ ८६ ॥
उदधेर्दर्शन चैव स्नान तर्पणमेव च।
समुद्रस्नानमाहात्म्यमिन्द्रद्युम्नस्य च द्विजा ॥ ८७ ॥
पञ्चतीर्थफल चैव महाज्येष्ठ तथैव च।
स्थान कृष्णस्य हलिन पर्वयात्राफल तथा ॥ ८८ ॥
वर्णन विष्णुलोकस्य क्षेत्रस्य च पुन पुन ।
पूर्वं कथितवान्सर्वं तस्यै स पुरुषोत्तम ॥ ८९ ॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसंवादे पूर्ववृत्तानुवर्णनं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥
आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः—३२८१

अथ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ।

पुरुषोत्तमक्षेत्रवर्णनम्

मुनय ऊचुः ।

श्रोतुमिच्छामहे देव कथाशेषं महीपतेः ।
तस्मिन्क्षेत्रवरे गत्वा किं चकार नराधिपः ॥ १ ॥

ब्रह्मोवाच ।

शृणुध्वं मुनिशार्दूलाः प्रवक्ष्यामि समासतः ।
क्षेत्रसदर्शनं चैव कृत्यं तस्य च भूपतेः ॥ २ ॥
गत्वा तत्र महीपाल क्षेत्रे त्रैलोक्यविश्रुते ।
ददर्श रमणीयानि स्थानानि सरितस्तथा ॥ ३ ॥
नदी तत्र महापुण्या विन्ध्यपादविनिर्गता ।
स्वित्रोपलेति विख्याता सर्वपापहरा शिवा ॥ ४ ॥
गङ्गातुल्या महास्रोता दक्षिणार्णवगामिनी ।
महानदीति नाम्ना सा पुण्यतोया सरिद्वरा ॥ ५ ॥
दक्षिणस्योदधेर्गर्भं गताऽऽवर्तातिशोभिता ।
उभयोस्तटयोर्यस्या ग्रामाश्च नगराणि च ॥ ६ ॥

दृश्यन्ते मुनिशार्दूलाः सुसस्थाः सुमनोहराः ।
हृष्टपुष्टजनाकीर्णा वस्त्रालंकारभूषिताः ॥ ७ ॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रास्तत्र पृथक्पृथक् ।
स्वधर्मनिरताः शान्ता दृश्यन्ते शुभलक्षणाः ॥ ८ ॥
ताम्बूलपूर्णवदना मालादामविभूषिताः ।
वेदपूर्णमुखा विप्राः सषडङ्गपदक्रमाः ॥ ९ ॥
अग्निहोत्ररताः केचित्केचिद्दीपासनक्रियाः ।
सर्वशास्त्रार्थकुशला यज्वानो भूरिदक्षिणाः ॥ १० ॥
चत्वरे राजमार्गेषु पनेषूपवनेषु च ।
सभामण्डलहर्म्येषु देवतायतनेषु च ॥ ११ ॥
इतिहासपुराणानि वेदाः साङ्गा सुलक्षणाः ।
काव्यशास्त्रकथास्तत्र श्रूयन्ते च महाजनैः ॥ १२ ॥
स्त्रियस्तद्देशवासिन्यो रूपयौवनगर्विताः ।
संपूर्णलक्षणोपेता विस्तीर्णश्रोणिमण्डलाः ॥ १३ ॥
सरोरुहमुखाः श्यामाः शरच्चन्द्रनिभाननाः ।
पीनोन्नतस्तनाः सर्वा समृद्ध्या चारुदर्शनाः ॥ १४ ॥
सौवर्णवलयाक्रान्ता दिव्यैर्वस्त्रैरलंकृता ।
कदलीगर्भसंकाशाः पद्मकिञ्जल्कसप्रभाः ॥ १५ ॥
बिम्बाधरपुटाः कान्ताः कर्णान्तायतलोचनाः ।
सुमुखाश्चारुकेशाश्च हावभावावनामिताः ॥ १६ ॥
काश्चित्पद्मपलाशाक्ष्यः काश्चिदिन्दीवरेक्षणाः ।
विद्युद्विस्पष्टदशनास्तन्वङ्ग्यश्च तथाऽपराः ॥ १७ ॥

कुटिलालकसंयुक्ताः सीमन्तेन विराजिताः ।
ग्रीवाभरणसंयुक्ता माल्यदामविभूषिताः ॥ १८ ॥
कुण्डलै रत्नसंयुक्तैः कर्णपूरैर्मनोहरैः ।
देवयोषित्प्रतीकाशा दृश्यन्ते शुभलक्षणाः ॥ १९ ॥
दिव्यगीतवरैर्धन्यैः क्रीडमाना वराङ्गनाः ।
वीणावेणुमृदङ्गैश्च पणवैश्च गोमुखैः ॥ २० ॥
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषैर्नानावाद्यैर्मनोहरैः ।
क्रीडन्त्यस्ताः सदा हृष्टा विलासिन्यः परस्परम् ॥ २१ ॥
पञ्चमादि तथाऽनेकगीतवाद्यविशारदाः ।
दिवा रात्रौ समायुक्ताः कामोन्मत्ता वराङ्गनाः ॥ २२ ॥
भिक्षुवैखानसैः सिद्धैः स्नातकैर्ब्रह्मचारिभिः ।
मन्त्रसिद्धैस्तप सिद्धैर्यक्षसिद्धैर्निषेवितम् ॥ २३ ॥
इत्येव ददृशे राजा क्षेत्रं परमशोभनम् ।
अत्रैवाऽऽराधयिष्यामि भगवन्तं सनातनम् ॥ २४ ॥
जगद्गुरुं परं देवं परं पारं परं पदम् ।
सर्वेश्वरेश्वरं विष्णुमनन्तमपराजितम् ॥ २५ ॥
इदं तन्मानस तीर्थं ज्ञात मे पुरुषोत्तमम् ।
कल्पवृक्षो महाकायो न्यग्रोधो यत्र तिष्ठति ॥ २६ ॥
प्रतिमा चेन्द्रनीलाख्या स्वयं देवेन गोपिता ।
न चात्र दृश्यते चान्या प्रतिमा वैष्णवी शुभा ॥ २७ ॥
तथा यत्नं करिष्यामि यथा देवो जगत्पतिः ।
प्रत्यक्षं मम चाभ्येति विष्णुः सत्यपराक्रमः ॥ २८ ॥

यज्ञैर्दानैस्तपोभिश्च होमैर्ध्यानैस्तथाऽर्चनैः ।
उपवासैश्च विविधैश्चरेयं व्रतमुत्तमम् ॥ २९ ॥
अनन्यमनसा चैव तन्मना नान्यमानसः ।
विष्ण्वायतनविन्यासे प्रारम्भं च करोम्यहम् ॥ ३० ॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसंवादे क्षेत्रवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥
आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः—३३११

अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ।

इन्द्रद्युम्नस्यप्रासादकरणार्थराज्ञामाह्वानम्

ब्रह्मोवाच ।

एवं स पृथिवीपालश्चिन्तयित्वा द्विजोत्तमाः ।
प्रासादार्थं ततस्तत्र प्रारम्भमकरोत्तदा ॥ १ ॥
आनाय्य गणकान्सर्वानाचार्याञ्छास्त्रपारगान् ।
भूमिं संशोध्य यत्नेन राजा तु परया मुदा ॥ २ ॥
ब्राह्मणैर्ज्ञानसंपन्नैर्वेदशास्त्रार्थपारगैः ।
अमात्यैर्मन्त्रिभिश्चैव वास्तुविद्याविशारदैः ॥ ३ ॥
तैः सार्धं स समालोच्य सुमुहूर्ते शुभे दिने ।
सुचन्द्रतारसंयोगे ग्रहानुकूल्यसंयुते ॥ ४ ॥

जयमङ्गलशब्दैश्च नानावाद्यैर्मनोहरैः ।
वेदाध्ययननिर्घोषैर्गीतैः सुमधुरस्वरैः ॥ ५ ॥
पुष्पलाजाक्षतैर्गन्धैः पूर्णकुम्भैः सदीपकैः ।
ददावर्घ्यं ततो राजा श्रद्धया सुसमाहितः ॥ ६ ॥
दत्त्वैवमर्घ्यं विधिवदामन्त्र्य स महीपतिः ।
कलिङ्गाधिपतिं शूरमुत्कलाधिपतिं तथा ॥
कोशलाधिपतिं चैव तानुवाच तदा नृपः ॥ ७ ॥

राजोवाच ।

गच्छध्वं सहिताः सर्वे शिलार्थं सुसमाहिताः ।
गृहीत्वा शिल्पिमुख्यांश्च शिलाकर्मविशारदान् ॥ ८ ॥
विन्ध्याचलं सुविस्तीर्णं बहुकन्दरशोभितम् ।
निरूप्य सर्वसानूनि च्छेदयित्वा शिलाः शुभाः ॥
संवाह्यन्तां च शकटैर्नौकाभिर्वा विलम्बथ ॥ ९ ॥

ब्रह्मोवाच ।

एवं गन्तुं समादिश्य तान्नृपान्स महीपतिः ।
पुनरेवाब्रवीद्वाक्यं सामात्यान्स पुरोहितान् ॥ १० ॥

राजोवाच ।

गच्छन्तु दूताः सर्वत्र मामाऽऽज्ञां प्रवदन्तु वै ।
यत्र तिष्ठन्ति राजानः पृथिव्यां तान्सुशीघ्रगाः ॥ ११ ॥
हस्त्यश्वरथपादातैः सामात्यैः सपुरोहितैः ।
गच्छत सहिताः सर्वइन्द्रद्युम्नस्य शासनात् ॥ १२ ॥

ब्रह्मोवाच ।

एवं दूताः समानीता राज्ञा तेन महात्मना ।
गत्वा तदा नृपानूचुर्वचनं तस्य भूपतेः ॥ १३ ॥
श्रुत्वा तु ते तथा सर्वे दूतानां वचनं नृपाः ।
आजग्मुस्त्वरिताः सर्वे स्वसैन्यैः परिवारिताः ॥ १४ ॥
ये नृपाः पूर्वदिग्भागे ये च दक्षिणतः स्थिताः ।
पश्चिमायां स्थितास्ये ये च उत्तरापथमास्थिताः ॥ १५ ॥
प्रत्यन्तवासिनो येऽपि ये च सन्निधिवासिनः ।
पार्वतीयाश्च ये केचित्तथा द्वीपनिवासिनः ॥ १६ ॥
रथैर्नागैः पदातैश्च वाजिभिर्घनविस्तरैः ।
सम्प्राप्ता बहुशो विप्राः श्रुत्वेन्द्रद्युम्नशासनम् ॥ १७ ॥
तानागतान्नृपान्दृष्ट्वा सामात्यान्सपुरोहितान् ।
प्रोवाच राजा हृष्टात्मा कार्यमुद्दिश्य सादरम् ॥ १८ ॥

राजोवाच ।

शृणुध्वं नृपशार्दूला यथा किंचिद्ब्रवीम्यहम् ।
अस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये भुक्तिमुक्तिप्रदे शिवे ॥ १९ ॥
हयमेधं महायज्ञं प्रासादं चैव वैष्णवम् ।
कथं शक्तोम्यहं कर्तुमिति चिन्ताकुलं मनः ॥ २० ॥
भवद्भिः सुसहायैस्तु सर्वमेतत्करोम्यहम् ।
यदि यूयं सहाया मे भवन्तु नृपसत्तमाः ॥ २१ ॥

ब्रह्मोवाच ।

इत्येवं वदमानस्य राजराजस्य धीमतः ।
सर्वे प्रमुदिता हृष्टा भूपास्ते तस्य शासनात् ॥ २२ ॥

वस्त्रपुष्पैर्नरत्नैश्च सुवर्णमणिमौक्तिकैः ।
कम्बलाजिनरत्नैश्च राङ्कवास्तरणैः शुभैः ॥ २३ ॥
वज्रवैदूर्यमाणिक्यैः पद्मरागेन्द्रनीलकैः ।
गजैरश्वैर्धनैश्चान्यै रथैश्चैव करेणुभिः ॥ २४ ॥
असंख्येयैर्बहुविधैर्द्रव्यैः स्थावचैस्तथा ।
शालिव्रीहियवैश्चैव माषमुद्गतिलैस्तथा ॥ २५ ॥
सिद्धार्थचणकैश्चैव गोधूमैर्मसुरादिभिः ।
श्यामाकैर्मधुकैश्चैव नीवारैः सकुलत्थकैः ॥ २६ ॥
अन्यैश्च विविधैर्धान्यैर्ग्राम्यारण्यैः सहस्रशः ।
बहुधान्यसहस्राणां तण्डुलानां च राशिभिः ॥ २७ ॥
गव्यस्य हविषः कुम्भैः शतशोऽथ सहस्रशः ।
तथाऽन्यैर्विविधैर्द्रव्यैर्भक्ष्यभोज्यानुलेपनैः ॥ २८ ॥
राजानः पूरयामासुर्यत्किंचिद्द्रव्यसंभवैः ।
तान्दृष्ट्वा यज्ञसंभारान्सर्वसंपत्समन्वितान् ॥ २९ ॥
यज्ञकर्मविदो विप्रान्वेदवेदाङ्गपारगान् ।
शास्त्रेषु निपुणान्दक्षान्कुशलान्सर्वकर्मसु ॥ ३० ॥
ऋषींश्चैव महर्षींश्च देवर्षींश्चैव तापसान् ।
ब्रह्मचारिगृहस्थांश्च वानप्रस्थान्यतींस्तथा ॥ ३१ ॥
स्नातकान्ब्राह्मणांश्चान्यानग्निहोत्रे सदा स्थितान् ।
आचार्योपाध्यायवरान्स्वाध्यायतपसाऽन्वितान् ॥ ३२ ॥
सदस्याञ्छास्त्रकुशलांस्तथाऽन्यान्याचकान्बहून् ।
दृष्ट्वा तान्नृपतिः श्रीमानुवाच स्वं पुरोहितम् ॥ ३३ ॥

राजोवाच ।

ततः प्रयान्तु विद्वांसो ब्राह्मणा वेदपारगाः ।
वाजिमेधार्थसिद्ध्यर्थं देशं पश्यन्तु यज्ञियम् ॥ ३४ ॥

ब्रह्मोवाच ।

इत्युक्तः स तथा चक्रे वचनं तस्य भूपतेः ।
हृष्टः स मन्त्रिभिः सार्धं तदा राजपुरोहितः ॥ ३५ ॥
ततो ययौ पुरोधाश्च प्राज्ञ स्थपतिभिः सह ।
ब्राह्मणानग्रतः कृत्वा कुशलान्यज्ञकर्मणि ॥ ३६ ॥
तं देशं धीवरग्रामं सप्रतोलिविटङ्कितम् ।
कारयामास विप्रोऽसौ यज्ञवाटं यथाविधि ॥ ३७ ॥
प्रासादशतसंबाधं मणिप्रवरशोभितम् ।
इन्द्रसद्मनिभं रम्यं हेमरत्नविभूषितम् ॥ ३८ ॥
स्तम्भान्कनकचित्रांश्च तोरणानि बृहन्ति च ।
यज्ञायतनदेशेषु दत्त्वा शुद्धं च काञ्चनम् ॥ ३९ ॥
अन्तःपुराणि राज्ञां च नानादेशनिवासिनाम् ।
कारयामास धर्मात्मा तत्र तत्र यथाविधि ॥ ४० ॥
ब्राह्मणानां च वैश्यानां नानादेशसमीयुषाम् ।
कारयामास विधिवच्छालास्तत्राप्यनेकशः ॥ ४१ ॥
प्रियार्थं तस्य नृपतेराययुर्नृपसत्तमाः ।
रत्नान्यनेकान्यादाय स्त्रियश्चाऽऽययुरुत्सवे ॥ ४२ ॥
तेषां निविशतां स्वेषु शिबिरेषु महात्मनाम् ।
नदतः सागरस्येव दिविस्पृगभवद्ध्वनिः ॥ ४३ ॥

तेषामभ्यागतानां च स राजा मुनिसत्तमाः ।
व्यादिदेशाऽऽयतनानि शय्याश्चाप्युपचारतः ॥ ४४ ॥
भोजनानि विचित्राणि शालीक्षुयवगोरसैः ।
उपेत्य नृपतिश्रेष्ठो व्यादिदेश स्वयं तदा ॥ ४५ ॥
तथा तस्मिन्महायज्ञे बहवो ब्रह्मवादिनः ।
ये च द्विजातिप्रवरास्तत्राऽऽसन्द्विजसत्तमाः ॥ ४६ ॥
समाजग्मुः सशिष्यास्तान्प्रतिजग्राह पार्थिवः ।
सर्वांश्च ताननुययौ यावदावसथानिति ॥ ४७ ॥
स्वयमेव महातेजा दम्भं त्यक्त्वा नृपोत्तमः ।
ततः कृत्वा स्वशिल्पं च शिल्पिनोऽन्ये च ये तदा ॥ ४८ ॥
कृत्स्नं यज्ञविधिं राज्ञे तदा तस्मै न्यवेदयन् ।
ततः श्रुत्वा नृपश्रेष्ठः कृतं सर्वमतन्द्रितः ॥
हृष्टरोमाऽभवद्राजा सह मन्त्रिभिरच्युतः ॥ ४९ ॥

ब्रह्मोवाच ।

तस्मिन्यज्ञे प्रवृत्ते तु वाग्मिनो हेतुवादिभिः ।
हेतुवादान्बहूनाहुः परस्परजिगीषवः ॥ ५० ॥
देवेन्द्रस्येव (?)विहितं राजसिंहेन भो द्विजाः ।
ददृशुस्तोरणान्यत्र शातकुम्भमयानि च ॥ ५१ ॥
शय्यासनविकारांश्च सुबहुधनसंचयान् ।
घटपात्रीकटाहानि कलशान्वर्धमानकान् ॥ ५२ ॥
न कश्चिदसौवर्णमपश्यद्वसुधाधिपः ।
यूपांश्च शास्त्रपठितान्दारवान्हेमभूषितान् ॥ ५३ ॥

उपक्षितान्यथाकालं विधिवद्भूरिवर्चसः ।
स्थलजा जलजा ये च पशवः केचन द्विजाः ॥ ५४ ॥
सर्वानेव समानातानपश्यस्तत्र ते नृपाः ।
गाश्चैव महिषीश्चैव तथा वृद्धस्त्रियोऽपि च ॥ ५५ ॥
औदकानि च सत्त्वानि श्वापदानि वयांसि च ।
जरायुजाण्डजातानि स्वदेनान्युद्भिदानि च ॥ ५६ ॥
पर्वतान्युपधान्यानि भूतानि ददृशुश्च ते ।
एवं प्रमुदितं सर्वं पशुतो धनधान्यतः ॥ ५७ ॥
यज्ञवाटं नृपा दृष्ट्वा विस्मयं परमं गताः ।
ब्राह्मणानां विशां चैव बहुमिष्टान्नमृद्धिमत् ॥ ५८ ॥
पूर्णे शतसहस्रे तु विप्राणां तत्र भुञ्जताम् ।
दुन्दुभिर्मेघनिर्घोषा मुहुर्मुहुरथाकरोत् ॥ ५९ ॥
विननादासकृच्चापि दिवसे दिवसे गते ।
एवं स ववृते यज्ञस्तस्य राज्ञस्तु धीमतः ॥ ६० ॥
अन्नस्य सुबहून्विप्रा उत्सर्गान्निर्गतोपमान् ।
दधिकुल्याश्च ददृशुः पयसश्च ह्रदांस्तथा ॥ ६१ ॥
जम्बूद्वीपो हि सकलो नानाजनपदैर्युतः ।
द्विजाश्च तत्र दृश्यन्ते राज्ञस्तस्य महामखे ॥ ६२ ॥
तत्र यानि सहस्राणि पुरुषाणां ततस्ततः ।
गृहीत्वा भाजनं जग्मुर्बहूनि द्विजसत्तमाः ॥ ६३ ॥
स्राविणश्चापि ते सर्वे सुमृष्टमणिकुण्डलाः ।
पर्यवेषयन्द्विजातांश्छतशोऽथ सहस्रशः ॥ ६४ ॥

विविधान्यनुपानानि पुरुषा येऽनुयायिनः ।
ते वै नृपोपभोग्यानि ब्राह्मणेभ्यो ददुः मुद ॥ ६५ ॥
समागतान्वेदविदो राज्ञश्च पृथिवीश्वरान् ।
पूजां चक्रे सदा तेषां विधिवद्भूरिदक्षिणः ॥ ६६ ॥
दिग्देशादागताग्राम्यां महासङ्ग्रामशालिनः ।
नटनर्तकवादींश्च गीतस्तुतिविशारदान् ॥ ६७ ॥
पत्न्यो मनोरमास्तस्य पीनोन्नतपयोधराः ।
इन्दीवरपलाशाक्ष्यः शरच्चन्द्रनिभाननाः ॥ ६८ ॥
कुलशीलगुणोपेताः सहस्रैकं शताधिकम् ।
एवं तद्भूपपरमपत्नीगणसमन्वितम् ॥ ६९ ॥
रत्नमालाकुलं दिव्यं पताकाध्वजसेवितम् ।
रत्नहारयुतं रम्यं चन्द्रकान्तिसमप्रभम् ॥ ७० ॥
करिणः पर्वताकारान्मदसिक्तान्महाबलान् ।
शतशः कोटिसंघातैर्दन्तिभिर्दन्तभूषणैः ॥ ७१ ॥
वातवेगजवैरश्वैः सिन्धुजातैः सुशोभनैः ।
श्वेताश्वैः श्यामकर्णैश्च कोट्यनेकैर्जवान्वितैः ॥ ७२ ॥
संनद्धबद्धकक्षैश्च नानाप्रहरणोद्यतैः ।
असंख्येयैः पदातैश्च देवपुत्रोपमैस्तथा ॥ ७३ ॥
इत्येवं ददृशे राजा यज्ञसंभारविस्तरम् ।
मुदं लेभे तदा राजा संहृष्टो वाक्यमब्रवीत् ॥ ७४ ॥

राजोवाच ।

आनयध्वं हयश्रेष्ठं सर्वलक्षणलक्षितम् ।
चारयध्वं पृथिव्यां वै राजपुत्राः सुसंयताः ॥ ७५ ॥

ार्थमेचिह्निश्च अत्र होमो विधीयताम् ।
च्छागं च महिषं कृष्णसारमृगं द्विजान् ॥ ७६ ॥
गाहं च गाश्चैव सर्वांश्च पशुपालकान् ।
श्च प्रवर्तन्तां प्रासादं वैष्णवं ततः ॥ ७७ ॥
ाद्य विप्रेभ्यो दीयतां मनसेप्सितम् ।
र रत्नकोट्यश्च ग्रामाश्च नगराणि च ॥ ७८ ॥
समृद्धभूम्यश्च विषयाश्चैवमर्थिनाम् ।
ने द्रव्यजातानि मनोज्ञानि बहूनि च ॥ ७९ ॥
याचमानानां नास्ति ह्येतन्न भाषयेत् ।
ावर्ततां यज्ञो यावद्देवः पुरा त्विह ॥
मम चाभ्येति यज्ञस्यास्य समीपतः ॥ ८० ॥

ब्रह्मोवाच ।

त्वा तदा विप्रा राजसिंहो महाभुजः ।
ुवर्णसंघातं कोटीनां चैव भूषणम् ॥ ८१ ॥
ातसाहस्रं वाजिनो नियुतानि च ।
चैव वृषभं स्वर्णशृङ्गीश्च धेनुकाः ॥ ८२ ॥
ः सुरभीश्चैव कांस्यदोहाः पयस्विनीः ।
त्स तु विप्रेभ्यो वेदविद्भ्यो मुदा युतः ॥ ८३ ।
से च महार्हाणि राङ्कवास्तरणानि च ।
नि च शुभ्राणि प्रवालमणिमुत्तमम् ॥ ८४ ॥
स महायज्ञे रत्नानि विविधानि च ॥ ८५ ॥

विविधान्यनुपानानि पुरुषा येऽनुयायिनः ।
ते वै नृपोपभोज्यानि ब्राह्मणेभ्यो ददुः सह ॥ ६५ ॥
समागतान्वेदविदो राज्ञश्च पृथिवीश्वरान् ।
पूजां चक्रे तदा तेषां विधिवद्भूरिदक्षिणः ॥ ६६ ॥
दिग्देशादागताग्राज्ञो महासङ्ग्रामशालिनः ।
नटनर्तककादींश्च गीतस्तुतिविशारदान् ॥ ६७ ॥
पत्न्यो मनोरमास्तस्य पीनोन्नतपयोधराः ।
इन्दीवरपलाशाक्ष्यः शरच्चन्द्रनिभाननाः ॥ ६८ ॥
कुलशीलगुणोपेताः सहस्रैकं शताधिकम् ।
एवं तद्भूपपरमपत्नीगणसमन्वितम् ॥ ६९ ॥
रत्नमालाकुलं दिव्यं पताकाध्वजसेवितम् ।
रत्नहारयुतं रम्यं चन्द्रकान्तिसमप्रभम् ॥ ७० ॥
करिणः पर्वताकारान्मदसिक्तान्महाबलान् ।
शतशः कोटिसंघातैर्दन्तिभिर्दन्तभूषणैः ॥ ७१ ॥
वातवेगजवैरश्वैः सिन्धुजातैः सुशोभनैः ।
श्वेताश्वैः श्यामकर्णैश्च कोट्यनेकैर्जयान्वितैः ॥ ७२ ॥
संनद्धबद्धकक्षैश्च नानाप्रहरणोद्यतैः ।
असंख्येयैः पदातैश्च देवपुत्रोपमैस्तथा ॥ ७३ ॥
इत्येवं ददृशे राजा यज्ञसंभारविस्तरम् ।
मुदं लेभे तदा राजा संहृष्टो वाक्यमब्रवीत् ॥ ७४ ॥

राजोवाच ।

आनयध्वं हयश्रेष्ठं सर्वलक्षणलक्षितम् ।
चारयध्वं पृथिव्यां वै राजपुत्राः सुसंयताः ॥ ७५ ॥

विद्वद्भिर्धर्मविद्भिश्च अत्र होमो विधीयताम् ।
कृष्णच्छाग च महिष कृष्णसारमृग द्विजान् ॥ ७६ ॥
अनड्वाह च गाश्चैव सर्वा श्च पशुपालकान् ।
इष्टयश्च प्रवर्तन्ता प्रासाद वैष्णव तत ॥ ७७ ॥
सर्वमेतच्च विप्रेभ्यो दीयता मनसेप्सितम् ।
स्त्रियश्च रत्नकोटयश्च ग्रामाश्च नगराणि च ॥ ७८ ॥
सस्यफलसमृद्धभूम्यश्च विषयाश्चैवमर्थिनाम् ।
अन्यानि द्रव्यजातानि मनोज्ञानि बहूनि च ॥ ७९ ॥
सर्वेषा याचमानाना नास्ति ह्येतत्र भाषयेत् ।
तावत्प्रवर्तता यज्ञो यावद्देव पुरा त्विह ॥
प्रत्यक्ष मम चाभ्येति यज्ञस्यास्य समीपत ॥ ८० ॥

ब्रह्मोवाच ।

एवमुक्त्वा तदा विप्रा राजासिंहो महाभुज ।
ददौ सुवर्णसघात कोटीना चैव भूषणम् ॥ ८१ ॥
करेणुशतसाहस्र वाजिनो नियुतानि च ।
अर्बुद चैव वृषभ स्वर्णशृङ्गीश्च धेनुका ॥ ८२ ॥
सुरूपा सुरभाश्चैव कास्यदोहा पयस्विनी ।
प्रायच्छत्स तु विप्रेभ्यो वेदविद्भ्यो मुदा युत ॥ ८३ ॥
वासासि च महार्हाणि राङ्कवास्तरणानि च ।
सुशुक्लानि च शुभ्राणि प्रवालमणिमुत्तमम् ॥ ८४ ॥
प्रददात्स महायज्ञे रत्नानि विविधानि च ॥ ८५ ॥

वज्रवैदूर्यमाणिक्यमुक्तिकाद्यानि यानि च ।
अलंकारवतीः शुभ्राः कन्या राजीवलोचनाः ॥ ८६ ॥
शतानि पञ्च विप्रेभ्यो राजा हृष्टः प्रदत्तवान् ।
स्त्रियः पीनपयोभाराः कञ्चुकैः स्वस्तनावृताः ॥ ८७ ॥
मध्यहीनाश्च सुश्रोण्यः पद्मपत्रायतेक्षणाः ।
हावभावान्वितग्रीवा बह्व्यो वलयभूषिताः ॥ ८८ ॥
पादनूपुरसंयुक्ताः पट्टदुकूलवाससः ।
एकैकशोऽददात्तस्मिन्कामयाश्च कामिनीर्बहूः ॥ ८९ ॥
अर्थिभ्यो ब्राह्मणादिभ्यो हयमेधे द्विजोत्तमाः ।
भक्ष्यं भोज्यं च संपूर्णं नानासंभारसंयुतम् ॥ ९० ॥
खण्डकाद्यान्यनेकानि स्विन्नपक्वांश्च पिष्टकान् ।
अन्नान्यन्यानि मेध्यांश्च घृतपूरांश्च खाण्डवान् ॥ ९१ ॥
मधुरांस्तर्जितान्पूपानन्नं मृष्टं सुपाकिकम् ।
प्रीत्यर्थं सर्वसत्त्वानां दीयतेऽन्नं पुनः पुनः ॥ ९२ ॥
दत्तस्य दीयमानस्य धनस्यान्तो न विद्यते ।
एवं दृष्ट्वा महायज्ञं देवदैत्याः सचा (चा)रणाः ॥ ९३ ॥
गन्धर्वाप्सरसः सिद्धा ऋषयश्च प्रजेश्वराः ।
विस्मयं परमं याता दृष्ट्वा क्रतुवरं शुभम् ॥ ९४ ॥
पुरोधा मन्त्रिणो राजा हृष्टास्तत्रैव सर्वशः ।
न तत्र मलिनः कश्चिन्न दीनो न क्षुधाऽन्वितः ॥ ९५ ॥
न घोपसर्गो न ग्लानिर्नाऽऽधयो व्याधयस्तथा ।
नाकालमरणं तत्र न दंशो न ग्रहा विषम् ॥ ९६ ॥

हृष्टपुष्टजना सर्वे तस्मिन्राज्ञो महोत्सवे ।
ये च तत्र तप सिद्धा मुनयश्चिरजीविन ॥ ६७ ॥
न जात तादृशं यज्ञ धनधान्यसमन्वितम् ।
एव स राजा विधिवद्वाजिमेध द्विजोत्तमा ॥
यज्ञं समापयामास प्रासाद वैष्णव तथा ॥ ६८ ॥

इति श्रीमहापुराण आदिब्राह्मे स्वयम्भृषिसवादे प्रासादकरणं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्याय ॥ ४७ ॥
आदित श्लोकाना समष्ट्यङ्का —३४०६

अथाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ।

इन्द्रद्युम्नस्यप्रतिमानिर्माणम्

मुनय ऊचु ।

ब्रूहि नो देवदेवेश यत्पृच्छाम पुरातनम् ।
यथा ता प्रतिमा पूर्वमिन्द्रद्युम्नेन निर्मिता ॥ १ ॥
येन चैव प्रकारेण तुष्टस्तस्मै स माधव ।
तत्सर्वं वद चास्माक पर कोतूहल हि न ॥ २ ॥

ब्रह्मोवाच ।

शृणुध्व मुनिशार्दूला पुराण वेदसमितम् ।
कथयामि पुरा वृत्त प्रतिमाना च सभवम् ॥ ३ ॥

प्रवृत्ते च महायज्ञे प्रासादे चैव निर्मिते।
चिन्ता तस्य बभूवाथ प्रतिमार्थमहर्निशम् ॥ ४ ॥
न वेद्मि केन देवेशं सर्वेशं लोकपावनम्।
सर्गस्थित्यन्तकर्तारं पश्यामि पुरुषोत्तमम् ॥ ५ ॥
चिन्ताविष्टस्त्वभूद्राजा शेते रात्रौ दिवाऽपि न।
न भुङ्क्ते विविधान्भोगान्न च स्नानं प्रसाधनम् ॥ ६ ॥
नैव वाद्येन गन्धेन गायनैर्वर्णकैरपि।
न गजैर्मद्युक्तैश्च न चानेकैर्हयान्वितैः ॥ ७ ॥
नैन्द्रनीलैर्महानीलैः पद्मरागमयैर्न च।
सुवर्णरजताद्यैश्च वज्रस्फटिकसंयुतैः ॥ ८ ॥
बहुरागार्थकामैर्वा न वन्यैरन्तरिक्षगैः।
बभूव तस्य नृपतेर्मनसस्तुष्टिवर्धनम् ॥ ९ ॥
शैलमृद्दारुजातेषु प्रशस्तं किं महीतले।
विष्णुप्रतिमायोग्यं च सर्वलक्षणलक्षितम् ॥ १० ॥
एतैरेव त्रयाणां तु दयितं स्यात्सुरार्चितम्।
स्थापिते प्रीतिमभ्येति इति चिन्तापरोऽभवत् ॥ ११ ॥
पञ्चरात्रविधानेन संपूज्य पुरुषोत्तमम्।
चिन्ताविष्टो महीपालः संस्तोतुमुपचक्रमे ॥ १२ ॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे इन्द्रद्युम्नस्य प्रतिमानिर्माणविधानं नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः—३४२१

——

अथैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

इन्द्रद्युम्नकृतभगवत्स्तुतिः

वासुदेव नमस्तेऽस्तु नमस्ते मोक्षकारण ।
त्राहि मां सर्वलोकेश जन्मसंसारसागरात् ॥ १ ॥
निर्मलाम्बरसंकाश नमस्ते पुरुषोत्तम ।
संकर्षण नमस्तेऽस्तु त्राहि मां धरणीधर ॥ २ ॥
नमस्ते हेमगर्भाभ नमस्ते मकरध्वज ।
रतिकान्त नमस्तेऽस्तु त्राहि मां संवरान्तक ॥ ३ ॥
नमस्तेऽञ्जनसंकाश नमस्ते भक्तवत्सल ।
अनिरुद्ध नमस्तेऽस्तु त्राहि मां वरदो भव ॥ ४ ॥
नमस्ते विबुधावास नमस्ते विबुधप्रिय ।
नारायण नमस्तेऽस्तु त्राहि मां शरणागतम् ॥ ५ ॥
नमस्ते बलिनां श्रेष्ठ नमस्ते लाङ्गलायुध ।
चतुर्मुख जगद्धाम त्राहि मां प्रपितामह ॥ ६ ॥
नमस्ते नीलमेघाभ नमस्ते त्रिदशार्चित ।
त्राहि विष्णो जगन्नाथ मग्नं मां भवसागरे ॥ ७ ॥
प्रलयानलसंकाश नमस्ते दितिजान्तक ।
नरसिंह महावीर्य त्राहि मां दीप्तलोचन ॥ ८ ॥
यथा रसातलादुर्वी त्वया दंष्ट्रोद्धृता पुरा ।
तथा महावराहस्त्वं त्राहि मां दुःखसागरात् ॥ ९ ॥

तवैता मूर्तयः कृष्ण वरदाः संस्तुता मया।
तवेमे बलदेवाद्याः पृथग्रूपेण संस्थिताः ॥ १० ॥
अङ्गानि तव देवेश गरुत्माद्यास्तथा प्रभो।
दिक्पालाः सायुधाश्चैव केशवाद्यास्तथाऽच्युत ॥ ११ ॥
ये चान्ये तव देवेश भेदाः प्रोक्ता मनीषिभिः।
तेऽपि सर्वे जगन्नाथ प्रसन्नायतलोचन ॥ १२ ॥
मयाऽर्चिताः स्तुताः सर्वे तथा यूयं नमस्कृताः।
प्रयच्छत वरं मह्यं धर्मकामार्थमोक्षदम् ॥ १३ ॥
भेदास्ते कीर्तिता ये तु हरे संकर्षणादयः।
तव पूजार्थसंभूतास्ततस्त्वयि समाश्रिताः ॥ १४ ॥
न भेदस्तव देवेश विद्यते परमार्थतः।
विविधं तव यद्रूपमुक्तं तदुपचारतः ॥ १५ ॥
अद्वैतं त्वां कथं द्वैतं वक्तुं शक्नोति मानवः।
एकस्त्वं हि हरे व्यापी चित्स्वभावो निरञ्जनः ॥ १६ ॥
परमं तव यद्रूपं भावाभावविवर्जितम्।
निर्लेपं निर्गुणं श्रेष्ठं कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥ १७ ॥
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं सत्तामात्रव्यवस्थितम्।
तद्देवाश्च न जानन्ति कथं जानाम्यहं प्रभो ॥ १८ ॥
अपरं तव यद्रूपं पीतवस्त्रं चतुर्भुजम्।
शङ्खचक्रगदापाणिमुकुटाङ्गदधारिणम् ॥ १९ ॥
श्रीवत्सोरस्कसंयुक्तं वनमालाविभूषितम्।
तदर्चयन्ति विबुधा ये चान्ये तव संश्रयाः ॥ २० ॥

देवदेव सुरश्रेष्ठ भक्तानामभयप्रद ।
त्राहि मां पद्मपत्राक्ष मग्नं विषयसागरे ॥ २१ ॥
नान्यं पश्यामि लोकेश यस्याहं शरणं व्रजे ।
त्वामृते कमलाकान्त प्रसीद मधुसूदन ॥ २२ ॥
जराव्याधिशतैर्युक्तो नानादुःखैर्निपीडितः ।
हर्षशोकान्वितो मूढः कर्मपाशैः सुयन्त्रितः ॥ २३ ॥
पतितोऽहं महारौद्रे घोरे संसारसागरे ।
विषमोदकदुष्पारे रागद्वेषमकराकुले ॥ २४ ॥
इन्द्रियावर्तगम्भीरे तृष्णाशोकोर्मिसंकुले ।
निराश्रये निरालम्बे निःसारेऽत्यन्तचञ्चले ॥ २५ ॥
मायया मोहितस्तत्र भ्रमामि सुचिरं प्रभो ।
नानाजातिसहस्रेषु जायमानः पुनः पुनः ॥ २६ ॥
मया जन्मान्यनेकानि सहस्राण्ययुतानि च ।
विविधान्यनुभूतानि संसारेऽस्मिञ्जनार्दन ॥ २७ ॥
वेदाः साङ्गा मयाऽधीताः शास्त्राणि विविधानि च ।
इतिहासपुराणानि तथा शिल्पान्यनेकशः ॥ २८ ॥
असंतोषाश्च संतोषाः संचयापचया व्ययाः ।
मया प्राप्ता जगन्नाथ क्षयवृद्ध्यक्षरेतराः ॥ २९ ॥
भार्यारिमित्रबन्धूनां वियोगाः संगमास्तथा ।
पितरो विविधा दृष्टा मातरश्च तथा मया ॥ ३० ॥
दुःखानि चानुभूतानि यानि सौख्यान्यनेकशः ।
प्राप्ताश्च बान्धवाः पुत्रा भ्रातरो ज्ञातयस्तथा ॥ ३१ ॥

मयोषितं तथा स्त्रीणां कोष्ठे विण्मूत्रपिच्छले ।
गर्भवासे महादुःखमनुभूतं तथा प्रभो ॥ ३२ ॥
दुःखानि यान्यनेकानि बाल्ययौवनगोचरे ।
वार्धके च हृषीकेश तानि प्राप्तानि वै मया ॥ ३३ ॥
मरणे यानि दुःखानि यममार्गे यमालये ।
मया तान्यनुभूतानि नरके यातनास्तथा ॥ ३४ ॥
कृमिकीटद्रुमाणां च हस्त्यश्वमृगपक्षिणाम् ।
महिषोष्ट्रगवां चैव तथाऽन्येषां वनौकसाम् ॥ ३५ ॥
द्विजातीनां च सर्वेषां शूद्राणां चैव योनिषु ।
धनिनां क्षत्रियाणां च दरिद्राणां तपस्विनाम् ॥ ३६ ॥
नृपाणां नृपभृत्यानां तथाऽन्येषां च देहिनाम् ।
गृहेषु तेषामुत्पन्नो देव चाहं पुनः पुनः ॥ ३७ ॥
गतोऽस्मि दासतां नाथ भृत्यानां बहुशो नृणाम् ।
दरिद्रत्वं चेश्वरत्वं स्वामित्वं च तथा गतः ॥३८॥
हतो मया हताश्चान्ये घातितो घातितास्तथा ।
दत्तं ममान्यैरन्येभ्यो मया दत्तमनेकशः ॥ ३९ ॥
पितृमातृसुहृद्भ्रातृकलत्राणां कृतेन च ।
धनिनां श्रोत्रियाणां च दरिद्राणां तपस्विनाम् ॥ ४० ॥
उक्तं दैन्यं च विविधं त्यक्त्वा लज्जां जनार्दन ।
देवतिर्यङ्मनुष्येषु स्थावरेषु चरेषु च ॥ ४१ ॥
न विद्यते तथा स्थानं यत्राहं न गतः प्रभो ।
कदा मे नरके वासः कदा स्वर्गे जगत्पते ॥ ४२ ॥

कदा मनुष्यलोकेषु कदा तिर्यग्गतेषु च ।
जलयन्त्रे यथा चक्रे घटी रज्जुनिबन्धना ॥ ४३ ॥
याति चोर्ध्वमधश्चैव कदा मध्ये च तिष्ठति ।
तथा चाहं सुरश्रेष्ठ कर्मरज्जुसमावृतः ॥ ४४ ॥
अधश्चोर्ध्वं तथा मध्ये भ्रमन्गच्छामि योगतः ।
एवं संसारचक्रेऽस्मिन्भैरवे रोमहर्षणे ॥ ४५ ॥
भ्रमामि सुचिरं कालं नान्तं पश्यामि कर्हिचित् ।
न जाने किं करोम्यत्र हरे व्याकुलितेन्द्रियः ॥ ४६ ॥
शोकतृष्णाभिभूतोऽहं कांदिशीको विचेतनः ।
इदानीं त्वामहं देव विह्वलः शरणं गतः ॥ ४७ ॥
त्राहि मां दुःखितं कृष्ण मग्नं संसारसागरे ।
कृपां कुरु जगन्नाथ भक्तं मां यदि मन्यसे ॥ ४८ ॥
त्वदृते नास्ति मे बन्धुर्योऽस्मी चिन्तां करिष्यति ।
देव त्वां नाथमासाद्य न भयं मेऽस्ति कुत्रचित् ॥ ४९ ॥
जीविते मरणे चैव योगक्षेमेऽथ वा प्रभो ।
ये तु त्वां विधिवद्देव नार्चयन्ति नराधमाः ॥ ५० ॥
सुगतिस्तु कथं तेषां भवेत्संसारबन्धनात् ।
किं तेषां कुलशीलेन विद्यया जीवितेन च ॥ ५१ ॥
येषां न जायते भक्तिर्जगद्धातरि केशवे ।
प्रकृतिं त्वासुरीं प्राप्य ये त्वां निन्दन्ति मोहिताः ॥ ५२ ॥
पतन्ति नरके घोरे जायमानाः पुनः पुनः ।
न तेषां निष्कृतिस्तस्माद्विद्यते नरकार्णवात् ॥ ५३ ॥

ये दूषयन्ति दुर्वृत्तास्त्वां देव पुरुषाधमाः ।
यत्र यत्र भवेज्जन्म मम कर्मनिबन्धनात् ॥ ५४ ॥
तत्र तत्र हरे भक्तिस्त्वयि चास्तु दृढा सदा ।
आराध्य त्वां सुरा दैत्या नराश्चान्येऽपि संयताः ॥ ५५ ॥
अवापुः परमां सिद्धिं कस्त्वां देव न पूजयेत् ।
न शक्नुवन्ति ब्रह्माद्याः स्तोतुं त्वां त्रिदशा हरे ॥ ५६ ॥
कथं मानुषबुद्ध्याऽहं स्तौमि त्वां प्रकृतेः परम् ।
तथा चाज्ञानभावेन संस्तुतोऽसि मया प्रभो ॥ ५७ ॥
तत्क्षमस्वापराधं मे यदि तेऽस्ति दया मयि ।
कृतापराधेऽपि हरे क्षमां कुर्वन्ति साधवः ॥ ५८ ॥
तस्मात्प्रसादं देवेश भक्तस्नेह समाश्रित ।
स्तुतोऽसि यन्मया देव भक्तिभावेन चेतसा ॥
साङ्गं भवतु तत्सर्वं वासुदेव नमोऽस्तु ते ॥ ५९ ॥

ब्रह्मोवाच ।

इत्थं स्तुतस्तदा तेन प्रसन्नो गरुडध्वजः ।
ददौ तस्मै मुनिश्रेष्ठाः सकलं मनसेप्सितम् ॥ ६० ॥
यः संपूज्य जगन्नाथं प्रत्यहं स्तौति मानवः ।
स्तोत्रेणानेन मतिमान्स मोक्षं लभते ध्रुवम् ॥ ६१ ॥
त्रिसंध्यं यो जपेद्विद्वानिदं स्तोत्रवरं शुचिः ।
धर्मं चार्थं च कामं च मोक्षं च लभते नरः ॥ ६२ ॥
यः पठेच्छृणुयाद्वाऽपि श्रावयेद्वा समाहितः ।
स लोकं शाश्वतं विष्णोर्याति निर्धूतकल्मषः ॥ ६३ ॥

धन्यं पापहरं चेदं भुक्तिमुक्तिप्रदं शिवम् ।
गुह्यं सुदुर्लभं पुण्यं न देयं यस्य कस्यचित् ॥ ६४ ॥
न नास्तिकाय मूर्खाय न कृतघ्नाय मानिने ।
न दुष्टमतये दद्यान्नाभक्ताय कदाचन ॥ ६५ ॥
दातव्यं भक्तियुक्ताय गुणशालान्विताय च ।
विष्णुभक्ताय शान्ताय श्रद्धानुष्ठानशालिने ॥ ६६ ॥

इदं समस्ताघविनाशहेतु,
कारुण्यसद्म सुरमोक्षदं च ।
अशेषवाञ्छाफलदं वरिष्ठं,
स्तोत्रमयोक्तं पुरुषोत्तमस्य ॥ ६७॥

ये तं सुसूक्ष्मं विमला मुरारिं,
ध्यायन्ति नित्यं पुरुषं पुराणम् ।
ते मुक्तिभाजः प्रविशन्ति विष्णुं,
मन्त्रैर्यथाऽऽज्यं हुतमध्वराग्नौ ॥ ६८ ॥

एकः स देवो भवदुःखहन्ता,
परः परेषां न ततोऽस्ति चान्यत् ।
द्र(स्र)ष्टा स पाता स तु नाशकर्ता,
विष्णुः समस्ताखिलसारभूतः ॥ ६९ ॥

किं विद्यया किं स्वगुणैश्च तेषां,
यज्ञैश्च दानैश्च तपोभिरुग्रैः ।
येषां न भक्तिर्भवतीह कृष्णे,
जगद्गुरौ मोक्षसुखप्रदे च ॥ ७० ॥

लोके स धन्यः स शुचिः सविद्वान्
मखैस्तपोभिः स गुणैर्वरिष्ठः।
ज्ञाता स दाता स तु सत्यवक्ता,
यस्यास्ति भक्तिः पुरुषोत्तमाख्ये ॥ ७१ ॥

इति श्रीमहापुराण आदिब्राह्मे स्वयंभ्वृषिसंवादे कारुण्यस्तववर्णनं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥
आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः—२४१२

अथ पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

प्रतिमोत्पत्तिकथनम्

ब्रह्मोवाच ।

स्तुत्वैवं मुनिशार्दूलाः प्रणम्य च सनातनम् ।
वासुदेवं जगन्नाथं सर्वकामफलप्रदं ॥ १ ॥
चिन्ताविष्टो महीपालः कुशानास्तीर्य भूतले ।
वस्त्रं च तन्मना भूत्वा सुष्वाप धरणीतले ॥ २ ॥
कथं प्रत्यक्षमभ्येति देवदेवो जनार्दनः ।
मम चाऽऽर्तिहरो देवस्तदाऽसाविति चिन्तयन् ॥ ३ ॥
सुप्तस्य तस्य नृपतेर्वासुदेवो जगद्गुरुः ।
आत्मानं दर्शयामास शङ्खचक्रगदाभृतम् ॥ ४ ॥

स ददर्श तु सप्रेम देवदेवं जगद्गुरुम् ।
शङ्खचक्रधरं देवं गदाचक्रोग्रपाणिनम् ॥ ५ ॥
शार्ङ्गबाणधरं देवं ज्वलत्तेजोतिमण्डलम् ।
युगान्तादित्यवर्णाभं नीलवैदूर्यसन्निभम् ॥ ६ ॥
सुपर्णांसे समासीनं षोडशार्धभुजं शुभम् ।
स चास्मै प्राब्रवीद्धारा साधु राजन्महामते ॥ ७ ॥
क्रतुनाऽनेन दिव्येन तया भक्त्या च श्रद्धया ।
तुष्टोऽस्मि ते महीपाल वृथा किमनुशोचसि ॥ ८ ॥
यदत्र प्रतिमा राजञ्जगत्पूज्या सनातनी ।
यथा सा प्राप्यते भूप तदुपायं ब्रवीमि ते ॥ ९
गतायामद्य शर्वर्यां निर्मले भास्वरोदिते ।
सागरस्य जलस्यान्ते नानाद्रुमविभूषिते ॥ १० ॥
जले तथैव वेलाया दृश्यते तत्र यं महत् ।
लवणस्योदधे राजंस्तरङ्गैः समभिप्लुतम् ॥ ११ ॥
कूलान्ते हि महावृक्षं स्थितं स्थलजलेषु च ।
वेलाभिर्हन्यमानश्च न चासौ कम्पते द्रुमः ॥ १२ ॥
परशुमादाय हस्तेन ऊर्मेरन्तस्ततो व्रज ।
एकाकी विहरन्राजन्स त्वं पश्यसि पादपम् ॥ १३ ॥
ईदृक्चिह्नं समालोक्य छेदय त्वमशङ्कितः ।
छेद्यमानं तु तं वृक्षं प्रातरद्भुतदर्शनम् ॥ १४ ॥
दृष्ट्वा तेनैव सञ्चिन्त्य ततो भूपाल दर्शनात् ।
कुरु तां प्रतिमां दिव्यां जहि चिन्तां विमोहिनीम् ॥ १५ ॥

ब्रह्मोवाच ।

एवमुक्त्वा महाभागो जगामादर्शनं हरिः ।
स चापि स्वप्नमालोक्य परं विस्मयमागतः ॥ १६ ॥
तां निशां स समुद्वीक्ष्य स्थितस्तद्गतमानसः ।
व्याहरन्वैष्णवान्मन्त्रान्सूक्तं चैव तदात्मकम् ॥ १७ ॥
प्रभातायां रजन्यां तु उत्थितो नान्यमानसः ।
स स्नात्वा सागरे सम्यग्यथावद्विधिना ततः ॥ १८ ॥
दत्त्वा दानं विप्रेभ्यो ग्रामांश्च नगराणि च ।
कृत्वा पौर्वाह्णिकं कर्म जगाम स नृपोत्तमः ॥ १९ ॥
न चाश्वो न पदातिश्च न गजो न च सारथिः ।
एकाकी स महावेलां प्रविवेश महीपतिः ॥ २० ॥
तं ददर्श महावृक्षं तेजस्वन्तं महाद्रुमम् ।
महातिगमहारोहं पुण्यं विपुलमेव च ॥ २१ ॥
महोत्सेधं महाकायं प्रसुप्तं च जलान्तिके ।
सान्द्रमाञ्जिष्ठवर्णाभं नामजातिविवर्जितम् ॥ २२ ॥
नरनाथस्तदा विप्रा द्रुमं दृष्ट्वा मुदाऽन्वितः ।
परशुना शातयामास निशितेन दृढेन च ॥ २३ ॥
द्वैधीकर्तुमनास्तत्र बभूवेन्द्रसखः स च ।
निरीक्ष्यमाणे काष्ठे तु बभूवाद्भुतदर्शनम् ॥ २४ ॥
विश्वकर्मा च विष्णुश्च विप्ररूपधरावुभौ ।
आजग्मतुर्महाभागौ तदा तुल्याग्रजन्मनौ ॥ २५ ॥

निःसारे दुःखबहुले कामक्रोधसमाकुले ।
इन्द्रियावर्तकलिले दुस्तरे रोमहर्षणे ॥ ३५ ॥
नानाव्याधिशतावर्ते जलबुद्बुदसंनिभे ।
यतस्ते मतिरुत्पन्ना विष्णोराराधनाय वै ॥ ३६
धन्यस्त्वं नृपशार्दूल गुणैः सर्वैरलंकृत ।
सप्रजा पृथिवी धन्या सशैलवनकानना ॥ ३७ ॥
सपुरग्रामनगरा चतुर्वर्णैरलंकृता ।
यत्र त्वं नृपशार्दूल प्रजाः पालयिता प्रभुः ॥ ३८ ॥
एह्येहि सुमहाभाग द्रुमेऽस्मिन्सुखशीतले ।
आवाभ्यां सह तिष्ठ त्वं कथाभिर्धर्मसंश्रितः ॥ ३९ ॥
अयं मम सहायस्तु आगतः शिल्पिनां वरः ।
विश्वकर्मसमः साक्षान्निपुणः सर्वकर्मसु ॥
मयोद्दिष्टां तु प्रतिमां करोत्येष तटं त्यज ॥ ४० ॥

ब्रह्मोवाच ।

श्रुत्वैव वचनं तस्य तदा राजा द्विजन्मनः ।
सागरस्य तटं त्यक्त्वा गत्वा तस्य समीपतः ॥ ४१ ॥
तस्थौ स नृपतिश्रेष्ठो वृक्षच्छाये सुशीतले ।
ततस्तस्मै स विश्वात्मा ददावाज्ञां द्विजाकृतिः ॥ ४२ ॥
शिल्पिमुख्याय विप्रेन्द्राः कुरुष्व प्रतिमा इति ।
कृष्णरूपं परं शान्तं पद्मपत्रायतेक्षणम् ॥ ४३ ॥
श्रीवत्सकौस्तुभधरं शङ्खचक्रगदाधरम् ।
गौराङ्गं क्षीरवर्णाभं द्वितीयं स्वस्तिकाङ्कितम् ॥ ४४ ॥

लाङ्गलास्त्रधरं देवमनन्ताख्यं महाबलम् ।
देवदानवगन्धर्वयक्षविद्याधरोरगैः ॥ ४५ ॥
न विज्ञातो हि तस्यान्तस्तेनानन्त इति स्मृतः ।
भगिनीं वासुदेवस्य रुक्मवर्णां सुशोभनाम् ॥ ४६ ॥
तृतीयां वै सुभद्रां च सर्वलक्षणलक्षिताम् ॥ ४७ ॥

ब्रह्मोवाच ।

श्रुत्वैतद्वचनं तस्य विश्वकर्मा सुकर्मकृत् ।
तत्क्षणात्कारयामास प्रतिमाः शुभलक्षणाः ॥ ४८ ॥
प्रथमं शुक्लवर्णाभं शारदेन्दुसमप्रभम् ।
आरक्ताक्षं महाकायं स्फटाविकटमस्तकम् ॥ ४९ ॥
नीलाम्बरधरं चोग्रं बलं बलमदोद्धतम् ।
कुण्डलैकधरं दिव्यं गदामुसलधारिणम् ॥ ५० ॥
द्वितीयं पुण्डरीकाक्षं नीलजीमूतसंनिभम् ।
अतसीपुष्पसंकाशं पद्मपत्रायतेक्षणम् ॥ ५१ ॥
पीतवाससमत्युग्रं शुभं श्रीवत्सलक्षणम् ।
चक्रपूर्णकरं दिव्यं सर्वपापहरं हरिम् ॥ ५२ ॥
तृतीयां स्वर्णवर्णाभां पद्मपत्रायतेक्षणाम् ।
विचित्रवस्त्रसंछन्नां हारकेयूरभूषिताम् ॥ ५३ ॥
विचित्राभरणोपेतां रत्नहारावलम्बिताम् ।
पीनोन्नतकुचां रम्यां विश्वकर्मा विनिर्ममे ॥ ५४ ॥
स तु राजाऽद्भुतं दृष्ट्वा क्षणेनैकेन निर्मिताः ।
दिव्यवस्त्रयुगच्छन्ना नानारत्नैरलंकृताः ॥ ५५ ॥

सर्वलक्षणसम्पन्ना प्रतिमा सुमनोहरा ।
विस्मय परम गत्वा इद वचनमब्रवीत् ॥ ५६ ॥

इन्द्रद्युम्न उवाच

किं देवौ समनुप्राप्तौ द्विजरूपधरावुभौ ।
उभौ चाद्भुतकर्माणौ देववृत्तावमानुषौ ॥ ५७ ॥
देवौ वा मानुषौ वाऽपि यक्षविद्याधरौ युवाम् ।
किंतु ब्रह्महृषीकेशौ किं वसू किमुताश्विनौ ॥ ५८ ॥
न वेद्मि सत्यसद्भावौ मायारूपेण संस्थितौ ।
युवा गतोऽस्मि शरणमात्मा तु मे प्रकाश्यताम् ॥ ५९ ॥
इति श्री महापुराणे ब्राह्मे स्वयम्भूऋषिसंवादे प्रतिमोत्पत्ति
कथन नाम पञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥ ५० ॥
आदित श्लोकाना समष्टयङ्का —३५५१

अथैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

भगवदिन्द्रद्युम्नसवादकथनम्

श्रीभगवानुवाच ।

नाह देवो न यक्षो वा न दैत्यो न च देवराट् ।
न ब्रह्मा न च रुद्रोऽह विद्धि मा पुरुषोत्तमम ॥ १ ॥
अर्तिहा सर्वलोकानामनन्तबलपौरुष ।
आराधनीयो भक्तानामन्तो यस्य न विद्यते ॥ २ ॥

पठ्यते सर्वशास्त्रेषु वेदान्तेषु निगद्यते ।
यमाहुर्ज्ञानगम्येति वासुदेवेति योगिन ॥ ३ ॥
अहमेव स्वयं ब्रह्मा अहं विष्णुः शिवोऽप्यहम् ।
इन्द्रोऽहं देवराजश्च जगत्संयमनो यम ॥ ४ ॥
पृथिव्यादीनि भूतानि त्रेताग्निर्हुतभुङ्नृप ।
वरुणोऽपां पतिश्चाहं धरित्री च महीधर ॥ ५ ॥
यत्किंचिद्वाङ्मयं लोके जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
चराचरं च यद्विश्वं मदन्यश्चास्ति किंचन ॥ ६ ॥
प्रीतोऽहं ते नृपश्रेष्ठ वरं वरय सुव्रत ।
यदिष्टं तत्प्रयच्छामि हृदि यत्ते व्यवस्थितम् ॥ ७ ॥
मद्दर्शनमपुण्यानां स्वप्नान्तेऽपि न जायते ।
त्वं पुनर्दृढभक्तित्वात्प्रत्यक्षं दृष्टवानसि ॥ ८ ॥

ब्रह्मोवाच ।

श्रुत्वैवं वासुदेवस्य वचनं तस्य भो द्विजा ।
रोमाञ्चिततनुर्भूत्वा इदं स्तोत्रं जगौ नृप ॥ ९ ॥

राजोवाच ।

श्रियः कान्त नमस्तेऽस्तु श्रीपते पीतवाससे ।
श्रीद श्रीश श्रीनिवास नमस्ते श्रीनिकेतन ॥ १० ॥
आद्यं पुरुषमीशानं सर्वेशं सर्वतोमुखम् ।
निष्कलं परमं देवं प्रणतोऽस्मि सनातनम् ॥ ११ ॥
शब्दातीतं गुणातीतं भावाभावविवर्जितम् ।
निर्लेपं निर्गुणं सूक्ष्मं सर्वज्ञं सर्वभावनम् ॥ १२ ॥

प्रावृण्मेघप्रतीकाशं गोब्राह्मणहिते रतम् ।
सर्वेषामेव गोप्तारं व्यापिनं सर्वभाविनम् ॥ १३ ॥
शङ्खचक्रधरं देवं गदामुशलधारिणम् ।
नमस्ये वरदं देवं नीलोत्पलदलच्छविम् ॥ १४ ॥
नागपर्यङ्कशयनं क्षीरोदार्णवशायिनम् ।
नमस्येऽहं हृषीकेशं सर्वपापहरं हरिम् ॥ १५ ॥
पुनस्त्वां देवदेवेशं नमस्ये वरदं विभुम् ।
सर्वलोकेश्वरं विष्णुं मोक्षकारणमव्ययम् ॥ १६ ॥

ब्रह्मोवाच ।

एवं स्तुत्वा तु तं देवं प्रणिपत्य कृताञ्जलिः ।
उवाच प्रणतो भूत्वा निपत्य धरणीतले ॥ १७ ॥

राजोवाच ।

प्रीतोऽसि यदि मे नाथ वृणोमि वरमुत्तमम् ।
देवासुराः सगन्धर्वा यक्षरक्षोमहोरगाः ॥ १८ ॥
सिद्धविद्याधराः साध्याः किंनरा गुह्यकास्तथा ।
ऋषयो ये महाभागा नानाशास्त्रविशारदाः ॥ १९ ॥
परिव्राड्योगयुक्ताश्च वेदतत्त्वार्थचिन्तकाः ।
मोक्षमार्गविदो येऽन्ये ध्यायन्ति परमं पदम् ॥ २० ॥
निर्गुणं निर्मलं शान्तं यत्पश्यन्ति मनीषिणः ।
तत्पदं गन्तुमिच्छामि त्वत्प्रसादात्सुदुर्लभम् ॥ २१ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

सर्वं भवतु भद्रं ते यथेष्टं सर्वमाप्नुहि ।
भविष्यति यथाकामं मत्प्रसादान्न संशयः ॥ २२ ॥

दश वर्षसहस्राणि तथा नव शतानि च ।
अविच्छिन्नं महाराज्यं कुरु त्वं नृपसत्तम ॥ २३ ॥
प्रयास्यसि पदं दिव्यं दुर्लभं यत्सुरासुरैः ।
पूर्णमनोरथं शान्तं गुह्यमव्यक्तमव्ययम् ॥ २४ ॥
परात्परतरं सूक्ष्मं निर्लेपं निष्कलं ध्रुवम् ।
चिन्ताशोकविनिर्मुक्तं क्रियाकारणवर्जितम् ॥ २५ ॥
तदहं दर्शयिष्यामि क्षेयाख्यं परमं पदम् ।
यं प्राप्य परमानन्दं प्राप्स्यसि परमां गतिम् ॥ २६ ॥
कीर्तिश्च तव राजेन्द्र भवत्यत्र महीतले ।
यावद्धरा नभो यावद्यावच्चन्द्रार्कतारकम् ॥ २७ ॥
यावत्समुद्राः सप्तैव यावन्मेर्वादिपर्वताः ।
तिष्ठन्ति दिवि देवाश्च तावत्सर्वत्र चाव्यया ॥ २८ ॥
इन्द्रद्युम्नसरो नाम तीर्थं यज्ञाङ्गसंभवम् ।
यत्र स्नात्वा सकृल्लोकः शक्रलोकमवाप्नुयात् ॥ २९ ॥
दापयिष्यति यः पिण्डांस्तटेऽस्मिन्सरसः शुभे ।
कुलैकविंशमुद्धृत्य शक्रलोकं गमिष्यति ॥ ३० ॥
पूज्यमानोऽप्सरोभिश्च गन्धर्वैर्गीतनिस्वनैः ।
विमानेन वसेत्तत्र यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ३१ ॥
सरसो दक्षिणे भागे नैर्ऋत्यां तु समाश्रिते ।
न्यग्रोधस्तिष्ठते तत्र तत्समीपे तु मण्डपः ॥ ३२ ॥
केतकीवनसंछन्नो नानापादपसंकुलः ।
नारिकेलैरसंख्येयैश्चम्पकैर्बकुलावृतैः ॥ ३३ ॥

अशोकैः कर्णिकारैश्च पुंनागैर्न ...
पाटलाम्रातसरलैश्चन्दनैर्देवदारुभिः
न्यग्रोधाश्वत्थखदिरैः पारिजातैः
हिन्तालैश्चैव तालैश्च ...
करञ्जैर्लकुचैः प्लक्षैः ... बिल्वधा...
अन्यैर्बहुविधैर्वृक्षैः शोभितः ...
आषाढस्य सिते पक्षे पञ्चम्यां ...
ऋक्षे नेष्यन्ति नस्तत्र नीत्वा सप्त ...
मण्डपे स्थापयिष्यन्ति सुवेश्याभिः
क्रीडाविशेषबहुलैर्नृत्यगीतमनोहरैः
चामरैः स्वर्णदण्डैश्च व्यजनै ...
वीजयन्तस्तथाऽऽस्मस्यं ...
ब्रह्मचारी यतिश्चैव स्नातकाश्च ...
वानप्रस्था गृहस्थाश्च ...
नानावर्णपदैः स्तोत्रैर्ऋग्यजुः ...
करिष्यन्ति स्तुतिं ...

तपःक्षयादिहाऽऽगत्य मनुष्यो ब्राह्मणो भवेत् ।
कोटिध्वजपतिः श्रीमांश्चतुर्वेदी भवेद्ध्रुवम् ॥ ४५ ॥
ब्रह्मोवाच ।
एवं तस्मै वरं दत्त्वा कृत्वा च समयं हरिः ।
अगमाद्दर्शनं विप्राः सहितो विश्वकर्मणा ॥ ४६ ॥
स तु राजा तदा हृष्टो रोमाञ्चिततनूरुहः ।
कृतकृत्यमिवाऽऽत्मानं मेने संदर्शनाद्धरेः ॥ ४७ ॥
ततः कृष्णं च रामं च सुभद्रां च वरप्रदाम् ।
रथैर्विमानसंकाशैर्मणिकाञ्चनचित्रितैः ॥ ४८ ॥
संवाद्य तान्नदा राजामहामङ्गलनिःस्वनैः ।
आनयामास मतिमान्नामात्यः सपुरोहितः ॥ ४९ ॥
नानावादित्रनिर्घोषैर्नानावेदस्वनैः शुभैः ।
संस्थाप्य च शुभे देशे पवित्रे सुमनोहरे ॥ ५० ॥
ततः शुभतिथौ काले नक्षत्रे शुभलक्षणे ।
प्रतिष्ठां कारयामास सुमुहूर्ते द्विजैः स द्व ॥ ५१ ॥
यथोक्तेन विधानेन विधिदृष्टेन कर्मणा ।
आचार्यानुमतेनैव सर्वं कृत्वा महीपतिः ॥ ५२ ॥
आचार्याय तदा दत्त्वा दक्षिणां विधिवत्प्रभुः ।
ऋत्विग्भ्यश्च विधानेन तथाऽन्येभ्यो धनं ददौ ॥ ५३ ॥
कृत्वा प्रतिष्ठां विधिवत्प्रासादे भवनोत्तमे ।
स्थापयामास तान्सर्वान्विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ५४ ॥
ततः संपूज्य विधिना नानापुष्पैः सुगन्धिभिः ।

सुवर्णमणिमुक्काद्यैर्नानावस्त्रैः सुशोभनैः ॥ ५५ ॥
रत्नैश्च विविधैर्दिव्यैरासनैर्ग्रामपत्तनैः ।
ददौ चान्यान्स विषयान्पुराणि नगराणि च ॥ ५६ ॥
एवं बहुविधं दत्त्वा राज्यं कृत्वा यथोचितम् ।
इष्ट्वा च विविधैर्यज्ञैर्दत्त्वा दानान्यनेकशः ॥ ५७ ॥
कृतकृत्यस्ततो राजा त्यक्तसर्वपरिग्रहः ।
जगाम परमं स्थानं तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ ५८ ॥
एवं मया मुनिश्रेष्ठाः कथितो वो नृपोत्तमः ।
क्षेत्रस्य चैव माहात्म्यं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ ॥ ५९ ॥

व्यास उवाच ।

श्रुत्वैवं वचनं तस्य ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
आश्चर्यं मेनिरे विप्राः पप्रच्छुश्च पुनर्मुदा ॥ ६० ॥

मुनय ऊचुः ।

कस्मिन्काले सुरश्रेष्ठ गन्तव्यं पुरुषोत्तमम् ।
विधिना केन कर्तव्यं पञ्चतीर्थमिति प्रभो ॥ ६१ ॥
एकैकस्य च तीर्थस्य स्नानदानस्य यत्फलम् ।
देवताप्रेक्षणे चैव ब्रूहि सर्वं पृथक्पृथक् ॥ ६२ ॥

ब्रह्मोवाच ।

निराहारः कुरुक्षेत्रे पादेनैकेन यस्तपेत् ।
जितेन्द्रियो जितक्रोधः सप्तसंवत्सरायुतम् ॥ ६३ ॥

दृष्ट्वा सदा ज्येष्ठशुक्लद्वादश्यां पुरुषोत्तमम् ।
दृष्टोपवास प्राप्नोति ततोऽधिकतरं फलम् ॥ ६४ ॥
तस्माज्ज्येष्ठे मुनिश्रेष्ठाः प्रयत्नेन सुसयते ।
स्वर्गलोकेप्सुविप्राद्यैर्द्रष्टव्य पुरुषोत्तम ॥ ६५ ॥
पञ्चतीर्थं तु विधिवत्कृत्वा ज्येष्ठे नरोत्तम ।
शुक्लपक्षस्य द्वादश्यां पश्येत् पुरुषोत्तमम् ॥ ६६ ॥
ये पश्यन्त्यव्यय देव द्वादश्यां पुरुषोत्तमम् ।
ते विष्णुलोकमासाद्य न च्यवन्ते कदाचन ॥ ६७ ॥
तस्माज्ज्येष्ठे प्रयत्नेन गन्तव्यं भो द्विजोत्तमा ।
दृष्ट्वा तस्मिन्पञ्चतीर्थं द्रष्टव्य पुरुषोत्तम ॥ ६८ ॥
सुदूरस्थोऽपि यो भक्त्या कीर्तयेत्पुरुषोत्तमम् ।
अहन्यहनि शुद्धात्मा सोऽपि विष्णुपुर व्रजेत् ॥ ६९ ॥
यात्रां करोति कृष्णस्य श्रद्धया य समाहित ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोक व्रजेन्नर ॥ ७० ॥
चक्र दृष्ट्वा हरेर्दूरात्प्रासादोपरि सस्थितम् ।
सहसा मुच्यते पापान्नरो भक्त्या प्रणम्य तत् ॥ ७१ ॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्म स्वयभुऋषिसवादे पुरुषोत्तम-
वर्णन नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥ ५१ ॥
आदित श्लोकाना समष्टयङ्का —३६२२

अथ द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

मार्कण्डेयाख्यानम्

ब्रह्मोवाच ।

आसीत्कल्पे मुनिश्रेष्ठाः संप्रवृत्ते महाक्षये ।
नष्टेऽर्कचन्द्रे पवने नष्टे स्थावरजङ्गमे ॥ १ ॥
उदिते प्रलयादित्ये प्रचण्डे घनगर्जिते ।
विद्युदुत्पातसंघातैः संभग्ने तरुपर्वते ॥ २ ॥
लोके च सहते सर्वे महदुल्कानिवर्हणे ।
शुष्केषु सर्वतोयेषु सरःसु च सरित्सु च ॥ ३ ॥
ततः संवर्तको वह्निर्वायुना सह भो द्विजाः ।
लोकं तु प्राविशत्सर्वमादित्यैरुपशोभितम् ॥ ४ ॥
पश्चात्स पृथिवीं भित्त्वा प्रविश्य च रसातलम् ।
देवदानवयक्षाणां भयं जनयते महत् ॥ ५ ॥
निर्दहन्नागलोकं च यच्च किंचित्क्षिताविह ।
अधस्तान्मुनिशार्दूलाः सर्वं नाशयते क्षणात् ॥ ६ ॥
ततो योजनविंशानां सहस्राणि शतानि च ।
निर्दहत्याशुगो वायुः स च संवर्तकोऽनलः ॥ ७ ॥
सदेवासुरगन्धर्वं सयक्षोरगराक्षसम् ।
ततो दहति संदीप्तः सर्वमेव जगत्प्रभुः ॥ ८ ॥

प्रदीप्तोऽसौ महारौद्रः कल्पाग्निरितिसंश्रुतः ।
महाज्वालो महार्चिष्मान्सप्रदीप्तमहास्वनः ॥ ९ ॥
सूर्यकोटिप्रतीकाशो ज्वलन्निव स तेजसा ।
त्रैलोक्यं चादहत्तूर्णं ससुरासुरमानुषम् ॥ १० ॥
एवंविधे महाघोरे महाप्रलयदारुणे ।
ऋषिः परमधर्मात्मा ध्यानयोगपरोऽभवत् ॥ ११ ॥
एकः संतिष्ठते विप्रा मार्कण्डेयेति विश्रुतः ।
मोहपाशैर्निबद्धोऽसौ क्षुत्तृष्णाकुलितेन्द्रियः ॥ १२ ॥
स दृष्ट्वा तं महावह्निं शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः ।
तृष्णार्तः प्रस्खलन्विप्रास्तदाऽसौ भयविह्वलः ॥ १३ ॥
बभ्राम पृथिवीं सर्वां कांदिशीको विचेतनः ।
त्रातारं नाधिगच्छन्वै इतश्चेतश्च धावति ॥ १४ ॥
न लेभे च तदा शर्म यत्र विश्राम्यता द्विजाः ।
करोमि किं न जानामि यस्याहं शरणं व्रजे ॥ १५ ॥
कथं पश्यामि तं देवं पुरुषेशं सनातनम् ।
इति संचिंतयन्देवमेकाग्रेण सनातनम् ॥ १६ ॥
प्राप्तवांस्तत्पदं दिव्यं महाप्रलयकारणम् ।
पुरुषेशमिति ख्यातं वटराजं सनातनम् ॥ १७ ॥
त्वरायुक्तो मुनिश्चासौ न्यग्रोधस्यान्तिकं ययौ ।
आसाद्य तं मुनिश्रेष्ठास्तस्य मूले समाविशत् ॥ १८ ॥
न कालाग्निभयं तत्र न चाङ्गारप्रवर्षणम् ।
न संवर्तागमस्तत्र न च वज्राग्निसन्निभा ॥ १९ ॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसंवादे मार्कण्डेयेन घटदर्शनं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥
आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः—३६४१

—

अथ त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

मार्कण्डेयाख्यानम्

ब्रह्मोवाच ।

ततो गजकुलप्रख्यास्तडिन्माला विभूषिताः ।
समुत्तस्थुर्महामेघा नभस्यद्भुतदर्शनाः ॥ १ ॥
केचिन्नीलोत्पलश्यामाः केचित्कुमुदसंनिभाः ।
केचित्किञ्जल्कसंकाशाः केचित्पीताः पयोधराः ॥ २ ॥
केचिद्धरितसंकाशाः काकाण्डसंनिभास्तथा ।
केचित्कमलपत्राभाः केचिद्धिङ्गुलसंनिभाः ॥ ३ ॥
केचित्पुरवराकाराः केचिद्गिरिवरोपमाः ।
केचिदञ्जनसंकाशाः केचिन्मरकतप्रभाः ॥ ४ ॥
विद्युन्मालापिनद्धाङ्गाः समुत्तस्थुर्महाघनाः ।
घोररूपा महाभागा घोरस्वननिनादिताः ॥ ५ ॥
ततोजलधराः सर्वे समावृण्वन्नभस्तलम् ।
तैरियं पृथिवी सर्वा सपर्वतवनाकरा ॥ ६ ॥

आपूरिता दिशः सर्वा सरिद्भिः परिप्लुताः ।
ततस्ते जलदा घोरा वारिणा मुनिसत्तमाः ॥ ७ ॥
सर्वतः प्लावयामासुश्चोदिताः परमेष्ठिना ।
वर्षमाणा महातोयं पूरयन्तो वसुन्धराम् ॥ ८ ॥
सुघोरमशिवं रौद्रं नाशयन्ति स्म पावकम् ।
ततो द्वादश वर्षाणि पयोदास्ते समुपप्लवे ॥ ९ ॥
धाराभिः पूरयन्तो वै चोद्यमाना महात्मना ।
ततः समुद्राः स्वां वेलामतिक्रामन्ति भो द्विजाः ॥ १० ॥
पर्वताश्च व्यशीर्यन्त मही चाप्सु निमज्जति ।
सर्वतः सुमहाभ्रान्तास्ते पयोदा नभस्तलम् ॥ ११ ॥
संवेष्टयित्वा नश्यन्ति वायुवेगसमाहताः ।
ततस्तं मारुतं घोरं स विष्णुर्मुनिसत्तमाः ॥ १२ ॥
आदिपद्मालयो देवः पीत्वा स्वपिति भो द्विजाः ।
तस्मिन्नेकार्णवे घोरे नष्टे स्थावरजङ्गमे ॥ १३ ॥
नष्टे देवासुरनरे यक्षराक्षसवर्जिते ।
ततो मुनिः स विश्रान्तो ध्यात्वा च पुरुषोत्तमम् ॥ १४ ॥
ददर्श वसुधां सर्वां जलपूर्णां वसुन्धराम् ।
नापश्यत् स वटं नोर्वीं न गिरीन्न च भास्करम् ॥ १५ ॥
न चन्द्रार्काग्निपवनं न देवासुरपन्नगम् ।
तस्मिन्नेकार्णवे घोरे तमोभूते निराश्रये ॥ १६ ॥
निमज्जंस्स तदा विप्राः सन्तरन्नुपचक्रमे ।
भ्राम्यमाणो मुनिश्चाऽऽर्तः इतश्चेतश्च संप्लवन् ॥ १७ ॥

निममज्ज तदा विप्रास्त्रातारं नाधिगच्छति ।
एवं तं विह्वलं दृष्ट्वा कृपया पुरुषोत्तमः ॥
प्रोवाच मुनिशार्दूलास्तदा ध्यानेन तोषितः ॥ १८ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

वत्स श्रान्तोऽसि बालस्त्वं भक्तश्च मम सुव्रत ।
आगच्छाऽऽगच्छ शीघ्रं त्वं मार्कण्डेय ममान्तिकम् ॥ १९ ॥
मा त्वयैव च भेतव्यं संप्राप्तोऽसि ममाग्रतः ।
मार्कण्डेय मुने धीर बालस्त्वं श्रमपीडितः ॥ २० ॥

ब्रह्मोवाच ।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा मुनिः परमकोपितः ।
उवाच स तदा विप्रा विस्मितश्चाभवन्मुहुः ॥ २१ ॥

मार्कण्डेय उवाच ।

कोऽयं नाम्ना कीर्तयति तपः परिभवन्निव ।
बहुवर्षसहस्राख्यं धर्षयन्निव मे वपुः ॥ २२ ॥
न ह्येष समुदाचारो देवेष्वपि समाहितः ।
मां ब्रह्मा स च देवेशो दीर्घायुरिति भाषते ॥ २३ ॥
कस्तपो घोरशिरसो ममाद्य त्यक्तजीवितः ।
मार्कण्डेयेति चोक्त्वा मन्मृत्युं गन्तुमिहेच्छति ॥ २४ ॥

ब्रह्मोवाच ।

एवमुक्त्वा तदा विप्राश्चिन्ताविष्टोऽभवन्मुनिः ।
किं स्वप्नोऽयं मया दृष्टः किंवा मोहोऽयमागतः ॥ २५ ॥
इत्थं चिन्तयतस्तस्य उत्पन्ना दुःखहा मतिः ।
व्रजामि शरणं देवं भक्त्याऽहं पुरुषोत्तमम् ॥ २६ ॥

गत्वा शरणं देवं मुनिस्तद्गतमानसः ।
ददर्श तं वटं भूयो विशालं सलिलोपरि ॥ २७ ॥
शाखायां तस्य सौवर्णे विस्तीर्णायां महाद्भुतम् ।
रुचिरं दिव्यपर्यङ्कं रचितं विश्वकर्मणा ॥ २८ ॥
पद्मवैदूर्यरचितं मणिविद्रुमशोभितम् ।
पद्मरागादिभिर्जुष्टं रत्नैरन्यैरलङ्कृतम् ॥ २९ ॥
नानास्तरणसंयुक्तं नानारत्नोपशोभितम् ।
नानाश्चर्यसमायुक्तं प्रभामण्डलमण्डितम् ॥ ३० ॥
तस्योपरि स्थितं देवं कृष्णं बालवपुर्धरम् ।
सूर्यकोटिप्रतीकाशं दीप्यमानं सुवर्चसम् ॥ ३१ ॥
चतुर्भुजं सुन्दराङ्गं पद्मपत्रायतेक्षणम् ।
श्रीवत्सवक्षसं देवं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ ३२ ॥
वनमालावृतोरस्कं दिव्यकुण्डलधारिणम् ।
हारभारार्पितग्रीवं दिव्यरत्नविभूषितम् ॥ ३३ ॥
दृष्ट्वा तदा मुनिर्देवं विस्मयोत्फुल्ललोचनः ।
रोमाञ्चिततनुर्देवं प्रणिपत्येदमब्रवीत् ॥ ३४ ॥

मार्कण्डेय उवाच ।

अहो चैकार्णवे घोरे विनष्टे सचराचरे ।
कथमेको ह्यय बालस्तिष्ठत्यत्र सुनिर्भय ॥ ३५ ॥

ब्रह्मोवाच ।

भूतं भव्यं भविष्यं च जानन्नपि महामुनिः ।
न बुबोध तदा देवं मायया तस्य मोहितः ॥
यदा न बुबुधे चैनं तदा गदादुवाच ह ॥ ३६ ॥

मार्कण्डेय उवाच।

वृथा मे तपसो वीर्यं वृथा ज्ञानं वृथा क्रिया।
वृथा मे जीवितं दीर्घं वृथा मानुष्यमेव च ॥ ३७ ॥
योऽहं सुप्तं न जानामि पर्यङ्के दिव्यबालकम् ॥ ३८ ॥

ब्रह्मोवाच।

एवं संचिन्तयन्विप्रः प्लवमानो विचेतनः।
त्राणार्थं विह्वलश्चासौ निर्विंदं गतवांस्तदा ॥ ३९ ॥
ततो बालार्कसंकाशं स्वमहिम्ना व्यवस्थितम्।
सर्वतेजोमयं विप्रो न शशाकाभिवीक्षितुम् ॥ ४० ॥
दृष्ट्वा तं मुनिमायान्तं स बालः प्रहसन्निव।
प्रोवाच मुनिशार्दूलास्तदा मेघौघनिस्वनः ॥ ४१ ॥

श्रीभगवानुवाच।

वत्स जानामि श्रान्तं त्वा त्राणार्थं मामुपस्थितम्।
शरीरं विश मे क्षिप्रं विश्रामस्ते मयोदितः ॥ ४२ ॥

ब्रह्मोवाच।

श्रुत्वा स वचनं तस्य किंचिन्नोवाच मोहितः।
विवेश वदनं तस्य विवृतं चावशो मुनिः ॥ ४३ ॥

इति श्रीमहापुराणे ब्राह्मे स्वयम्भूऋषिसंवादे मार्कण्डेयप्रलयदर्शनं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

श्लोकानामादितः समष्ट्यङ्काः—३६८४

अथ चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

मार्कण्डेयाख्यानम्

ब्रह्मोवाच ।

स प्रविश्योदरे तस्य बालस्य मुनिसत्तमः ।
ददर्श पृथिवीं कृत्स्नां नानाजनपदैर्वृताम् ॥ १ ॥
लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलोदधीन् ।
ददर्श तान्समुद्रांश्च जम्बुं प्लक्षं च शाल्मलम् ॥ २ ॥
कुशं क्रौञ्चं च शाकं च पुष्करं च ददर्श सः ।
भारतादीनि वर्षाणि तथा सर्वांश्च पर्वतान् ॥ ३ ॥
मेरुं च सर्वरत्नाढ्यमपश्यत्कनकाचलम् ।
नानारत्नान्वितैः शृङ्गैर्भूषितं बहुकन्दरम् ॥ ४ ॥
नानामुनिजनाकीर्णं नानावृक्षवनाकुलम् ।
नानासत्त्वसमायुक्तं नानाश्चर्यसमन्वितम् ॥ ५ ॥
व्याघ्रैः सिंहैर्वराहैश्च चामरैर्महिषैर्गजैः ।
मृगैः शाखामृगैश्चान्यैर्भूषितं सुमनोहरम् ॥ ६ ॥
शक्राद्यैर्विविधैर्देवैः सिद्धचारणपन्नगैः ।
मुनियक्षाप्सरोभिश्च वृतैश्चान्यैः सुरासुरैः ॥ ७ ॥

[ब्रह्मोवाच] ।

एवं सुमेरुं श्रीमन्तमपश्यन्मुनिसत्तमः ।
पर्यटन्स तदा विप्रस्तस्य बालस्य चोदरे ॥

हिमवन्तं हेमकूटं निषधं गन्धमादनम्।
श्वेतं च दुर्धरं नीलं कैलासं मन्दरं गिरिम्॥ ९॥
महेन्द्रं मलयं विन्ध्यं पारियात्रं तथाऽर्बुदम्।
सह्यं च शुक्तिमन्तं च मैनाकं वज्रपर्वतम्॥ १०॥
एताश्चान्याश्च बहवो यावन्तः पृथिवीधराः।
तत्रस्तांस्तु मुनिश्रेष्ठाः सोऽपश्यद्रत्नभूषितान्॥ ११॥
कुरुक्षेत्रं च पाञ्चालान्मत्स्यामद्रान्सकेकयान्।
बाह्लीकाञ्शूरसेनांश्च काश्मीरांस्तङ्गणान्खसान्॥ १२॥
पार्वतीयान्किरातांश्च कर्णप्रावरणान्मरून्।
अन्त्यजानन्त्यजातींश्च सोऽपश्यत्तस्य चोदरे॥ १३॥
मृगाञ्छाखामृगान्सिंहान्वराहान्सृमराञ्छशान्।
गजांश्चान्यांस्तथा सत्त्वान्सोऽपश्यत्तस्य चोदरे॥ १४॥
पृथिव्यां यानि तीर्थानि ग्रामांश्च नगराणि च।
कृषिगोरक्षवाणिज्यं क्रयविक्रयणं तथा॥ १५॥
शक्रादीन्विबुधाञ्छ्रेष्ठांस्तथाऽन्यांश्च दिवौकसः।
गन्धर्वाप्सरसो यक्षानृषींश्चैव सनातनान्॥ १६॥
दैत्यदानवसंघाश्च नागांश्च मुनिसत्तमाः।
सिंहिकातनयांश्चैव ये चान्ये सुरशत्रवः॥ १७॥
यत्किंचित्तेन लोकेऽस्मिन्दृष्टपूर्वं चराचरम्।
अपश्यत्स तदा सर्वं तस्य कुक्षौ द्विजोत्तमाः॥ १८॥
अथवा किं बहूक्तेन कीर्तितेन पुनः पुनः।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं यत्किंचित्सचराचरम्॥ १९॥

भूर्लोकं च भुवर्लोकं स्वर्लोकं च द्विजोत्तमाः ।
महर्जनस्तपः सत्यमतलं वितलं तथा ॥ २० ॥
पातालं सुतलं चैव वितलं च रसातलम् ।
महातलं च ब्रह्माण्डमपश्यत्तस्य चोदरे ॥ २१ ॥
अव्याहता गतिस्तस्य तदाऽभूद्द्विजसत्तमाः ।
प्रसादात्तस्य देवस्य स्मृतिलोपश्च नाभवत् ॥ २२ ॥
भ्रममाणस्तदा कुक्षौ कृत्स्नं जगदिदं द्विजाः ।
नान्तं जगाम देहस्य तस्य विष्णोः कदाचन ॥ २३ ॥
यदाऽसौ नाऽऽगतश्चान्तं तस्य देहस्य भो द्विजाः ।
तदा तं वरदं देवं शरणं गतवान्मुनिः ॥ २४ ॥
ततोऽसौ सहसा विप्रा वायुवेगेन निःसृतः ।
महात्मनो मुखात्तस्य विवृतात्पुरुषस्य सः ॥ २५ ॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भूऋषिसंवादे मार्कण्डेयस्य भगवत्कुक्षिपरिवर्तनं नाम चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥
आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः—३७०६

अथ पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

मार्कण्डेयाख्यानम्

ब्रह्मोवाच ।

स निष्क्रम्योदरात्तस्य बालस्य मुनिसत्तमाः ।
पुनश्चैकार्णवामुर्वीमपश्यज्जनवर्जिताम् ॥ १ ॥

पूर्वदृष्टं च तं देवं ददर्श शिशुरूपिणम् ।
शाखायां वटवृक्षस्य पर्यङ्कोपरि संस्थितम् ॥ २ ॥
श्रीवत्सवक्षसं देवं पीतवस्त्रं चतुर्भुजम् ।
जगदादाय तिष्ठन्तं पद्मपत्रायतेक्षणम् ॥ ३ ॥
सोऽपि तं मुनिमायान्तं प्लवमानमचेतनम् ।
दृष्ट्वा मुखाद्विनिष्क्रान्तं प्रोवाच प्रहसन्निव ॥ ४ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

कच्चित्त्वयोषितं वत्स विश्रान्तं च ममोदरे ।
भ्रममाणश्च किं तत्र आश्चर्यं दृष्टवानसि ॥ ५ ॥
भक्तोऽसि मे मुनिश्रेष्ठ श्रान्तोऽसि च ममाऽऽश्रितः ।
तेन त्वामुपकाराय संभाषे पश्य मामिह ॥ ६ ॥

ब्रह्मोवाच ।

श्रुत्वा तु वचनं तस्य संप्रहृष्टतनूरुहः ।
ददर्श तं सुदुष्प्रेक्ष रत्नैर्दिव्यैरलंकृतम् ॥ ७ ॥
प्रसन्ना निर्मला दृष्टिर्मुहूर्तात्तस्य भो द्विजाः ।
प्रसादात्तस्य देवस्य प्रादुर्भूता पुनर्नवा ॥ ८ ॥
रक्ताङ्गुलितलौ पादौ ततस्तस्य सुरार्चितौ ।
प्रणम्य शिरसा विप्रा हर्षगद्गदया गिरा ॥ ९ ॥
कृताञ्जलिस्तदा हृष्टो विस्मितश्च पुनः पुनः ।
दृष्ट्वा तं परमात्मानं संस्तोतुमुपचक्रमे ॥ १० ॥

मार्कण्डेय उवाच ।

देवदेव जगन्नाथ मायाबालवपुर्धर ।
त्राहि मां चारुपद्माक्ष दुःखितं शरणागतम् ॥ ११ ॥

संतप्तोऽस्मि सुरश्रेष्ठ संवर्ताख्येन वह्निना।
अङ्गारवर्षभीतं च त्राहि मां पुरुषोत्तम ॥ १२ ॥
शोषितश्च प्रचण्डेन वायुना जगदायुना।
विह्वलोऽहं तथा श्रान्तस्त्राहि मां पुरुषोत्तम ॥ १३ ॥
तापितश्च तथात्यर्थं (?) प्रलयावर्तकादिभिः।
न शान्तिमधिगच्छामि त्राहि मां पुरुषोत्तम ॥ १४ ॥
तृषितश्च क्षुधाऽऽविष्टो दुःखितश्च जगत्पते।
त्रातारं नात्र पश्यामि त्राहि मां पुरुषोत्तम ॥ १५ ॥
अस्मिन्नेकार्णवे घोरे विनष्टे सचराचरे।
न चान्तमधिगच्छामि त्राहि मां पुरुषोत्तम ॥ १६ ॥
तवोदरे च देवेश मया दृष्टं चराचरम्।
विस्मितोऽहं विषण्णश्च त्राहि मां पुरुषोत्तम ॥ १७ ॥
संसारेऽस्मिन्निरालम्बे प्रसीद पुरुषोत्तम।
प्रसीद विबुधश्रेष्ठ प्रसीद विबुधप्रिय ॥ १८ ॥
प्रसीद विबुधां नाथ प्रसीद विबुधालय।
प्रसीद सर्वलोकेश जगत्कारणकारण ॥ १९ ॥
प्रसीद सर्वकृद्देव प्रसीद मम भूधर।
प्रसीद सलिलावास प्रसीद मधुसूदन ॥ २० ॥
प्रसीद कमलाकान्त प्रसीद त्रिदशेश्वर।
प्रसीद कंसकेशिघ्न प्रसीदारिष्टनाशन ॥ २१ ॥
प्रसीद कृष्ण दैत्यघ्न प्रसीद दनुजान्तक।
प्रसीद मथुरावास प्रसीद यदुनन्दन ॥ २२ ॥

प्रसीद शक्रावरज प्रसीद वरदाव्यय।
त्वं मही त्वं जलं देव त्वमग्निस्त्वं समीरणः ॥ २३ ॥
त्वं नभस्त्वं मनश्चैव त्वमहंकार एव च।
त्वं बुद्धिः प्रकृतिश्चैव सत्त्वाद्यास्त्वं जगत्पते ॥ २४ ॥
पुरुषस्त्वं जगद्व्यापी पुरुषादपि चोत्तमः।
त्वमिन्द्रियाणि सर्वाणि शब्दाद्या विषयाः प्रभो ॥ २५ ॥
त्वं दिक्पालाश्च धर्माश्च वेदा यज्ञाः सदक्षिणाः।
त्वमिन्द्रस्त्वं शिवो देवस्त्वं हविस्त्वं हुताशनः ॥ २६ ॥
त्वं यमः पितृराट्‌देव त्वं रक्षोधिपतिः स्वयम्।
वरुणस्त्वमपां नाथ त्वं वायुस्त्वं धनेश्वरः ॥ २७ ॥
त्वमीशानस्त्वमनन्तस्त्वं गणेशश्च षण्मुखः।
वसवस्त्वं तथा रुद्रास्त्वमादित्याश्च खेचराः ॥ २८ ॥
दानवास्त्वं तथा यक्षास्त्वं दैत्याः समरुद्गणाः।
सिद्धाश्चाप्सरसो नागा गन्धर्वास्त्वं सचारणाः ॥ २९ ॥
पितरो वालखिल्याश्च प्रजानां पतयोऽच्युत।
मुनयस्त्वमृषिगणास्त्वमश्विनौ निशाचराः ॥ ३० ॥
अन्याश्च जातयस्त्वं हि यत्किंचिज्जीवसंज्ञितम्।
किंचात्र बहुनोक्तेन ब्रह्मादिस्तम्बगोचरम् ॥ ३१ ॥
भूतं भव्यं भविष्यं च त्वं जगत्सचराचरम्।
यत्ते रूपं परं देव कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥ ३२ ॥
ब्रह्माद्यास्तन्न जानन्ति कथमन्येऽल्पमेधसः।
देव शुद्धस्वभावोऽसि नित्यस्त्वं प्रकृतेः परः ॥ ३३ ॥

अव्यक्त शाश्वतोऽनन्त सर्वव्यापी महेश्वर ।
त्वमाकाश पर शान्तो अजस्त्व विभुरव्यय ॥ ३४ ॥
एव त्वा निर्गुण स्तोतु क शक्नोति निरञ्जन ।
स्तुतोऽसि यन्मया देव विकलेनाल्पचेतसा ॥
तत्सर्वं देवदेवेश क्षन्तुमर्हसि चाव्यय ॥ ३५ ॥
ति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भुऋषिसंवादे भगवत्स्तव-
निरूपण नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥ ५५ ॥
श्लोकानामादित समष्ट्यङ्का —३७४४

अथ षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

विस्तरेण विष्णुमार्कण्डेयसंवादकथनम्

ब्रह्मोवाच ।

इत्थ स्तुतस्तदा तेन मार्कण्डेयेन भो द्विजा ।
प्रीत प्रोवाच भगवान्मेघगम्भीरया गिरा ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

ब्रूहि काम मुनिश्रेष्ठ यत्ते मनसि वर्तते ।
ददामि सर्वं विप्रर्षे मत्तो यदभिवाञ्छसि ॥ २ ॥

ब्रह्मोवाच ।

श्रुत्वा स वचन विप्रा शिशोस्तस्य महात्मन. ।
उवाच परमप्रीतो मुनिस्तद्गतमानस ॥ ३ ॥

मार्कण्डेय उवाच ।

ज्ञातुमिच्छामि देव त्वां मायां वै तव चोत्तमाम् ।
त्वत्प्रसादाच्च देवेश स्मृतिर्न परिहीयते ॥ ४ ॥
द्रुतमन्तः शरीरेण सततं पर्य(रि)वर्तितम् ।
इच्छामि पुण्डरीकाक्ष ज्ञातुं त्वामहमव्ययम् ॥ ५ ॥
इह भूत्वा शिशुः साक्षात्किं भवानवतिष्ठते ।
पीत्वा जगदिदं सर्वमेतदाख्यातुमर्हसि ॥ ६ ॥
किमर्थं च जगत्सर्वं शरीरस्थं तवाऽनघ ।
कियन्तं च त्वया कालमिह स्थेयमरिंदम ॥ ७ ॥
ज्ञातुमिच्छामि देवेश ब्रूहि सर्वमशेषतः ।
त्वत्तः कमलपत्राक्ष विस्तरेण यथातथम् ॥
महदेतदचिन्त्यं च यदहं दृष्टवान्प्रभो ॥ ८ ॥

ब्रह्मोवाच ।

इत्युक्तः स तदा तेन देवदेवो महाद्युतिः ।
सान्त्वयन्स तदा वाक्यमुवाच वदतां वरः ॥ ९ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

कामं देवाश्च मां विप्र नहि जानन्ति तत्त्वतः ।
तव प्रीत्या प्रवक्ष्यामि यथेदं विसृजाम्यहम् ॥ १० ॥
पितृभक्तोऽसि विप्रर्षे मामेव शरणं गतः ।
ततो दृष्टोऽसि मे साक्षाद्ब्रह्मचर्यं च ते महत् ॥ ११ ॥
आपो नारा इति पुरा संज्ञाकर्म कृतं मया ।
तेन नारायणोऽस्म्युक्तो मम तास्त्वयनं सदा ॥ १२ ॥

अहं नारायणो नाम प्रभवः शाश्वतोऽव्ययः।
विधाता सर्व भूतानां संहर्ता च द्विजोत्तम ॥ १३ ॥
अहं विष्णुरहं ब्रह्मा शक्रश्चापि सुराधिपः।
अहं वैश्रवणो राजा यमः प्रेताधिपस्तथा ॥ १४ ॥
अहं शिवश्च सोमश्च कश्यपश्च प्रजापतिः।
अहं धाता विधाता च यज्ञश्चाहं द्विजोत्तम ॥ १५ ॥
अग्निरास्यं क्षितिः पादौ चन्द्रादित्यौ च लोचने।
द्यौर्मूर्धा खं दिशः श्रोत्रे तथाऽऽपः स्वेदसंभवाः ॥ १६ ॥
सदिशं च नभः कायो वायुर्मनसि मे स्थितः।
मया क्रतुशतैरिष्टं बहुभिश्चाऽऽसदक्षिणैः ॥ १७ ॥
यजन्ते वेदविदुषो मां देवयजने स्थितम्।
पृथिव्यां क्षत्रियेन्द्राश्च पार्थिवाः स्वर्गकाङ्क्षिणः ॥ १८ ॥
यजन्ते मां तथा वैश्याः स्वर्गलोकजिगीषवः।
चतुःसमुद्रपर्यन्तां मेरुमन्दरभूषणाम् ॥ १९ ॥
शेषो भूत्वाऽहमेको हि धारयामि वसुंधराम्।
वाराहं रूपमास्थाय ममेयं जगती पुरा ॥ २० ॥
मज्जमाना जले विप्र वीर्येणास्मि समुद्धृता।
अग्निश्च वाडवो विप्र भूत्वाऽहं द्विजसत्तम ॥ २१ ॥
पिबाम्यपः समाविष्टस्ताश्चैव विसृजाम्यहम्।
ब्रह्म वक्त्रं भुजौ क्षत्रमूरू मे संश्रिता विशः ॥ २२ ॥
पादौ शूद्रा भवन्तीमे विक्रमेण क्रमेण च।
ऋग्वेदः सामवेदश्च यजुर्वेदस्त्वथर्वणः ॥ २३ ॥

मत्तः प्रादुर्भवन्त्येते मामेव प्रविशन्ति च ।
यतयः शान्तिपरमा यतात्मानो बुभुत्सवः ॥ २४ ॥
कामक्रोधद्वेषमुक्ता निःसङ्गा वीतकल्मषाः ।
सत्त्वस्था निरहंकारा नित्यमध्यात्मकोविदाः ॥ २५ ॥
मामेव सततं विप्राश्चिन्तयन्त उपासते ।
अहं संवर्तको ज्योतिरहं संवर्तकोऽनलः ॥ २६ ॥
अहं संवर्तकः सूर्यस्त्वहं संवर्तकोऽनिलः ।
तारारूपाणि दृश्यन्ते यान्येतानि नभस्तले ॥ २७ ॥
मम वै रोमकूपाणि विद्धि त्वं द्विजसत्तम ।
रत्नाकराः समुद्राश्च सर्व एव चतुर्दिशः ॥ २८ ॥
वसनं शयनं चैव निलयं चैव विद्धि मे ।
कामः क्रोधश्च हर्षश्च भयं मोहस्तथैव च ॥ २९ ॥
ममैव विद्धि रूपाणि सर्वाण्येतानि सत्तम ।
प्राप्नुवन्ति नरा विप्र यत्कृत्वा कर्म शोभनम् ॥ ३० ॥
सत्यं दानं तपश्चोग्रमहिंसा सर्वजन्तुषु ।
मद्विधानेन विहिता मम देहविचारिणः ॥ ३१ ॥
मयाऽभिभूतविज्ञाना विचेष्टन्ते न कामतः ।
सम्यग्वेदमधीयाना यजन्तो विविधैर्मखैः ॥ ३२ ॥
शान्तात्मानो जितक्रोधाः प्राप्नुवन्ति द्विजातयः ।
प्राप्तुं शक्यो न यो विप्र नरैर्दुष्कृतकर्मभिः ॥ ३३ ॥
लोभाभिभूतैः कृपणैरनार्यैरकृतात्मभिः ।
तन्मां महाफलं विद्धि नराणां भावितात्मनाम् ॥ ३४ ॥

सुदुष्प्रापं विमूढानां मां कुयोगनिषेविणाम् ।
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति सत्तम ॥ ३५ ॥
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् ।
दैत्या हिंसानुरक्ताश्च अवध्याः सुरसत्तमैः ॥ ३६ ॥
राक्षसाश्चापि लोकेऽस्मिन्यदोत्पत्स्यन्ति दारुणाः ।
तदाऽहं संप्रसूयामि गृहेषु पुण्यकर्मणाम् ॥ ३७ ॥
प्रविष्टो मानुषं देहं सर्वं प्रशमयाम्यहम् ।
सृष्ट्वा देवमनुष्यांश्च गन्धर्वोरगराक्षसान् ॥ ३८ ॥
स्थावराणि च भूतानि संहराम्यात्ममायया ।
कर्मकाले पुनर्देहमनुचिन्त्य सृजाम्यहम् ॥ ३९ ॥
आविश्य मानुषं देहं मर्यादाबन्धकारणात् ।
श्वेतः कृतयुगे धर्मः श्यामस्त्रेतायुगे मम ॥ ४० ॥
रक्तो द्वापरमासाद्य कृष्णः कलियुगे तथा ।
त्रयो भागा ह्यधर्मस्य तस्मिन्काले भवन्ति च ॥ ४१ ॥
अन्तकाले च संप्राप्ते कालो भूत्वाऽतिदारुणः ।
त्रैलोक्यं नाशयाम्येकः सर्वं स्थावरजङ्गमम् ॥ ४२ ॥
अहं त्रिधर्मा विश्वात्मा सर्वलोकसुखावहः ।
अभिन्नः सर्वगोऽनन्तो हृषीकेश उरुक्रमः ॥ ४३ ॥
कालचक्रं नयाम्येको ब्रह्मरूपं ममैव तत् ।
शमनं सर्वभूतानां सर्वभूतकृतोद्यमम् ॥ ४४ ॥
एवं प्रणिहितः सम्यङ्ममाऽऽत्मा मुनिसत्तम ।
सर्वभूतेषु विप्रेन्द्र न च मां वेत्ति कश्चन ॥ ४५ ॥

सुदुष्प्रापं विमूढानां मां कुयोगनिषेविणाम् ।
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति सत्तम ॥ ३५ ॥
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् ।
दैत्या हिंसानुरक्ताश्च अवध्याः सुरसत्तमैः ॥ ३६ ॥
राक्षसाश्चापि लोकेऽस्मिन्यदोत्पत्स्यन्ति दारुणाः ।
तदाऽहं संप्रसूयामि गृहेषु पुण्यकर्मणाम् ॥ ३७ ॥
प्रविष्टो मानुषं देहं सर्वं प्रशमयाम्यहम् ।
सृष्ट्वा देवमनुष्यांश्च गन्धर्वोरगराक्षसान् ॥ ३८ ॥
स्थावराणि च भूतानि संहराम्यात्ममायया ।
कर्मकाले पुनर्देहमनुचिन्त्य सृजाम्यहम् ॥ ३९ ॥
आविश्य मानुषं देहं मर्यादाबन्धकारणात् ।
श्वेतः कृतयुगे धर्मः श्यामस्त्रेतायुगे मम ॥ ४० ॥
रक्तो द्वापरमासाद्य कृष्णः कलियुगे तथा ।
त्रयो भागा ह्यधर्मस्य तस्मिन्काले भवन्ति च ॥ ४१ ॥
अन्तकाले च संप्राप्ते कालो भूत्वाऽतिदारुणः ।
त्रैलोक्यं नाशयाम्येकः सर्वं स्थावरजङ्गमम् ॥ ४२ ॥
अहं त्रिधर्मा विश्वात्मा सर्वलोकसुखावहः ।
अभिन्नः सर्वगोऽनन्तो हृषीकेश उरुक्रमः ॥ ४३ ॥
कालचक्रं नयाम्येको ब्रह्मरूपं ममैव तत् ।
शमनं सर्वभूतानां सर्वभूतकृतोद्यमम् ॥ ४४ ॥
एवं प्रणिहित सम्यङ्ममाऽऽत्मा मुनिसत्तम ।
सर्वभूतेषु विप्रेन्द्र न च मां वेत्ति कश्चन ॥ ४५ ॥

मत्तः प्रादुर्भवन्त्येते मामेव प्रविशन्ति च।
यतयः शान्तिपरमा यतात्मानो बुभुत्सवः ॥ २४ ॥
कामक्रोधद्वेषमुक्ता निःसङ्गा वीतकल्मषाः।
सत्त्वस्था निरहंकारा नित्यमध्यात्मकोविदाः ॥ २५ ॥
मामेव सततं विप्राश्चिन्तयन्त उपासते।
अहं संवर्तको ज्योतिरहं संवर्तकोऽनलः ॥ २६ ॥
अहं संवर्तकः सूर्यस्त्वहं संवर्तकोऽनिलः।
तारारूपाणि दृश्यन्ते यान्येतानि नभस्तले॥ २७ ॥
मम वै रोमकूपाणि विद्धि त्वं द्विजसत्तम।
रत्नाकराः समुद्राश्च सर्व एव चतुर्दिशः ॥ २८ ॥
वसनं शयनं चैव निलयं चैव विद्धि मे।
कामः क्रोधश्च हर्षश्च भयं मोहस्तथैव च ॥ २९ ॥
ममैव विद्धि रूपाणि सर्वाण्येतानि सत्तम।
प्राप्नुवन्ति नरा विप्र यत्कृत्वा कर्म शोभनम् ॥ ३० ॥
सत्यं दानं तपश्चोग्रमहिंसां सर्वजन्तुषु।
मद्विधानेन विहिता मम देहविचारिणः ॥ ३१ ॥
मयाऽभिभूतविज्ञानाश्चेष्टयन्ति न कामतः।
सम्यग्वेदमधीयाना यजन्तो विविधैर्मखैः ॥ ३२ ॥
शान्तात्मानो जितक्रोधाः प्राप्नुवन्ति द्विजातयः।
प्राप्तुं शक्यो न चैवाहं नरैर्दुष्कृतकर्मभिः ॥ ३३ ॥
लोभाभिभूतैः कृपणैरनार्यैरकृतात्मभिः।
तन्मां महाफलं विद्धि नराणां भावितात्मनाम् ॥ ३४ ॥

सुदुष्प्रापं विमूढानां मां कुयोगनिषेविणाम्।
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति सत्तम ॥ ३५ ॥
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम्।
दैत्या हिंसानुरक्ताश्च अवध्याः सुरसत्तमैः ॥ ३६ ॥
राक्षसाश्चापि लोकेऽस्मिन्यदोत्पत्स्यन्ति दारुणाः।
तदाऽहं संप्रसूयामि गृहेषु पुण्यकर्मणाम् ॥ ३७ ॥
प्रविष्टो मानुषं देहं सर्वं प्रशमयाम्यहम्।
सृष्ट्वा देवमनुष्यांश्च गन्धर्वोरगराक्षसान् ॥ ३८ ॥
स्थावराणि च भूतानि संहराम्यात्ममायया।
कर्मकाले पुनर्देहमनुचिन्त्य सृजाम्यहम् ॥ ३९ ॥
आविश्य मानुषं देहं मर्यादाबन्धकारणात्।
श्वेतः कृतयुगे धर्मः श्यामस्त्रेतायुगे मम ॥ ४० ॥
रक्तो द्वापरमासाद्य कृष्णः कलियुगे तथा।
त्रयो भागा ह्यधर्मस्य तस्मिन्काले भवन्ति च ॥ ४१ ॥
अन्तकाले च संप्राप्ते कालो भूत्वाऽतिदारुणः।
त्रैलोक्यं नाशयाम्येकः सर्वं स्थावरजङ्गमम् ॥ ४२ ॥
अहं त्रिधर्मा विश्वात्मा सर्वलोकसुखावहः।
अभिन्नः सर्वगोऽनन्तो हृषीकेश उरुक्रमः ॥ ४३ ॥
कालचक्रं नयाम्येको ब्रह्मरूपं ममैव तत्।
शमनं सर्वभूतानां सर्वभूतकृतोद्यमम् ॥ ४४ ॥
एवं प्रणिहितः सम्यङ्मयाऽऽत्मा मुनिसत्तम।
सर्वभूतेषु विप्रेन्द्र न च मां वेत्ति कश्चन ॥ ४५ ॥

सर्वलोके च ये भक्ताः पूजयन्ति च सर्वशः ।
यच्च किंचित्त्वया प्राप्तं मयि क्लेशात्मकं द्विज ॥ ४६ ॥
सुखोदयाय तत्सर्वं श्रेयसे च तवानघ ।
यच्च किंचित्त्वया लोके दृष्टं स्थावरजङ्गमम् ॥ ४७ ॥
विहितः सर्व एवासौ मयाऽऽत्मा भूतभावन ।
अहं नारायणो नाम शङ्खचक्रगदाधरः ॥ ४८ ॥
यावद्युगानां विप्रर्षे सहस्रं परिवर्तते ।
तावत्स्वपिमि विश्वात्मा सर्वविश्वानि मोहयन् ॥ ४९ ॥
एवं सर्वमहं कालमिहाऽऽसे मुनिसत्तम ।
अशिशुः शिशुरूपेण यावद्ब्रह्मा न बुध्यते ॥ ५० ॥
मया च दत्तो विप्रेन्द्र वरस्ते ब्रह्मरूपिणा ।
असकृत्परितुष्टेन विप्रर्षिगणपूजित ॥ ५१ ॥
सर्वमेकार्णवं कृत्वा नष्टे स्थावरजङ्गमे ।
निर्गतोऽसि मयाऽऽज्ञातस्ततस्ते दर्शितं जगत् ॥ ५२ ॥
अभ्यन्तरं शरीरस्य प्रविष्टोऽसि यदा मम ।
दृष्ट्वा लोकं समस्तं हि विस्मितो नावबुध्यसे ॥ ५३ ॥
ततोऽसि वक्त्राद्विप्र द्रुतं निःसारितो मया ।
आख्यातस्ते मया चाऽऽत्मा दुर्ज्ञेयो हि सुरासुरैः ॥ ५४ ॥
यावत्स भगवान्ब्रह्मा न बुध्येत महातपाः ।
तावत्त्वमिह विप्रर्षे विस्रब्धश्चर वै सुखम् ॥ ५५ ॥
ततो विबुद्धे तस्मिंस्तु सर्वलोकपितामहे ।
एको भूतानि स्रक्ष्यामि शरीराणि द्विजोत्तम ॥ ५६ ॥

आकाशं पृथिवीं ज्योतिर्वायुः सलिलमेव च ।
लोके यच्च भवेत्किंचिदिह स्थावरजङ्गमम् ॥ ५७ ॥

ब्रह्मोवाच ।

एवमुक्त्वा तदा विप्राः पुनस्तं प्राह माधवः ।
पूर्णे युगसहस्रे तु मेघगम्भीरनिस्वनः ॥ ५८ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

मुने ब्रूहि यदर्थं मां स्तुतवान्परमार्थतः ।
वरं वृणीष्व यच्छ्रेष्ठं ददामि नचिरादहम् ॥ ५९ ॥
आयुष्मानसि देवानां मद्भक्तोऽसि दृढव्रतः ।
तेन त्वमसि विप्रेन्द्र पुनर्दीर्घायुराप्नुहि ॥ ६० ॥

ब्रह्मोवाच ।

श्रुत्वा वाणीं शुभां तस्य विलोक्य स तदा पुनः ।
मूर्ध्ना निपत्य सहसा प्रणम्य पुनरब्रवीत् ॥ ६१ ॥

मार्कण्डेय उवाच ।

दृष्टं परं हि देवेश तव रूपं द्विजोत्तम ।
मोहोऽयं विगतः सत्यं त्वयि दृष्टे तु मे हरे ॥ ६२ ॥
एवमेवमहं नाथ इच्छेयं त्वत्प्रसादतः ।
लोकानां च हितार्थाय नानाभावप्रशान्तये ॥ ६३ ॥
शैवभागवतानां च वादार्थप्रतिषेधकम् ।
अस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये निर्मले पुरुषोत्तमे ॥ ६४ ॥
शिवस्याऽऽयतनं देव करोमि परमं महत् ।
प्रतिष्ठेय तथा तत्र तव स्थाने च शंकरम् ॥ ६५ ॥

ततो ख्यास्यन्ति लोकेऽस्मिन्नेकमूर्तौ हरीश्वरौ।
प्रत्युवाच जगन्नाथः स पुनस्तं महामुनिम् ॥ ६६ ॥

श्रीभगवानुवाच।

यदेतत्परमं देवं कारणं भुवनेश्वरम्।
लिङ्गमाराधनार्थाय नानाभावप्रशान्तये ॥ ६७ ॥
ममाऽऽदिष्टेन विप्रेन्द्र कुरु शीघ्रं शिवालयम्।
तत्प्रभावाच्छिवलोके तिष्ठ त्वं च तथाऽक्षयम् ॥ ६८ ॥
शिवे संस्थापिते विप्र मम संस्थापनं भवेत्।
नाऽऽवयोरन्तरं किंचिदेकभावौ द्विधा कृतौ ॥ ६९ ॥
यो रुद्रः स स्वयं विष्णुर्यो विष्णुः स महेश्वरः।
उभयोरन्तरं नास्ति पवनाकाशयोरिव ॥ ७० ॥
मोहितो नाभिजानाति य एव गरुडध्वजः।
वृषध्वजः स एवेति त्रिपुरघ्नं त्रिलोचनम् ॥ ७१ ॥
तव नामाङ्कितं तस्मात्कुरु विप्र शिवालयम्।
उत्तरे देवदेवस्य कुरु तीर्थं सुशोभनम् ॥ ७२ ॥
मार्कण्डेयह्रदो नाम नरलोकेषु विश्रुतः।
भविष्यति द्विजश्रेष्ठ सर्वपापप्रणाशनः ॥ ७३ ॥

ब्रह्मोवाच।

इत्युक्त्वा स तदा देवस्तत्रैवान्तरधीयत।
मार्कण्डेयं मुनिश्रेष्ठाः सर्वव्यापी जनार्दनः ॥ ७४ ॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभूऋषिसंवादे मार्कण्डेयस्य श्रीभगवद्दर्शनं नाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः—३८१७

अथ सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

पञ्चतीर्थविधिवर्णनम्

ब्रह्मोवाच ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि पञ्चतीर्थविधिं द्विजाः ।
यत्फलं स्नानदानेन देवताप्रेक्षणेन च ॥ १ ॥
मार्कण्डेयह्रदं गत्वानरश्चोदङ्मुखः शुचिः ।
निमज्जेत्तत्र वारांस्त्रीनिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥ २ ॥
संसारसागरे मग्नं पापग्रस्तमचेतनम् ।
त्राहि मां भगनेत्रघ्न त्रिपुरारे नमोऽस्तु ते ॥ ३ ॥
नमः शिवाय शान्ताय सर्वपापहराय च ।
स्नानं करोमि देवेश मम नश्यतु पातकम् ॥ ४ ॥
नाभिमात्रे जले स्नात्वा विधिवद्देवता ऋषीन् ।
तिलोदकेन मतिमान्पितॄन्स्वान्यांश्च तर्पयेत् ॥ ५ ॥
स्नात्वा तथैव चाऽऽचम्य ततोगच्छेच्छिवालयम् ।
प्रविश्य देवतागारं कृत्वा तं त्रि प्रदक्षिणम् ॥ ६ ॥
मूलमन्त्रेण संपूज्य मार्कण्डेयस्य चेश्वरम् ।
अघोरेण च भो विप्राः प्रणिपत्य प्रसादयेत् ॥ ७ ॥
त्रिलोचन नमस्तेऽस्तु नमस्ते शशिभूषण ।
त्राहि मां त्वं विरूपाक्ष महादेव नमोऽस्तु ते ॥ ८ ॥
मार्कण्डेयह्रदे त्वेवं स्नात्वा दृष्ट्वा च शंकरम् ।
दशानामश्वमेधानां फलं प्राप्नोति मानवः ॥ ९ ॥

पापैः सर्वैर्विनिर्मुक्तः शिवलोकं स गच्छति ।
तत्र भुक्त्वा वरान्भोगान्यावदाभूतसंप्लवम् ॥ १० ॥
इहलोकं समासाद्य भवेद्विप्रो बहुश्रुतः ।
शांकरं योगमासाद्य ततोमोक्षमवाप्नुयात् ॥ ११ ॥
कल्पवृक्षं ततो गत्वा कृत्वा तं त्रिः प्रदक्षिणम् ।
पूजयेत्परया भक्त्या मन्त्रेणानेन तं वटम् ॥ १२ ॥
ओं नमो व्यक्तरूपाय महाप्रलयकारिणे ।
महद्रसोपविष्टाय न्यग्रोधाय नमोऽस्तु ते ॥ १३ ॥
अमरस्त्वं सदा कल्पे हरेश्चाऽऽयतनं वट ।
न्यग्रोध हर मे पापं कल्पवृक्ष नमोऽस्तु ते ॥ १४ ॥
भक्त्या प्रदक्षिणं कृत्वा नत्वा कल्पवटं नरः ।
सहसा मुच्यते पापाज्जीर्णत्वच इवोरगः ॥ १५ ॥
छायां तस्य समाक्रम्य कल्पवृक्षस्य भो द्विजाः ।
ब्रह्महत्यां नरो जह्यात्पापेष्वन्येषु का कथा ॥ १६ ॥
दृष्ट्वा कृष्णाङ्गसंभूतं ब्रह्मतेजोमयं परम् ।
न्यग्रोधाकृतिकं विष्णुं प्रणिपत्य च भो द्विजाः ॥ १७ ॥
राजसूयाश्वमेधाभ्यां फलं प्राप्नोति चाधिकम् ।
तथा स्ववंशमुद्धृत्य विष्णुलोकं स गच्छति ॥ १८ ॥
वैनतेयं नमस्कृत्य कृष्णस्य पुरतः स्थितम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तस्ततो विष्णुपुरं व्रजेत् ॥ १९ ॥
दृष्ट्वा वटं वैनतेयं यः पश्येत्पुरुषोत्तमम् ।
संकर्षणं सुभद्रां च स याति परमां गतिम् ॥ २० ॥

प्रविश्याऽऽयतनं विष्णोः कृत्वा तं त्रिः प्रदक्षिणम् ।
संकर्षणं स्वमन्त्रेण भक्त्याऽऽपूज्यप्रसादयेत् ॥ २१ ॥
नमस्ते हलधृग्राम नमस्ते मुशलायुध ।
नमस्ते रेवतीकान्त नमस्ते भक्तवत्सल ॥ २२ ॥
नमस्ते बलिनां श्रेष्ठ नमस्ते धरणीधर ।
प्रलम्बारे नमस्तेऽस्तु त्राहि मां कृष्णपूर्वज ॥ २३ ॥
एवं प्रसाद्य चानन्तमजेयं त्रिदशार्चितम् ।
कैलासशिखराकारं चन्द्रात्कान्ततराननम् ॥ २४ ॥
नीलवस्त्रधरं देवं फणाविकटमस्तकम् ।
महाबलं हलधरं कुण्डलैकविभूषितम् ॥ २५ ॥
रौहिणेयं नरो भक्त्या लभेदभिमतं फलम् ।
सर्वपापैर्विनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ २६ ॥
आभूतसंप्लवं यावद्भुक्त्वा तत्र सुखं नरः ।
पुण्यक्षयादिहाऽऽगत्य प्रवरे योगिनां कुले ॥ २७ ॥
ब्राह्मणप्रवरो भूत्वा सर्वशास्त्रार्थपारगः ।
ज्ञानं तत्र समासाद्य मुक्तिं प्राप्नोति दुर्लभाम् ॥ २८ ॥
एवमभ्यर्च्य हलिनं ततः कृष्णं विचक्षण ।
द्वादशाक्षरमन्त्रेण पूजयेत्सुसमाहितः ॥ २९ ॥
द्विषट्कवर्णमन्त्रेण भक्त्या ये पुरुषोत्तमम् ।
पूजयन्ति सदा धीरास्ते मोक्षं प्राप्नुवन्ति वै ॥ ३० ॥
न तां गतिं सुरा यान्ति योगिनो नैव सोपमाः ।
या गतिं यान्ति भो विप्रा द्वादशाक्षरतत्पराः ॥ ३१ ॥

तस्मात्तेनैव मन्त्रेण भक्त्या कृष्णं जगद्गुरुम् ।
संपूज्य गन्धपुष्पाद्यैः प्रणिपत्य प्रसादयेत् ॥ ३२ ॥
जय कृष्ण जगन्नाथ जय सर्वाघनाशन ।
जय चाणूरकेशिघ्न जय कंसनिषूदन ॥ ३३ ॥
जय पद्मपलाशाक्ष जय चक्रगदाधर ।
जय नीलाम्बुदश्याम जय सर्वसुखप्रद ॥ ३४ ॥
जय देव जगत्पूज्य जय संसारनाशन ।
जय लोकपते नाथ जय वाञ्छाफलप्रद ॥ ३५ ॥
संसारसागरे घोरे निःसारे दुःखफेनिले ।
क्रोधग्राहाकुले रौद्रे विषयोदकसंप्लवे ॥ ३६ ॥
नानारोगोर्मिकलिले मोहावर्तसुदुस्तरे ।
निमग्नोऽहं सुरश्रेष्ठ त्राहि मां पुरुषोत्तम ॥ ३७
एवं प्रसाद्य देवेशं वरदं भक्तवत्सलम् ।
सर्वपापहरं देवं सर्वकामफलप्रदम् ॥ ३८ ॥
पीनांसं द्विभुजं कृष्णं पद्मपत्रायतेक्षणम् ।
महोरस्कं महाबाहुं पीतवस्त्रं शुभाननम् ॥ ३९ ॥
शङ्खचक्रगदापाणिं मुकुटाङ्गदभूषणम् ।
सर्वलक्षणसंयुक्तं वनमालाविभूषितम् ॥ ४० ॥
दृष्ट्वा नरोऽञ्जलिं कृत्वा दण्डवत्प्रणिपत्य च ।
अश्वमेधसहस्राणां फलं प्राप्नोति वै द्विजाः ॥ ४१
यत्फलं सर्वतीर्थेषु स्नाने दाने प्रकीर्तितम् ।
नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥ ४२

यत्फलं सर्वरत्नाद्यैरिष्टे यद्सुवर्णके।
नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥ ४३ ॥
यत्फल सर्ववेदेषु सर्वयज्ञेषु यत्फलम्।
तत्" समवाप्नोति नरः कृष्णं प्रणम्य च ॥ ४४ ॥
सर्वदानेन यमेन नियमेन च।
फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥ ४५ ॥
विधैरुग्रैर्यत्फलं समुदाहृतम्।
नर. फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥ ४६ ॥
यत्फलं ब्रह्मचर्येण सम्यक्चीर्णेन तत्कृतम्।
नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥ ४७ ॥
यत्फलं च गृहस्थस्य यथोक्ताचारवर्तिनः।
फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥ ४८ ॥
वासेन वानप्रस्थस्य कीर्तितम्।
फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥ ४९ ॥
न यथोक्तेन यत्फलं समुदाहृतम्।
फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥ ५० ॥
बहुनोक्तेन माहात्म्ये तस्य भो द्विजाः।
कृष्णं नरो भक्त्या मोक्षं प्राप्नोति दुर्लभम् ॥ ५१
त्. शुद्धात्मा कल्पकोटिसमुद्भवैः।
श्रिय परमया युक्तः सर्वैः समुदितो गुणैः ॥ ५२ ॥
सर्वं. कामयुक्तेन विमानेन सुवर्चसा।
त्रिसप्तकुलमुद्धृत्य नरो विष्णुपुरं व्रजेत् ॥

तत्र कल्पशतं यावद्भुक्त्वा भोगान्मनोरमान् ।
गन्धर्वाप्सरसैः सार्धं यथा विष्णुश्चतुर्भुजः ॥ ५४ ॥
च्युतस्तस्मादिहाऽऽयातो विप्राणां प्रवरे कुले ।
सर्वज्ञः सर्ववेदी च जायते गतमत्सरः ॥ ५५ ॥
स्वधर्मनिरतः शान्तो दाता भूतहिते रतः ।
आसाद्य वैष्णवं ज्ञानं ततो मुक्तिमवाप्नुयात् ॥ ५६ ॥
ततः संपूज्य मन्त्रेण सुभद्रां भक्तवत्सलाम् ।
प्रसादयेत्ततो विप्राः प्रणिपत्य कृताञ्जलिः ॥ ५७ ॥
नमस्ते सर्वगे देवि नमस्ते शुभसौख्यदे ।
त्राहि मां पद्मपत्राक्षि कात्यायनि नमोऽस्तु ते ॥ ५८ ॥
एवं प्रसाद्य तां देवीं जगद्धात्रीं जगद्धिताम् ।
बलदेवस्य भगिनीं सुभद्रां वरदां शिवाम् ॥ ५९ ॥
कामगेन विमानेन नरो विष्णुपुरं व्रजेत् ।
आभूतसंप्लवं यावत्क्रीडित्वा तत्र देववत् ॥ ६० ॥
इह मानुषतां प्राप्तो ब्राह्मणो वेदविद्भवेत् ।
प्राप्य योगं हरेस्तत्र मोक्षं च लभते ध्रुवम् ॥ ६१ ॥

इति श्रीमहापुराण आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसंवादे कृष्णद
माहात्म्यं नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥
श्लोकानामादितः समष्ट्यङ्काः—३८७८